

प्राचीन ज्ञान आधुनिक प्रमाण

वेद, इतिहास और आधुनिक विज्ञान के तर्कसंगत रहस्य
" जहाँ परंपरा मिलती है प्रमाण से "

डॉ. रुचिका जोशी, प्रो. हरीश चंद्र जोशी



BlueRose ONE^{.com}
Stories Matter

New Delhi • London

BLUEROSE PUBLISHERS

India | U.K.

Copyright © Prof. Harish Chandra Joshi and Dr. Ruchika Joshi 2026

All rights reserved by author. No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the prior permission of the author. Although every precaution has been taken to verify the accuracy of the information contained herein, the publisher assumes no responsibility for any errors or omissions. No liability is assumed for damages that may result from the use of information contained within.

BlueRose Publishers takes no responsibility for any damages, losses, or liabilities that may arise from the use or misuse of the information, products, or services provided in this publication.



BlueRoseONE
Stories Matter
New Delhi • London

For permissions requests or inquiries regarding this publication,
please contact:

BLUEROSE PUBLISHERS

www.BlueRoseONE.com

info@bluerosepublishers.com

+91 8882 898 898

+4407342408967

ISBN: 978-93-7825-880-0

Cover design: Sharvi
Typesetting: Simran Maurya

First Edition: May 2026

आभार (Acknowledgment)

यह पुस्तक केवल शब्दों का संग्रह नहीं, अपितु **अनुभूति, श्रद्धा और समर्पण** की एक जीवंत अभिव्यक्ति है। इसकी रचना में जो भी सामर्थ्य, विचार और प्रेरणा निहित है, वह पूर्णतः परमात्मा की **अनुकम्पा** का परिणाम है। हम **भगवान श्री राधा-कृष्ण** के श्रीचरणों में अपनी **कृतज्ञता** अर्पित करते हैं, जिनकी **अपरम्यार कृपा** ने इस कार्य को संभव बनाया।

हम अपने पूज्य **सद्गुरु देव भगवान**, गुरुजन एवं संतों के **श्रीचरणों में कोटि-कोटि नमन** करते हैं। उनकी **असीम कृपा, आशीर्वाद और दिव्य ज्ञान** ने हमारे जीवन एवं चिंतन को नई दिशा प्रदान की है। वास्तव में, उनके मार्गदर्शन के बिना यह प्रयास संभव ही नहीं हो सकता था।

अपने माता-पिता, परिवारजनों, बेटियों (अवनी और अनन्या), साधकों, सहकर्मियों और विद्यार्थियों के प्रति भी हम **गहन आभार** व्यक्त करते हैं, जिनके सहयोग, धैर्य और विश्वास ने इस यात्रा को सार्थक बनाया।

प्रस्तावना

प्रत्येक मनुष्य अपनी-अपनी सीमित बुद्धि, धारणाओं और अभिलाषाओं के अनुसार पूर्णता की खोज में निरन्तर संलग्न रहता है, तथापि किसी न किसी अभाव, अतृप्ति एवं अन्तर्द्वन्द्व के कारण वह अन्तःकरण से अशान्त ही बना रहता है। वह निरन्तर परिश्रम और संघर्ष करता है, किन्तु अपने ही अज्ञान, भ्रम तथा अहंकार के आवरण में आच्छादित होने के कारण उस परम विश्राम को प्राप्त नहीं कर पाता, जिसकी उसे वास्तविक अभिलाषा है। जैसे कोई पक्षी बिना स्थिर आधार के बार-बार तिनके जोड़कर भी अपना घोंसला निर्मित नहीं कर पाता, वैसे ही मनुष्य भी उस अदृश्य दिव्य सहारे को न पहचान पाने के कारण अपने ही प्रयासों में उलझा रहता है, जो उसकी सफलता का वास्तविक आश्रय है। यही अहं भाव उसे ईश्वरीय अनुग्रह से विमुख कर देता है और वह अपने ही कर्मों, मान्यताओं तथा सीमित ज्ञान के बंधन में जकड़कर दुःख का अनुभव करता रहता है।

ऐसी विचलित एवं दिग्भ्रमित अवस्था में प्राचीन भारतीय वैदिक ज्ञानपरम्परा वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत तथा ऋषि-मुनियों की दिव्य शिक्षाएँ मनुष्य को उस सनातन सत्य, परम तत्त्व एवं चिरस्थायी आश्रय का बोध कराती हैं, जो जीवन को वास्तविक दिशा और सार्थकता प्रदान करता है। इस किताब का उद्देश्य केवल ज्ञान का प्रसारण नहीं, अपितु विशेषतः उस नवीन पीढ़ी के अन्तर्मन में जागृति उत्पन्न करना है, जो निरन्तर यह प्रश्न करती है "हम ईश्वर में विश्वास क्यों करें?", "ईश्वर कहां है?", "आस्था का क्या लाभ है?", "यदि हम वेदों का अध्ययन न करें तो क्या हानि है?" तथा "क्या हम अपनी इच्छानुसार जीवन व्यतीत नहीं कर सकते?" इन समस्त जिज्ञासाओं एवं संशयों का समाधान प्रस्तुत करते हुए यह किताब वेदों के गूढ़ तत्त्वज्ञान को आधुनिक विज्ञान के साथ

समन्वित कर यह प्रतिपादित करता है कि यह ज्ञान केवल **आस्थामूलक अवधारणा** नहीं, अपितु **वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक सत्य** का अद्वितीय संगम है। यह दिव्य ज्ञान, जो ऋषियों को ईश्वरीय कृपा—विशेषतः राधा रानी की **अनुकम्पा** से प्राप्त हुआ, मनुष्य को उसके वास्तविक उद्देश्य, अर्थात् **आत्मबोध, धर्मपालन** तथा **परम सत्य की अनुभूति** की ओर प्रेरित करता है। अतः जब मनुष्य अपनी **संकीर्ण दृष्टि, अहंकार एवं मिथ्या धारणाओं** से ऊपर उठकर इस **दिव्य वैदिक ज्ञान** को आत्मसात करता है, तभी उसका जीवन वास्तविक अर्थों में **पूर्ण, शान्त, सार्थक एवं परमानन्दमय** बनता है।

इस पुस्तक में समाहित अध्याय विविध विषयों को समेटे हुए हैं, जैसे **वैदिक सृष्टि-दर्शन** और आधुनिक **कॉस्मोलॉजी** का **तुलनात्मक विश्लेषण**, संस्कृत भाषा की **वैज्ञानिक संरचना** तथा **ध्वनि-विज्ञान**, प्राचीन मंदिरों की **स्थापत्य-कुशलता** और **अभियांत्रिकी**, तथा आयुर्वेद एवं **शल्य-चिकित्सा** की **वैज्ञानिक आधारशिला**। इसके अतिरिक्त, रामायण और महाभारत के प्रसंगों का **पुनर्पाठ** करते हुए उन्हें **वैज्ञानिक, दार्शनिक** और **सामाजिक संदर्भों** में समझने का प्रयास किया गया है। यह ग्रंथ एक **समन्वित बौद्धिक सेतु** के रूप में कार्य करता है, जो अतीत और वर्तमान, परंपरा और नवाचार, तथा आस्था और तर्क के मध्य **सुसंगत एवं संतुलित संवाद** स्थापित करता है। यह केवल आस्था का वर्णन नहीं, बल्कि **गूढ़ तथ्यों, तार्किक विश्लेषण** और **अंतर्विषयी अध्ययन** पर आधारित एक संगठित **अन्वेषण-प्रक्रिया** है, जो प्राचीन ज्ञान और आधुनिक विज्ञान के मध्य विद्यमान **गहन संबंधों** को उद्घाटित करती है तथा **विवेकपूर्ण समझ** की दिशा में प्रेरित करती है। यह पुस्तक न तो किसी मत का समर्थन है और न ही किसी सिद्धांत का खंडन, बल्कि यह **जिज्ञासा, विवेकपूर्ण अध्ययन** और **समन्वित चिंतन** पर आधारित एक प्रयास है, जो प्राचीन वैदिक ज्ञान और आधुनिक विज्ञान के मध्य निहित संबंधों को स्पष्ट करता है।

डॉ. रुचिका जोशी एक अनुभवी भौतिकी की सहायक प्राध्यापिका हैं, जिन्हें शिक्षण एवं अनुसंधान के क्षेत्र में 16 वर्षों का समृद्ध अनुभव प्राप्त है। वे वर्तमान में दिल्ली विश्वविद्यालय के देशबंधु कॉलेज में सहायक प्राध्यापिका के पद पर कार्यरत हैं। उन्होंने अपनी पीएच.डी.दिल्ली विश्वविद्यालय तथा जापानके तोयोहाशी इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी से पूर्ण की है। भौतिकी के क्षेत्र में उनके अनेक शोध-पत्र प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। और **शैक्षणिक लेखन व ई-कंटेंट** के माध्यम से निरंतर योगदान दे रही हैं।

प्रो. हरीश चंद्र जोशी एक अनुभवी रसायन विज्ञान के प्राध्यापक हैं, जिन्हें शिक्षण के क्षेत्र में 25 वर्षों का अनुभव प्राप्त है। वे वर्तमान में आकाश इंस्टीट्यूट में प्रोफेसर हैं तथा पूर्व में फिटजी लिमिटेड, कालू सराय (दक्षिणी दिल्ली) में डिप्टी हेड ऑफ द डिपार्टमेंट के पद पर कार्य कर चुके हैं। दोनों लेखक आध्यात्मिक रुचियों से युक्त हैं तथा स्वयं **भक्ति मार्ग के समर्थक** हैं, जो संतों और भगवान की कृपा पर चलने का प्रयास करते हैं। दोनों की वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक विषयों में विशेष रुचि है, और वे प्राचीन ज्ञान एवं आधुनिक विज्ञान के समन्वय को सरल एवं तर्कसंगत रूप में प्रस्तुत करने का गिलहरी प्रयास किया हैं। उनके लेखन में **सनातन साहित्य की गहन समझ और संत वचनों की सरल, प्रभावशाली प्रेरणा** का सुंदर मिश्रण दिखाई देता है, जो पाठक को ज्ञान की गहराई तक पहुँचाने के साथ-साथ जीवन में भक्ति और आध्यात्मिक अनुशासन अपनाने की प्रेरणा देता है।

अनुक्रमणिका

अध्याय 1: विज्ञान: निश्चितता की खोज में स्थायी संदेह 1

- 1.1: वैदिक सृष्टि-दर्शन और आधुनिक कॉस्मोलॉजी का अंतः
विषयी अध्ययन 20
- 1.2: ईश्वर के अस्तित्व की वैज्ञानिकता "ईश्वर: ब्रह्मांड के
सुपरकॉम्प्यूटर का वैज्ञानिक साक्ष्य" 27
- 1.3: ईश्वरप्रसूत भौतिकी-जहाँ विज्ञान गणना करता है और ईश्वर
मुस्कुराता है 30
- 1.4: क्यों?, किसने? किसके लिए:- क्या:- कैसे:- (प्रश्नों के आशय
पर क्रमशः विचार) 34
- 1.5: "गति का प्रथम कारण शाश्वत ब्रह्माण्ड (Eternal Universe):
भौतिकी, ऊर्जा और चेतन सिद्धान्त पर एक अंतरविषयी
अध्ययन" 41
- 1.6: ईश्वर क्यों नहीं महसूस होते? मन मल्टीटास्किंग में व्यस्त है 43
- 1.7: ईश्वर का वैज्ञानिक स्वरूप (ईश्वर: ब्रह्माण्ड का मूल
एल्गोरिद्म) 50
- 1.8: ईश्वर के कार्य करने की प्रणाली (ईश्वर: न्यायकारी एल्गोरिद्म,
अजन्मा हार्डवेयर, अमर सॉफ्टवेयर और सृष्टिकर्ता API) 60

अध्याय 2: संस्कृत: ध्वनि, चेतना और विज्ञान का अद्वितीय संगम 70

- 2.1: "ऋषियों की लैंग्वेज लैब: संस्कृत का वैज्ञानिक चमत्कार" 72
- 2.2: मंत्र, स्पन्दन और ध्वनि ऊर्जा का सिद्धान्त 73
- 2.3: "पाणिनि व्याकरण का कोड: दुनिया का सबसे पुराना
प्रोग्रामिंग सिस्टम" 75
- 2.4: "संस्कृत व्याकरण: कंप्यूटर से भी ज़्यादा लॉजिकल भाषा" 76
- 2.5: "संस्कृत वर्णमाला: ब्रह्माण्ड की सबसे पुरानी साउंड
टेक्नोलॉजी" 76

2.6: "चेतना, विचार और ध्वनि: वाणी के चार स्तरों का रहस्य"	81
2.7: "अक्षर का रहस्य: ध्वनि, चेतना और अविनाशी सत्ता"	83
2.8: "ॐ की वाइब्रेशन: ब्रह्माण्ड का असली साउंड सिस्टम"	92
2.9: "कौन, क्या, कब, कहाँ: 'क' का प्रश्न-सूत्र"	94

अध्याय 3: प्राचीन मंदिर: आस्था, गणित और इंजीनियरिंग का अद्भुत संगम.....97

3.1: "मंदिर में शांति क्यों मिलती है? Wi-Fi नहीं, 'Divine-Fi' है	97
3.2: "देवता अनेक क्यों? सनातन धर्म का दार्शनिक उत्तर"	101
3.3: "शक्ति से सिद्धि तक: नवदुर्गा में छिपा जीवन का विज्ञान"	105
3.4: "पशु-बलि का सत्य: वेदों का सिद्धांत या बाद की विकृति?" ..	108
3.5: मासिक धर्म के दौरान मंदिर प्रवेश क्यों नहीं? परंपरा, विज्ञान और वास्तविकता का विश्लेषण.....	112
3.6: लेपाक्षी मंदिर का लटकता स्तंभ और संरचनात्मक अभियांत्रिकी का वैज्ञानिक विश्लेषण	115
3.7: रानी की वाव "जमीन के अंदर उल्टा मंदिर" स्थापत्य कला, गणितीय ज्यामिति और जल विज्ञान का समन्वय.....	118
3.8: विरुपाक्ष मंदिर (Virupaksha Temple) में पिनहोल कैमरा सिद्धांत और स्थापत्य योजना का विश्लेषण.....	120
3.9: शिव का मंदिर जहाँ दोपहर में भी छाया नहीं पड़ती बृहदेश्वर रहस्य महादेवसेतु द्वारा	122
3.10: मदुरै का मीनाक्षी अम्मन मंदिर: प्राचीन भारतीय वास्तुकला और वैज्ञानिक डिजाइन का अद्भुत उदाहरण.....	125
3.11: समंदर के बीच मीठा पानी? रामेश्वरम का 22 कुओं का रहस्य!	128
3.12: एलोरा मंदिर (Ellora Temple): औरंगजेब भी नहीं तोड़ पाया कैलाश मंदिर का रहस्य	132
3.13: कोणार्क सूर्य मंदिर: सौर घड़ी और ब्रह्मांडीय गणना का स्थापत्य चमत्कार	135

अध्याय 4: विज्ञान के नाम पर भी पाखंड? "Monkey से Man तक... बीच में Logic Missing?" 139

अध्याय 5: "जब आज़ादी नेटफ्लिक्स से सीखी जाए और जिम्मेदारियाँ 'छोड़ दी जाएँ'!"	169
5.1: "लग्जरी बिलीफ़: विचारों के माध्यम से सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रदर्शन और उसके छिपे हुए प्रभाव"	170
5.2: नारीवाद (फेमिनिज्म) वास्तव में क्या है? क्या यह सशक्तिकरण का साधन है या प्रचार का?.....	172
5.3: क्या भारत में गृहिणियाँ नारीवाद (फेमिनिज्म) से सशक्त हो रही हैं या पीड़ित हो रही हैं?	174
5.4: कुछ गुरु ऐसा क्यों मानते हैं कि महिलाएं वेदों के लिए अनुपयुक्त हैं?.....	180
5.5: लड़कियाँ मिस वर्ल्ड बनने के सपने को लेकर इतनी जुनूनी क्यों होती हैं?	190
5.6: "स्वतंत्रता बनाम संबंध: आधुनिक स्त्री के सामने वास्तविक चुनौती"	192
5.7: "आधुनिकता की कीमत: संयुक्त परिवार से न्यूक्लियर परिवार तक: परिवर्तन या षड्यंत्र?"	194
5.8: "भाषा, वेशभूषा और संस्कृति: टूटते संबंधों की कहानी"	197
5.9: शिक्षा और राजनीति में महिलाओं की भागीदारी कम क्यों है?	198
5.10: "समग्र शिक्षा का भारतीय मॉडल: गुरुकुल परंपरा और आधुनिक चुनौतियाँ"	200
5.11: प्राचीन भारतीय ग्रंथों में विवाह और ब्रह्मचर्य: बाल-विवाह पर ऐतिहासिक दृष्टि	203
5.12: "स्वतंत्रता तभी टिकाऊ होती है, जब वह उत्तरदायित्व और संबंधों के साथ संतुलित हो।"	207

अध्याय 6: वेद, आयुर्वेद और सुश्रुत की वैज्ञानिक शल्य-परंपरा	210
6.1: "दादी का काढ़ा बनाम लैब का डेटा: आखिरकार जीनोम ने मान ही लिया 'दादी सही थी!'"	211
6.2: "सलाद देखकर दिल खुश, चिकन देखकर सवाल क्यों?	216

6.3: "दिल, दिमाग और डाइट तीनों का कनेक्शन गहरा है!	221
6.4: "धरती कह रही है: थोड़ा हल्का खाओ, मुझे भी सांस लेने दो!	225
6.5: "जब दिमाग कहे सलाद खाओ, और दिल बोले—पिज़्ज़ा ही मंगाओ!"	226
6.6: "आपका पेट: एक लैब या डस्टबिन? आयुर्वेद से जानिए सच्चाई!" 231	
6.7: "यथापिंडे तथा ब्रह्मांडे: मतलब आप भी एक चलता-फिरता यूनिवर्स हैं!"	235
6.8: "आचार्य सुश्रुत और प्राचीन भारतीय शल्य-चिकित्सा का वैज्ञानिक दृष्टिकोण"	239
6.9: "छद्म-विज्ञान (Pseudo-Science) या 'प्रो-विज्ञान'? योग पर दुनिया का कन्फ्यूजन"	241
6.10: "अल-जाहिज की रिपोर्ट: भारतीय औषधियों ने यूरोप को हैरान कर दिया!"	244
6.11: "जब टीकाकरण में गंगाजल भी था और इम्युनिटी भी!"	246
6.12: यूरोप की लाइब्रेरी में घुसे वेद और बदल गया दर्शन का सिलेबस.....	248
6.13: "जल, पोषण और जीवन: वैदिक ग्रंथों में विज्ञान के संकेत"	253
6.14: "आयुर्वेद की वैज्ञानिक आधारशिला और समग्र स्वास्थ्य दृष्टि"	258
6.15: सिंधु सभ्यता में औषधीय एवं खनिज-पदार्थों का उपयोग.....	260
6.16: शिलाजीत का आयुर्वेदिक और वैज्ञानिक विश्लेषण.....	261
6.17: मेहरगढ़ की प्रागैतिहासिक दंत-चिकित्सा परंपरा.....	263
6.18: तक्षशिला के धातु-निर्मित शल्य-उपकरण और उनका विश्लेषण.....	264
6.19: कौशांबी के मृण-शल्य और प्रारंभिक शरीर-रचना ज्ञान	265
6.20: "आयुर्वेद की वैज्ञानिक एवं संस्थागत प्रासंगिकता"	267

6.21: "प्राचीन भारतीय रसायन विज्ञान: पुरातात्विक साक्ष्य, शल्य-उपकरण और ज्ञान की सतत विकास-परंपरा"	267

अध्याय 7: आयुर्वेद (चरक संहिता, सुश्रुत संहिता और अष्टांग हृदयम्) 269

7.1: मानव देह के प्रमुख आंतरिक अंगों का समन्वित कार्य: जीवन-धारण, पाचन, श्वसन, उत्सर्जन और प्रतिरक्षा की जैविक प्रणाली	273
7.1.1: हृदय (Heart) प्राण का आधार –	273
7.1.2: यकृत (Liver): शरीर का प्रमुख चयापचय एवं विषहरण अंग–	275
7.1.3: प्लीहा (Spleen): शरीर की प्रतिरक्षा और रक्त शोधन से संबंधित अंग–	276
7.1.4: आमाशय (Stomach): भोजन के पाचन और संग्रह का प्रमुख अंग–	278
7.1.5: पक्काशय (Large Intestine): जल अवशोषण और मल निर्माण का प्रमुख अंग –	279
7.1.6: वृक्क (Kidneys): रक्त शोधन और मूत्र निर्माण का प्रमुख अंग–	280
7.1.7: बस्ति (Urinary Bladder): मूत्र के संग्रह और निष्कासन का प्रमुख अंग–	282
7.1.8: फुफ्फुस (Lungs): श्वसन और गैसों के आदान-प्रदान का प्रमुख अंग–	283
7.1.9: पित्ताशय (Gall Bladder): पित्त के संग्रह और स्राव का सहायक अंग–	284
7.1.10: देह (Body): समस्त अंगों और प्रणालियों से मिलकर बना जीवित संरचनात्मक तंत्र–	285
7.2: "प्राचीन आयुर्वेद में सूक्ष्म जैविक चिंतन: कोशिका एवं ऊतक संबंधी अवधारणाओं का दार्शनिक-वैज्ञानिक विश्लेषण"	289

अध्याय 8: दर्शन और वैदिक विज्ञान: ऋषि, सूत्र और वैज्ञानिक उलझन.....292

- 8.1: "प्राचीन भारत की वैज्ञानिक विरासत: मिथक या वास्तविकता?" 293
- 8.2: "वेदों ने सुई भी नहीं दी' मिथक या मूलभूत विज्ञान की अनदेखी?" 297
- 8.3: भारत ने केवल 'शून्य' (zero) दिया, या रहस्यमय कुंडली (जहाँ ग्रह भी करते हैं टाइम-टेबल और इंसान ढूँढता है अपना Wi-Fi सिग्नल!).....300
- 8.4: "कुंडली से लेकर कंटेनर शिप तक: जब प्राचीन भारत ने कहा – 'हम सिर्फ ग्रह नहीं, ग्लोबल ट्रेड भी संभालते हैं!'.....302
- 8.5: गौमूत्रिका सिद्धांत: जब गाय की चाल ने सिखाया गणित!.....304

अध्याय 9: "वैदिक साहित्य में गणित और विज्ञान के बीजरूप सिद्धांत: परंपरा, तर्क और ऐतिहासिक विकास" 307

- 9.1: "जब बिना टेलीस्कोप (telescope) के ही आकाश नाप लिया!" 310
- 9.2: "कैलेंडर बनाना है? पहले आसमान को समझो!" 311
- 9.2.1: ईसा पूर्व, ईस्वी, ईसा पूर्व, ईस्वी: ईसाई धर्म के प्रसार के साधन! 311
- 9.2.2: एक समय ऐसा भी था जब जनवरी का महीना होता ही नहीं था! 312
- 9.2.3: एक पंचांग तिथि से क्या-क्या पता चल सकता है!.....314
- 9.2.4: हिंदू माह के नामकरण के पीछे का विज्ञान 314
- 9.2.5: 27 नक्षत्र (27 constellations) और 12 महीने (12 months) ही क्यों.....316
- 9.2.6: हिंदू त्योहार कभी-कभी दो बार क्यों पड़ते हैं?.....316
- 9.2.7: राशि और नक्षत्र को सरल भाषा में समझना.....318
- 9.2.8: अन्य त्योहारों के विपरीत मकर संक्रांति का दिन स्थिर क्यों रहता है? 319
- 9.2.9: सप्ताह के दिन वैश्विक स्तर पर ग्रहों से क्यों जुड़े हुए हैं!.....321

9.2.10: वैज्ञानिक सोच के लिए धर्म क्यों आवश्यक है!.....	323
9.2.11: भारतीय नववर्ष, जिसे चैत्र शुक्ल प्रतिपदा (Chaitra Shukla Pratipada) कहा जाता है.....	324
9.3: वेदों में संख्यात्मक संरचना (Numerical Structuring in Yajurveda)	327
9.4: "वैदिक मन्त्रों में गणित: संख्यात्मक प्रगति, संरचना और दार्शनिक आधार"	328
9.5: "1 से Point, 2 से Line, 3 से Triangle: ऋषियों ने पहले ही सिखा दिया था!"	333
9.6: "पूर्णमदः" मंत्र और अनन्त (Infinity) की दार्शनिक व्याख्या	335
9.7: शुल्बसूत्रों में रेखागणित (Proto-Geometry and Pythagorean Relation)	338
9.8: "प्राचीन भारतीय विज्ञान और गणित: आर्यभट्ट, वराहमिहिर और वैदिक ज्ञान से आधुनिक विज्ञान तक का बौद्धिक सफर"	344
9.9: वैशेषिक दर्शन में बल, गति, आकर्षण और कारण-कार्य सिद्धांत	353
9.10: आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त, भास्कराचार्य, वराहमिहिर, नीलकंठ, सोमयाजी और ज्येष्ठदेव आदि द्वारा दार्शनिक बीज से वैज्ञानिक परिपक्वता तक का क्रमिक संक्रमण.....	357
9.10.1: आर्यभट्ट और ब्रह्मगुप्त – शून्य की परिभाषा, त्रिकोणमिति, बीजगणित।	357
9.10.2: भास्कराचार्य और वराहमिहिर – गुरुत्वाकर्षण, कलन (Calculus) की नींव, मौसम और जल विज्ञान.....	359
9.10.3: नीलकंठ सोमयाजी और ज्येष्ठदेव – केरल स्कूल, अनंत श्रृंखला (infinite series), π का सटीक मान।.....	361
9.11: प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा का पतन और उसके ऐतिहासिक कारण.....	362
9.12: "हमारे ऋषि गणित के जटिल सिद्धांत निकाल रहे थे, और हम अभी भी कैलकुलेटर ढूंढ रहे हैं!"	363

अध्याय 10 “रामायण और महाभारत के विवादित प्रसंगों का धर्म, सामाजिक व्यवस्था और नैतिकता के संदर्भ में विश्लेषण” 367

10.1: “रामायण में राम के माध्यम से धर्म, सामाजिक व्यवस्था और भक्ति की अवधारणा”	370
10.2: सीता (Sita) जी का निर्वासन और राम (Rama) जी के चरित्र में स्त्री-सम्मान, करुणा और राजधर्म के बीच नैतिक द्वंद्व	375
10.2.1: राम (Rama) जी द्वारा ताड़का (Tataka) के वध का प्रसंग	375
10.2.2: अहिल्या (Ahalya) के चरित्र पर लांछन (Defamation) लगा हो तो भी राम उसे पावन कर देते हैं।.....	377
10.3: बाली (Bali) को दंड (Punish) इसलिए दिया क्योंकि उसने सुग्रीव (Sugriva) की पत्नी को बलपूर्वक रखा।.....	378
10.3.1: रामायण में राम, माता सीता के बिना जीवित नहीं रह सकते, पर अचानक उन्हें निर्वासित कर देते हैं।.....	379
10.4: कर्ण और जातिवाद (Karna and Caste).....	381
10.5: एकलव्य (Eklavya) का प्रसंग: जातिवाद की बहस, गुरु-शिष्य परंपरा और जरासंध (Jarasandha) की सेना में भूमिका से लेकर कृष्ण (Krishna) के हाथों मृत्यु तक.....	382
10.6: “वानर थे या ‘वन वाले नर’? रामायण का सबसे कन्फ्यूजिंग सवाल!”	384

अध्याय 11 वाल्मीकि रामायण का खगोलीय आयाम: इतिहास, विज्ञान और कालानुक्रम 386

11.1: वाल्मीकि की दृष्टि से आकाश	386
11.1.1: राम-जन्म और ग्रह-नक्षत्रों का अद्भुत संयोजन.....	386
11.1.2: आधुनिक प्लैनेटेरियम सॉफ्टवेयर द्वारा पञ्चगामी गणना ...	388
11.1.3: वनवास और पुष्य नक्षत्र का निर्णय	389
11.1.4: सूर्यग्रहण और युद्ध का खगोलीय साक्ष्य.....	391
11.1.5: आयु-गणना और काल-संगति.....	392
11.1.6: विलुप्त प्रजातियाँ और लंका प्रसंग.....	393

11.2: प्राचीन भारत का वैज्ञानिक दृष्टिकोण.....	393
11.3: वाल्मीकि रामायण के अयोध्याकाण्ड में वर्णित शब्दभेदी बाण: मिथक या प्रौद्योगिकीय संकेत?.....	396
11.4: श्री रामचरितमानस में 'लक्ष्मण रेखा' का गूढ़ दार्शनिक एवं अकादमिक पुनर्पाठ.....	399
11.5: कुंभकर्ण का निद्रा-जागरण चक्र: पौराणिक प्रतीक और आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण.....	402
11.6: "दस सिर वाले रावण: वाल्मीकि रामायण में वर्णित तकनीकी, जैविक और संरक्षण तंत्र का वैज्ञानिक अध्ययन".....	405
11.7: "मेघनाद: रामायण में सुपर-टेक्नोलॉजिकल युद्धकला और आधुनिक विज्ञान के सापेक्ष विश्लेषण".....	407
11.8: "रामसेतु: प्राचीन भारत के सिविल इंजीनियरिंग और तकनीकी चमत्कार का अकादमिक विश्लेषण".....	410
11.9: "रामायण में वर्णित वानर सेना: माइक्रोग्रेविटी, ऑप्टिकल कैमोफ्लाज और सुपर-सेंसरी क्षमताओं का आधुनिक दृष्टिकोण".....	412
11.10: निज प्रतिबिंब से ऊर्जा-स्थानांतरण तक: प्रतीकात्मक भाषा और वैज्ञानिक व्याख्या.....	418
11.11: पुष्पक विमान और आधुनिक एयरोस्पेस अभियांत्रिकी: एक वैज्ञानिक पुनर्मूल्यांकन.....	423
11.12: "प्राचीन भारतीय चिकित्सा-चिन्तन और आधुनिक ट्रॉमा केयर: सुषेण की औषधियों का तुलनात्मक अध्ययन".....	427
11.13: 'तैलद्रोणी' और प्राचीन शव-संरक्षण विज्ञान का आधुनिक वैज्ञानिक पुनर्पाठ.....	432
11.14: अत्यंत सूक्ष्म छल-प्रपंच का वैज्ञानिक पुनर्पाठ: कालनेमि प्रसंग और आधुनिक सूचना-विज्ञान.....	436
11.15: "प्राचीन मिथक और आधुनिक तकनीक: मारीच का स्वर्ण-मृग और होलोग्राफिक/डीपफेक प्रोजेक्शन".....	440

अध्याय 12 “महाभारत: प्राचीन विज्ञान और ऊर्जा प्रौद्योगिकी का महासागर”	445
12.1: महाभारत के खगोलीय संदर्भों का आधुनिक सॉफ्टवेयर द्वारा परीक्षण.....	445
12.2: भगवान श्री कृष्ण का दिव्य जन्म और खगोलीय संकेत.....	448
12.2.1: महाभारत युद्ध और श्रीकृष्ण के पृथ्वी-प्रयाण का खगोलीय तथा कालानुक्रमिक विश्लेषण.....	450
12.2.2: श्रीकृष्ण का शांति-दूत बनकर कौरवों की सभा में आगमन	453
12.2.3: भीम और दुर्योधन के बीच महाभारत का गदा-युद्ध.....	456
12.2.4: भगवान श्री कृष्ण का पृथ्वी पर निवास काल.....	459
12.2.5: श्रीकृष्ण के प्रस्थान और कलियुग का आरम्भ.....	460
12.3: “महाभारत के प्रमाणों से श्रीकृष्ण के दिव्य चरित्र की पुष्टि”	462
12.4: महाभारत: प्राचीन विज्ञान और उन्नत युद्ध तकनीक	465
12.4.1: “ब्रह्मास्त्र और आधुनिक WMD: महाभारत में विज्ञान और चेतना का समन्वय”	468
12.4.2: “नारायणास्त्र: महाभारतकालीन स्वायत्त हथियार और आधुनिक AI आधारित सैन्य प्रौद्योगिकी का साम्य”	469
12.4.3: “महाभारत के बहु-बाण अस्त्र और आधुनिक MIRV मिसाइल प्रणाली: प्राचीन युद्ध विज्ञान का तकनीकी दृष्टिकोण”	471
12.4.4: “सुदर्शन चक्र: दिव्य ऊर्जा और तकनीक”	472
12.5: “संजय की दिव्य दृष्टि: महाभारत में प्राचीन सर्विलांस और रीयल-टाइम ऑब्जर्वेशन तकनीक”	474
12.6: “भीष्म पितामह की इच्छामृत्यु: महाभारत में धर्म, समय और आत्म-संयम का विज्ञान”	476
12.7: “गीता का उपदेश और समय-सापेक्षता: महाभारत में ब्रह्मांडीय काल-आयाम का वैज्ञानिक दृष्टिकोण”	478
12.8: “महाभारत में कौरवों का जन्म: प्राचीन जेनेटिक्स और मानव विकास”	480

12.9: "सोनार स्कैनिंग और कार्बन डेटिंग के आलोक में द्वारका: प्राचीन भारतीय नगर सभ्यता का पुनर्पाठ"	483
12.10: "वैदिक कालगणना और चेतना-केंद्रित ब्रह्मांड विज्ञान: न्यूरोसाइंस और भौतिकी के लिए दार्शनिक अंतर्दृष्टि"	485

अध्याय 13: "जब इन्द्रप्रस्थ ने 'स्मार्ट सिटी' को भी मात दे दी: महाभारत के बीस चमत्कार और मय दानव की प्राचीन इंजीनियरिंग कंपनी" 491

13.1: "इन्द्रप्रस्थ की मायासभा: प्राचीन भारतीय स्थापत्य-भ्रम और आधुनिक ऑप्टिकल विज्ञान"	491
13.2: "मायासभा का 'अदृश्य जल': प्राचीन हाइड्रोलिक अभियांत्रण का वैज्ञानिक संकेत"	494
13.3: "मायासभा की 'अदृश्य दीवारें': प्राचीन फ्रेमलेस काँच स्थापत्य और प्रकाशीय पारदर्शिता का रहस्य"	496
13.4: "महाभारत की मायासभा के 'आभासी दरवाजे': ऑप्टिकल कैमोफ्लाज और परावर्तित प्रकाश अभियांत्रण का रहस्य"	498
13.5: "मायासभा की तैरती 3D छवियाँ: प्राचीन दर्पण-प्रकाशिकी का चमत्कार"	501
13.6: "मायासभा की रेडियंट कूलिंग: प्राचीन सतह-आधारित शीतलन और थर्मल मास का विज्ञान"	503
13.7: "मायासभा की सुगंध-प्रसारण प्रणाली: प्राचीन एरोमा- HVAC का रहस्य"	504
13.8: "मायासभा की जैवदीप्त प्रकाश-व्यवस्था: प्राचीन स्वप्रकाशित स्थापत्य का रहस्य"	506
13.9: "मायासभा की 'सीक्रेट माइक' टेक्नोलॉजी: जहाँ फुसफुसाहट भी सिंहासन तक VIP पास लेकर पहुँचती थी!"	508
13.10: "मायासभा का म्यूज़िकल फ्लोर: जहाँ हर कदम बन जाता था रॉयल रिंगटोन!"	510
13.11: "मायासभा का 'एंटी-ग्रेविटी झूमर': मय दानव की प्राचीन मैगलेव टेक्नोलॉजी!"	511

13.12: "प्राचीन सिस्मिक सेफ्टी सिस्टम: मायासभा, 100% वाइब्रेशन-फ्री गारंटी!"	513
13.13: "मायासभा की 'डस्ट-फ्री टेक्नोलॉजी': कमल-पत्र इफेक्ट वाली प्राचीन नैनो-पॉलिशिंग!"	515
13.14: "प्राचीन सिस्मोरिटी सिस्टम: फेस रिकग्निशन नहीं, 'फुट-प्रेसर' से पहचान!"	517
13.15: "प्रेसर डालो, प्रवेश पाओ: मायासभा की देसी ऑटो-एंटी सिस्टम!"	519
13.16: "मायासभा की जल-लिफ्ट: पास्कल से पहले 'पानी वाला पास्कल-लॉ'!"	520
13.17: "मायासभा का जल-पुनर्चक्रण: नाली नहीं, अगली सिंचाई की तैयारी!"	522
13.18: "मायासभा का भूलभुलैया सिस्टम: अंदर जाओ, GPS भूल जाओ!"	524
13.19: "मायासभा की दूरबीन-खिड़कियाँ: झरोखा खोलो, ज़ूम अपने आप!"	526
13.20: "मायासभा की फायर-प्रूफ टेक्नोलॉजी: खांडव-दहन के बाद 'नो री-टेक'!"	528

References.....531

अध्याय 1

विज्ञान: निश्चितता की खोज में स्थायी संदेह

विद्या (True Knowledge) ही वह विशेष गुण है, जो मनुष्य को अन्य सभी **जीवधारियों (Living Beings)** से अलग एक विशिष्ट पहचान प्रदान करता है। विद्या के माध्यम से ही मनुष्य संसार के समस्त **जड़ (Material)** और **चेतन (Conscious)** पदार्थों के वास्तविक स्वरूप को समझ पाता है। बिना सही ज्ञान के मनुष्य न तो वस्तुओं का उचित उपयोग कर सकता है और न ही उनके पारस्परिक **सम्बन्ध (Interrelationship)** को समझ सकता है।

इसी सन्दर्भ में **दयानंद सरस्वती (Dayananda Saraswati)** ने अपने ग्रन्थ व्यवहारभानु में विद्या की परिभाषा देते हुए कहा है कि “**जिससे पदार्थ का स्वरूप यथावत् जानकर उससे उपकार ले के अपने और दूसरों के लिए सब सुखों को सिद्ध कर सकें, वह विद्या कहाती है।**” अर्थात् विद्या केवल जानकारी (Information) नहीं, बल्कि ऐसा ज्ञान है जो जीवन में उपयोगी हो और जिससे स्वयं तथा दूसरों का कल्याण हो सके। आगे वे यह भी कहते हैं “**जिससे पदार्थ यथावत् जानकर न्याययुक्त कर्म किये जावें, वह विद्या कहाती है।**” इसका अर्थ है कि विद्या का उद्देश्य केवल ज्ञान प्राप्त करना ही नहीं, बल्कि उस ज्ञान के आधार पर **न्याययुक्त (Just)** और **सदाचारपूर्ण (Ethical)** आचरण करना भी है।

दयानंद सरस्वती के अनुसार **विद्या (Comprehensive Knowledge)** के व्यापक स्वरूप को स्पष्ट किया गया है। उनके मत में

विद्या का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है, जिसमें वर्तमान समय में पढ़ाई जाने वाली सभी **भौतिक विद्याएँ (Physical Sciences)** जैसे **भौतिक विज्ञान (Physics)**, **रसायन विज्ञान (Chemistry)**, **जीव विज्ञान (Biology)**, **इंजिनियरिंग (Engineering)**, **चिकित्सा विज्ञान (Medical Science)**, **अर्थशास्त्र (Economics)**, **समाजशास्त्र (Sociology)**, **सूचना तकनीक (Information Technology)** आदि सभी सम्मिलित हैं। ये सभी विद्याएँ मुख्यतः **जड़ पदार्थों (Material Entities)** के अध्ययन और उपयोग से संबंधित हैं, और मानव जीवन को सुविधा एवं विकास प्रदान करती हैं।

किन्तु महर्षि के अनुसार, ये समस्त आधुनिक विद्याएँ **विद्या का केवल आधा भाग (Partial Knowledge)** हैं, क्योंकि ये केवल भौतिक जगत् तक सीमित रहती हैं। जबकि इस ब्रह्माण्ड में केवल जड़ पदार्थ ही नहीं, बल्कि **चेतन तत्व (Conscious Entities)** जैसे जीवात्मा और ईश्वर भी विद्यमान हैं। अतः जो ज्ञान इन चेतन तत्वों, उनके स्वरूप, तथा उनके और जड़ जगत् के संबंध को समझाता है, वही विद्या का दूसरा और अधिक गहन भाग है। यह भाग केवल स्थूल विज्ञान तक सीमित नहीं, बल्कि **सूक्ष्मतम विज्ञान (Subtle Sciences)** जैसे कण भौतिकी (Particle Physics), **क्वाण्टम सिद्धान्त (Quantum Theory)** और उससे भी आगे के दार्शनिक एवं आध्यात्मिक चिंतन को समाहित करता है।

इसी पूर्ण दृष्टिकोण को व्यक्त करते हुए महर्षि दयानन्द कहते हैं “जिससे ईश्वर से लेकर पृथ्वी पर्यन्त पदार्थों का सत्य विज्ञान होकर उनसे यथायोग्य उपकार लेना होता है, उसका नाम विद्या है।” अर्थात् वह ज्ञान जो ईश्वर से लेकर समस्त सृष्टि तक के सभी पदार्थों (जड़ और चेतन) का यथार्थ बोध कराए और उनके उचित उपयोग का मार्ग बताए वही पूर्ण विद्या है।

सिर्फ शब्दों और थ्योरी का ढेर विद्या नहीं है। आज विज्ञान बहुत कुछ जानता है, लेकिन सबसे जरूरी सवाल "आखिर ये सब क्यों?" अब भी अनसुलझा है। विज्ञान बिना चेतन तत्व (**Conscious element**), यानी उस सृजनकर्ता या नियामक तत्व को समझे, आधूरी ही रहती है। बिना "मैनुअल" के मशीन चलाने की तरह, इंसान ज्ञान के बावजूद गड़बड़ में रहता है। इस प्रकार निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि महर्षि के अनुसार विद्या का सही स्वरूप तभी पूर्ण होता है जब उसमें **भौतिक (Material)** और **आध्यात्मिक (Spiritual/Conscious)** दोनों प्रकार का ज्ञान समाहित हो।

विज्ञान क्या है Science शब्द का अर्थ करते हुए Chambers Dictionary में लिखा है- "Knowledge ascertained by observation and experiment, critically tested, systematized and brought under general principles, esp in relation to the physical world, a department or a branch of such knowledge or study." Oxford advanced learners dictionary के Indian Edition में वैज्ञानिक शब्द 'Science' को बड़ी शान से परिभाषित करते हैं, "पर्यवेक्षण और प्रयोग से प्राप्त व्यवस्थित ज्ञान"। विज्ञान (Science) क्या है इस प्रश्न का उत्तर देते हुए Chambers Dictionary में लिखा है कि Science वह ज्ञान (Knowledge) है जो अवलोकन (Observation) और प्रयोग (Experiment) से प्राप्त होकर, परीक्षण (Testing) द्वारा जाँचा जाए, व्यवस्थित (Systematized) किया जाए और सामान्य सिद्धान्तों (General Principles) के अंतर्गत समझा जाए, विशेषकर भौतिक जगत (Physical World) के संदर्भ में। सरल शब्दों में कहें तो विज्ञान (Science) वह प्रयास है जिसमें मनुष्य देखकर (Observe), परखकर (Test) और प्रयोग करके (Experiment) यह समझने की कोशिश

करता है कि यह दुनिया **क्या है (What)** और **कैसे चल रही है (How it works)**। और मज़ेदार बात यह है कि विज्ञान चाहे जितना भी बुद्धिमान हो, कई बार उसे भी यह स्वीकार करना पड़ता है, **“हमें अभी नहीं पता” (We don't know yet)**।

इन परिभाषाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि **भौतिक संसार (Physical World)** के विषय में जो ज्ञान हम **प्रयोग (Experiments)**, **अवलोकन (Observations)** और **परीक्षण (Tests)** से प्राप्त करते हैं, वही **आधुनिक विज्ञान (Modern Science)** की सीमा में आता है। जैसे-जैसे हमारे पास बेहतर **उपकरण (Instruments)** और **तकनीक (Technology)** आती जाती है, वैसे-वैसे विज्ञान की **पहुँच (Reach)** भी बढ़ती जाती है। लेकिन जो वस्तु या सत्य हमारी तकनीक की पहुँच से बाहर है, चाहे वह वास्तव में मौजूद ही क्यों न हो, विज्ञान उसे तुरंत स्वीकार नहीं कर पाता।

इससे यह भी स्पष्ट होता है कि **विज्ञान थोड़ा हठी (Stubborn)** स्वभाव का है, जो **देखा और मापा (Measured)** जा सके, वही उसे मान्य है। जो उसकी पहुँच से बाहर है, उसके लिए विज्ञान अक्सर कह देता है, **“यह मेरे क्षेत्र से बाहर है” (Out of syllabus!)**। लेकिन यह भी सच है कि जिस व्यक्ति की **प्रतिभा (Intellect)** और **साधना (Practice/Discipline)** जितनी अधिक होती है, उसकी **तर्कशक्ति (Reasoning Power)** और **अनुमान शक्ति (Inference Power)** उतनी ही अधिक वास्तविक और गहरी होती है। बिल्कुल वैसे ही जैसे **मोबाइल (Mobile Phone)** जितना बेहतर, उसका **कैमरा (Camera)** उतना साफ़।

जब हम यह प्रश्न उठाते हैं कि एक **धनावेश (Positive Charge)** वाली वस्तु दूसरी **ऋणावेश (Negative Charge)** वाली वस्तु को क्यों आकर्षित करती है, तो सबसे पहले हमें अनुभव होता है कि विपरीत

आवेश एक-दूसरे को आकर्षित करते हैं। यह अनुभव तो प्रत्यक्ष है, परंतु "यह क्यों हो रहा है?" इस प्रकार का प्रश्न उठाना **दर्शन (Philosophy)** का क्षेत्र है। इसी प्रकार यह सोचना कि दो वस्तुओं के निकट आने के पीछे कोई **आकर्षण बल (Attractive Force)** कार्य कर रहा होगा, यह भी दार्शनिक चिंतन का विषय है।

वहीं दूसरी ओर, यह बताना कि उन वस्तुओं पर विपरीत **वैद्युत आवेश (Electric Charge)** है, तथा यह समझाना कि यह आवेश किस प्रकार कार्य करता है, यह **विज्ञान (Science)** का कार्य है। आधुनिक भौतिकी, विशेषकर Quantum Physics के अनुसार, जब दो विपरीत आवेशित कण पास आते हैं, तो उनके बीच **आभासी कण (Virtual Particles)**, विशेषकर **फोटॉन (Photons)** का आदान-प्रदान होता है, जो आकर्षण बल का माध्यम बनते हैं। इस प्रक्रिया को समझाना विज्ञान की उपलब्धि है।

किन्तु जब हम यह प्रश्न करते हैं कि ये आभासी कण "कहाँ से" और "क्यों" उत्पन्न होते हैं, तब यह प्रश्न विज्ञान की वर्तमान सीमा से आगे बढ़ जाता है और पुनः दर्शन के क्षेत्र में प्रवेश करता है। यहाँ **कारण (Cause)**, **मूल प्रेरक तत्व (Fundamental Driving Principle)** और अस्तित्व के गहरे रहस्यों की खोज प्रारम्भ होती है। इस दृष्टि से कहा जाता है कि जहाँ विज्ञान किसी प्रक्रिया (Process) का वर्णन करता है, वहीं दर्शन उस प्रक्रिया के अंतिम कारण (Ultimate Cause) को जानने का प्रयास करता है।

अतः यह स्पष्ट होता है कि विज्ञान और दर्शन परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि **पूरक (Complementary)** हैं। विज्ञान हमें "कैसे" का उत्तर देता है, जबकि दर्शन "क्यों" का। इसलिए आवश्यक है कि हम दोनों का **विवेकपूर्ण (Judicious)** उपयोग करें, जिससे **ज्ञान की पूर्णता (Completeness of Knowledge)** की ओर अग्रसर हो सकें।

इसी संदर्भ में जब हम आज की सफल हस्तियों जैसे **धीरूभाई अंबानी (Dhirubhai Ambani)**, **गौतम अडानी (Gautam Adani)**, **मार्क ज़करबर्ग (Mark Zuckerberg)**, **स्टीव जॉब्स (Steve Jobs)**, **बिल गेट्स (Bill Gates)** और **अज़ीम प्रेमजी (Azim Premji)** की ओर देखते हैं, तो एक महत्वपूर्ण तथ्य सामने आता है। ये सभी केवल धन और प्रसिद्धि के कारण ही नहीं जाने जाते, बल्कि इसलिए भी कि इन्होंने समय रहते शिक्षा प्रणाली के एक **जाल (Trap)** को पहचान लिया। यह वही प्रणाली है, जिसमें अब न तो वास्तविक **शिक्षा (Education)** शेष रह गई है और न ही कोई सुदृढ़ **प्रणाली (System)**।

वास्तविक जीवन में जब परिस्थितियाँ हमारा **इम्तिहान (Exam)** लेती हैं, तो वह विषयवार नहीं होता, बल्कि समग्र समझ, अनुभव और निर्णय क्षमता की मांग करता है। यही हमारे देश का दुर्भाग्य है कि यहाँ अमीर और गरीब की शिक्षा में भेद है, परंतु अंत में दोनों को एक ही **दौड़ (Race)** में प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती है। यही कारण है कि कई विकसित देशों में भी लोग इस शिक्षा व्यवस्था की **विडंबना (Irony)** को समझते हुए वैकल्पिक मार्ग अपनाने लगे हैं।

अतः आज आवश्यकता केवल डिग्री प्राप्त करने की नहीं, बल्कि ऐसी शिक्षा को अपनाने की है जो विज्ञान की व्यावहारिकता और दर्शन की गहराई, दोनों का संतुलित समन्वय स्थापित करे, ताकि मनुष्य केवल परीक्षा के लिए नहीं, बल्कि जीवन के लिए तैयार हो सके।

हमें पूरा यकीन है कि हम सभी ने एक बात समान रूप से देखी होगी कि यदि आप किसी भी 8-9 वर्ष के बच्चे से गाँव के **दृश्य (Scenery)** बनाने को कहें, तो वह तीन-चार पहाड़, एक पेड़, एक नदी, एक सूरज और कुछ उड़ते हुए पक्षियों की तस्वीर बना देगा। यानी सबसे अधिक **रचनात्मक आयु (Creative Age)** में ही बच्चों की **रचनात्मकता (Creativity)** को सीमित कर दिया जाता है। स्कूल में जाकर भी बच्चा वही तयशुदा चित्र

बनाता है, पहाड़ के पीछे उगता सूरज, सामने बहती नदी, एक पेड़, एक झोपड़ी और उड़ते हुए पक्षी।

क्या आपको नहीं लगता कि हमारा **शिक्षा तंत्र (Education System)** एक **कारखाना (Factory)** बन चुका है, जहाँ से बच्चे बिल्कुल एक जैसे निकलते हैं, जैसे किसी कन्वेयर बेल्ट पर कोल्ड ड्रिंक की बोतलें निकलती हैं, एक जैसा ढक्कन, एक जैसा लेबल, एक जैसा स्वाद। और **विडंबना (Irony)** देखिए कि एक तरफ हम सिखाते हैं कि **सफलता (Success)** के पीछे मत भागो, **काबिलियत (Competence)** हासिल करो, सफलता अपने आप पीछे आएगी यानी **उत्कृष्टता (Excellence)** का पीछा करो, सफलता मजबूर होकर तुम्हारे पीछे आएगी। लेकिन वास्तविकता यह है कि हम आज भी अपने बच्चों पर **प्रतिशत (Percentage)** लाने का **दबाव (Pressure)** डाल रहे हैं। आज भी वही **पुराना विचार (Mindset)** जिंदा है जो कहता है कि **“जीवन एक दौड़ (Life is a Race) है”** और जो लोग दूसरे स्थान पर आते हैं, उन्हें कोई याद नहीं रखता। यह सोच बच्चों के **अंदर प्रतिस्पर्धा (Competition)** तो भर देती है, लेकिन उनसे उनका आत्मविश्वास और वास्तविक क्षमता छीन लेती है।

पिछले 100 वर्षों में दुनिया में **अद्भुत परिवर्तन (Transformation)** हुआ है, पुराना टेलीफोन आज के स्मार्टफोन में बदल गया, पुरानी गाड़ियाँ आज की आधुनिक तकनीक वाली कारों में बदल गईं, लेकिन कक्षा (Classroom) आज भी लगभग वैसी ही है। वही लकड़ी के बेंच, वही ब्लैकबोर्ड और वही एक शिक्षक, जो 50 अलग-अलग दिमागों को एक ही तरीके से पढ़ा रहा है। यह प्रणाली (System) जो स्वयं को एक सदी में नहीं बदल पाई, वह हमारे बच्चों को इस तेजी से बदलती दुनिया के लिए कैसे तैयार कर सकती है?

कई लोग जीवनभर **संघर्ष (Struggle)** करते हुए पढ़ते हैं, ट्यूशन पढ़ाते हैं, लेकिन फिर भी कोई विशेष **उपलब्धि (Achievement)** हासिल नहीं

कर पाते। इसका कारण यह नहीं कि उनमें क्षमता नहीं होती, बल्कि यह है कि शिक्षा प्रणाली उनकी **वास्तविक योग्यता (Potential)** को पहचान ही नहीं पाती और न ही उसे सही दिशा दे पाती।

अल्बर्ट आइंस्टीन (Albert Einstein) ने जोर देकर कहा था कि हर इंसान प्रतिभाशाली (Genius) होता है, लेकिन यदि आप एक मछली को इस आधार पर **आंकलन (Judge)** करेंगे कि वह पेड़ पर कितनी तेजी से चढ़ सकती है, तो वह पूरी जिंदगी खुद को **अयोग्य (Incompetent)** समझती रहेगी। यही गलती आज हमारा **शिक्षा तंत्र (Education System)** कर रहा है, वह मछली को पेड़ पर चढ़ने के लिए मजबूर कर रहा है, हाथी को उड़ने के लिए कह रहा है और शेर को घास चरने की प्रशिक्षण (Training) दे रहा है।

यदि हम 5000 वर्ष पीछे, **महाभारत कालखंड (Mahabharata Era)** में जाएँ, तो पाएँगे कि **गुरु द्रोणाचार्य (Guru Dronacharya)** ने सभी पांडवों को उनकी काबिलियत (Ability) के अनुसार शिक्षा दी थी। **अर्जुन (Arjuna)** को **धनुर्विद्या, भीम (Bhima)** को **गदा, नकुल-सहदेव (Nakula-Sahadeva)** को **तलवार और युधिष्ठिर (Yudhishtira)** को **भाला चलाना सिखाया गया।** अब सोचिए, यदि द्रोणाचार्य अर्जुन से कहते कि तुम्हें धनुष के साथ-साथ गदा में भी निपुणता (Mastery) हासिल करनी होगी, अन्यथा तुम मूर्ख कहलाओगे, तो क्या अर्जुन कभी संसार के सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर बन पाते? बिल्कुल नहीं। उसी प्रकार यदि भीम की तुलना अर्जुन से की जाती, तो क्या उनकी शक्ति और कौशल का सही उपयोग (Utilization) हो पाता?

हमारे पूर्वज यह भली-भांति जानते थे कि हर व्यक्ति अलग है और उसकी क्षमता (Potential) तथा प्रतिभा (Talent) भी अलग होती है, इसलिए उसी के अनुसार उसका विकास (Development) किया जाना चाहिए। लेकिन आज की व्यवस्था में सभी को एक ही मापदंड से आँका जा रहा है।

अंग्रेज भले ही चले गए, लेकिन मैकॉले की यह विषाक्त सोच (**Toxic Ideology**) आज भी हमारे शिक्षा पाठ्यक्रम (Syllabus) में मौजूद है। आज भी हम उसी प्रकार के कर्मचारी (Clerks) तैयार कर रहे हैं, बस अंतर इतना है कि अब वे फाइलों की जगह लैपटॉप के सामने झुके हुए हैं। मैकॉले का उद्देश्य हमें शिक्षित (Educated) बनाना नहीं था, बल्कि भारत की रीढ़ (Backbone) को कमजोर करना था।

हमारे पूर्वज अत्यंत बुद्धिमान (Wise) थे। वे जानते थे कि गुरुकुल में शिक्षा का अर्थ केवल **रटंत (Rote Learning)** नहीं था, बल्कि वहाँ **शास्त्र (Scriptures/Knowledge)** के साथ-साथ **शस्त्र (Weapons/Skills)** भी सिखाए जाते थे। संगीत, राजनीति, व्यापार हर प्रकार का समग्र ज्ञान (Holistic Knowledge) दिया जाता था। सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि प्रत्येक बच्चे को उसके **स्वभाव (Nature)** और **काबिलियत (Ability)** के अनुसार शिक्षा दी जाती थी और उसका **चरित्र निर्माण (Character Building)** किया जाता था।

लेकिन आज हमने उस प्रणाली को छोड़कर एक ऐसा मूल्यांकन प्रणाली (Grading System) अपना लिया है, जो कहता है कि यदि आपके 95% अंक हैं तो आप श्रेष्ठ हैं, और यदि 40% हैं तो आप अयोग्य हैं। हम उसी देश के निवासी हैं जहाँ **श्रीनिवास रामानुजन (Srinivasa Ramanujan)** जैसे महान गणितज्ञ कॉलेज में असफल हुए थे, क्योंकि उनका ध्यान केवल गणित में था। आज की व्यवस्था शायद उन्हें एक साधारण नौकरी के योग्य भी न माने।

क्या हम ऐसे समाज में रहना चाहते हैं जहाँ एक कागज का टुकड़ा, अर्थात् **प्रमाणपत्र (Certificate)**, यह तय करे कि कोई व्यक्ति कितना **बुद्धिमान (Intelligent)** है? एक ईमानदार प्रश्न यह भी है कि क्या कॉलेज हमें सही **संचार कौशल (Communication Skills)** सिखाते हैं, कब बोलना है, कैसे बोलना है, कहाँ मौन रहना है और कैसे सुनना है?

क्या कोई संस्थान हमें **विक्रय कौशल (Sales Skills)**, **समझौता कला (Negotiation Skills)**, **अस्वीकृति प्रबंधन (Rejection Handling)** या **औसत का नियम (Law of Averages)** सिखाता है?

इसी प्रकार, **वित्तीय शिक्षा (Financial Education)** भी लगभग अनुपस्थित है, पैसे का सही उपयोग, निवेश, **बचत, चक्रवृद्धि (Compounding)** का लाभ, **मुद्रास्फीति (Inflation)** से बचाव, तथा **संपत्ति (Assets)** और **दायित्व (Liabilities)** का अंतर ये सब जीवन के अत्यंत महत्वपूर्ण विषय हैं, जिन्हें शायद ही कहीं पढ़ाया जाता है। **टीम निर्माण, नेतृत्व और व्यावहारिक कौशल (Practical Skills)** की शिक्षा भी नहीं दी जाती।

यही कारण है कि कॉर्पोरेट जगत में चयन के समय केवल डिग्री नहीं, बल्कि वास्तविक कौशल देखे जाते हैं, जैसे संचार क्षमता, दृष्टिकोण (Attitude), सीखने की इच्छा और मेहनत करने का जज़्बा। सच्चाई यह है कि हमारे देश में अधिकांश विद्यार्थी रोजगार योग्य (Employable) ही नहीं बन पाते, क्योंकि शिक्षा प्रणाली उन्हें केवल जानकारी देती है, लेकिन जीवन के लिए आवश्यक कौशल नहीं। हम अपने बच्चों को 22 वर्ष की आयु तक केवल पुस्तकों में सीमित (Confined) रखते हैं और फिर उनसे अपेक्षा करते हैं कि वे तुरंत संसार पर विजय (Conquer) प्राप्त कर लें। जब वे वास्तविक जीवन में प्रवेश करते हैं, तो उन्हें ज्ञात होता है कि संसार पहले ही परिवर्तित (Transformed) हो चुका है, परंतु उन्हें इसकी कोई जानकारी (Awareness) नहीं दी गई।

आज स्थिति यह है कि 90% अंक प्राप्त करने वाला छात्र और 60% अंक प्राप्त करने वाला छात्र दोनों ही बेरोज़गार (Unemployed) हैं अंतर केवल इतना है कि पहले को यह समझने में अधिक समय लगता है। यह स्पष्ट संकेत है कि हमारी प्रणाली में कोई गहरी त्रुटि (Flaw) विद्यमान है, जिस

पर युद्ध-स्तरीय हस्तक्षेप (War-level Intervention) की आवश्यकता है।

वास्तव में, हम बच्चों को जीवन **जीने की कला (Art of Living)** नहीं सिखा रहे, बल्कि उन्हें एक ऐसी **प्रतिस्पर्धा (Competition)** में धकेल रहे हैं जिसकी कोई **अंतिम सीमा (End Point)** ही नहीं है। हम यह मान लेते हैं कि यदि कोई छात्र आईआईटी नहीं करता, तो वह सफल (Successful) नहीं हो सकता, जबकि हमने कभी यह जानने का प्रयास ही नहीं किया कि उसकी वास्तविक रुचि (Interest) क्या है। अनेक विद्यार्थी केवल माता-पिता के सपनों को पूरा करने के लिए अत्यधिक दबाव (Pressure) सहते हैं, जिसके गंभीर परिणाम सामने आते हैं।

हमारा मानना है कि प्रत्येक बच्चा जन्म से ही **प्रतिभाशाली (Talented/Genius)** होता है, किंतु विद्यालय और परिवार उसकी **मानसिक संरचना (Mental Framework)** में हस्तक्षेप करके उसे सीमित कर देते हैं। वर्तमान शिक्षा प्रणाली उसे एक ऐसे **पाठ्यक्रम (Curriculum)** के बंधन में जकड़ देती है, जहाँ अंकों के अतिरिक्त कुछ और सोचना लगभग अपराध (Crime) माना जाता है। हम अपनी **सामाजिक प्रतिष्ठा (Social Status)** के मोह में बच्चों को एक ऐसी **यांत्रिक प्रक्रिया (Mechanized Process)** में डाल देते हैं, जो उन्हें स्वतंत्र विचारक बनाने के बजाय केवल आज्ञाकारी कर्मचारी (Obedient Worker) बना देती है।

सोचिए, हम प्रगति (Progress) की बातें करते हैं, किंतु वास्तविक **यथार्थ (Reality)** क्या है? हम केवल डिग्रियों का उत्पादन (Degree Production) कर रहे हैं, जहाँ **नवोन्मेष (Innovation)** और **सृजनात्मकता (Creativity)** के लिए कोई स्थान नहीं है। इस समस्या का समाधान (Solution) केवल व्यवस्था को दोष देने से नहीं, बल्कि अपनी मानसिकता (Mindset) को परिवर्तित करने से होगा। हमें **डिग्री-**

प्रथम दृष्टिकोण (Degree-first Mindset) को त्यागकर कौशल-प्रथम दृष्टिकोण (Skill-first Approach) अपनाना होगा।

सबसे पहले, हमें **रटंत शिक्षा (Rote Learning)** को समाप्त करना होगा। वर्तमान में अधिकांश विद्यालयों में **स्मरण-आधारित अध्ययन (Memory-based Learning)** पर अधिक बल दिया जाता है, जबकि **अवधारणा-आधारित अधिगम (Concept-based Learning)** आवश्यक है। कक्षा में **व्यावहारिक उदाहरण (Practical Examples)** और **वास्तविक जीवन के संदर्भ (Real-life Contexts)** प्रस्तुत किए जाने चाहिए, तथा **समस्या-समाधान कौशल (Problem-solving Skills)** पर विशेष ध्यान देना चाहिए। शिक्षा का **मुख्य उद्देश्य (Objective)** केवल **स्मृति-परीक्षण (Memory Test)** नहीं, बल्कि **मस्तिष्क-विकास (Mind Development)** होना चाहिए।

दूसरा महत्वपूर्ण पहलू है **वित्तीय शिक्षा (Financial Education)**। प्रत्येक विद्यार्थी को यह ज्ञान होना चाहिए कि **व्यय (Expense)** और **निवेश (Investment)** में क्या अंतर है। उसे यह समझना चाहिए कि **किस्त-प्रणाली (EMI System)** पर अनावश्यक वस्तुएँ नहीं खरीदनी चाहिए, तथा ऐसी वस्तुओं के लिए ऋण लेने से बचना चाहिए जिनका **मूल्य-हास (Depreciation)** होता है। साथ ही, **बचत (Saving)** और **निवेश (Investment)** को शीघ्र आरंभ करना आवश्यक है, ताकि वह भविष्य में **आर्थिक रूप से सशक्त (Financially Empowered)** बन सके।

तीसरा, **कौशल-आधारित शिक्षा (Skill-based Education)** को अनिवार्य करना अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि हमारे देश में डिग्री-धारक (Degree Holders) तो बहुत हैं, परंतु कौशल-धारक (Skill Holders) अत्यंत कम हैं। विद्यालय स्तर से ही **कोडिंग (Coding)**, **कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence)**, **डिजिटल विपणन (Digital Marketing)** और **वित्त (Finance)** जैसी दक्षताओं का शिक्षण प्रारंभ

होना चाहिए। साथ ही, विद्यार्थियों को **उद्यमिता (Entrepreneurship)** का ज्ञान दिया जाना चाहिए, जिससे वे केवल नौकरी खोजने वाले नहीं, बल्कि **रोज़गार सृजक (Job Creators)** बन सकें।

चौथा, **शिक्षक प्रशिक्षण (Teacher Training)** को नियमित और प्रभावी बनाना आवश्यक है, क्योंकि शिक्षक ही शिक्षा प्रणाली की रीढ़ (Backbone) होते हैं। उन्हें आधुनिक **शिक्षण उपकरणों (Modern Teaching Tools)** से सुसज्जित किया जाना चाहिए, ताकि वे विद्यार्थियों को बेहतर दिशा दे सकें। एक **प्रेरित शिक्षक (Inspired Teacher)** लाखों जीवनों को परिवर्तित कर सकता है।

पाँचवाँ, **भावनात्मक एवं जीवन कौशल शिक्षा (Emotional and Life Skills Education)** को पाठ्यक्रम में सम्मिलित करना अत्यंत आवश्यक है। आज **बच्चे तनाव (Stress)** और **अवसाद (Depression)** जैसी समस्याओं से जूझ रहे हैं, इसलिए **मानसिक स्वास्थ्य शिक्षा (Mental Health Education)** को प्राथमिकता देनी चाहिए। साथ ही, **संप्रेषण कौशल (Communication Skills)**, **समय प्रबंधन (Time Management)**, **सामाजिक जागरूकता (Civic Sense)** और **अपने संस्कृतिक मूल्यों (Cultural Roots)** का ज्ञान भी दिया जाना चाहिए।

अंततः यह स्पष्ट होता है कि **जीवन कौशल (Life Skills)** के अभाव में शिक्षा अधूरी है। जिस दिन हम विद्यार्थियों की **अंकसूची (Marksheet)** से अधिक उनके **चरित्र (Character)** और **रचनात्मकता (Creativity)** को महत्व देना प्रारंभ कर देंगे, उसी दिन यह पुराना **शैक्षिक ढांचा (Educational Framework)** स्वतः परिवर्तित होने लगेगा। वास्तव में, एक संपूर्ण मानव के निर्माण के लिए आवश्यक है कि हमारे छात्र केवल विज्ञान तक सीमित न रहें, बल्कि उन्हें **दर्शनशास्त्र (Philosophy)**, आध्यात्मिक शिक्षा और चरित्र-निर्माण की शिक्षा भी समान रूप से प्राप्त

हो, जिससे उनका बौद्धिक, नैतिक और व्यावहारिक विकास संतुलित रूप से हो सके।

इसी संदर्भ में यह धारणा कि **तर्क (Logic)** और **अनुमान (Inference)** का विज्ञान में कोई स्थान नहीं है, पूर्णतः असंगत प्रतीत होती है, क्योंकि **विज्ञान (Science)** का उद्भव स्वयं **दर्शन (Philosophy)** की आधारभूमि से हुआ है। जब विज्ञान अपनी सीमाओं तक पहुँचकर ठहराव का अनुभव करता है, तब दर्शन ही उसे नवीन दृष्टिकोण और **नई दिशा (New Direction)** प्रदान करता है। यही कारण है कि विज्ञान एक गतिशील प्रक्रिया है, अर्थात् **विज्ञान बदलता रहता है (Science keeps evolving)**; जो आज सत्य प्रतीत होता है, वह कल संशोधित, परिष्कृत अथवा अप्रासंगिक भी हो सकता है। इस प्रकार, समन्वित दृष्टिकोण यही इंगित करता है कि शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य केवल ज्ञानार्जन नहीं, बल्कि एक ऐसे व्यक्तित्व का निर्माण है, जो तर्क, मूल्य और सृजनात्मकता तीनों में संतुलित हो।

संक्षेप में कहा जाए तो जीवाश्म (**Fossils**), अस्थियाँ (**Bones**), प्रयोगात्मक प्रमाण (**Experimental Evidence**) और गणितीय विश्लेषण (**Mathematical Models**) ज्ञान के ठोस आधार अवश्य प्रदान करते हैं, किन्तु यदि उनमें उद्देश्यबोध (**Purposefulness**) और चेतन तत्व (**Conscious Principle**) की व्याख्या अनुपस्थित हो, तो ज्ञान आंशिक प्रतीत होता है। आधुनिक विज्ञान ने भौतिक जगत (**Material Universe**) के नियमों को अद्भुत सूक्ष्मता से समझा है, परंतु अस्तित्वगत प्रश्न यह सब क्यों है?" अब भी दार्शनिक विमर्श (**Philosophical Inquiry**) का विषय बना हुआ है। समकालीन भाषा में कहा जाता है कि जड़ पदार्थों का व्यवस्थित अध्ययन विज्ञान (**Science**) है, जबकि चेतना, मूल्य और नैतिकता का अनुशीलन धर्म या अध्यात्म (**Spiritual-Ethical Inquiry**) कहलाता है। वस्तुतः ये परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि परिपूरक

(**Complementary**) आयाम हैं, जैसे दूध में श्वेतता या अग्नि में उष्णता। महर्षि दयानन्द ने विद्या की समग्र परिभाषा में तर्क और आध्यात्मिकता का समन्वय (**Synthesis**) प्रस्तुत किया। अल्बर्ट आइंस्टीन का प्रसिद्ध कथन, "**Science without religion is lame, religion without Science is blind**" अल्बर्ट आइंस्टीन का प्रसिद्ध कथन "धर्म के बिना विज्ञान लंगड़ा है और विज्ञान के बिना धर्म अंधा है" (1954), विज्ञान और नैतिकता (**Ethics**) के संतुलन की आवश्यकता को रेखांकित करता है। आशय यह कि विज्ञान दिशा-निर्धारण के लिए मूल्यबोध चाहता है, और धर्म यथार्थ की समझ के लिए परीक्षण एवं प्रमाण (**Verification and Evidence**) की अपेक्षा करता है। जब दोनों का संतुलित समागम (**Harmonious Integration**) होता है, तभी मानव प्रगति सार्थक, उत्तरदायी (**Responsible**) और दूरदर्शी (**Visionary**) बनती है; अन्यथा विकास दिशाहीन हो जाता है, या आस्था तथ्यहीन। "**I am of the opinion that all the finer speculations in the realm of science spring from a deep religious feeling.**" (मद्रचित "सृष्टि का मूल उपादान कारण" पुस्तक की प्रस्तावना में प्रो. आभास कुमार मित्रा द्वारा उद्धृत वचन) अर्थात् यदि विज्ञान के पास नैतिक दिशा (**Moral Direction**) न हो, तो वह लक्ष्यहीन प्रगति (**Aimless Progress**) का शिकार हो सकता है और यदि धर्म के पास तर्कसंगत परीक्षण (**Rational Examination**) तथा प्रमाणाधारित दृष्टि (**Evidence-Based Vision**) न हो, तो वह अंधानुकरण (**Blind Faith**) में परिवर्तित हो सकता है। इसी कारण सम्यक् विद्या (**Integral Knowledge**) में दोनों का संतुलित समावेश आवश्यक माना गया है। महर्षि के मतानुसार सच्चा विद्वान (**Enlightened Scholar**) वही है जो धर्म और ज्ञान दोनों की समन्वित राह दिखा सके क्योंकि विवेकबुद्धि (**Discriminative Wisdom**) के बिना व्यक्ति सत्य और असत्य, धर्म और अधर्म, हित और अहित में भेद नहीं कर पाता। अविद्वान (**Ignorant**

Mind) को भ्रमित करना सरल होता है, जैसे दृष्टिवान व्यक्ति सावधानी से चलता है और कुएँ में नहीं गिरता, परंतु अंधा व्यक्ति जोखिम को पहचान नहीं पाता।

"धर्म का रक्षक विद्या ही है" इस वाक्य का गूढ़ अर्थ (**Profound Implication**) यही है कि ज्ञान ही वह प्रकाश (**Illumination**) है जिससे धर्म और अधर्म का बोध (**Moral Discernment**) संभव होता है। विद्या के अभाव में न तो आचरण की शुद्धता (**Ethical Conduct**) स्थिर रह सकती है और न ही समाज का संतुलन (**Social Harmony**) सुरक्षित रह सकता है। अतः विद्या ही वह आधार है जो मनुष्य को चक्रव्यूह-जैसी उलझनों (**Existential Confusions**) से बाहर निकालकर सत्य के मार्ग पर स्थिर रखती है।" (**ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन - दयानन्द -विचार-कोश-भाग-१, पृ.३ से उद्धृत**)

"ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्रां राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्यां सर्पदेवजनविद्यामेतद्भगवोऽध्येमि॥२॥" (छां.उ.७.१.२; डॉ. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार भाष्य)

प्राचीन वैदिक भारत में विद्या का स्वरूप **समग्र (Holistic)** था अर्थात् ज्ञान को केवल विषयगत सूचना (**Subject-Specific Information**) नहीं, बल्कि जीवन, सृष्टि और आत्मा के **एकीकृत बोध (Integrated Realization)** के रूप में समझा जाता था। छांदोग्य उपनिषद् में वर्णित प्रसंग के अनुसार देवर्षि नारद महर्षि सनत्कुमार के पास जाकर कहते हैं कि वे ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद सहित इतिहास, पुराण, देवविद्या (**Theology**), ब्रह्मविद्या (**Metaphysics**), भूतविद्या (**Natural Sciences/Elemental Knowledge**), क्षत्रविद्या (**Political & Military Science**) और नक्षत्रविद्या (**Astronomy**)

जैसी अनेक विद्याओं का अध्ययन कर चुके हैं। उनका ज्ञान अत्यंत व्यापक (**Vast & Comprehensive**) था, फिर भी वे विनम्रतापूर्वक स्वीकार करते हैं “मैं मन्त्रवित् (**Knower of Mantras**) हूँ, पर आत्मवित् (**Self-Realized**) नहीं।” यह स्वीकारोक्ति बौद्धिक उपलब्धि (**Intellectual Achievement**) और आत्मानुभूति (**Spiritual Realization**) के बीच के अंतर को स्पष्ट करती है। सैद्धांतिक (**Theoretical**) और प्रायोगिक (**Practical**) अध्ययन के बाद भी यदि आत्मतत्त्व का साक्षात्कार न हो, तो जीवन्मुक्ति (**Liberation While Living**) अधूरी रह जाती है।

इस प्रसंग से गहन शिक्षा (**Profound Insight**) मिलती है कि केवल आध्यात्मिक वचन या केवल वैज्ञानिक प्रगति दोनों ही अपने-आप में पर्याप्त नहीं हैं। जो व्यक्ति विज्ञान और व्यवहारिकता (**Pragmatism**) को छोड़कर केवल मुक्ति की चर्चा करता है, वह एकांगी दृष्टिकोण (**One-Sided Perspective**) का शिकार हो सकता है और जो केवल भौतिक उन्नति (**Material Advancement**) को ही अंतिम सत्य मान लेता है, वह अस्तित्वगत रिक्तता (**Existential Void**) का अनुभव कर सकता है। ज्ञान को यदि माला मानें, तो विविध विद्याएँ उसके मोती हैं परंतु चेतन तत्व (**Conscious Principle**) वह धागा है जो उन्हें सार्थक एकता (**Meaningful Unity**) प्रदान करता है। धागे के बिना मोती बिखर जाते हैं, न सौंदर्य रहता है, न उपयोगिता।

आज के संदर्भ में भी यही सत्य लागू होता है। हमारे पास तकनीकी कौशल (**Technological Proficiency**) और सूचना-संपदा (**Information Wealth**) तो है, पर यदि आत्मबोध (**Self-Awareness**) और नैतिक विवेक (**Ethical Discernment**) कमजोर हो जाएँ, तो जीवन में शांति, करुणा और संतुलन घटने लगते हैं। अतः जब ज्ञान (**Knowledge**), व्यवहार (**Applied Wisdom**) और आत्मसाक्षात्कार (**Self-**

Realization) का समन्वय (**Harmonious Synthesis**) होता है, तभी विद्या पूर्णता (**Wholeness**) प्राप्त करती है। आधुनिक **एपिजेनेटिक्स** ने यह स्थापित किया है कि केवल डीएनए (DNA) ही हमारे स्वभाव, स्वास्थ्य और व्यवहार को निर्धारित नहीं करता, बल्कि हमारा **पर्यावरण**, **जीवनशैली**, और विशेष रूप से हमारे **विचार-पैटर्न** भी जीनों की **अभिव्यक्ति (Gene Expression)** को प्रभावित करते हैं। भारतीय परंपरा में जिसे “संस्कार” कहा गया है, उसे आधुनिक विज्ञान की भाषा में एक प्रकार का **एपिजेनेटिक इम्प्रिंट (Epigenetic Imprint)** माना जा सकता है, अर्थात् हमारे कर्म, अनुभव और आदतें शरीर तथा मस्तिष्क पर एक दीर्घकालिक **आणविक छाप (Molecular Mark)** छोड़ती हैं। इसी संदर्भ में **ध्यान (Meditation)** और मंत्र-जाप का महत्व अत्यधिक बढ़ जाता है, क्योंकि विभिन्न वैज्ञानिक अध्ययनों से यह संकेत मिलता है कि नियमित अभ्यास मस्तिष्क में **न्यूरोप्लास्टिसिटी (Neuroplasticity)** को प्रोत्साहित करता है, जिससे उसकी संरचना और कार्यप्रणाली में सकारात्मक परिवर्तन संभव होते हैं। यह प्रक्रिया **तनाव-हार्मोन (Stress Hormones)** को संतुलित कर शरीर में **समस्थिति (Homeostasis)** स्थापित करने में सहायक होती है।

इसके साथ ही, विज्ञान की **अपचयी पद्धति (Reductionist Approach)** जहाँ जीवन को छोटे-छोटे घटकों में विभाजित करके समझने का प्रयास करती है, वहीं भारतीय दर्शन **समग्र दृष्टिकोण (Holistic Perspective)** पर बल देता है, जिसमें जीवन को एक एकीकृत और चेतन इकाई के रूप में देखा जाता है। उदाहरणतः, नमक के रासायनिक तत्वों का विश्लेषण संभव है, परंतु उसका “नमकीन” अनुभव एक **उद्भूत गुण (Emergent Property)** है, जिसे केवल विश्लेषण के माध्यम से पूर्णतः नहीं समझा जा सकता। इसी प्रकार, मस्तिष्क की संरचना का ज्ञान होने के बावजूद **स्व-अवगतता (Self-**

awareness) का रहस्य आज भी काफी हद तक **अविज्ञेय (Unknowable)** बना हुआ है।

इस प्रकार, जहाँ **जीन (Genes)** हमें एक जैविक आधार प्रदान करते हैं, वहीं हमारे संस्कार, साधना और अनुभव उस संरचना को **परिष्कृत (Refine)** और परिवर्तित करने की क्षमता रखते हैं। यही वह बिंदु है जहाँ विज्ञान और अध्यात्म मिलकर एक **समन्वित विज्ञान (Integrative Science)** का निर्माण करते हैं, जो मनुष्य को केवल एक भौतिक इकाई नहीं, बल्कि एक चेतन और निरंतर विकसित होती हुई सत्ता के रूप में स्थापित करता है।

सारांश (Conclusion) रूप में कहा जा सकता है कि शिक्षा और सूचना आवश्यक हैं, परंतु वास्तविक विद्या वही है जो **चेतन अनुभव द्वारा प्रकाशित (Illuminated by Conscious Awareness)** हो।

1.1 वैदिक सृष्टि-दर्शन और आधुनिक कॉस्मोलॉजी का अंतःविषयी अध्ययन

महर्षि वयानन्द सरस्वती सृष्टि की परिभाषा करते हुए 'आर्योदेश्यरत्नमाला' में लिखते हैं- सृष्टि (Creation) वह अवस्था है, जब कर्ता (Creator) के द्वारा कारण द्रव्य (Causal Substance) किसी विशेष संयोग (Specific Combination) से बदलकर अनेक प्रकार के कार्य-रूप (Forms of Effect) में प्रकट हो जाता है। जब यह पदार्थ वर्तमान अवस्था (Present State) में आकर व्यवहार करने योग्य (Functionally Usable) बन जाता है, तभी उसे सृष्टि कहा जाता है। सरल शब्दों में, जब मूल पदार्थ परिवर्तन और परस्पर क्रिया (Interaction) के द्वारा ऐसा रूप ले ले कि उसका उपयोग और अनुभव संभव हो जाए, वही प्रक्रिया सृष्टि (Creation / Manifested Universe) कहलाती है। 'स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश' में पुनः महर्षि दयानन्द लिखते हैं सृष्टि (Creation) उसे कहते हैं जिसमें पृथक् द्रव्य (Separate Substances) आपस में युक्तिपूर्वक (Logically/ Systematically) मिलकर ज्ञान (Knowledge/Understanding) के अनुसार नाना रूप (Multiple Forms) धारण कर लेते हैं। सरल शब्दों में, जब अलग-अलग पदार्थ उचित नियम और व्यवस्था (Systematic Order) के तहत जुड़कर नए-नए रूपों में प्रकट होते हैं, उसी प्रक्रिया को सृष्टि कहा जाता है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती के अनुसार सृष्टि (Creation) को दो भागों में समझा जा सकता है।

पहला भाग उन पदार्थों (Substances) का है जो सृष्टि के मुख्य घटक (Primary Elements) हैं। इन्हीं के मेल (Combination) से पूरी सृष्टि बनी है। सृष्टि के सभी पदार्थ मनुष्य के लिए संसाधन (Resources) जैसे हैं, बिल्कुल सुपरमार्केट के सामान की तरह। लेकिन यदि उनके बारे में

सही और यथार्थ ज्ञान (Accurate Scientific Knowledge) न हो, तो उनका उचित उपयोग (Proper Use) संभव नहीं है। इसलिए सृष्टि का वास्तविक लाभ तभी मिलता है जब सूक्ष्मतम कण (Sub-atomic Particles) से लेकर विशाल ब्रह्मांड (Vast Universe) तक सभी वस्तुओं को समझकर उनका सर्वहितार्थ उपयोग (Welfare of All) किया जाए।

दूसरा भाग उन पदार्थों का है जो सृष्टि में सहायक भूमिका (Secondary) निभाते हैं। ये उपादान कारण (Material Cause) नहीं होते, बल्कि केवल निमित्त कारण (Instrumental Cause) होते हैं। महर्षि दयानन्द के अनुसार सृष्टि किसी मूल कारण पदार्थ (Fundamental Causal Substance) से बनी है, जो अनादि (Eternal) और अनंत (Infinite) है। अर्थात् यह न कभी उत्पन्न हुआ और न कभी नष्ट होगा। यह पदार्थ सदैव अस्तित्व (Existence) में रहता है, यह शून्य (Nothingness) या अवस्तु (Non-entity) नहीं है।

जैसा कि महान् तत्त्ववेत्ता महर्षि कपिल ने कहा- नावस्तुनो वस्तुसिद्धिः। (सां.द.१.७८) अर्थात् अभाव से भाव की उत्पत्ति नहीं हो सकती। इसी को योगेश्वर महान् वेदविज्ञानी श्रीकृष्ण ने कहा- नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः। (गीता २.१६) सरल शब्दों में समझें तो असत (Non-existence) की कभी वास्तविकता (Reality) नहीं होती और जो सत् (Existence / Real) है, उसका कभी पूर्ण विनाश (Total Destruction) नहीं होता। नाशः कारणलयः। (सां.व.१.१२१) अर्थात् अभाव (Nothing) से कभी भाव (Something) अपने-आप पैदा नहीं होता और जो वस्तु अस्तित्व (Existence) में है, वह पूरी तरह समाप्त भी नहीं होती। शास्त्र में इसे कहा गया है, “नाशः कारणलयः” यानी नाश का अर्थ है कारण में लय (Dissolution into Cause) होना।

जब हम किसी वस्तु को नष्ट होते या पैदा होते देखते हैं, तो वास्तव में वह केवल **रूपांतरण (Transformation)** होता है। जैसे कोई **स्थूल वस्तु (Gross Object)** टूटकर अपने **सूक्ष्म कणों (Subtle Particles)** में बदल जाती है, इसे ही **विनाश या प्रलय (Dissolution)** कहा जाता है। और वही **अदृश्य कारण पदार्थ (Invisible Causal Matter)** जब फिर से **स्थूल रूप (Manifest Form)** धारण करता है, तो उसे **उत्पत्ति (Creation / Origin)** कहा जाता है। इस प्रकार **सृष्टि (Creation)** और **प्रलय (Dissolution)** पदार्थ के केवल दो **अवस्थाएँ (States)** हैं। यह भी ध्यान रखने योग्य है कि एक ही पदार्थ किसी का **कारण (Cause)** भी हो सकता है और किसी अन्य का **परिणाम (Effect)** भी।

सृष्टि को समझें तो यह **सूक्ष्म कणों (Sub-atomic Particles)** का एक अत्यंत **सुसंगठित सहयोग (Highly Organized Teamwork)** है। ये कण किसी **यादृच्छिक प्रक्रिया (Random Process)** से नहीं जुड़ते, बल्कि **ज्ञान (Intelligence)** और **युक्ति (Logic / Design)** के साथ कार्य करते हैं। संसार में जो कभी-कभी **अव्यवस्था (Chaos)** या **हलचल (Disturbance)** दिखाई देती है, वह वास्तव में हमारे **अल्पज्ञान (Limited Knowledge)** के कारण होती है। वस्तुएँ अपने **उद्देश्यपूर्ण स्थान (Purposeful Position)** पर ही होती हैं, भले ही हमें उनका क्रम समझ में न आए।

अतः सृष्टि कोई **अराजक घटना (Chaotic Event)** नहीं, बल्कि एक **सुपर-ऑर्गेनाइज़्ड (Highly Organized)** और **ज्ञानपूर्वक संचालित (Intelligently Operated)** **कॉस्मिक योजना (Cosmic Plan)** है। यह किसी **मनमानी रचना (Random Construction)** का परिणाम नहीं है, बल्कि एक **महान, अनादि-अनन्त (Eternal and Infinite)**, **सर्वज्ञ कर्ता (Supreme Intelligent Creator)** की व्यवस्था है,

जिसकी चेतना (Consciousness) और बुद्धि (Intelligence) सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त है।

जो सृष्टि (Universe) निरंतर बदल रही है (Change), घूम रही है (Rotation) और घट-बढ़ रही है (Expansion-Contraction), वह कोई आलसी तंत्र (Lazy System) नहीं है, बल्कि एक सुपर-संगठित कार्यक्रम (Super-Organised Program) के अंतर्गत संचालित हो रही है। इस व्यवस्था में गति (Motion), संयोग (Combination) और वियोग (Separation) बिल्कुल सही समय-निर्धारण (Timing) और क्रम (Order) के अनुसार कार्य करते हैं। पूरी सृष्टि को यदि एक कॉस्मिक फैक्ट्री (Cosmic Factory) माना जाए, तो इसमें प्रत्येक तत्व, ऊर्जा और नियम अपने-अपने विभाग (Department) में पूरी जिम्मेदारी से काम कर रहे हैं; यदि इनमें से कोई भी विभाग (Department) थोड़ा भी लापरवाह हो जाए, तो पूरा तंत्र-विघटन (System Collapse) संभव है।

इसी कारण भौतिकी (Physics), खगोल-भौतिकी (Astrophysics), क्वांटम क्षेत्र सिद्धांत (Quantum Field Theory) और स्ट्रिंग सिद्धांत (String Theory) केवल अलग-अलग विषय नहीं हैं, बल्कि कॉस्मोलॉजी / सृष्टि विज्ञान (Cosmology / Srishti Vigyan) की ही शाखाएँ (Branches) हैं। इनके अंतर्गत आने वाले सौर भौतिकी (Solar Physics), प्लाज्मा भौतिकी (Plasma Physics) तथा परमाणु एवं नाभिकीय भौतिकी (Atomic & Nuclear Physics) जैसे विषय इस ब्रह्माण्ड (Universe) को अति-संगठित (Super-Organised) बनाए रखने वाले वास्तविक सुपरस्टार कर्मचारी (Superstar Employees) हैं, न कि केवल आकर्षक नाम (Fancy Names)।

वर्तमान समय में यह भी देखा जाता है कि कई आध्यात्मिक गुरु (Spiritual Gurus) सार्वजनिक रूप से विज्ञान (Science) और

प्रौद्योगिकी (Technology) की आलोचना करते हैं, जबकि व्यवहार में वही लोग **मोबाइल (Mobile)**, **लैपटॉप (Laptop)**, **एयर-कंडीशनर (Air-Conditioner)** और **वाई-फाई (Wi-Fi)** का भरपूर उपयोग करते हैं। इस संदर्भ में **महर्षि दयानन्द सरस्वती (Maharshi Dayanand Saraswati)** का विचार अत्यंत संतुलित है, जिनके अनुसार **पदार्थ विज्ञान (Material Science)** और **अध्यात्म (Spiritual Knowledge)** दोनों मिलकर ही सम्पूर्ण विद्या अर्थात् **विज्ञान-समग्रता (Holistic Science)** का निर्माण करते हैं।

केवल **ध्यान (Meditation)**, **मौन (Silence)** और **ध्यान-धारणा (meditation perception)** पर्याप्त नहीं हैं। यदि **सृष्टि विज्ञान (Cosmic Science)** का ज्ञान नहीं होगा, तो **ईश्वर-ज्ञान (Knowledge of God)** भी अधूरा रहेगा। और बिना **ईश्वर-ज्ञान (Ishwar-Gyan)** के **मोक्ष (salvation)** या **जीवन-मुक्ति (life liberation)** की आकांक्षा रखना ऐसा ही है जैसे **इंटरनेट (Internet)** के बिना **गूगल (Google)** चलाने का प्रयास करना अर्थात् **असंभव (Impossible)**। इसी कारण **वेद-भाष्य (Veda-commentary)** में यह स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया गया है कि **आध्यात्मिक ज्ञान (Spiritual Knowledge)** और **भौतिक विज्ञान (Physical Science)** दोनों आवश्यक हैं, ताकि मनुष्य न केवल स्वयं को समझ सके, बल्कि समाज और सम्पूर्ण **जीव-जगत (Living World)** के लिए भी वास्तविक रूप से **उपयोगी (Useful)** बन सके।

१. न हि कश्चिदपि सृष्टि पदार्थानां गुणविज्ञानेन विनोपकारान् ग्रहीतुं शक्नोति तस्माद्विदुषां संगेन पृथिवीमारभ्य परमेश्वर पर्यन्तान् पदार्थान् ज्ञात्वा मनुष्यैः क्रियासिद्धः सदैव कार्याः॥ (भावार्थ ऋग्वेद ९.६९.९६) अर्थात् “**जो वस्तु (Thing)** तुम **इस्तेमाल (Use)** कर रहे हो, उसके बारे में थोड़ा-बहुत **ज्ञान (Knowledge)** तो अवश्य रखो। **पृथ्वी**

(Earth) से लेकर ईश्वर (God) तक, प्रत्येक तत्त्व (Element) और सत्ता (Reality) के गुण (Properties) और स्वभाव (Nature) को समझो, और फिर उस ज्ञान का सही उपयोग (Right Application) करके कल्याण (Goodness) का प्रसार करो। अन्यथा बिना नक्शा (Map) और दिशा-बोध (Direction Sense) के खजाना-खोज (Treasure Hunt) पर निकलना वही होगा सीधे-सीधे गड़बड़ (Mess) और भ्रम (Confusion)!

२. अस्मिन् जगति यस्य सृष्टिपदार्थविज्ञानं यादृशं स्यात्तादृशं सद्योऽन्यान् ग्राहयेत्। यदि न ग्राहयेत् तर्हि तत्रष्टं सदन्यैः प्राप्तुमशक्यं स्यात्। (भावार्थ यजुर्वेद १२.४८) अर्थात् “जिस व्यक्ति के पास सृष्टि का ज्ञान (Knowledge of Creation) है, उसे तुरंत साझा (Share) करना चाहिए। यदि वह उस ज्ञान को मौन (Silence) में दबाकर रखे, तो वह ज्ञान (Knowledge) एक खोए हुए खजाने (Lost Treasure) के समान हो जाएगा, जो अस्तित्व में तो होता है, पर लाभ (Benefit) किसी को नहीं देता और जिसे कोई प्राप्त (Discover) नहीं कर पाता।”

जैसा कि महर्षि दयानन्द के शिष्य स्वामी लक्ष्मणानन्द ने भी कहा, “यदि लोग विद्वानों (Scholars) के संग (Association) में रहकर सीखने (Learning) और ईश्वर-रचना (Divine Creation) को समझने में रुचि (Interest) नहीं दिखाएँगे, तो उनका ज्ञान (Knowledge) कभी विकसित (Develop) नहीं होगा, बल्कि केवल भ्रम (Confusion / Illusion) के जाल (Web) में ही उलझा रह जाएगा।” (ध्यान योग प्रकाश, पृष्ठ . ७५)

मनुष्य जब से इस पृथ्वी (Earth) पर आया है, तभी से वह सृष्टि (Creation / Universe) के रहस्यों (Mysteries) को समझने का प्रयास करता रहा है। वैदिक ग्रंथ (Vedic Texts), उपनिषद (Upanishads), महाभारत (Mahabharata) और ब्राह्मण ग्रंथ

(Brahmana Texts) केवल साधारण किताबें **(Books)** नहीं थे, बल्कि वे उस समय की **सुपर-एडवांस्ड विज्ञान प्रयोगशालाएँ (Super-Advanced Science Labs)** थीं, जिनमें **पदार्थ (Matter)**, **ऊर्जा (Energy)** और **चेतन तत्त्व (Conscious Principle)** का पूरा नक्शा **(Complete Blueprint)** उपलब्ध था। परंतु आगे चलकर स्थिति कुछ ऐसी हुई जैसे कोई बच्चा **चॉकलेट (Chocolate)** देखकर पढ़ाई भूल जाए वैसे ही बाद के **धर्म (Religions)** और **दर्शन (Philosophies)** से जुड़े लोगों ने वैदिक ज्ञान के केवल **“स्वीट बाइट्स (Sweet Bites)”** लेकर अपने-अपने ढंग से नए-नए **नियम (Rules)** और **मत (Sects)** बना लिए। परिणामस्वरूप अनेक ऐसे मत उत्पन्न हुए जो बिना **रेसिपी (Recipe)** पढ़े बनाए गए **केक (Cake)** जैसे हैं, दिखने में ठीक, पर **असली स्वाद (Real Taste)** और **विज्ञान (Science)** दोनों गायब।

इसी कारण आज भी, चाहे कोई **बौद्ध (Buddhist)** हो, **जैन (Jain)** हो, **ईसाई (Christian)** या **इस्लाम (Islam)** से जुड़ा हो **सृष्टि विज्ञान (Cosmic Science)** के विषय में अधिकांश धारणाएँ **कल्पना-प्रसूत (Imagination-Based)** हैं, जबकि **वास्तविकता (Reality)** कहीं छुपकर मानो हँस रही है। **आधुनिक पुराण (Modern Puranas)** में सृष्टि विज्ञान का कुछ अंश अवश्य **वैदिक ज्ञान (Vedic Knowledge)** से जुड़ा दिखाई देता है, पर अक्सर उसे **“ईश्वर का मैजिक शो (God's Magic Show)”** की तरह प्रस्तुत किया गया है, मानो कोई **जादूगर (Magician)** बिना किसी **प्रक्रिया (Process)** और **नियम (Law)** के सब कुछ बना दे। यही स्थिति **बाइबिल (Bible)** और **कुरान (Quran)** में भी दिखाई देती है, जहाँ सृष्टि को **“कह दिया, बन गया (Command and Creation)”** के रूप में दर्शाया गया है। वस्तुतः **प्राचीन वैदिक ग्रंथों (Ancient Vedic Texts)** की गहन समझ **(Deep Understanding)**

धीरे-धीरे खो गई और नए ग्रंथों में **कलात्मक चमक (Artistic Glitter)** अधिक तथा **ज्ञान (Knowledge)** कम रह गया।

पिछली कुछ शताब्दियों (Centuries) में आधुनिक विज्ञान (Modern Science) ने सृष्टि के रहस्यों की गंभीर तलाशी (Investigation) शुरू की। कोपरनिकस (Copernicus), गैलीलियो (Galileo), न्यूटन (Newton) से लेकर आइंस्टीन (Einstein) तक, वैज्ञानिकों ने ब्रह्माण्ड (Cosmos) को ऐसे देखा जैसे कोई जासूस (Detective) प्राचीन रहस्यों से परदा उठा रहा हो। प्रौद्योगिकी (Technology) के विकास के साथ अब ब्रह्माण्ड के कई पर्दे (Layers) खुलने लगे हैं, जबकि कुछ पुरानी मान्यताएँ (Old Beliefs) और सम्प्रदाय (Sects) या तो विज्ञान से डर गए, या केवल अनुकरण (Imitation) करने लगे। फिर भी, असली समझ (True Understanding) आज भी मुख्यतः वैदिक विद्या (Vedic Wisdom) में ही सुरक्षित है। महर्षि दयानन्द सरस्वती (Maharshi Dayanand Saraswati) ने इस ज्ञान को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया, पर कुटिल समय (Harsh Times) और अल्पायु (Short Lifespan) ने उन्हें पूरा अवसर नहीं दिया। इसलिए यह कहा जा सकता है कि वैदिक सृष्टि विद्या (Vedic Science of Creation) आज भी एक “हाई-फाई रहस्य (Hi-Fi Mystery)” की तरह है, थोड़ा दिखाई देता है, पर उसे पूरी तरह समझ पाना हर किसी के बस की बात नहीं।

1.2 ईश्वर के अस्तित्व की वैज्ञानिकता “ईश्वर: ब्रह्मांड के सुपरकॉम्प्यूटर का वैज्ञानिक साक्ष्य”

हम ईश्वर-तत्त्व (God Principle) पर निष्पक्ष वैज्ञानिक दृष्टि (Scientific & Neutral View) से विचार करते हैं। जब से मनुष्य इस पृथ्वी (Earth) पर आया है, तभी से उसे ईश्वर (God) के विषय में कुतूहल (Curiosity) रहा है और प्रायः वह किसी न किसी रूप में उसे

मानता (Believe) भी रहा है। **वैदिक मत (Vedic View)**, जो **महाभारत काल (Mahabharata Era)** तक इस पृथ्वी पर एकमात्र **सत्य (Truth)** और **सार्वकालिक धर्म (Universal Dharma)** के रूप में प्रचलित था, **ईश्वर-तत्त्व (God Principle)** का एक अत्यंत **सुंदर (Elegant)** और **वैज्ञानिक (Scientific)** स्वरूप प्रस्तुत करता है। वैदिक काल में ईश्वर न तो किसी **मूर्ति (Idol)** में बंद था, न उसका कोई **जन्मदिन (Birthday)** था, न ही कोई **चमत्कार शो (Magic Show)** वह तो बस **नियमों (Laws)** से संचालित एक **सार्वभौमिक सत्ता (Universal Reality)** था।

लेकिन महाभारत के बाद जैसे ही धर्म का **“फ्रेंचाइज़ी मॉडल (Franchise Model)”** शुरू हुआ, हर मत ने अपना-अपना **ईश्वर संस्करण (God Version)** लॉन्च कर दिया। किसी ने ईश्वर को **पत्थर (Stone)** में कैद कर दिया, किसी ने उसे **तलवार (Sword)** पकड़ा दी, किसी ने **मिशनरी (Missionary)** बना दिया, और भारत में तो हालत यह हो गई कि जो सबसे ज़्यादा **चतुर (Clever)** निकला, वही कुछ समय बाद **अवतार (Avatar)** घोषित हो गया। तथाकथित **हिन्दू समाज (So-called Hindu Society)** में **मूर्तिपूजा (Idol Worship)**, **अवतारवाद (Avatarism)**, **छुआछूत (Untouchability)**, **नारी-शोषण (Women Exploitation)** और **घृणा (Hatred)** जैसे पापों को ईश्वर और वेदों के नाम पर सदियों तक ढोया गया, जिससे **वैदिक सत्य सनातन धर्म (Vedic Sanatan Dharma)** का गंभीर **विकृतिकरण (Distortion)** हुआ।

इसी प्रकार कुछ **इस्लामी समाजों (Islamic Societies)** में भी **कट्टरवाद (Extremism)** पनपा, जहाँ लोग **कुरान (Quran)** के प्रति कट्टर होते हुए भी **आधुनिकता (Modernity)** से बच नहीं पा रहे हैं। अपने **कल्पनाप्रसूत जिहाद (Imaginary Jihad)** के आवेग में वे न तो

ईश्वर को समझ पा रहे हैं और न ही ग्रंथ को, बल्कि हिंसा और रक्तपात (Violence & Bloodshed) को ही ईश्वरीय आदेश (Divine Command) मानकर संसार को आतंकित करने में अपनी जन्नत (Heaven) खोज रहे हैं। परिणाम यह हुआ कि विज्ञान (Science) आगे बढ़ता गया और ईश्वर पीछे छूटता चला गया मंदिर (Temple), मस्जिद (Mosque) और चर्च (Church) भरे हुए हैं, लेकिन विवेक (Reason) और बुद्धि (Intellect) धीरे-धीरे खाली होती जा रही है। लोग कर्मकाण्ड (Rituals) तो निभा रहे हैं, पर ईश्वर पर भरोसा (Faith in God) कम और मोबाइल नेटवर्क (Mobile Network) पर भरोसा ज़्यादा है।

अब यदि हम आस्था का चश्मा (Faith Lens) उतारकर और वैज्ञानिक चश्मा (Scientific Lens) पहनकर देखें, तो प्रश्न बहुत सरल है क्या ईश्वर (God) कोई वास्तविक सत्ता (Objective Reality) है या केवल विश्वास से चलने वाला सॉफ्टवेयर (Belief-Driven Software)? जैसे कोई व्यक्ति सूर्य (Sun), चन्द्रमा (Moon), पृथ्वी (Earth), जल (Water), वायु (Air), अग्नि (Fire), गुरुत्वाकर्षण (Gravity) या आकाशगंगाओं (Galaxies) के अस्तित्व पर संदेह नहीं करता, वैसे ही क्या इनके निर्माता (Creator) माने जाने वाले ईश्वर के अस्तित्व पर भी प्रश्न करना अनुचित है? सूर्य हमारी आस्था (Faith) से नहीं उगता, पृथ्वी हमारे विश्वास (Belief) से नहीं घूमती और गुरुत्वाकर्षण हमारे पूजा-पाठ (Rituals) से प्रभावित नहीं होता, फिर ईश्वर इतना कमज़ोर (Weak) क्यों मान लिया गया है कि वह आस्था से पैदा हो जाए और नास्तिक (Atheist) के आते ही बेहोश हो जाए?

यदि ईश्वर केवल आस्था से बनता-बिगड़ता है, तो वह ईश्वर नहीं बल्कि एक भावनात्मक स्टार्ट-अप (Emotional Start-up) लगता है, जिसे हर धर्म अपने-अपने नियमों (Custom Rules) से चला रहा है। आश्चर्य यह है कि सृष्टि के नियम (Laws of Nature) पर सब मिलकर पढ़ते-

समझते हैं, लेकिन **नियम-निर्माता (Law Maker)** पर चर्चा शुरू होते ही **तलवारें (Swords)** खिंच जाती हैं। ज़रा-सा प्रश्न पूछो तो ईश्वर नहीं, **प्रश्नकर्ता (Questioner)** ही खतरे में पड़ जाता है। सोचने वाली बात यह है कि जो ईश्वर **तर्क (Logic)** से डर जाए, **विज्ञान (Science)** से कांप जाए और **प्रश्न (Question)** से मिट जाए, वह पूरी **सृष्टि (Universe)** कैसे चला रहा होगा? ऐसा ईश्वर तो **पूजा (Worship)** के नहीं, बल्कि **सहानुभूति (Sympathy)** के योग्य प्रतीत होता है।

1.3 ईश्वरप्रसूत भौतिकी-जहाँ विज्ञान गणना करता है और ईश्वर मुस्कुराता है

ब्रह्माण्ड (Universe) एक अत्यन्त अनुशासित प्रयोगशाला (**Highly Disciplined Laboratory**) है, जहाँ **नियम (Laws)** अत्यन्त कठोर (**Strict**) हैं, पर उनकी **व्याख्याएँ (Interpretations)** कई बार हास्यास्पद रूप से **मानवीय (Human-Centric)** हो जाती हैं। **ईश्वर (God)** ने नियम बनाए, **वैज्ञानिकों (Scientists)** ने उनके **सूत्र (Equations / Formulae)** लिखे, और **मनुष्य (Human)** आज भी यह सोचता रहता है, “यह सब अपने आप हो गया (**It all happened automatically**)!” यदि वास्तव में **ईश्वर नाम की कोई सत्ता (Entity called God)** इस संसार में है, तो वह केवल हमारे **विश्वास (Belief)** या **आस्था (Faith)** के सहारे नहीं टिकी होगी, बल्कि वह अपने आप में एक **वास्तविक और स्वतंत्र सत्ता (Objective & Independent Reality)** होगी, जिसे **विज्ञान (Science)** के माध्यम से समझा जा सकता है। उसका एक निश्चित **स्वरूप (Definite Nature)** होगा और उसके बनाए हुए निश्चित **नियम (Fixed Laws)** होंगे। संसार को ध्यान से देखने पर स्पष्ट होता है कि यह किसी **व्यवस्था (Order)** और **नियमबद्धता (Lawfulness)** के अनुसार ही चल रहा है।

भौतिक नियमों (Physical Laws) के विषय में प्रसिद्ध वैज्ञानिक रिचर्ड पी. फेनमैन (Richard P. Feynman) ने कहा है- "We can imagine that this complicated array of moving things which constitutes 'the world' is something like a great chess game being played by the gods, and we are observers of the game. We do not know what the rules of the games are, all we are allowed to do is to watch the playing. Of course, if we watch long enough, we may eventually catch on to a few rules. The rules of the game are what we mean by fundamental physics." (Lectures on Physics-P. 13) कि यह संसार एक ऐसे महान खेल (Great Game) की तरह है, जिसके नियम हमें पहले से ज्ञात नहीं हैं; हम केवल उसे घटित होते हुए देखते हैं और लंबे प्रेक्षण (Observation) व अध्ययन (Study) के बाद धीरे-धीरे उन नियमों को समझ पाते हैं, जिन्हें हम मूल भौतिकी (Fundamental Physics) कहते हैं। इसका सीधा अर्थ यह है कि संसार अपने आप (Automatically) नहीं चल रहा, बल्कि कुछ पूर्व-निर्धारित नियमों (Pre-Existing Laws) से बँधा हुआ है। ये नियम मनुष्य द्वारा निर्मित (Man-Made) नहीं हैं; वैज्ञानिक इन्हें केवल खोजते (Discover) हैं, बनाते (Create) या बदलते (Modify) नहीं। नियम पहले से मौजूद हैं और संसार उन्हीं के अनुसार संचालित है। हाँ, फाइनमैन की बात में एक छोटी-सी तार्किक चूक (Logical Slip) दिखती है, उन्होंने नियमों के रचयिता के लिए "gods" (Many Gods) शब्द का प्रयोग किया। यदि नियम बनाने वाले अनेक देवता होते, तो नियमों में तालमेल (Coordination) न होता और संसार अव्यवस्थित (Chaotic) हो जाता। इसलिए यह मानना अधिक युक्तिसंगत है कि इन सभी नियमों का रचयिता और संचालक (Creator & Governor) एक ही सर्वोच्च सत्ता (Supreme Authority) है, एक ईश्वर (One God)।

ध्यान देने योग्य बात यह है कि जिस **ईश्वर (God)** की चर्चा होती है, उसके बनाए हुए **भौतिक नियम (Physical Laws)** ही वास्तव में **मूल भौतिक विज्ञान (Fundamental Science)** कहलाते हैं। इन्हीं नियमों पर **Physics, Chemistry, Astronomy, Biology, Medical Science, Engineering** सब टिके हुए हैं। इन नियमों के बिना विज्ञान वैसा ही हो जाएगा जैसे **मोबाइल बिना नेटवर्क (Mobile without Network)**। आश्चर्य यह है कि ये नियम पूरे **ब्रह्माण्ड (Cosmos)** में सभी के लिए एक जैसे हैं, **अमेरिका (USA)** में **Gravity** अलग नहीं और **भारत (India)** में अलग नहीं। लेकिन जैसे ही बात **ईश्वर को जानने के नियम (Spiritual Laws)** यानी **अध्यात्म (Spirituality)** की आती है, हर कोई अपना अलग-अलग **“उपयोगकर्ता पुस्तिका” (User Manual)** निकाल लेता है। कोई कहता है ऐसे मानो, कोई कहता है वैसे पूजो, और कोई दावा करता है कि **मेरे तरीके के बिना मुक्ति (Liberation)** असंभव है। विडंबना यह है कि जो ईश्वर पूरे ब्रह्माण्ड को एक ही नियम से चला रहा है, उसे जानने के लिए मनुष्य ने हज़ारों **परस्पर-विरोधी नियम (Contradictory Rules)** बना डाले।

ईश्वर को मानने वाले वैज्ञानिक केवल **रिचर्ड पी. फेनमैन** ही नहीं रहे हैं; अनेक महान वैज्ञानिक **ईश्वर की सत्ता (Existence of God)** स्वीकार करते आए हैं, क्योंकि **विज्ञान (Science)** प्रयोग (**Experiment**), गणना (**Calculation**) और प्रेक्षण (**Observation**) से चलता है, न कि **पूजा-पाठ (Rituals)** से। इसलिए विज्ञान न तो ईश्वर को **नाप सकता (Measure)** है और न ही उसे नापने की **ज़िद (Obsession)** करता है। दूसरी ओर स्थिति यह है कि आज ईश्वर को मानने वाले भी ऐसे कर्म कर रहे हैं, मानो ऊपर कोई **देखने वाला (Observer)** ही न हो, हर कोई खुद को ही **भगवान (God)** समझ बैठा है। कुछ लोग तो बड़े गर्व से बताते हैं कि फलॉ-फलॉ वैज्ञानिक भी ईश्वर को मानता था, जैसे ईश्वर की

वैधता (Validity) किसी नोबेल पुरस्कार प्रमाणपत्र (Nobel Prize Certificate) से तय होती हो। हमें तो ऐसा प्रतीत होता है कि ईश्वर (God) को किसी वैज्ञानिक की सिफ़ारिश (Recommendation) की आवश्यकता नहीं है। संभव है कि आने वाला समय और भी रोचक हो, जब आधुनिक वैज्ञानिक वैदिक वैज्ञानिकों (Vedic Scientists) को धार्मिक आस्था (Reference Books) की तरह पढ़ना शुरू करेंगे और एक नया वैज्ञानिक युग (Scientific Era) आएगा, जहाँ Laboratory और यज्ञशाला (Yagyashala) साथ-साथ चलेंगी। इसलिए हमारी समझदार समाज (Rational Society) से सीधी-सी अपील है, यदि ईश्वर नहीं है, तो बिना डर के खुलकर नास्तिक (Atheist) बनिए और अपने कर्मों की पूरी ज़िम्मेदारी (Responsibility) स्वयं उठाइए। और यदि ईश्वर है, तो उसकी व्यवस्था (Cosmic Order) में रहकर थोड़ा सभ्य (Civilised) बनिए, नियम (Laws) मानिए और इस संसार को थोड़ा और रहने-लायक (Liveable) बनाइए। आखिर यह संसार उसी का बनाया हुआ है, और इसमें रहने वाले केवल मनुष्य (Humans) ही नहीं, बल्कि सभी जीव-जंतु (Living Beings) भी हमारे ही दूर-दराज़ के रिश्तेदार (Extended Relatives) हैं। इसलिए हमारी सभी वैज्ञानिकों (Scientists) से, चाहे वे ईश्वर को मानते हों या न मानते हों, एक ही विनती है: दिमाग खुला रखें (Keep an Open Mind)। अब ज़रा ईश्वर के अस्तित्व (Existence of God) पर नए सिरे से (Fresh Perspective) सोचते हैं। अब तक वैज्ञानिकों (Scientists) के साथ सृष्टि (Universe / Creation) पर जो भी चर्चाएँ हुई हैं, उनसे एक बात बिल्कुल स्पष्ट (Clear) होकर सामने आती है, आधुनिक विज्ञान “क्यों? (Why?)” का प्रश्न सुनते ही मानो अपनी कुर्सी खिसका लेता (Avoids the Question) है। उसकी सबसे प्रिय शब्दावली (Favourite Vocabulary) है “क्या हुआ? (What happened?)” और “कैसे हुआ? (How did it happen?)”। इसके आगे जैसे ही पूछा जाए “क्यों

हुआ?", "किसने किया?" या "किस उद्देश्य से किया?", तो तुरंत उत्तर मिल जाता है "यह विज्ञान का विषय (Not a Subject of Science) नहीं है।" वास्तव में संसार में प्रश्नों की कोई कमी नहीं है। प्रश्नों की एक पूरी सेना (Army of Questions) है (१) क्यों (२) किसने (३) किसके लिए (४) क्या (५) कैसे आदि। लेकिन आधुनिक विज्ञान (Modern Science) ने बड़ी सुविधाजनक नीति (Convenient Strategy) अपनाई है उसने केवल "क्या (What)" और "कैसे (How)" से ही दोस्ती (Friendship) कर ली है। "क्यों (Why)", "किसने (Who)" और "किसके लिए (For Whom / Purpose)" जैसे प्रश्नों पर विचार करना आधुनिक विज्ञान के लिए न केवल अप्रिय (Uncomfortable) है, बल्कि वह इसे अपने क्षेत्राधिकार (Scope) से बाहर घोषित कर देता है। अब आवश्यकता इस बात की है कि हम इन प्रश्नों के आशय (Meaning) और गहराई (Depth) पर क्रमशः (Step by Step) विचार करें, क्योंकि जब तक "क्यों", "किसने" और "किस उद्देश्य से" जैसे प्रश्नों पर गंभीरता से चिंतन नहीं होगा, तब तक ईश्वर-तत्त्व (God Principle) और सृष्टि का वास्तविक स्वरूप (True Nature of Creation) अधूरा ही बना रहेगा।

1.4 क्यों?, किसने? किसके लिए:- क्या:- कैसे:- (प्रश्नों के आशय पर क्रमशः विचार)

हम इन प्रश्नों के आशय पर क्रमशः विचार करते हैं

(१) क्यों: यह प्रश्न "क्यों? (Why / Purpose) मनुष्य को सीधे प्रयोजन (Purpose) की खोज के लिए प्रेरित करता है। यह निःसंदेह है कि हम जीवन भर नाना प्रकार के कर्म (Actions) करते हैं और नाना प्रकार के द्रव्य (Resources / Materials) एकत्र करते हैं, और इन सबका कोई न कोई उद्देश्य (Objective) अवश्य होता है। कोई भी बुद्धिमान प्राणी (Rational Being) बिना किसी प्रयोजन (Purpose) के कोई प्रवृत्ति

(Activity) नहीं करता। मज़ेदार और थोड़ी विडंबनापूर्ण बात यह है कि एक सामान्य मनुष्य भी **चाय (Tea)** पीते समय बिना **“क्यों? (Why)”** पूछे नहीं रहता, क्यों पी रहे हो? थकान है, नींद भगानी है, आदत है। लेकिन वही मनुष्य जब पूरी **सृष्टि (Universe)** को देखता है, तो बड़ी सहजता से मान लेता है कि यह सब **यूँ ही (Randomly)** बन गया, बिना किसी **कारण (Cause)** और बिना किसी **प्रयोजन (Purpose)** के। यदि कोई व्यक्ति बिना उद्देश्य के कार्य करे, तो उसे **मूर्ख (Foolish)** कहा जाता है; लेकिन यदि पूरे **ब्रह्माण्ड (Cosmos)** को ही बिना उद्देश्य का मान लिया जाए, तो उसे **“वैज्ञानिक दृष्टि (Scientific Outlook)”** का नाम दे दिया जाता है, यही सबसे बड़ा **तार्किक विरोधाभास (Logical Paradox)** है।

वास्तव में **“क्यों? (Why)”** सबसे **खतरनाक प्रश्न (Dangerous Question)** है, क्योंकि यह मनुष्य को **सोचने (Thinking)** के लिए विवश करता है। इसी प्रश्न से न केवल सामान्य मनुष्य बचता है, बल्कि **आधुनिक विज्ञान (Modern Science)** भी प्रायः दूरी बनाए रखता है। वर्तमान विज्ञान इस प्रश्न से दूर रहकर अनेक **अनुसंधान (Research)** तो कर रहा है, पर उनके **प्रयोजन (Purpose)** और **दुष्प्रभाव (Side Effects)** पर गंभीर विचार नहीं करता। परिणाम यह है कि हम अत्यंत उन्नत **मशीनें (Machines)** और **तकनीक (Technology)** तो बना लेते हैं, पर यह स्पष्ट नहीं होता कि उनका **उपयोग (Use)** किस उद्देश्य से और किस सीमा तक किया जाए। इसी कारण आज का मनुष्य अपने **कर्मों (Actions)**, यहाँ तक कि अपने **जीवन (Life)** के भी **प्रयोजन (Meaning / Purpose)** को न समझ पाने के कारण **भोग (Consumption)** की **अति-तृष्णा (Excessive Desire)** में भटकता हुआ **अशान्ति (Restlessness)** और **दुःख (Suffering)** के **जाल (Web)** में फँसता जा रहा है। **जीवन (Life)** तो मिल गया है, पर **जीने**

का उद्देश्य (Purpose of Living) नहीं मिला; इसलिए आज का मनुष्य लगातार **भोग (Enjoyment)** करता चला जाता है, पर यह पूछने का समय (Time) ही नहीं निकालता कि **“मैं यह सब क्यों कर रहा हूँ? (Why am I doing all this?)”**

(२) **किसने:** - यह प्रश्न **“किसने? (Who / Doer)** वास्तव में **“क्यों? (Why / Purpose)** का ही सगा भाई **(Close Sibling)** है। यदि कोई कार्य **(Work / Action)** हो रहा है, तो यह स्वाभाविक है कि उसका कोई कर्ता **(Doer / Agent)** भी होगा। दीवार **(Wall)** अपने-आप नहीं खड़ी हो जाती और मोबाइल **(Mobile Phone)** अपने-आप चार्ज **(Charge)** नहीं हो जाता, तो फिर यह पूरा ब्रह्माण्ड **(Universe)** अपने-आप कैसे बन गया? जड़ पदार्थ **(Inert Matter)** अपने आप में कुछ भी करने में असमर्थ **(Incapable of Action)** होता है; वह तो केवल आदेश **(Command)** का पालन करता है। वास्तविक बॉस **(Boss)** तो सदैव चेतन तत्त्व **(Conscious Principle)** ही होता है।

परन्तु यहीं आकर आधुनिक विज्ञान **(Modern Science)** कह देता है, “हमने तो केवल प्रक्रिया **(Process)** बता दी है, कर्ता **(Doer)** को ढूँढना हमारा विषय नहीं है।” यानी खाना **(Food)** तो बन गया, पर रसोइया **(Cook)** कौन था, इससे हमें क्या! यही वह बिंदु है जहाँ वैज्ञानिक व्याख्या **(Scientific Explanation)** अधूरी रह जाती है और ईश्वर-तत्त्व **(God Principle)** पर विचार की आवश्यकता स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होती है।

(३) **किसके लिए:** - अब मान लिया जाए कि किसी ने सृष्टि **(Creation)** बनाई, तो अगला स्वाभाविक प्रश्न उठता है, **किसके लिए (For whom)?** कोई भी कार्य **(Work / Action)** बिना उपभोक्ता **(Consumer / Enjoyer)** के नहीं होता। अगर भोजन **(Food)** बनाया गया है, तो उसे खाने वाला भी अवश्य होगा। जड़ पदार्थ **(Inert Matter)** न तो स्वयं

आनंद (Enjoyment) ले सकता है और न ही किसी और को आनंद दे सकता है। कोई **पत्थर (Stone)** कभी यह नहीं कह सकता “वाह! आज तो मैं बहुत स्वादिष्ट हूँ।” **उपभोग (Experience)** और **अनुभूति (Feeling / Conscious Experience)** हमेशा **चेतन तत्त्व (Conscious Element)** से ही जुड़ी होती है। अर्थात् जहाँ **आनंद** है, वहाँ **चेतना (Consciousness)** अवश्य है। लेकिन यहाँ भी आधुनिक **विज्ञान (Modern Science)** कहता है, “यह प्रश्न **भावनात्मक (Emotional)** या **दार्शनिक (Philosophical)** है, यह हमारे **सिलेबस (Syllabus)** से बाहर है।” यानी विज्ञान **प्रक्रिया (Process)** तो समझा देता है, लेकिन **उद्देश्य (Purpose)** और **भोक्ता (Enjoyer)** के प्रश्न को अपने क्षेत्र से बाहर कर देता है। यहीं पर **विज्ञान की सीमा (Limit of Science)** स्पष्ट हो जाती है और **दर्शन (Philosophy)** तथा **आध्यात्मिकता (Spirituality)** की आवश्यकता सामने आती है।

(४) **क्या:-** यह प्रश्न आधुनिक **विज्ञान (Science)** का सबसे पसंदीदा क्षेत्र (**Favourite Area**) माना जाता है। **जगत (Universe)** क्या है, **कण (Particles)** क्या हैं, **ऊर्जा (Energy)** क्या है और **बल (Force)** क्या होता है, इन सभी विषयों पर विज्ञान पूरे **जोश (Enthusiasm)** के साथ काम करता है। यहाँ **समीकरण (Equations)**, **ग्राफ (Graphs)** और **सिद्धांत / थ्योरी (Theories)** प्रस्तुत किए जाते हैं, जिनसे प्रकृति को समझने की कोशिश की जाती है। फिर भी, इतने अधिक **अनुसंधान (Research)** के बावजूद विज्ञान आज तक कोई **पूर्ण उत्तर (Complete Answer)** नहीं दे पाया है। जहाँ आधुनिक विज्ञान थककर रुक जाता है, वहीं **दर्शन (Philosophy)** और **वैदिक विज्ञान (Vedic Science)** आगे बढ़कर कहते हैं कि अब गहन अर्थ और उद्देश्य की खोज का समय है। लेकिन आधुनिक **वैज्ञानिक दृष्टिकोण (Modern Scientific Approach)** अक्सर उस सीमा से आगे बढ़ने से पहले ही चेतावनी लगा

देता है, “आगे प्रवेश वर्जित (Entry Prohibited)” और यहीं से विज्ञान और दर्शन के मार्ग अलग-अलग हो जाते हैं।

(५) कैसे:- यह तो विज्ञान (Science) का सबसे प्रिय प्रश्न (Favourite Question) है, सब कुछ कैसे (How) होता है। जगत (Universe) कैसे बना, ऊर्जा (Energy) कैसे चलती है, बल (Force) कैसे काम करता है, इन सब पर विज्ञान पूरे उत्साह से काम करता है। इसी “कैसे” (How) के कारण मशीनें (Machines) बनीं, रॉकेट (Rockets) उड़ने लगे और तकनीक ने अद्भुत प्रगति की। लेकिन मज़ेदार और गम्भीर बात यह है कि जब “क्यों (Why)”, “किसने (Who)” और “किसके लिए (For Whom)” जैसे प्रश्नों को अलग कर दिया जाता है, तो “कैसे” का उत्तर भी अधूरा (Incomplete) रह जाता है। यह ठीक वैसा ही है जैसे कोई बताए कि गाड़ी (Vehicle) कैसे चलती है, पर यह न बताए कि उसे किसने बनाया, क्यों बनाया और किसके लिए बनाया।

परिणाम यह हुआ है कि आज का विज्ञान केवल “क्या (What)” और “कैसे (How)” में व्यस्त है, और जैसे ही “क्यों, किसने, किसके लिए” सामने आते हैं, वह उनसे ऐसे मुँह फेर लेता है मानो वे कोई असुविधाजनक रिश्तेदार (Uncomfortable Relatives) हों, जिनसे बात करना टालना ही बेहतर समझा जाता हो।

अब आइए सृष्टि की उत्पत्ति पर “क्यों” और “किसने” वाले सवालों को बिग बैंग के संदर्भ में देखें।

(i) स्टीवन वेनबर्ग (Steven Weinberg) के बिग बैंग सिद्धान्त (Big Bang Theory) के अनुसार, प्रारम्भ में एक अत्यन्त सघन (Infinitely Dense) और अत्यन्त उष्ण (Infinitely Hot) अवस्था थी, जिससे ब्रह्माण्ड का विस्तार हुआ। यहाँ पहला प्रश्न उठता है, यह अचानक (Suddenly) क्यों हुआ? दूसरा यह प्रक्रिया किसने (Who) शुरू की? जैसे ही ये “क्यों” (Why) और “किसने” (Who) वाले प्रश्न आते हैं, तो

अनीश्वरवादी वैज्ञानिक (Atheistic Scientists) प्रायः चुप हो जाते हैं। उनका उत्तर बस इतना होता है, **“ऐसे ही हो गया (It just happened)”**। लेकिन यदि **ईश्वर (God)** को स्वीकार कर लिया जाए, तो कम-से-कम इतना तो कहा जा सकता है कि किसी **चेतन सत्ता (Conscious Power)** ने अपने **उद्देश्य (Purpose)** से ऐसा किया होगा।

यदि केवल **“ऐसे ही”** से **ब्रह्माण्ड (Universe)** बन सकता है, तो फिर **चाय (Tea)** बिना गैस के, **घर (House)** बिना कारीगर के और **मोबाइल (Mobile)** बिना चार्ज के क्यों नहीं चल जाता? ईश्वर को मानने पर यह भी समझ में आता है कि **चेतन सत्ता (Conscious Being)** इच्छा से कार्य करती है जैसे कोई **पक्षी (Bird)** अभी उड़ जाए या बाद में, यह उसकी मर्जी है। पर यदि कोई **पत्थर (Stone)** अचानक उड़ने लगे, तो सवाल खड़ा हो जाता है। जहाँ **इच्छा (Will)** होती है, वहाँ **“क्यों”** उतना परेशान नहीं करता; और जहाँ इच्छा नहीं होती, वहाँ **“क्यों”** सिर पर बैठ जाता है।

लेकिन मज़ेदार बात यह है कि केवल ईश्वर से बिग बैंग को जोड़ देने से भी समस्या पूरी तरह हल नहीं होती। क्योंकि **ईश्वर भी अपने ही बनाए भौतिक नियमों (Physical Laws)** को तोड़कर काम नहीं करता। जो **बिग बैंग सिद्धान्त (Big Bang Theory)** स्वयं कई भौतिक नियमों से टकराती दिखती है, उसे ईश्वर के नाम पर भी पूरी तरह नहीं बचाया जा सकता।

यह भी समझना ज़रूरी है कि **शून्य (Nothingness)** से सृष्टि न तो विज्ञान बना सकता है और न ही ईश्वर। सृष्टि के लिए **पदार्थ (Matter)** आवश्यक है, और पदार्थ स्वयं कुछ नहीं करता। इसलिए **जड़ पदार्थ (Inert Matter)** और **चेतन शक्ति (Conscious Energy)** दोनों की भूमिका माननी पड़ती है। जैसे कोई व्यक्ति बड़े भंडार से अपनी ज़रूरत के अनुसार सामग्री लेकर कुछ बनाता है, वैसे ही **परमात्मा (Supreme**

Reality) अनन्त पदार्थ में से सीमित पदार्थ लेकर सीमित **द्रव्यमान (Mass)** और **ऊर्जा (Energy)** वाला ब्रह्माण्ड रचता है।

आज यह भी पूरी तरह स्पष्ट नहीं है कि ब्रह्माण्ड **सीमित (Finite)** है या **अनन्त (Infinite)**। हमारी समझ में यह बहुत बड़ा और लगभग अनन्त जैसा है, पर **ईश्वर की तुलना (In Comparison to God)** में यह सीमित ही है। जो पदार्थ हमें लगता है कि उपयोग में नहीं आया, वह वास्तव में हमारी **अधूरी समझ (Limited Understanding)** का परिणाम है। वही सूक्ष्म पदार्थ **प्राण (Prāṇa)**, **मन (Mind)**, **छन्द (Chhanda)** और **मूल प्रकृति (Primordial Nature)** के रूप में सृष्टि को चलाने में सहायक होता है। प्रारम्भ में **द्रव्यमान और ऊर्जा (Mass and Energy)** जैसी पहचानें स्पष्ट नहीं थीं; वे समय के साथ प्रकट हुईं।

(ii) **दूर फैलता हुआ पदार्थ इकट्ठा होना कैसे शुरू करता है?** जो लोग **ईश्वर (God)** को नहीं मानते, वे यह **स्पष्ट (Clearly)** नहीं बता पाते कि **दूर-दूर फैलता हुआ पदार्थ (Expanding Matter)** अचानक **इकट्ठा (Condense)** होना कैसे शुरू करता है। लेकिन **ईश्वरवादी दृष्टि (Theistic View)** से इसे इस प्रकार समझा जा सकता है कि **सृष्टि (Creation)** की रचना के लिए **ईश्वर (God)** फैलते हुए पदार्थ को **सूक्ष्म और शक्तिशाली तरंगों (Subtle & Powerful Waves)** के माध्यम से **नियंत्रित (Control)** करता है और उसे **एक-दूसरे की ओर आकर्षित (Attract)** करता है। इसी प्रक्रिया से **पदार्थ का संघनन (Condensation of Matter)** आरम्भ होता है और सृष्टि की रचना आगे बढ़ती है।

अन्त में (In Conclusion) स्थिति यह बनती है कि **बिग बैंग थ्योरी (Big Bang Theory)** ऐसे-ऐसे **प्रश्न (Questions)** खड़े कर देती है कि **वैज्ञानिक (Scientists)** भी सिर खुजाने लगते हैं और **ईश्वरवादी**

(Theists) भी। फर्क बस इतना है कि एक कहता है, “मत पूछो” (Don’t ask), और दूसरा कहता है “सोचो” (Think)।

1.5 “गति का प्रथम कारण शाश्वत ब्रह्माण्ड (Eternal Universe): भौतिकी, ऊर्जा और चेतन सिद्धान्त पर एक अंतरविषयी अध्ययन”

शाश्वत ब्रह्माण्ड (Eternal Universe) के विषय में एक मुख्य प्रश्न (Main Question) यह है कि कोई भी कण या पदार्थ (Particle or Matter), जिसमें बल (Force) या गति (Motion) हो, वह हमेशा से मौजूद (Eternal) नहीं हो सकता। इसी प्रकार जो पदार्थ छोटे-छोटे भागों (Smaller Parts) के संयोग (Combination) से बना हो, वह भी अनादि (Beginningless) नहीं हो सकता। मूल पदार्थ (Fundamental Matter) को भले ही अनादि और अनन्त (Beginningless & Infinite) माना जाए, पर यह ब्रह्माण्ड (Universe) स्वयं न तो अनादि है और न ही अनन्त। हाँ, इसका निर्माण-विनाश का चक्र (Cycle of Creation & Destruction) अवश्य अनादि और अनन्त (Eternal Cycle) है।

आज के समय में कुछ आधुनिक भौतिक वैज्ञानिक (Modern Physicists) भी जिन कणों को मूलकण (Elementary Particles) कहा जाता है, उन्हें वास्तव में मूल मानने में संदेह (Doubt) करने लगे हैं। जर्मनी के वैज्ञानिक वाल्टर ग्रीनर (Walter Greiner) और एंड्रियास शॉफ़र (Andreas Schofer) का कथन है- "The nonexistence of the decays $n = p+e^-$ and $n = \bar{p}+\bar{e}^-$ also indicates the presence of a new quantum number. The proton and neutron are given a baryonic charge $B=1$ and the electron $B=0$. Similarly the electron is assigned leptonic

charge $L=1$, the nucleons $L=0$. From the principle of simplicity it appears very unsatisfactory to regard all observed particles as elementary. (Quantum-chromodynamics-P. 1) वैज्ञानिक वाल्टर ग्रीनर (Walter Greiner) और एंड्रियास शॉफ़र (Andreas Schäfer) का मत है कि प्रोटॉन (Proton), न्यूट्रॉन (Neutron) ही नहीं, बल्कि इलेक्ट्रॉन (Electron), म्यूऑन (Muon) और न्यूट्रिनो (Neutrino) जैसे कणों को भी सीधे-सीधे मूल मान लेना असंतोषजनक (Unsatisfactory) है। इससे यह स्पष्ट होता है कि वर्तमान विज्ञान (Present Science) स्वयं अपने तथाकथित मूलकणों पर भी पूरी तरह निश्चित (Certain) नहीं है।

अब यदि हम सृष्टि के अनादित्व (Beginning lessness of Creation) पर विचार करें, तो प्रश्न उठता है, क्या गति (Motion) स्वयं अनादि हो सकती है? सृष्टि (Creation) का अर्थ है, नाना पदार्थों (Different Materials) का बुद्धिपूर्वक मेल (Intelligent Combination), जिससे नए-नए पदार्थ उत्पन्न होते हैं। इस प्रक्रिया में बल और गति (Force & Motion) का होना आवश्यक है। पर प्रश्न यह है कि क्या जड़ पदार्थ (Inert Matter) में अपने-आप गति या बल (Self-generated Motion or Force) हो सकता है? वैदिक दृष्टि से उत्तर है नहीं। इस विषय में महर्षि वेदव्यास (Maharshi Vedvyas) का कथन है, “प्रवृत्तेश्च (अनुपपत्तेः)” (ब्र.सू.२.२.२) अर्थात् जड़ पदार्थ में अपने-आप कोई क्रिया या गति (Action or Motion) संभव नहीं है; इसके लिए किसी चेतन तत्व (Conscious Principle) की आवश्यकता होती है। यह बात हम रोज़मर्रा के जीवन में भी देखते हैं। कार (Car) या रेलगाड़ी (Train) चालक की इच्छा (Will) और प्रयास (Effort) से चलती है। हम इंजन को देखकर कहते हैं कि सब कुछ ईंधन और ऊर्जा (Fuel & Energy) से हो रहा है, पर यह नहीं समझ पाते कि ऊर्जा

(Energy) वस्तुओं को चलाती कैसे है (How it causes motion)। भौतिक विज्ञानी **रिचर्ड पी. फेनमैन (Richard P. Feynman)** द्वारा उनकी प्रसिद्ध पुस्तक **"द फेनमैन लेक्चर्स ऑन फिजिक्स" (The Feynman Lectures on Physics)**, वॉल्यूम 1, अध्याय 4 (संरक्षण ऊर्जा - **Conservation of Energy**) में लिखते हैं- **"It is important to realize that in physics today, we have no knowledge of what energy is."** (Lectures on Physics- P. 40) **"If you insist upon a precise definition of force, you will never get it."** And **"Why things remains in motion when they are moving or why there is a law of gravitation was, of course not known."** (Lectures on Physics- P.15) यही कारण है कि प्रसिद्ध वैज्ञानिक **Richard P. Feynman** स्वयं स्वीकार करते हैं **"We do not know what energy really is."** और यह भी कि **बल (Force)** की कोई **सटीक परिभाषा (Exact Definition)** आज तक ज्ञात नहीं है। यहाँ तक कि **गुरुत्वाकर्षण (Gravitation)** क्यों है, इसका अंतिम उत्तर भी विज्ञान के पास नहीं है।

इसलिए यह कहना अनुचित नहीं होगा कि **आधुनिक विज्ञान (Modern Science)** आज भी यह नहीं जानता कि **बल और ऊर्जा (Force & Energy)** वास्तव में **क्या हैं और कैसे काम करते हैं (What they are & how they work)**। वैज्ञानिक मानो यह कह रहे हों, **"हम देख सकते हैं कि सब कुछ चल रहा है, लेकिन क्यों और कैसे, यह हमें नहीं पता!"** यही वह बिंदु है जहाँ **विज्ञान (Science)** की सीमाएँ (**Limits**) स्पष्ट होती हैं और **चेतन तत्व (Conscious Principle)** की आवश्यकता पर विचार करना अनिवार्य हो जाता है। **1.6 ईश्वर क्यों नहीं महसूस होते? मन मल्लीटास्किंग में व्यस्त है**

कुछ लोग पूछ सकते हैं कि अगर ईश्वर (God) इस सृष्टि (Universe) का कर्त्ता (Creator/Doer) है, तो हमें उसका अनुभव (Experience) क्यों नहीं होता। इसे समझने के लिए देखें कि किसी क्रिया (Action) का कर्त्ता कब महसूस होता है:

1. कर्त्ता साकार (Visible) रूप में दिखाई दे। सामान्यतः किसी भी कर्त्ता (Doer/Creator) के साकार (Visible/Formful) होने पर उसका प्रत्यक्ष अनुभव करना सरल होता है। जैसे हम अपने दैनिक जीवन में विभिन्न कार्यों के संचालक (Operator), नियन्त्रक (Controller) तथा वस्तुओं के निर्माता (Maker) को अपनी आँखों से देख सकते हैं, इसलिए उनके अस्तित्व में कोई संदेह नहीं रहता। परन्तु जब सृष्टि के कर्त्ता अर्थात् ईश्वर की बात आती है, तो उसे निराकार (Formless) माना जाता है। इसी कारण वह हमारी इन्द्रियों जैसे नेत्र (Eyes), रसना (Tongue), त्वचा (Skin), घ्राण (Smell/Prana) और श्रोत्र (Ears) के द्वारा प्रत्यक्ष नहीं किया जा सकता। क्योंकि ईश्वर न तो रूप (Form) का विषय है, न रस (Taste), न गन्ध (Smell), न स्पर्श (Touch) और न ही शब्द (Sound) का, इसलिए वह इन्द्रियगोचर (Perceptible) नहीं होता। इस विचार को एक सरल उदाहरण से समझते हैं, मान लीजिए आप किसी सुंदर पेंटिंग को देखते हैं तो तुरंत आपके मन में आता है कि इसका कोई निर्माता (Creator) होगा। भले ही वह चित्रकार सामने न हो, फिर भी उसकी उपस्थिति का ज्ञान उस कृति से हो जाता है। यहाँ चित्रकार साकार (Visible) है, इसलिए कभी-न-कभी उसे देखा भी जा सकता है।

अब दूसरा उदाहरण लें, आप मोबाइल या इंटरनेट चला रहे हैं। इसमें काम करने वाली विद्युत शक्ति (Electricity) या सिग्नल (Signal) आपको दिखाई नहीं देते, न आप उन्हें छू सकते हैं, न स्वाद ले सकते हैं। फिर भी आप जानते हैं कि वे हैं, क्योंकि उनका प्रभाव स्पष्ट दिखता है। इसी प्रकार, सृष्टि को देखकर यह विचार किया जाता है कि इसका कोई

कर्त्ता (Doer/Creator) अवश्य होगा। परन्तु वह ईश्वर **निराकार (Formless)** होने के कारण हमारी इन्द्रियों से प्रत्यक्ष नहीं होता। “जो दिखाई न दे, वह अस्तित्वहीन हो यह आवश्यक नहीं है; वह इन्द्रियों से परे भी हो सकता है।”

2. क्रिया के शुरू और खत्म होने के लक्षण (Signs of Start and End of Action) दिखें। जिन क्रियाओं को हम प्रत्यक्ष रूप से **प्रारम्भ (Beginning)** और **समापन (End)** होते हुए देखते हैं, उनके **कर्त्ता (Doer)** का ज्ञान हमें आसानी से हो जाता है। उदाहरण के लिए, यदि कोई व्यक्ति कोई कार्य करता हुआ दिखाई देता है और फिर उसे समाप्त करता है, तो हम सहज ही समझ लेते हैं कि उस कार्य के पीछे कोई **नियन्त्रक (Controller)** या **संचालक (Operator)** है। किन्तु सृष्टि में अनेक ऐसी प्रक्रियाएँ हैं, जैसे **सूर्य का उगना , ग्रहों की गति, या हवा का चलना, गति (Motion), प्रकाशन (Illumination), तथा अणु (Atoms) और परमाणुओं (Subatomic Particles)** की निरंतर चलने वाली गतिविधियाँ, जिन्हें हम अपने जन्म से लेकर मृत्यु तक एक समान रूप में चलते हुए ही देखते हैं। चूँकि हमने इनका न तो **उद्गम (Origin)** देखा है और न ही **अन्त (Termination)**, इसलिए हमारे मन में इनके पीछे किसी चेतन कर्त्ता की कल्पना सहज रूप से उत्पन्न नहीं होती।

3. कर्त्ता किसी हलचल या संकेत (Sign) से अपने होने का परिचय दे। यदि कोई **साकार कर्त्ता (Visible Doer)** भी किसी यंत्र के पास उपस्थित हो, परन्तु वह स्वयं कोई **हलचल (Movement)** न करे, तो देखने वाले को यह समझ ही नहीं आएगा कि वही उस यंत्र का **चालक (Driver/Operator)** है। उसे ऐसा ही लगेगा कि यंत्र अपने आप चल रहा है। उदाहरण के लिए मान लीजिए कोई व्यक्ति कार में बैठा है, लेकिन वह बिल्कुल स्थिर (बिना हिले-डुले) बैठा है, और कार किसी ऑटोमेटिक सिस्टम से चल रही है। बाहर से देखने वाले व्यक्ति को यह लगेगा कि कार

अपने आप चल रही है, क्योंकि उसने चालक की कोई **क्रिया (Action)** या **प्रयत्न (Effort)** देखा ही नहीं। इसी प्रकार, जब सृष्टि में कोई **चेतन कर्त्ता (Conscious Doer)** प्रत्यक्ष रूप से क्रियाशील (Active) दिखाई नहीं देता, तो सामान्य व्यक्ति को ऐसा प्रतीत होता है कि सब कुछ स्वतः ही हो रहा है।

4. हमें क्रिया की गतिविधियों और लक्षणों को पहचानने का ज्ञान (Knowledge of Action Signs) होना चाहिए। जब तक किसी व्यक्ति को किसी **क्रिया (Action)** के **आदि (Beginning)**, **मध्य (Middle)** और **अन्त (End)** में प्रकट होने वाले विभिन्न **लक्षण (Signs/Indicators)** का ज्ञान नहीं होता, तब तक वह उस क्रिया के **कर्त्ता (Doer)** को नहीं पहचान सकता। अर्थात् केवल किसी घटना को घटित होते देख लेना पर्याप्त नहीं है, बल्कि उसके पीछे कार्य करने वाले कारणों और संकेतों को समझना भी आवश्यक है। इसे एक सरल उदाहरण से समझें जब कोई **पशु (Animal)** बस, रेल या हवाई जहाज को चलते और रुकते हुए देख सकता है। वह उनके अंदर बैठे **चालक (Driver/Operator)** को भी देख सकता है, परन्तु उसे यह समझ नहीं आता कि वही व्यक्ति इन वाहनों को **नियन्त्रित (Control)** कर रहा है। उसके लिए यह सब केवल “चलने-रुकने वाली चीज़ें” हैं, क्योंकि उसमें उन **लक्षणों (Operational Signs)** को समझने की क्षमता नहीं होती, जिनसे यह पता चलता है कि कोई व्यक्ति उन्हें चला रहा है। इसी प्रकार, जब मनुष्य सृष्टि में हो रही जटिल क्रियाओं के गहरे लक्षणों और कारणों को नहीं समझ पाता, तो वह उनके पीछे कार्य करने वाले **चेतन कर्त्ता (Conscious Doer)** का बोध नहीं कर पाता।

5. अगर कर्ता निराकार (Formless) है, तो सिद्धांत समझने (Understanding Principle) के सभी पांच अवयवों का सही ज्ञान होना भी अनिवार्य है। अन्यथा ईश्वर तत्व (God Principle) का बोध नहीं हो पाएगा।

वर्तमान विज्ञान (Modern Science) केवल प्रयोग (Experiments), प्रेक्षण (Observation) और परीक्षण (Tests) पर भरोसा करता है। गणितीय व्याख्या (Mathematical Explanation) पर विश्वास करता है। इसलिए उसे ईश्वर (God) के अस्तित्व का बोध नहीं होता। जब उसकी क्षमता खत्म हो जाती है, तो वह कह देता है, "हमें नहीं पता।" यह सच है कि उसे पता नहीं, पर क्या उसे जानने की कोशिश नहीं करनी चाहिए? हमें वैदिक विज्ञान (Vedic Science) या दर्शन (Philosophy) का सहारा लेना चाहिए। केवल वही सत्य नहीं है जो विज्ञान से सिद्ध हो, बाकी सब मिथ्या है, ऐसा सोचकर गलती हो जाती है। इस विषय में Richard P. Feynman ने लिखा है "Mathematics is not a science from our point of view, in the sense that it is not a natural science. The test of its validity is not experiment. We must incidentally, make it clear from the beginning that if a thing is not science, it is not necessarily bad. For example, love is not a science. So, if something is said not to be a science, it does not mean that there is something wrong with it, it just means that it is not a science." (Lectures on Physics- P. 27) अर्थात्, गणित (Mathematics) या अन्य कुछ जो विज्ञान (Science) की श्रेणी में नहीं आते, वह मिथ्या (False) नहीं होते। वैदिक दृष्टि में विज्ञान (Science) बहुत व्यापक है। महर्षि दयानन्द सरस्वती कहते हैं, "विज्ञान उसको कहते हैं कि जो कर्म (Actions), उपासना (Worship) और ज्ञान (Knowledge) इन तीनों से यथावत् उपयोग लेना और परमेश्वर से

लेकर तृण पर्यन्त पदार्थों (All Matter) के साक्षात् बोध (Direct Experience) का होना, उनसे यथावत् उपयोग का करना।" (वेद विषय विचार- ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका) इसके संस्कृत भाग में "पृथिवीतृणमारभ्य प्रकृतिपर्यन्तानां पदार्थानां ज्ञानेन यथावदुपकारग्रहणम्. ।" वैदिक दृष्टि से विज्ञान (Science) का अर्थ है स्थूलतम से सूक्ष्मतम पदार्थ (Matter) तक का पूरा ज्ञान। इसमें ईश्वर (God) और जीव (Living Beings) का भी सही ज्ञान शामिल है। यह ज्ञान तीन चीज़ों से प्राप्त होता है अध्ययन (Study), कर्म/प्रयोग (Action/Experiment) और उपासना (Meditation/Worship)। योग और समाधि (Samadhi) के माध्यम से वैदिक ऋषियों (Vedic Sages) ने सृष्टि (Universe), जीव (Living Beings) और ईश्वर (God) जैसे अदृश्य चेतन पदार्थ (Conscious Entities) का अनुभव किया और सच्चा ज्ञान (True Knowledge) प्राप्त किया। यह ज्ञान स्थायी (Permanent) और निर्भ्रम (Infallible) होता है। उन्होंने इसे कल्पसूत्र, ब्राह्मण ग्रन्थ, मनुस्मृति, उपनिषद, रामायण, महाभारत आदि में संकलित किया।

योगियों ने ध्यान के माध्यम से बड़े लोकों से लेकर सूक्ष्म कण (Particles), क्वांटा (Quanta) और सूक्ष्म प्राण (Subtle Life Energies) में अपनी चेतना डालकर उनका अनुभव किया। यह सब बिना किसी बाहरी तकनीक के किया। और उन्होंने ध्यान और ग्रंथों के माध्यम से अपने पवित्र ज्ञान को संस्कृत मंत्रों द्वारा अधिकारी ऋषियों तक पहुँचाया था। इस प्रकार वैदिक विज्ञान (Vedic Science) का क्षेत्र वर्तमान विज्ञान (Modern Science) की तुलना में बहुत व्यापक है।

मंत्र केवल धार्मिक या आध्यात्मिक उच्चारण नहीं हैं, बल्कि उन्हें एक जटिल ध्वनि-आधारित न्यूरो-प्रक्रिया (Complex Sound-based Neuro-Cognitive Process) के रूप में भी समझा जा सकता है।

प्रत्येक मंत्र विशिष्ट **ध्वनि-पैटर्न (Sound Patterns)** और **फ्रीक्वेंसी (Frequency)** का संयोजन होता है, जो हमारे **मस्तिष्कीय तंत्र (Neural System)** पर सूक्ष्म प्रभाव डालता है। जब हम मंत्रों का उच्चारण करते हैं, तो **कंठ, तालु, मूर्धा, दंत और ओष्ठ** जैसे विभिन्न **उच्चारण स्थल (Articulation Points)** सक्रिय होते हैं, जिससे मस्तिष्क के अलग-अलग **न्यूरल नेटवर्क्स (Neural Networks)** उत्तेजित या नियंत्रित होते हैं।

यह प्रक्रिया **अनुनाद (Resonance)** के सिद्धांत पर आधारित होती है, जहाँ बाहरी ध्वनि तरंगें शरीर और मस्तिष्क की **प्राकृतिक आवृत्तियों (Natural Frequencies)** के साथ तालमेल बनाती हैं। इसके परिणामस्वरूप मस्तिष्क में एक प्रकार का **सामंजस्य (Neural Synchronization)** उत्पन्न होता है, जो मानसिक शांति और स्थिरता को बढ़ाता है। विशेष रूप से “ॐ” जैसे मंत्रों के नियमित जप से **थैलेमस (Thalamus)** और **हिप्पोकैम्पस (Hippocampus)** जैसे क्षेत्रों की अनावश्यक सक्रियता कम होती है, जिसे **डी-एक्टिवेशन (Deactivation)** कहा जाता है यह प्रक्रिया **ओवरथिंकिंग (Overthinking)**, **एंजायटी (Anxiety)** और **डिप्रेशन (Depression)** को कम करने में सहायक हो सकती है।

इसके अतिरिक्त, मंत्र-जाप मस्तिष्क के **ग्रे मैटर (Grey Matter)** जहाँ **न्यूरॉन्स (Neurons)** स्थित होते हैं की सक्रियता और दीर्घकालीन अभ्यास में उसकी वृद्धि से भी जुड़ा पाया गया है, जिससे **मेमोरी (Memory)**, **रीकॉल (Recall Ability)** और **कॉग्निटिव एफिशिएंसी (Cognitive Efficiency)** में सुधार होता है। वहीं **व्हाइट मैटर (White Matter)**, जो न्यूरॉन्स के बीच सूचना के संचार के लिए जिम्मेदार होता है, मंत्रों के नियमित अभ्यास से बेहतर **कनेक्टिविटी (Neural Connectivity)** प्रदर्शित कर सकता है।

वैज्ञानिक दृष्टि से, मंत्र-जाप मस्तिष्क की अनावश्यक गतिविधियों को कम करके उसे एक **रिलैक्सेशन स्टेट (Relaxation State)** में ले जाता है, ठीक वैसे ही जैसे किसी कंप्यूटर में कम **प्रोसेसेज़ (Processes)** चलने पर उसकी कार्यक्षमता बढ़ जाती है। इससे व्यक्ति की **एकाग्रता (Focus)**, **निर्णय क्षमता (Decision Making)** और **भावनात्मक संतुलन (Emotional Regulation)** में सुधार होता है।

अतः मंत्रों को केवल **अंधविश्वास (Superstition)** कहकर और चमत्कारी मानकर खारिज करना उचित नहीं है। सही दृष्टिकोण यह है कि इन्हें एक **वैज्ञानिक-मानसिक तकनीक (Scientific Cognitive Tool)** के रूप में समझा जाए।

1.7 ईश्वर का वैज्ञानिक स्वरूप (ईश्वर: ब्रह्माण्ड का मूल एल्योरिद्ध)

सृष्टि का निर्माण, संचालन और नियंत्रण करने वाला चेतन तत्व ईश्वर (God) है। अब प्रश्न यह है कि वैज्ञानिक दृष्टि से वह ईश्वर कैसा है।

1. सत् स्वरूप (Eternal Nature) –ईश्वर का **नित्य (Eternal)** होना अनिवार्य है, अर्थात् वह कभी उत्पन्न (Produced) नहीं हुआ और न ही उसका कभी **विनाश (Destruction)** हो सकता है। यदि हम यह मान लें कि ईश्वर **अनित्य (Non-eternal/Temporary)** है, तो यह प्रश्न अवश्य उठेगा कि उसका **उत्पत्ति कारण (Cause of Origin)** क्या है? अर्थात् उसे किसने बनाया? अब यदि हम यह मानते हैं कि किसी अन्य **महती चेतन सत्ता (Higher Conscious Entity)** ने उस ईश्वर को उत्पन्न किया, तो वह सत्ता स्वयं उससे भी अधिक शक्तिशाली और स्वतंत्र होगी। तब तर्क यह कहेगा कि वास्तविक ईश्वर वही उच्च सत्ता है, जिसने पहले वाले "ईश्वर" को उत्पन्न किया। परन्तु यहाँ भी समस्या समाप्त नहीं होती, क्योंकि यदि उस उच्च सत्ता को भी किसी ने बनाया हो, तो यह क्रम

अनन्त (Infinite) तक चलता रहेगा, जिसे **अनवस्था दोष (Infinite Regress Fallacy)** कहा जाता है।

इस अनन्त क्रम को रोकने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि किसी एक ऐसी सत्ता को स्वीकार किया जाए, जो **अनादि (Beginningless)** और **स्वतः सिद्ध (Self-existent)** हो जिसका कोई कारण न हो, जो स्वयं ही अपने अस्तित्व का आधार हो। वही सत्ता वास्तविक ईश्वर है। इसी कारण कहा जाता है कि ईश्वर **सत् (Eternally Real)** है, अर्थात् उसका अस्तित्व किसी अन्य पर निर्भर नहीं है। **चेतन सत्ता (Conscious Entity)** का निर्माण किसी भौतिक प्रक्रिया से नहीं किया जा सकता। अर्थात् चेतना न तो किसी पदार्थ (Matter) से उत्पन्न होती है और न ही किसी बाहरी कारण से बनाई जा सकती है। इसलिए चेतना का स्वभाव ही **अनादि (Eternal)** माना जाता है। अतः निष्कर्ष यह निकलता है कि ईश्वर नित्य है, क्योंकि यदि वह अनित्य होगा तो उसे उत्पन्न करने वाली कोई और सत्ता माननी पड़ेगी। वह अनादि है, क्योंकि उसके अस्तित्व का कोई प्रारम्भ नहीं है। वह स्वतः सिद्ध है, क्योंकि वह किसी अन्य पर निर्भर नहीं है।

2. चित् स्वरूप (Conscious Nature) – ईश्वर चेतन (Conscious) है, क्योंकि केवल चेतन सत्ता में **इच्छा (Will)**, **ज्ञान (Knowledge)** और **प्रयास (Effort)** करने की क्षमता होती है। इन्हीं गुणों के कारण वह **सृष्टि (Universe)** की रचना और संचालन कर सकता है।

3. आनन्द स्वरूप (Blissful Nature) – ईश्वर को आनन्द स्वरूप (Blissful Nature) बताया गया है। इसका तात्पर्य यह है कि जो सत्ता सम्पूर्ण सृष्टि की रचना करती है, उसमें किसी प्रकार का **क्लेश (Affliction)**, **दुःख (Suffering)** या **व्याकुलता (Disturbance)** नहीं होना चाहिए। यदि वह स्वयं ही **क्लेशग्रस्त (Afflicted)** या दुःख से प्रभावित हो, तो वह इतने विशाल और सुव्यवस्थित सृष्टि-कार्य को सम्पन्न

नहीं कर सकती। अतः ईश्वर का स्वभाव स्वाभाविक रूप से **निर्दुःख (Free from Suffering)** और पूर्णतः आनन्दमय माना जाता है। इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए **महर्षि पतंजलि** ने कहा है "**क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः**" (यो.द.१.२४) अर्थात् जो **अविद्या (Ignorance)** आदि **क्लेश (Afflictions)**, **कर्म (Actions)**, उनके **विपाक (Results)** तथा **आशय (Latent Impressions)** से सर्वथा अछूता (Unaffected) है, वही विशेष पुरुष (विशिष्ट चेतन सत्ता) ईश्वर है। यहाँ ईश्वर को एक ऐसी **व्याप्त (All-pervading)** चेतन सत्ता बताया गया है, जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में विद्यमान रहते हुए भी इन सब बन्धनों से परे है। इसी परंपरा में **दयानंद सरस्वती** ने ईश्वर को **सच्चिदानन्द (Existence-Consciousness-Bliss)** कहा है, जहाँ **सत् (Truth/Existence)**, **चित् (Consciousness)** और **आनन्द (Bliss)** तीनों गुण पूर्ण रूप से विद्यमान हैं। अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि ईश्वर वह सत्ता है जो न केवल अनादि और नित्य है, बल्कि पूर्णतः **आनन्दमय (Blissful)**, **निर्दुःख (Free from Pain)** और सभी प्रकार के क्लेशों से परे है। यही उसका वास्तविक स्वरूप है।

4. सर्वव्यापक (Omnipresent) - ईश्वर के **सर्वव्यापक (Omnipresent)** स्वरूप को समझाने का प्रयास किया गया है। हम देखते हैं कि यह सृष्टि अत्यन्त विशाल है वैज्ञानिक बताते हैं कि ब्रह्माण्ड की त्रिज्या लगभग **10²⁶ मीटर** है और इसमें अरबों-खरबों किलोमीटर क्षेत्र में असंख्य **आकाशगंगाएँ (Galaxies)** विद्यमान हैं, जिनमें अरबों **तारे (Stars)** हैं, और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का विस्तार अत्यधिक विशाल है। इतना ही नहीं, जहाँ हमें रिक्त स्थान प्रतीत होता है, वहाँ भी सूक्ष्म स्तर पर **हाइड्रोजन गैस (Hydrogen Gas)** तथा **वैक्यूम ऊर्जा (Vacuum Energy)** विद्यमान रहती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि ब्रह्माण्ड में वास्तविक अर्थ में पूर्ण **रिक्तता (Absolute Emptiness)** कहीं नहीं है। इसी प्रकार, इस सृष्टि में एक ओर अत्यन्त विशाल पिंड हैं, तो दूसरी ओर

अत्यन्त सूक्ष्म कण जैसे **लेप्टॉन (Leptons)**, **क्वार्क (Quarks)** और अन्य सूक्ष्म तत्व भी विद्यमान हैं। इन सभी में निरंतर **गति (Motion)** और **बल (Force)** कार्य कर रहे हैं, तथा हर स्तर पर **सृजन (Creation)** और **विनाश (Destruction)** की प्रक्रिया चल रही है। इस आधार पर यह तर्क दिया जाता है कि जहाँ-जहाँ यह समस्त क्रियाएँ हो रही हैं, वहाँ-वहाँ किसी न किसी रूप में **चेतन तत्व (Conscious Principle)** की उपस्थिति भी होनी चाहिए।

इसी सत्य को व्यक्त करते हुए **कठ उपनिषद् के ऋषि** ने कहा- "**अणोरणीयान् महतो महीयान्**" (कठ.उ.२.२०) अर्थात् ईश्वर **सूक्ष्मतम (Subtlest)** से भी सूक्ष्म और **महत्तम (Greatest)** से भी महान है। तथा **यजुर्वेद** ने कहा है- "**ईशावास्यमिदः सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्**" (यजु.४०.१) अर्थात् वह ईश्वर इस सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त होकर उसे आच्छादित किये हुए है। अतः निष्कर्ष यह निकलता है कि ईश्वर न केवल किसी एक स्थान (एकदेश) में सीमित है, बल्कि वह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में **सूक्ष्म (Microscopic)** से लेकर **स्थूल (Macroscopic)** तक सर्वत्र विद्यमान है। इसलिए उसे **सर्वव्यापक (Omnipresent)** कहा जाता है।

5. सर्वशक्तिमान (Omnipotent) –जो सत्ता इस सम्पूर्ण **ब्रह्माण्ड (Universe)** को **सृजित (Create)** करती है, उसे **चलाती (Sustain)** है और उसका **नियमन (Regulate)** करती है, वह सामान्य शक्ति वाली नहीं हो सकती। आज का विज्ञान भी यह स्वीकार करता है कि ब्रह्माण्ड अत्यन्त विशाल है, जहाँ एक ओर सूक्ष्मतम कण जैसे **क्वार्क (Quarks)** और **लेप्टॉन (Leptons)** हैं, वहीं दूसरी ओर अत्यन्त विशाल **आकाशगंगाएँ (Galaxies)** और तारे हैं। इन सबकी रचना करना, उनमें निरंतर **गति (Motion)** और **ऊर्जा (Energy)** बनाए रखना, तथा विभिन्न **बलों (Forces)** का संचालन करना किसी सीमित शक्ति के वश की बात नहीं है। इसलिए यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि ईश्वर अवश्य ही **सर्वशक्तिमान् (All-powerful)** है।

सर्वशक्तिमान् (Omnipotent) का अर्थ यह नहीं है कि ईश्वर बिना किसी **उपादान कारण (Material Cause)** के शून्य से सृष्टि बना सकता है या बिना किसी नियम के चमत्कारिक ढंग से कुछ भी कर सकता है। ऐसा मानना **अतार्किक (Illogical)** माना गया है। इसके विपरीत, ईश्वर स्वयं एक **नियामक (Law-giver/Regulator)** है, जो अपने ही बनाए हुए **नियमों (Laws)** के अनुसार कार्य करता है। वह नियमों के विरुद्ध कार्य नहीं करता, क्योंकि वही नियम उसकी व्यवस्था (Order) का आधार हैं। अतः ईश्वर की वास्तविक **सर्वशक्तिमत्ता (True Omnipotence)** इस बात में निहित है कि वह इतनी विशाल और जटिल सृष्टि को बिना किसी बाहरी सहायता के **उत्पन्न (Create)** करता है, उसका संचालन करता है और समय आने पर उसका **प्रलय (Dissolution)** भी करता है।

6. निराकार (Formless) – सत्ता **सर्वव्यापक (Omnipresent)** और **सर्वशक्तिमान् (Omnipotent)** है, उसका कोई सीमित **आकार (Form/Shape)** नहीं हो सकता। क्योंकि आकार का अर्थ ही सीमा (Limitation) है और जो सत्ता अनन्त है, वह किसी सीमा में बंध नहीं सकती। अतः सामान्य बुद्धि से भी यह निष्कर्ष निकलता है कि ऐसी सत्ता **निराकार (Formless)** ही होगी। **ऊर्जा (Energy)** और **बल (Force)** जैसे गुण स्वयं किसी साकार वस्तु के नहीं होते, बल्कि वे उस वस्तु में विद्यमान किसी सूक्ष्म, निराकार तत्व के कारण प्रकट होते हैं। उदाहरण के लिए, विभिन्न यंत्रों में जो शक्ति दिखाई देती है, वह वास्तव में **विद्युत (Electricity)** के कारण होती है, जो स्वयं निराकार है। इसी प्रकार, जीवित प्राणियों के शरीर में जो क्रियाशीलता और शक्ति दिखाई देती है, उसका मूल कारण **चेतन जीवात्मा (Conscious Soul)** है, जो इन्द्रियों से दिखाई नहीं देती।

जो ईश्वर समस्त **सूक्ष्म (Subtle)** और **स्थूल (Gross)** पदार्थों में व्याप्त होकर उन्हें शक्ति और ऊर्जा प्रदान करता है, वह स्वयं किसी साकार रूप

में सीमित नहीं हो सकता। यदि वह साकार होता, तो वह किसी एक स्थान तक सीमित हो जाता और सर्वव्यापक नहीं रह सकता।

7. सर्वज्ञ (Omniscient) –सामान्य बुद्धि से भी यह समझा जा सकता है कि यदि कोई व्यक्ति एक छोटा-सा **यन्त्र (Machine)** बनाता है, तो उसे उस यन्त्र का पूरा ज्ञान होता है, इसलिए उसे **बुद्धिमान (Intelligent)** कहा जाता है। इसी प्रकार, जो वैज्ञानिक ब्रह्माण्ड के कुछ रहस्यों को समझ पाते हैं, वे भी अत्यन्त ज्ञानी माने जाते हैं। अब विचार करें कि जो सत्ता इस सम्पूर्ण **ब्रह्माण्ड (Universe)** की रचना करती है और उसे निरंतर **संचालित (Operate)** भी करती है, उसका ज्ञान कितना व्यापक होगा। स्पष्ट है कि वह केवल सीमित ज्ञान वाला नहीं हो सकता, बल्कि उसे प्रत्येक सूक्ष्म से सूक्ष्म और स्थूल से स्थूल वस्तु का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। इसी कारण उसे **सर्वज्ञ (All-knowing)** कहा जाता है।

यह भी देखा जाता है कि मनुष्य जो पृथ्वी पर सबसे विकसित **बुद्धि (Intellect)** वाला प्राणी माना जाता है करोड़ों वर्षों से इस सृष्टि को समझने का प्रयास कर रहा है, फिर भी वह इसे पूर्णतः नहीं जान पाया है और न ही जान सकेगा। ऐसे में यह निष्कर्ष स्वाभाविक है कि जिस सत्ता ने इस जटिल और विशाल ब्रह्माण्ड की रचना की है, वह **अनन्त ज्ञान (Infinite Knowledge)** से युक्त होगी।

8. पवित्र (Pure) –ईश्वर सृष्टि के **उपादान कारण (Material Cause)** अर्थात् वह मूल पदार्थ जिससे सृष्टि बनी है, में कभी भी **मिश्रित (Mixed)** नहीं होता। वह उससे सर्वथा अलग और **विशुद्ध (Absolutely Pure)** रूप में स्थित रहता है। इसी कारण उसे सृष्टि का **निमित्त कारण (Efficient Cause)** कहा जाता है, अर्थात् वह सृष्टि का निर्माता और नियन्ता तो है, परन्तु स्वयं पदार्थ रूप में परिवर्तित नहीं होता। दूसरी ओर, **प्रकृति (Primordial Matter)** को इस सृष्टि का उपादान कारण माना जाता है, जिससे विविध वस्तुओं की रचना होती है।

इसका तात्पर्य यह है कि ईश्वर सृष्टि को संचालित करते हुए भी उससे प्रभावित नहीं होता, बल्कि वह सदैव अपने शुद्ध स्वरूप में स्थित रहता है। उसमें किसी भी प्रकार का **दोष (Imperfection)**, **अशुद्धता (Impurity)** या **विकार (Defect/Distortion)** प्रवेश नहीं कर सकता।

9. सर्वाधार (Support of Everything/Ultimate Support/Substratum) – अर्थात् ईश्वर ही इस सम्पूर्ण **ब्रह्माण्ड (Universe)** को **रचती (Create)** है, **चलाती (Sustain)** है और अंततः उसे **धारण (Hold/Support)** भी करती है। इसलिए उसे समस्त अस्तित्व का आधार कहा जाता है।

आधुनिक विज्ञान इस ब्रह्माण्ड के संतुलन और संरचना को बनाए रखने के लिए **गुरुत्वाकर्षण (Gravity)** तथा **डार्क मैटर (Dark Matter)** जैसी शक्तियों की भूमिका स्वीकार करता है। ये बल वास्तव में आकाशगंगाओं, तारों और अन्य पिंडों को एक साथ बाँधे रखने में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। यह वैज्ञानिक दृष्टि अपने स्तर पर सत्य है, क्योंकि यह “कैसे (How)” के प्रश्न का उत्तर देती है। किन्तु इस दार्शनिक दृष्टिकोण के अनुसार, यह प्रश्न भी उठता है कि इन बलों और तत्वों का स्वयं आधार क्या है? अर्थात् जो **धारण करने वाले (Supporting Forces)** हैं, उनका धारक कौन है? यहाँ यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया जाता है कि इन सभी भौतिक शक्तियों का अंतिम आधार स्वयं ईश्वर ही है।

10. न्यायकारी (Just) और दयालु (Compassionate) – ईश्वर **पूर्ण (Perfect)**, **तृप्त (Self-satisfied)** और **अकाम (Desireless)** होता है, अर्थात् उसे स्वयं के लिए किसी भी वस्तु की आवश्यकता नहीं होती। इसलिए वह सृष्टि की रचना अपने स्वार्थ के लिए नहीं, बल्कि अन्य **अपूर्ण चेतन तत्व (Imperfect Conscious Entity)** अर्थात् **जीवात्मा (Individual Soul)** के **उपभोग (Experience)** और **मोक्ष (Liberation)** के लिए करता है। यहाँ ‘अपूर्ण’ का अर्थ यह है कि जीवात्मा

ज्ञान (Knowledge), बल (Power) और आयतन (Extent) में ईश्वर की अपेक्षा अत्यन्त सीमित होती है।

इसी कारण ईश्वर को **दयालु (Merciful)** कहा जाता है, क्योंकि वह जीवों के कल्याण के लिए ही सृष्टि की रचना करता है। साथ ही, वह प्रत्येक जीव को उसके **कर्म (Actions)** के अनुसार ही **फल (Result)** प्रदान करता है, न उससे अधिक, न कम। यही कारण है कि उसे **न्यायकारी (Just)** भी कहा जाता है।

यह सिद्धान्त इस बात पर आधारित है कि जैसे जड़ जगत् (Material World) में हर क्रिया के पीछे कोई न कोई **कारण (Cause)** होता है और उसके अनुसार ही परिणाम (Effect) प्राप्त होता है, वैसे ही चेतन जगत् (Conscious World) में भी कर्म और फल का नियम लागू होता है। आधुनिक विज्ञान भी भौतिक जगत् में इस **कारण-कार्य सिद्धान्त (Cause-Effect Principle)** को स्वीकार करता है। **आर्थर बेइसर (Arthur Beiser)** लिखते हैं— "**cause and effects are still related in quantum mechanics, but what they concern needs careful interpretation .**" (**Concepts of Modern Physics- P. 161**) अर्थात् **क्वांटम भौतिकी (Quantum Physics)** में भी कारण और कार्य जुड़े रहते हैं, बस समझने में सावधानी चाहिए।

जैसे **जड़ जगत् (Material World)** में **कारण-कार्य नियम (Cause-Effect Law)** सर्वत्र कार्य करता है, वैसे ही **चेतन जगत् (Conscious World)** में भी यह नियम किसी न किसी रूप में अवश्य कार्य करता होगा। यहाँ यह कहा गया है कि चेतन जगत् में यह नियम **कर्मफल व्यवस्था (Law of Karma / Action-Result System)** के रूप में प्रकट होता है। अर्थात् प्रत्येक जीव अपने **कर्म (Actions)** के अनुसार ही **फल (Consequences)** प्राप्त करता है। यद्यपि मनुष्य इस व्यवस्था को पूर्ण रूप से समझ नहीं सकता, फिर भी यह माना जाता है कि यह व्यवस्था अत्यन्त **सुसंगत (Systematic)** और **अपरिवर्तनीय (Immutable)** है।

इसी कारण यह भी कहा जाता है कि स्वयं ईश्वर भी इस नियम की उपेक्षा नहीं करता, क्योंकि वही इस न्यायपूर्ण व्यवस्था का आधार है।

इस दृष्टिकोण के अनुसार, केवल **प्रार्थना (Prayer)**, **उपासना (Worship)**, **तौबा (Repentance)** या **स्वीकारोक्ति (Confession)** के आधार पर किसी व्यक्ति के किए गए कर्मों के फल को पूरी तरह समाप्त कर देना न्याय के सिद्धान्त के अनुकूल नहीं माना जाता। यदि ऐसा हो, तो पूरी **न्याय व्यवस्था (Justice System)** असंतुलित हो सकती है। उदाहरण के रूप में कहा जाता है कि यदि कोई न्यायाधीश किसी अपराधी को बिना उचित परिणाम दिए क्षमा कर दे, तो इससे समाज में अन्याय बढ़ सकता है और अपराध करने का उत्साह भी बढ़ सकता है। इसलिए सच्चा न्याय वही माना जाता है जिसमें कर्म के अनुसार फल अवश्य मिले। जो लोग पापमोचन के लिए प्रार्थना करते हैं, वे ईश्वर के **विशुद्ध स्वरूप (Pure Form)** को नहीं समझते।

पाप के फल के विषय में **महादेव शिव भगवती उमा** से कहते हैं-

"द्विधा तु क्रियते पापं सत्रिश्चासद्रिरेव च।
अभिसंधाय वा नित्यमन्यथा वा यदृच्छया।।
अभिसंधिकृतस्यैव नैव नाशोऽस्ति कर्मणः।
अश्वमेधसहस्रैश्च प्रायश्चित्तशतैरपि।।
अन्यथा यत् कृतं पापं प्रमादाद् वा यदृच्छया।
प्रायश्चित्ताश्वमेधाभ्यां श्रेयसा तत् प्रणस्यति।।"
(महाभारत, अनु. पर्व वानधर्मपर्व।
अध्याय १४५ वाक्षिणात्य संस्करण)

कि जो **पाप (Sin)** गलती से हुआ, उसे **प्रायश्चित्त (Atonement/ Penance)** से मिटाया जा सकता है, लेकिन **जानबूझकर (Deliberate)** किया गया पाप अवश्य भोगना पड़ता है। **ईश्वर (God)** न्यायपूर्वक **दंड (Punishment)** देते हैं ताकि दूसरों को **नुकसान (Harm)** न पहुंचे और

पापी सुधार सके। यह बिल्कुल वैसा ही है जैसे **माता-पिता (Parents)** अपनी संतान को **प्यार (Love)** से सुधारते हैं। इसी प्रकार ईश्वर सभी का सबसे बड़ा **पालक (Protector)** और **दयालु (Compassionate)** हैं।

आज मानव समाज **सम्प्रदायों (Sects)** में विभाजित होकर विभिन्न प्रकार के **ईश्वर-कल्पनाएँ (Concepts of God)** बना रहा है और प्रायः सभी परम्पराएँ पापों से मुक्ति के सरल उपाय प्रस्तुत करती हैं। अनेक स्थानों पर यह मान्यता प्रचलित है कि केवल **पूजाडम्बर (Ritualistic Display)**, **प्रार्थना (Prayer)**, **व्रत (Fasting)**, **उपवास (Austerity)**, **नमाज (Namaz)**, **रोज़ा (Roza)**, **मूर्ति-पूजा (Idol Worship)** या अन्य बाहरी क्रियाओं के द्वारा पापों का नाश हो सकता है। इस दृष्टिकोण की आलोचना करते हुए यह कहा गया है कि ये उपाय वास्तविक **कर्मफल (Law of Action and Result)** को समाप्त नहीं करते, बल्कि कई बार केवल बाह्य आडम्बर (External Formalities) बनकर रह जाते हैं।

जब इन आडम्बरों के बावजूद समाज में **अनैतिकता (Immorality)** और **पाप (Sinful Actions)** बढ़ते रहते हैं, तो सामान्य व्यक्ति का विश्वास न केवल ईश्वर में, बल्कि उसकी **न्याय व्यवस्था (Divine Justice System)** में भी कमजोर पड़ने लगता है। इसके परिणामस्वरूप समाज में **नैतिक मूल्यों (Moral Values)** का **क्षरण (Degradation)** होने लगता है।

इसलिए यहाँ यह आवश्यकता है कि ईश्वर के **दयालु (Compassionate)** और **न्यायकारी (Just)** दोनों स्वरूपों को संतुलित रूप से समझा जाए। अर्थात् ईश्वर केवल क्षमा करने वाला ही नहीं, बल्कि कर्मों के अनुसार फल देने वाला भी है। उसकी दया इस रूप में है कि वह जीव को सुधार का अवसर देता है, और उसका न्याय इस रूप में है कि वह कर्मों का उचित परिणाम अवश्य प्रदान करता है।

ईश्वर के अनन्त गुण (Infinite Attributes), कर्म (Functions) और स्वभाव (Nature) हैं, जिनमें से यहाँ केवल कुछ का ही वर्णन किया गया है। महर्षि दयानन्द सरस्वती लिखते हैं- "ईश्वर सच्चिदानन्द (Existence-Consciousness-Bliss), निराकार (Formless), सर्वशक्तिमान् (Omnipotent), न्यायकारी (Just), दयालु (Compassionate), अजन्मा (Unborn), अनन्त (Infinite), निर्विकार (Immutable), अनादि (Beginningless), सर्वाधार (Ultimate Support), सर्वव्यापक (Omnipresent) तथा सृष्टिकर्ता (Creator) है। इस प्रकार का वर्णन अत्यन्त व्यापक और संतुलित माना जाता है, जिसमें ईश्वर के दार्शनिक और तात्त्विक दोनों पक्ष समाहित हैं। उसी की उपासना करने योग्य है। ईश्वर के स्वरूप का वैदिक वैज्ञानिक विवेचन अद्वितीय है। आज संसार में अनेक मतों में ईश्वर के मिथ्या रूप प्रचलित हैं। Stephen Hawking ने *The Grand Design* में ईश्वर की उपस्थिति को खण्डित किया, पर यदि उन्हें वैदिक ईश्वर तत्व का ज्ञान होता, तो ऐसा करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। आशा है कि आधुनिक वैज्ञानिक इस वैदिक दृष्टि से ईश्वर की सत्ता और स्वरूप को समझेंगे और Hawking जैसी भूल नहीं दोहराएंगे।

1.8 ईश्वर के कार्य करने की प्रणाली (ईश्वर: न्यायकारी एल्गोरिद्म, अजन्मा हार्डवेयर, अमर सॉफ्टवेयर और सृष्टिकर्ता API)

ईश्वर (God) इस सृष्टि (Universe) की रचना (Creation), संचालन (Operation), धारण (Maintenance) और प्रलय (Dissolution) की सभी प्रक्रियाओं में सक्रिय (Active) रूप से उपस्थित हैं। संसार के ईश्वरवादी (Theists) ईश्वर की चर्चा तो करते हैं, पर यह नहीं समझते कि वह अपने कार्य कैसे संपन्न (Performs) करता है।

इस सृष्टि की प्रत्येक **क्रिया (Action)** के पीछे **चेतन तत्व (Conscious Principle)** ईश्वर की भूमिका है, जैसे प्राणियों में **जीवात्मा (Soul / Life Principle)** कार्य करती है। ईश्वर तत्व की यह भूमिका **छोटे-छोटे कण (Particles)** से लेकर बड़े-बड़े **लोकों (Worlds / Galaxies)** और उनके **परिक्रमण (Orbiting)**, **धारण (Maintenance)** तथा **आकर्षण (Attraction)** तक व्याप्त है।

वर्तमान **विज्ञान (Science)** भौतिक **बलों (Forces)**, **गुरुत्व (Gravity)**, **विद्युत-चुम्बकीय (Electromagnetic)** और **नाभिकीय (Nuclear)** बलों के कार्य को समझता है, पर उनकी **उत्पत्ति (Origin)** नहीं जानता। ये बल सीधे ईश्वर द्वारा नहीं नियंत्रित होते; बल्कि **प्राण (Prana)** और **छन्दादि रश्मियाँ (Chhanda Rays)** के माध्यम से उत्पन्न और संचालित होते हैं।

ये रश्मियाँ **मन (Mind)** और **सूक्ष्म वाक् तत्व (Subtle Speech Element)** के माध्यम से उत्पन्न होती हैं। इसलिए **मन और वाक् तत्व** को समझे बिना इन मूल बलों का वास्तविक स्वरूप और कार्यप्रणाली समझना संभव नहीं। मन और वाक् तत्व खुद से काम नहीं कर सकते। इन्हें **चेतन ईश्वर (Conscious God)** प्रेरित करता है।

ईश्वर पहले **काल तत्व (Time Element)** को प्रेरित करता है, **काल → मन-वाक्, मन-वाक् → प्राण और छन्दादि रश्मियाँ**, और ये रश्मियाँ फिर **चार मुख्य बल (Four Fundamental Forces)** समेत अनेक बलों का निर्माण करती हैं, जो सृष्टि के संचालन में काम आते हैं। ईश्वर प्रत्येक क्रिया में केवल **काल (Time)** और **ओम् छन्द रश्मियों (Om Chhanda Rays)** को प्रेरित करते हैं, जो आगे की प्रक्रिया संचालित करती हैं। ये इतने **सूक्ष्म (Subtle)** हैं कि सामान्य मनुष्य इन्हें नहीं समझ सकता; केवल **उच्च कोटि का योगी (Advanced Yogi)** ही इस सम्पूर्ण प्रक्रिया को जान और समझ सकता है। महर्षि **ऐतरेय महीदास (Maharshi**

Aitareya Mahidas) ने अपने **योगबल (Yoga Power)** से इस प्रक्रिया का ज्ञान प्राप्त कर इसे ग्रन्थ में वर्णित किया।

सारांशतः, ईश्वर **काल, ओम् रश्मि और प्रकृति (Nature)** को प्रेरित कर **सृष्टि का संचालन (Universe's Operation)** करते हैं। वह **जीवात्मा की तरह कर्मों का भागीदार (Participant)** नहीं हैं, सर्वथा **अकाम (Desireless)** हैं, और केवल जीवों के लिए सब कुछ करते हैं।

आधुनिक **वैज्ञानिक (Scientists)** जब सृष्टि की उत्पत्ति समझाने बैठते हैं, तो कभी **“बिग बैंग (Big Bang)”** का धमाका करते हैं, कभी **शून्य से सब कुछ पैदा (Creation from Nothing)** कर देते हैं। वैदिक विज्ञान इस पर मुस्कराकर कहता है, **“शून्य से तो शून्य ही निकलता है!”** वैदिक दृष्टि से सृष्टि न तो शून्य से उत्पन्न हुई है और न ही अनादि है।

वैदिक दृष्टि में सृष्टि की **कच्ची सामग्री (Raw Material)** पहले से मौजूद थी, जिसे बड़े सम्मान से **प्रकृति (Nature)** कहा गया। प्रकृति जड़ पदार्थ की सबसे **सूक्ष्म (Subtle), प्रारम्भिक (Primordial)** और **स्वाभाविक (Natural)** अवस्था है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड **विशाल तारों (Stars)** से लेकर **सूक्ष्म कणों (Particles)** तक इसी प्रकृति से उत्पन्न होता है, उसी में स्थित रहता है और निश्चित **काल (Time)** के बाद उसी में विलीन हो जाता है। यानी वैदिक सृष्टि-विज्ञान में **न शुरुआत बिना सामग्री (No Beginning without Material)** है, न अंत बिना **रीसाइक्लिंग (Recycling / Dissolution)** के।

अब सवाल यह है कि प्रकृति क्या है और उसका स्वरूप कैसा है। इस विषय में महादेव शिव अपनी धर्मपत्नी भगवती उमा से कहते हैं-

"नित्यमेकमणु व्यापि क्रियाहीनमहेतुकम्।

अग्राह्यमिन्द्रियैः सर्वरितदव्यक्त लक्षणम्॥

अव्यक्तं प्रकृतिर्मूलं प्रधानं योनिरव्ययम्।

अव्यक्तस्यैव नामानि शब्दैः पर्यायवाचकैः॥"

(महाभारत अनुशासन पर्व-दानधर्मपर्व १४५ वां अध्याय, पृष्ठ संख्या

६०१४)

उधर महर्षि ब्रह्मा कहते हैं-

"तमो व्यक्तं शिवं धाम रजो योनिः सनातनः।

प्रकृतिर्विकारः प्रलयः प्रधानं प्रभवाप्ययी॥३॥

अनुद्रिक्तगनूनं वाप्यकम्पमचलं ध्रुवम्।

सदसच्चैव तत् सर्वमव्यक्तं त्रिगुणं स्मृतम्।

ज्ञेयानि नामधेयानि नरैरध्यात्मचिन्तकैः ॥२४॥।"

(महाभारत आश्वमेधिक पर्व अनुगीता पर्व अध्याय-३६)

प्रकृति (Nature) – सृष्टि का मूल आधार

शिव और ब्रह्मा के कथनों से स्पष्ट है कि प्रकृति सृष्टि की मूल आधारभूमि (Primary Substrate) है। यह ऐसी चीज़ है जिसे इन्द्रियों से सीधे देखा या छुआ नहीं जा सकता। इसे अव्यक्त (Unmanifest / Subtle) कहा गया है, क्योंकि यह दिखाई नहीं देती, लेकिन हर जगह व्याप्त है।

प्रकृति के प्रमुख लक्षण:

1. **नित्य (Eternal)** – प्रकृति हमेशा से है और हमेशा रहेगी। इसका जन्म या विनाश नहीं होता।
2. **प्रलय में समान (Uniform in Pralaya)** – सृष्टि से पहले यह पूरे आकाश में समान रूप से फैली रहती है, और उस समय इसमें कोई हलचल नहीं होती।
3. **अणु (Atomic/Subtle)** – यह पदार्थ की सबसे सूक्ष्म अवस्था (Subtlest Form) है। इससे आगे सूक्ष्म कुछ नहीं सोच सकते।
4. **व्यापी (Omnipresent)** – यह पूरे ब्रह्माण्ड में व्याप्त है; कहीं खाली स्थान नहीं छोड़ती।
5. **क्रियाहीन (Inactive)** – सृष्टि से पहले और प्रलय के समय यह पूरी तरह शांत और निष्क्रिय रहती है।
6. **अहेतुक (Cause-less)** – इसका कोई कारण नहीं; यह स्वयम्भू (Self-Existent) है। ईश्वर इसे प्रेरित कर सृष्टि करता है, लेकिन इसे स्वयं नहीं बनाता।
7. **अग्राह्य (Incomprehensible)** – इन्द्रियों से इसे देखना या समझना संभव नहीं।
8. **अव्यक्त (Unmanifest)** – महर्षि व्यास के अनुसार प्रकृति अपने मूल स्वरूप में अव्यक्त (Unmanifest) होती है, अर्थात् उसे किसी भी प्रकार से इन्द्रियों, भाषा या रूप में पूर्णतः प्रकट नहीं किया जा सकता। यह एक ऐसी अदृश्य (Invisible) और अपरिमेय (Immeasurable) सत्ता है, जो समस्त सृष्टि का मूल कारण होते हुए भी स्वयं प्रत्यक्ष नहीं होती। जब यही प्रकृति अपने संभावित रूप से प्रकट होती है, तब वह व्यक्त (Manifest) रूप धारण करती है, जिसमें समस्त दृश्य जगत सम्मिलित हो जाता है। महर्षि व्यास के श्लोक-**प्रोक्तं तद्व्यक्तमित्येव जायते वर्धते च यत्। जीर्यतेऽप्ययते**

चैव, चतुर्भिलक्षणैर्युतम्॥” के अनुसार जो भी वस्तु **जन्म (Birth)** लेती है, **वृद्धि (Growth)** करती है, **क्षीण (Decay)** होती है और अंततः **नाश (Death)** को प्राप्त होती है, वही व्यक्त कहलाती है। इसके विपरीत, अव्यक्त प्रकृति इन सभी परिवर्तनों से परे, **नित्य (Eternal)**, **अपरिवर्तनशील (Unchanging)** और **सूक्ष्म (Subtle)** रूप में विद्यमान रहती है, जो समस्त भौतिक अस्तित्व का आधार होते हुए भी स्वयं अनुभव से परे है।

सृष्टि में प्रकृति की भूमिका:

1. **शिवधाम – शिवधाम- शेतेऽसौ शिवः (उ.को.१.१५३)** से संकेत मिलता है कि यह सूक्ष्मतम पदार्थ सोया हुआ सा रहता है और सारे पदार्थ इसी में जन्म लेते, विकसित होते और अंत में इसमें समा जाते हैं।
2. **रजोयोनि (Rajoguni Cause)** – सृष्टि की प्रारंभिक रजोगुणी प्रवृत्तियाँ इसी कारण रूप पदार्थ में उत्पन्न होती हैं।
3. **सनातन (Everlasting)** – इसका कभी अभाव नहीं हो सकता।
4. **विकार (Transformation)** – यह पदार्थ विकार ग्रहण करके सृष्टि में नाना रूपों में प्रकट होता है। चेतन पदार्थ (ईश्वर और जीवात्मा) विकृत नहीं होते, इसलिए वे सृष्टि का निर्माण नहीं कर सकते।
5. **प्रलय और अप्यय** – नष्ट होने योग्य पदार्थ प्रलय में इसी मूल पदार्थ में मिल जाते हैं। **महर्षि कपिलमुनि** ने इसे ही नाश कहते हुए कहा है- **{“नाशः कारणलयः” सां.द.१.८६(१२१)}**
6. **प्रभव (Origin)** – इसके अनुसार समस्त सृष्टि जिस मूल तत्त्व से उत्पन्न होती है, वह प्रकृति है, जो स्वयं **अव्यक्त (Unmanifest)**, **अनादि (Beginningless)** और **अविनाशी (Indestructible)** है।

श्लोक सर्वाणि तत्र लीयन्ते सर्गकाले च तत्र वै। तिष्ठन्ति सन्निविष्टानि तद्विपर्ययोऽव्ययम्॥ न जायते न वर्धते न क्षयं याति न नश्यति। (शिव पुराण, उमा संहिता, अध्याय ३६, श्लोक ३०)

का आशय है कि सृष्टि के प्रारम्भ में सभी तत्व उसी में प्रकट होते हैं और प्रलय के समय पुनः उसी में **लीन (Dissolved)** हो जाते हैं। इस प्रकार यह प्रकृति समस्त जगत का **आधार (Substratum)** होते हुए भी स्वयं जन्म, वृद्धि, क्षय और नाश जैसे परिवर्तनों से परे रहती है। यही कारण है कि इसे **नित्य (Eternal)**, **अपरिवर्तनशील (Immutable)** तथा **सर्वव्यापी (Omnipresent)** कहा गया है। जीवात्मा भी इसी प्रकृति के माध्यम से संसार का अनुभव (**भोग – Experience**) करती है और अंततः इसी के अतिक्रमण द्वारा मोक्ष (**Liberation**) को प्राप्त होती है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि प्रकृति न केवल सृष्टि का कारण है, बल्कि आध्यात्मिक उन्नति की प्रक्रिया में भी एक अनिवार्य तत्त्व है।

7. **अनुद्रिक्त / अनून / अकम्प / अचल / ध्रुव** – यह पदार्थ नित्य स्थिर, बिना गति और कम्पन, हमेशा संपूर्ण और अव्यय है।
8. **सत + असत (Existence + Non-Existence)** – प्रलय में अविद्यमान के समान रहते हुए भी सत्तावान् है।
9. **त्रिगुण (Three Qualities)** – सत्व, रजस् और तमस् की साम्यावस्था में रहता है।
10. **अविद्या (Ignorance)** – महर्षि वसिष्ठ के अनुसार अव्यक्त प्रकृति को **अविद्या** कहा गया है; यह न जानने योग्य, न प्रयोग योग्य, न विचार योग्य है। महा. शा. प., मोक्षधर्म पर्व के ३०७ वें अध्याय के द्वितीय श्लोक में महर्षि वसिष्ठ ने अव्यक्त प्रकृति को अविद्या भी कहा है।

वैदिक विज्ञान और आधुनिक विज्ञान का दृष्टिकोण:

1. आधुनिक **विज्ञान (Science)** सृष्टि की उत्पत्ति के बारे में विभिन्न सिद्धांत देता है, पर **मूल कारण और प्रारंभिक अवस्था** नहीं जानता।
2. विज्ञान केवल **प्रयोगों (Experiments)** पर निर्भर करता है और गहन **तर्क (Reasoning)** का पर्याप्त उपयोग नहीं करता।
3. वैदिक दृष्टि से, **प्रलय काल में मूल पदार्थ** अत्यंत **सूक्ष्म, निष्क्रिय, समान और ऊर्जा-रहित** अवस्था में फैला रहता है। उस समय **ऊर्जा, प्रकाश, ताप, द्रव्यमान, गति, बल, आकाश, ध्वनि और सूक्ष्म कम्पन** कुछ भी विद्यमान नहीं होता।

इस बात का संकेत **भगवान् मनु** ने भी किया है-

“आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् ।

अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः ।” (मनु. १.५)

वेद ने कहा-

“गीर्णं भुवनं तमसापगूळम् । (ऋ. १०. ८८. २)

“तम आसीत्तमसागूळहमग्रे ऽप्रकेतं सलिलम्...” (ऋ. १०. १२६. ३)

वेदों के अनुसार सृष्टि के **आद्यकाल** में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड **तमसा आच्छादित** था एक ऐसा **गहन अंधकार** जिसमें न **दृश्यता** थी, न **विभेदन**। उपलब्ध **वैदिक प्रमाण** यह संकेत करते हैं कि उस मूल **उपादान** का स्वरूप **अव्यक्त, अनिर्वचनीय** तथा **अप्रत्यक्ष** था, जिसे न तो **इन्द्रियबोध** से ग्रहण किया जा सकता था और न ही **तर्क-वितर्क (logical inference)** द्वारा परिभाषित किया जा सकता था। उस अवस्था में सम्पूर्ण जगत मानो **अव्यक्त प्रकृति (Unmanifested Prakriti)** में विलीन होकर एक **आदिम अंधकार (primordial darkness)** में स्थित था। पदार्थ का अस्तित्व तब भी **निहित (latent)** रूप में था, किन्तु उसमें किसी प्रकार की **क्रिया (activity)**, **शक्ति (energy)**, **बल (force)** या **गति**

(**motion**) का लेशमात्र भी अभाव था। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि **प्रलयावस्था** में आधुनिक विज्ञान द्वारा स्वीकृत **द्रव्यमान (mass)**, **ऊर्जा (energy)**, **आकाश-तत्त्व (space-time continuum)** अथवा **मौलिक बल (fundamental forces)** पूर्णतः **अप्रकट** रहते हैं। इस अवस्था में न तो प्राथमिक कण (**Elementary Particles**), न क्वांटा (**Quanta**), न डार्क मैटर (**Dark Matter**) और न डार्क एनर्जी (**Dark Energy**), न ही निर्वात ऊर्जा (**Vacuum Energy**), और न ही कोई अस्तित्व होता है; और जब ये तत्त्व ही अनुपस्थित हों, तो इनके मध्य कार्य करने वाले किसी भी **मूल बल (fundamental interaction)** की कल्पना भी असंगत हो जाती है। परिणामस्वरूप पदार्थ पूर्णतः **निष्क्रिय (inert)** रहता है न **कण (particle)** के रूप में, न **तरंग (wave)** के रूप में। उस समय न **आकाश (space)** होता है, न **वक्रता (curvature)**, और न ही **गुरुत्वाकर्षण** जैसी कोई अवधारणा। तब जो तत्त्व विद्यमान रहता है, वह इन सभी से भी अधिक सूक्ष्म, **अतिसूक्ष्मतम (ultra-subtle)** और **मानवीय बोध** से परे होता है, जिसे केवल **अव्यक्त सत्ता** के रूप में ही संकेतित किया जा सकता है।

इसे वेद में भी “**त्रितस्य धारया**” (ऋ.६.१०२.३), “**त्रिधातु**” (ऋ. १. १५४.४) कहकर त्रिगुणा ही सिद्ध किया है। ऋग्वेद में “**त्रितस्य धारया**” तथा “**त्रिधातु**” जैसे पदों के माध्यम से यह संकेत दिया गया है कि प्रकृति मूलतः **त्रिगुणात्मक (Three-fold Qualitative)** है, अर्थात् उसमें **सत्त्व (Purity/Balance)**, **रजस् (Activity/Energy)** और **तमस् (Inertia/Darkness)** ये तीनों गुण निहित रहते हैं। इसी तथ्य को महर्षि कपिल ने अपने **सांख्य दर्शन** में स्पष्ट करते हुए कहा “**सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः**” [सां. द.१.२६(६१)] अर्थात् इन तीनों गुणों की **साम्यावस्था (State of Equilibrium)** को ही प्रकृति कहा जाता है। हम सर्वप्रथम ‘**साम्य**’ शब्द पर विचार करते हैं। **साम्यम् = सम + ष्यञ्**

(आऐकोश) (सम= सम् अवैक्लव्ये+अच्- आऐकोश) । यहाँ साम्य (Equilibrium) शब्द अत्यंत महत्वपूर्ण है, जिसका व्युत्पत्तिगत अर्थ अविक्षुब्ध (Undisturbed), निष्क्रिय (Inactive) तथा पूर्ण संतुलित अवस्था से है, जहाँ कोई भी गुण अन्य पर प्रभाव नहीं डालता। इस स्थिति में प्रकृति अप्रकट (Unmanifest) रहती है, क्योंकि गुणों के बीच कोई असंतुलन या विक्षोभ नहीं होता। किंतु जैसे ही इस साम्यावस्था में विक्षेप (Disturbance) उत्पन्न होता है, वैसे ही सृष्टि की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है और यही त्रिगुण विभिन्न रूपों में व्यक्त होकर समस्त जगत का निर्माण करते हैं। अतः स्पष्ट है कि प्रकृति की मूल अवस्था पूर्ण संतुलन की अवस्था है, जो सृष्टि के पूर्व की निष्प्रपंच (Non-manifested Cosmos) स्थिति को सूचित करती है।

अध्याय 2

संस्कृत: ध्वनि, चेतना और विज्ञान का अद्वितीय संगम

धर्म और परंपरा पर चर्चा करते हुए हम अक्सर सुनते हैं कि हमारे पितामह या नाना संस्कृत के **विद्वान (Scholars)** थे, जो अत्यंत **दिव्यता (Divinity)** के साथ मंत्रोच्चार करते थे। हमने स्वयं भी **सोशल मीडिया (Social Media)** पर अनेक लोगों को यह कहते हुए देखा और पढ़ा है, जिससे हमारे मन में यह प्रश्न उठा कि संस्कृत भाषा के **पठन-पाठन (Study and Teaching)** की **स्वाभाविक (Natural)** परंपरा अचानक क्यों थम गई।

दो-तीन पीढ़ियों पहले ही यह परंपरा क्यों रुक गई? इसका एक **सर्वस्वीकृत (Widely Accepted)** और सरल उत्तर यह दिया जाता है कि हम अंग्रेज़ी पढ़ने लगे। अंग्रेज़ी की **लोकप्रियता (Popularity)** के सामने संस्कृत का **अस्तित्व (Existence)** धीरे-धीरे समाप्त होने लगा। कुछ तथाकथित **प्रगतिशील (Progressive)** लोगों ने तो इसे “मृत भाषा” तक कह दिया। जब संस्कृत को “मृत भाषा” कहा गया, तब केवल उसके विकास के रुकने की बात नहीं हुई, बल्कि उसकी हजारों वर्षों की **सतत (Continuous)** **नवीकरणीय (Renewable)** शक्ति को भी नकार दिया गया।

हमें यह भी याद आता है कि विद्यालयों में संस्कृत के **आचार्यों (Teachers/Scholars)** का सम्मान धीरे-धीरे कम होता गया। कुछ शिक्षक अत्यंत **सम्मानित (Respected)** थे, किंतु अधिकांश की स्थिति **उपेक्षित (Neglected)** थी। इसका एक कारण यह था कि हमने स्वयं

अपनी महान भाषा को महत्व देना बंद कर दिया, और अंग्रेज़ी के **आकर्षण (Attraction)** ने हमें संस्कृत से दूर कर दिया। दूसरा कारण स्वयं संस्कृत पढ़ाने वाले शिक्षक भी थे, जिनमें से कई ने अपनी **गरिमा (Dignity)** को बनाए नहीं रखा। व्यक्ति अपने **व्यक्तित्व (Personality)** का निर्माण स्वयं करता है, वह चाहे तो उसे ऊँचा उठा सकता है या गिरा सकता है।

एक प्रकार की **विचित्र हीनता भावना** ने इस भाषा को और कमजोर कर दिया, जिससे संस्कृत और उसके शिक्षक समाज से कटते चले गए। औपनिवेशिक काल में **थॉमस बैबिंगटन मैकाले (Thomas Babington Macaulay)** की शिक्षा नीति ने भारतीय पारंपरिक शिक्षा प्रणाली को **परिवर्तित (transformed)** कर अंग्रेज़ी माध्यम को प्रमुखता दी, जिससे संस्कृत जैसी भाषाएँ **उपेक्षित (neglected)** होने लगीं। पिछले 40-50 वर्षों का कालखंड संस्कृत के लिए अत्यंत **निर्णायक** रहा। यही वह समय था जिसे कुछ लोग **“नेहरूवियन युग”** कहते हैं, जब भारतीय समाज को अपनी जड़ों से दूर करने के प्रयास हुए। इसके अतिरिक्त, संयुक्त परिवार व्यवस्था के विघटन से वह पारिवारिक **संप्रेषण (transmission)** भी बाधित हुआ, जिसके माध्यम से श्लोक, मंत्र और संस्कार पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होते थे। परिणामस्वरूप, संस्कृत का स्वाभाविक प्रवाह **अवरोधित (obstructed)** हो गया।

समय के साथ एक सकारात्मक परिवर्तन स्पष्ट रूप से **दृष्टिगोचर (Visible)** हो रहा है, संस्कृत को पुनः **नवजीवन (Revival)** प्राप्त हो रहा है। आज अनेक लोग इसके अध्ययन के प्रति **आकर्षित (Attracted)** हो रहे हैं, यहाँ तक कि आधुनिक तकनीकी संस्थानों के छात्र भी इसमें गहरी **रुचि (Interest)** दिखा रहे हैं। यह परिदृश्य इस बात का संकेत है कि संस्कृत की धारा पुनः **प्रवाहित (Flowing)** होकर नई ज्ञान-धाराओं से **समृद्ध (Enriched)** होती जा रही है। संस्कृत जैसी **उदार (Liberal)** और

व्यापक (Vast) भाषा के संदर्भ में यह प्रश्न उठता है कि इससे अधिक **मुक्त (Free)** और व्यापक भाषा और कौन हो सकती है? इस संसार की अनेक **धवल (Pure)**, **निर्मल (Spotless)** और **उदात्त (Noble)** सूक्तियाँ संस्कृत में ही रची गई हैं, जो इसकी **महानता (Greatness)** को प्रमाणित करती हैं। अंततः यह हम पर निर्भर करता है कि हम अपनी इस **अमूल्य (Priceless)** भाषाई **विरासत (Heritage)** को समझें, अपनाएँ और उसे आगे बढ़ाएँ। संस्कृत भाषा को प्रायः **जटिलता (Complexity)** के कारण कठिन माना जाता है, किंतु यह कठिनाई अधिकतर हमारे **दृष्टिकोण (Approach)** में निहित होती है। वास्तव में संस्कृत केवल **संप्रेषण (Communication)** का माध्यम नहीं, बल्कि गहन **अंतरानुभूति (Inner Experience)** की **अभिव्यक्ति (Expression)** का साधन है। यह भाषा मानव की **आंतरिक चेतना (Inner Consciousness)** से उत्पन्न **सृजन (Creation)** की प्रक्रिया को दर्शाती है, जहाँ शब्द स्वतः **प्रकट (Manifest)** होते प्रतीत होते हैं। इसी कारण संस्कृत के अनेक शब्द **स्वयंभू (Self-manifested)** लगते हैं, मानो वे उच्च चेतना से स्वाभाविक रूप से **उद्भूत (Emerged)** हुए हों।

2.1 “ऋषियों की लैंग्वेज लैब: संस्कृत का वैज्ञानिक चमत्कार”

संस्कृत केवल भाषा नहीं, बल्कि **वाक्-शक्ति (Creative Word Power)** की उपासना है, जहाँ शब्द भीतर से स्वतः प्रकट होते हैं और गहन **अंतरचेतना (Inner Consciousness)** से उद्भूत होते हैं। ‘उच्चारण’ को केवल ध्वनि न मानकर **उत्थान (Elevation)** की प्रक्रिया समझना चाहिए, क्योंकि यह आत्मा को ऊर्ध्वगामी बनाने वाली **आध्यात्मिक प्रक्रिया (Spiritual Process)** है, जो वास्तविक **उत्कर्ष (Inner Upliftment)** का अनुभव कराती है। आधुनिक **मनोविज्ञान (Psychology)** जहाँ बाह्य स्तर तक सीमित है, वहीं संस्कृत का तत्त्वज्ञान **ब्रह्मविद्या (Science of Absolute Consciousness)** के माध्यम से

चेतना की गहराइयों को स्पर्श करता है। इसके शब्दों की **निरुक्ति (Etymological Origin)** और **धातु (Root Essence)** को समझने पर अर्थ स्वतः स्पष्ट हो जाता है, जिससे यह भाषा केवल संप्रेषण नहीं, बल्कि गहन **स्व-अनुसंधान (Self-Exploration)**, चेतना के **परिष्कार (Refinement)** और जीवन के **संस्कार (Cultivation)** का माध्यम बन जाती है।

2.2 मंत्र, स्पन्दन और ध्वनि ऊर्जा का सिद्धांत

संस्कृत को केवल भाषा मानना उसकी वास्तविक **सामर्थ्य (Potency)** को सीमित कर देता है, क्योंकि इसके मंत्रोच्चार से उत्पन्न **आन्तरिक उद्बोधन (Inner Awakening)** ध्वनि की गहन **स्पन्दनात्मक शक्ति (Vibrational Energy)** का परिणाम होता है। इसकी ध्वनियाँ **नाद-ब्रह्म (Cosmic Sound Principle)** की अभिव्यक्ति हैं, जो मन, प्राण और चित्त को प्रभावित कर **प्रसादभाव (Serene Elevation)** उत्पन्न करती हैं। संस्कृत की **ध्वन्यात्मक पवित्रता (Phonetic Purity)** और **लयात्मक संरचना (Rhythmic Structure)** ऐसी होती है कि वह बिना अर्थ समझे भी मन को शांत और एकाग्र कर देती है। इसकी **संरचनात्मक कोमलता (Structural Grace)** और **उच्चारण-शुद्धि (Articulatory Clarity)** भाषा में एक अंतर्निहित **शांत-संवेग (Calm Resonance)** उत्पन्न करती है, जो चेतना को परिष्कृत करती है। संस्कृत में शब्द और अर्थ का **नित्य-संबद्धता (Intrinsic Correlation)** होता है, जहाँ प्रत्येक अक्षर एक **बीज-तत्त्व (Seed Principle)** के रूप में ऊर्जा संचित करता है, और मंत्र के रूप में संयोजन होने पर **चेतन-उत्थान (Elevation of Consciousness)** का अनुभव कराता है।

संस्कृत की वास्तविक शक्ति केवल शब्दार्थ में नहीं, बल्कि उसकी **नादात्मक गाम्भीर्य (Sonic Gravity)**, **लयात्मक समन्वय**

(Rhythmic Harmony) और **आध्यात्मिक स्पन्दन (Spiritual Resonance)** में निहित है, जो उसे विशिष्ट बनाती है। वैदिक परंपरा में ज्ञान को **प्रकट (Revealed)** और भाषा को **अन्तःप्रकाशित (Inwardly Revealed)** माना गया है, जहाँ प्रत्येक ध्वनि में **बीजात्मक शक्ति (Seed-Potential Energy)** संचित होती है। ध्वनि और अर्थ का संबंध **नित्य-संबद्धता (Intrinsic Correlation)** के रूप में देखा जाता है, जिसे तंत्र में **मात्रा-विज्ञान (Science of Phonetic Measure)** कहा गया है। संस्कृत को **चेतना-विज्ञान (Science of Consciousness)** का साधन माना गया है, जहाँ ज्ञान **अंतरानुभूति (Inner Realization)** और **अंतर्दृष्टि (Intuitive Insight)** से प्राप्त होता है, जबकि सृष्टि का मूल आधार **स्पन्दन (Cosmic Vibration)** और **नाद-ब्रह्म (Cosmic Sound Principle)** है। मंत्रों की ध्वनियाँ विशेष **अनुनादी ऊर्जा (Resonant Energy)** उत्पन्न करती हैं, जो **आवृत्ति (Frequency)**, **तरंगदैर्घ्य (Wavelength)** और **आयाम (Amplitude)** के माध्यम से प्रभाव डालती हैं। मानव शरीर एक **जैव-विद्युत तंत्र (Bioelectrical System)** है, जिसमें मंत्रोच्चार से **तंत्रिकीय उद्दीपन (Neural Stimulation)** होता है और मस्तिष्क में **अल्फा तरंगें (Alpha Brain Waves)** सक्रिय होती हैं। यह प्रक्रिया **अनुनाद सिद्धांत (Principle of Resonance)** पर आधारित है, जिसके द्वारा ध्वनि शरीर और वातावरण में **ऊर्जा क्षेत्र (Energy Field)** का निर्माण कर मानसिक, शारीरिक और चेतनात्मक स्तर पर परिवर्तन उत्पन्न कर सकती है। वैज्ञानिक शोधों के अनुसार, इन वर्णों का शुद्ध उच्चारण मस्तिष्क के विशिष्ट केंद्रों को सक्रिय करता है, जिससे **एकाग्रता और याददाश्त (Memory)** में सुधार होता है। यह व्यवस्था दर्शाती है कि प्राचीन वैयाकरणों को ध्वनिकी (Acoustics) और शरीर विज्ञान की कितनी गहरी समझ थी।

2.3 “पाणिनि व्याकरण का कोड: दुनिया का सबसे पुराना प्रोग्रामिंग सिस्टम”

आधुनिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में संस्कृत व्याकरण को एक **एल्गोरिथमिक भाषा-जनन मॉडल (Algorithmic Language Generation Model)** के रूप में देखा जा सकता है, जहाँ नियमों की क्रमबद्ध प्रक्रिया से भाषा का निर्माण होता है। **पाणिनीय व्याकरण (Paninian Grammar)** विशेषतः **अष्टाध्यायी (Aṣṭādhyāyī)** के माध्यम से एक उन्नत **सूत्रात्मक व्याकरण प्रणाली (Algorithmic Grammar Framework)** प्रस्तुत करता है, जो **जनरेटिव व्याकरण (Generative Grammar)** और **संगणकीय एल्गोरिथ्म (Computational Algorithms)** से अत्यंत साम्य रखता है। संस्कृत की नियमबद्ध संरचना (**Rule-Based Structure**) और **औपचारिक व्याकरणिक प्रणाली (Formal Grammatical System)** इसे **प्राकृतिक भाषा संसाधन (Natural Language Processing – NLP)** के लिए अत्यंत उपयुक्त बनाती है। इसकी **रूपविज्ञान (Morphology)**, **वाक्यविन्यास (Syntax)** और **अर्थविज्ञान (Semantics)** आधारित संरचना शब्द-विश्लेषण और निर्माण को सरल करती है, जबकि **संधि-व्यवस्था (Phonological Transformation System)** और **विभक्ति-प्रणाली (Case-Based System)** कंप्यूटर के लिए सटीक **वाक्य विश्लेषण (Syntactic Parsing)** को संभव बनाती हैं। इस प्रकार संस्कृत न केवल एक भाषा है, बल्कि एक उन्नत **संगणकीय भाषिक मॉडल (Computational Linguistic Model)** है, जो **कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence – AI)**, **मशीन अनुवाद (Machine Translation)** और भविष्य की **मानव-कंप्यूटर संवाद प्रणालियों (Human-Computer Interaction Systems)** के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

2.4 “संस्कृत व्याकरण: कंप्यूटर से भी ज़्यादा लॉजिकल भाषा”

संस्कृत की शब्द-निर्माण प्रक्रिया एक अत्यंत सुव्यवस्थित **ध्वन्यात्मक-व्याकरणिक प्रणाली (Phonological-Grammatical System)** पर आधारित है, जहाँ **धातु-सिद्धांत (Root-based Morphological Principle)** के अनुसार प्रत्येक शब्द एक मूल **धातु (Verbal Root)** से उत्पन्न होकर अर्थ के सूक्ष्म **बीज (Semantic Seed)** को धारण करता है। इसमें **संधि (Euphonic Combination)** ध्वनियों की **ध्वन्यात्मक परिवर्तन (Phonetic Transformation)** के माध्यम से **ध्वनि-ऊर्जा की प्रवाहशीलता (Acoustic Continuity)** बनाए रखती है, जबकि **समास (Compound Formation)** अर्थ-संपीड़न (Semantic Compression) द्वारा भाषा की **सूचनात्मक दक्षता (Informational Efficiency)** को बढ़ाता है। दार्शनिक दृष्टि से यह सम्पूर्ण प्रक्रिया **स्पन्द (Primordial Vibration)** और **चेतन-स्पंदन (Conscious Vibration)** पर आधारित है, जहाँ ध्वनि की **नित्यत्व (Eternal Continuity)** चेतना को प्रभावित करती है। यहाँ शब्द और अर्थ का संबंध **अभिन्नता (Inseparability)** और **एकीकरण (Unified at the Source)** के रूप में देखा जाता है, जिससे भाषा केवल संप्रेषण नहीं, बल्कि **चेतना-रूपिणी शक्ति (Consciousness-Embodied Power)** बन जाती है, जहाँ ध्वनि सृष्टि का बीज और अर्थ उसका प्रस्फुटन होता है।

2.5 “संस्कृत वर्णमाला: ब्रह्माण्ड की सबसे पुरानी साउंड टेक्नोलॉजी”

जब हम **‘क’** का उच्चारण करते हैं, तो उसमें न्यूनतम वायु-निर्गमन (Minimum Air Release) होता है, जिससे एक प्रकार का **संकोच (Contraction)** और **एकाग्रता (Concentration)** का अनुभव होता

है। यह ध्वनि मानो चेतना को समेटकर एक बिंदु पर केंद्रित कर देती है। सृष्टि का कोई भी निर्माण बिना **संकेंद्रित शक्ति (Concentrated Power)** के संभव नहीं; इसलिए 'क' से प्रारंभ होने वाले शब्द **कृति (Creation)**, **क्रिया (Action)**, **कर्तृत्व (Agency)**, **कर्म (Action Principle)**, **केंद्र (Center)** सभी में सृजन और क्रियाशीलता का भाव निहित है। यहाँ ध्वनि और अर्थ का संबंध केवल संयोग नहीं, बल्कि एक प्रकार का **नित्य-संबंध (Eternal Connection)** माना गया है। संस्कृत परंपरा के अनुसार शब्द और अर्थ का संबंध आरोपित (Imposed) नहीं, बल्कि स्वाभाविक और अंतर्निहित है।

जब हम 'ख' का उच्चारण करते हैं, तो उसमें अधिक वायु-प्रवाह और **विस्तार (Expansion)** का अनुभव होता है। 'ख' से जुड़े शब्द **खुलना (Opening)**, **खिलना (Blooming)**, **खगोल (Cosmic Space)** आकाशीय व्यापकता और प्रसार का बोध कराते हैं। ध्वनिविज्ञान की दृष्टि से 'क' और 'ख' दोनों कण्ठ्य (Guttural) वर्ण हैं, परंतु 'ख' एक **महाप्राण (Aspirated Consonant)** है और 'क' **अल्पप्राण (Unaspirated Consonant)**। भारतीय परंपरा इस भिन्नता को केवल ध्वनि-तकनीक नहीं, बल्कि चेतना की **संकुचन-विस्तार प्रक्रिया (Process of Contraction and Expansion)** का प्रतीक मानती है।

इसी प्रकार "ग" के उच्चारण में एक प्रकार की **मृदुता (Soft Resonance)** आती है, इसलिए 'गति (Movement)', 'गीत (Melodic Expression)' जैसे शब्दों में **सौम्यता (Softness)** और **लयात्मकता (Rhythmic Flow)** का अनुभव होता है। इस प्रकार ध्वनि के स्तर पर जो **स्पन्दन (Vibration)** उत्पन्न होता है, वही अर्थ-निर्माण की दिशा को प्रभावित करता है। दो या तीन अक्षरों के संयोग से बना शब्द उन सभी अक्षरों के गुणों का **संयुक्त-प्रभाव (Composite Effect)** प्रकट करता है, जिससे एक विशिष्ट अर्थ उद्भासित होता है।

संस्कृत वर्णमाला की **वैज्ञानिक महत्ता (Scientific Significance)** उसके ध्वन्यात्मक (Phonetic) और शरीर-रचनात्मक (Anatomical) तर्क में निहित है। इसके मुख्य बिंदु निम्नलिखित हैं:

क्रमबद्ध विकास (Sequential Progression)

संस्कृत वर्णमाला का क्रम कण्ठ्य (क-वर्ग), तालव्य (च-वर्ग), मूर्धन्य (ट-वर्ग), दन्त्य (त-वर्ग), ओष्ठ्य (प-वर्ग) मानव-वाक्-यंत्र की शारीरिक संरचना (Physiological Structure) के अनुरूप है। यह क्रम वाक्-यंत्र के भीतर से बाहर की ओर बढ़ता है। यह एक प्रकार का आंतरिक से बाह्य अवतरण (Inner to Outer Manifestation) है।

1. **कण्ठ्य (Gutturals):** ध्वनि का आरम्भ गले (कण्ठ) से होता है **क, ख, ग, घ, ङ**।
2. **तालव्य (Palatals):** कण्ठ से थोड़ा ऊपर, तालु (मुख की छत का पिछला हिस्सा) का प्रयोग **च, छ, ज, झ, ञ**।
3. **मूर्धन्य (Cerebrals/Retroflex):** जीभ जब तालु के सबसे ऊँचे और कठोर भाग (मूर्धा) को छूती है **ट, ठ, ड, ढ, ण**।
4. **दन्त्य (Dentals):** जीभ जब ऊपरी दांतों के पिछले हिस्से से टकराती है **त, थ, द, ध, न**।
5. **ओष्ठ्य (Labials):** वाक्-यंत्र का अंतिम द्वार यानी होंठ **प, फ, ब, भ, म**।

प्रत्याहार और सूत्र (Algorithmic Structure): महर्षि पाणिनि ने अष्टाध्यायी में **माहेश्वर सूत्रों** के माध्यम से वर्णों को इस प्रकार व्यवस्थित किया है कि उन्हें गणितीय कोड (प्रत्याहार) की तरह उपयोग किया जा सके। इसी कारण इसे आधुनिक कंप्यूटर प्रोग्रामिंग और AI के लिए सबसे उपयुक्त भाषा माना जाता है।

अब प्रश्न आता है कि इसे “वर्ण-समूह” या “वर्ण-गुच्छ” क्यों नहीं कहा गया, “वर्णमाला” ही क्यों? “माला” शब्द अपने भीतर क्रमबद्धता (systematic order), सामंजस्य (harmony) और लयात्मकता (rhythmic coherence) का बोध कराता है। माला में पुष्प केवल संकलित नहीं होते, बल्कि एक सूत्र में पिरोए जाते हैं। इसी प्रकार संस्कृत वर्ण एक सूत्रबद्ध अनुक्रम (threaded sequence) में व्यवस्थित हैं। यह मात्र ध्वनियों का संकलन नहीं, बल्कि एक युक्तिसंगत प्रणाली (logical system) है। अंग्रेज़ी के “अल्फाबेट” में ए, बी, सी का क्रम ऐतिहासिक विकास का परिणाम है, परंतु संस्कृत में अ, आ, इ, ई का क्रम ध्वनि-दीर्घता और स्वर-गुण पर आधारित है, तथा क, ख, ग, घ, ङ का क्रम उच्चारण-स्थान और महाप्राण-अल्पप्राण भेद पर आधारित है। यह व्यवस्था एक गहन ध्वनिवैज्ञानिक तर्कसंगति (phonological rationale) को प्रकट करती है।

“वर्ण” का मज़ेदार विज्ञान :- “वर्ण” शब्द क्यों कहा जाता है यह प्रश्न हमें भाषा के गहन धातुवैज्ञानिक विश्लेषण (etymological analysis) और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (inner insight) की ओर ले जाता है। “वर्ण” धातु “वृ” से संबंधित माना जाता है, जिसका अर्थ है “वर्णयति” अर्थात् अभिव्यक्त करना, विवरण देना या प्रकाशित करना। इस दृष्टि से वर्ण वह मूल इकाई है जिसके माध्यम से हम अपने अंतरानुभव, उपलब्धियाँ और जीवन-वृत्त को व्यक्त करते हैं, इसे एक प्रकार की अभिव्यंजना-प्रक्रिया (process of expression) कहा जा सकता है। भाषा के माध्यम से जो भी आत्मानुभूति (self-experience) या विचार बाहर आता है, वह वर्णों के सहारे ही मूर्त रूप लेता है। अतः वर्ण भाषा का मूलभूत उपादान (fundamental constituent) है, जिसके बिना कोई भी कथन संभव नहीं।

किन्तु "वर्ण" का एक अन्य अर्थ "रंग" भी है। यही अर्थ हमें एक सूक्ष्म **तत्त्वचिन्तन (metaphysical reflection)** की ओर ले जाता है। प्राचीन ऋषियों ने अनुभव किया कि प्रत्येक ध्वनि का एक विशिष्ट **स्पंदनात्मक स्वरूप (vibrational form)** होता है, और वह स्पंदन चेतना में एक विशेष "रंग" के रूप में अनुभूत हो सकता है। जैसे सूर्य का प्रकाश मूलतः वर्णहीन प्रतीत होता है, परंतु विभिन्न माध्यमों से गुजरते समय वह सप्तवर्णों में विभक्त हो जाता है, उसी प्रकार वाणी भी अपने सूक्ष्मतम स्तर से स्थूलतम स्तर तक आते-आते विविध "वर्णों" को धारण करती है। यह दृष्टि केवल काव्यात्मक कल्पना नहीं, बल्कि एक गहन **अनुभवजन्य साक्षात्कार (experiential realization)** का परिणाम है।

संस्कृत और अंग्रेज़ी वाक्य संरचना में दार्शनिक अंतर

आइए अंग्रेज़ी जैसी एक लोकप्रिय भाषा के वाक्य की तुलना संस्कृत भाषा से करने के लिए एक उदाहरण लेते हैं। "I love you" को यदि अंग्रेज़ी व्याकरण की दृष्टि से देखें तो "you" एक **कर्म (Object)** है, अर्थात् प्रेम का लक्ष्य, जिस पर क्रिया संपन्न हो रही है। यह संरचना **कर्तृ-कर्म-क्रिया (Subject-Object-Verb Structure)** की पारंपरिक रूपरेखा का अनुसरण करती है। परंतु संस्कृत की व्याकरणिक एवं दार्शनिक चेतना इस संरचना को भिन्न दृष्टि से देखती है। यहाँ प्रेम को किसी बाह्य वस्तु पर आरोपित (Imposed) भाव नहीं माना जाता, बल्कि एक **अंतर्निहित सत्ता (Inherent Principle)** के रूप में समझा जाता है। इसीलिए संस्कृत में "अहं त्वां स्नेहामि" जैसे वाक्य को द्वितीया विभक्ति (Accusative Case) में स्वीकार नहीं किया जाता, प्रेम को किसी पर क्रिया की भाँति आरोपित करना इसकी मूल दार्शनिक संरचना के अनुकूल नहीं है।

संस्कृत में उपयुक्त अभिव्यक्ति सप्तमी विभक्ति (Locative Case) में व्यक्त होती है, अर्थात् "अहं त्वयि प्रेम पश्यामि" (I behold love in you)। यहाँ "त्वयि" (in you) का प्रयोग प्रेम को किसी के भीतर अवस्थित

सार्वभौमिक तत्व के रूप में स्थापित करता है। यह दृष्टिकोण प्रेम को **वस्तुकरण (Objectification)** से मुक्त कर उसे **अद्वैत संबंध (Non-dual Relationality)** में प्रतिष्ठित करता है। प्रेम यहाँ व्यक्तिगत स्वामित्व नहीं, बल्कि एक **सार्वत्रिक चेतना-तत्त्व (Universal Conscious Principle)** है, जो सभी में निहित है और जिसे जागरूकता के स्तर के अनुसार अनुभव किया जाता है।

इसी प्रकार श्रद्धा की अवधारणा को भी समझा जा सकता है। भगवद्गीता में कहा गया है **“श्रद्धामयोऽयं पुरुषः”** (The individual is constituted of faith)। इसका तात्पर्य यह नहीं कि श्रद्धा बाहर से आरोपित होती है, बल्कि वह प्रत्येक चेतना में अंतर्निहित है। व्यक्ति जितनी मात्रा में श्रद्धा का **अभिज्ञान (Cognitive Realization)** करता है, उतना ही वह श्रद्धावान् प्रतीत होता है। यह संबंध उसी प्रकार है जैसे समुद्र से जल लेने के लिए पात्र की क्षमता सीमित हो समुद्र अपरिमित है, पर ग्रहण क्षमता भिन्न-भिन्न।

अतः संस्कृत की व्याकरणिक संरचना केवल भाषिक नियमों का अनुशासन नहीं, बल्कि एक गहन **दार्शनिक प्रतिमान (Philosophical Paradigm)** को अभिव्यक्त करती है। यहाँ विभक्तियाँ मात्र कारक-चिह्न (Case Markers) नहीं, बल्कि चेतना के संबंधों की सूक्ष्म अभिव्यक्ति हैं। इस प्रकार भाषा केवल विचार-विनिमय (Exchange of Ideas) का साधन नहीं रहती, वह संबंधों, अनुभूतियों और अस्तित्व की संरचना को प्रकट करने का माध्यम बन जाती है।

2.6 “चेतना, विचार और ध्वनि: वाणी के चार स्तरों का रहस्य”

वाणी के चार स्तर, **परा (transcendental speech)**, **पश्यन्ती (visionary stage of speech)**, **मध्यमा (mental articulation)** और **वैखरी (gross articulated speech)**, इस प्रक्रिया को स्पष्ट करते हैं। वाणी के चार स्तर को यदि हम केवल दार्शनिक सिद्धांत मान लें तो वे

दूर के और अमूर्त प्रतीत होते हैं। परंतु वास्तव में यह प्रक्रिया हमारे दैनिक जीवन में निरंतर घटित होती रहती है। कुछ साधारण उदाहरणों से इसे समझा जा सकता है।

पहला उदाहरण: प्यास लगना और “पानी” कहना मान लीजिए आपको अचानक प्यास लगी। अभी आपने कुछ कहा नहीं है। भीतर एक अस्पष्ट-सी अनुभूति उठी, यह शुद्ध अनुभूति, जिसमें शब्द नहीं हैं, केवल एक आंतरिक स्पंदन है, यह **परा (transcendental speech)** की अवस्था है। इसके बाद भीतर एक स्पष्ट बोध होता है, “मुझे पानी चाहिए।” अभी शब्द मुख से नहीं निकले, पर एक स्पष्ट छवि और भाव बन चुका है। यह अवस्था **पश्यन्ती (visionary stage)** है, जहाँ विचार रूप लेने लगता है। फिर मन के भीतर आप वाक्य बनाते हैं, “मुझे पानी दो” या “मैं पानी पी लूँ।” यह मानसिक वाक्य-निर्माण **मध्यमा (mental articulation)** है। अंततः जब आप वास्तव में बोलते हैं, “मुझे पानी दीजिए”, तो ध्वनि बाहर आती है। यही **वैखरी (gross articulated speech)** है।

दूसरा उदाहरण: कविता या भाषण देना एक कवि के भीतर अचानक एक गहरी अनुभूति उठती है, कोई सौंदर्य, कोई वेदना, कोई प्रेरणा। यह अभी शब्दरहित है, यह **परा** है। फिर उस अनुभूति से कुछ चित्र, कुछ प्रतीक उभरते हैं, यह **पश्यन्ती** है। फिर कवि मन ही मन पंक्तियाँ गढ़ता है, शब्दों का चयन करता है, यह **मध्यमा** है। अंततः जब वह कविता लिखता या सुनाता है, वह **वैखरी** है।

“परा” वाणी की वह अवस्था है जो पूर्णतः अव्यक्त और **निशब्द चेतना (soundless consciousness)** में स्थित है। इसे वाणी का **परमावस्था (absolute state)** कहा गया है। वहाँ ध्वनि अभी भौतिक कंपन के रूप में प्रकट नहीं हुई है, वह केवल संभाव्यता के रूप में विद्यमान है। जब यह चेतना में **“बहु स्याम्”** की इच्छा से अवतरित होती है, तब “पश्यन्ती”

अवस्था में अनंत संभावनाओं का अवलोकन होता है यह एक प्रकार की **सृजनात्मक दृष्टि (creative vision)** है। उसके पश्चात “मध्यमा” स्तर पर वह विशेष अर्थ ग्रहण करती है, जहाँ बुद्धि और विज्ञान से उसका संबंध स्थापित होता है, इसे **अर्थ-विशिष्टीकरण (semantic particularization)** कहा जा सकता है। अंततः “वैखरी” स्तर पर वही ध्वनि स्थूल उच्चारण के रूप में प्रकट होती है यह उसका **श्रव्य अभिव्यक्ति-रूप (audible manifestation)** है।

इस अवतरण-प्रक्रिया में जो मूलतः वर्णहीन और निराकार था, वह स्थूल स्तर पर एक विशेष “रंग” ग्रहण करता है। तांत्रिक और वैदिक परंपरा में प्रत्येक वर्ण के साथ एक विशिष्ट रंग, देवता, शक्ति और यहाँ तक कि एक विशिष्ट **ऊर्जात्मक सामर्थ्य (energetic potency)** का भी वर्णन मिलता है। यह संपूर्ण व्यवस्था एक गहन **ध्वनितत्त्व विज्ञान (science of sound principle)** का संकेत करती है, जिसमें ध्वनि केवल संचार का माध्यम नहीं, बल्कि चेतना-परिवर्तन का साधन है।

2.7 “अक्षर का रहस्य: ध्वनि, चेतना और अविनाशी सत्ता”

“अक्षर” शब्द की व्युत्पत्ति अत्यंत गहन **निरुक्ति (Etymological Derivation)** को उद्घाटित करती है। ‘अ’ (निषेध) और ‘क्षर’ (जो क्षयमान हो) के संयोग से बना “अक्षर” उस सत्ता का द्योतक है जो **अविनाशी (Imperishable)** है, जो परिवर्तन और विनाश के पार स्थित है। भारतीय दार्शनिक परंपरा में यह शब्द केवल वर्णमाला के अक्षर के अर्थ में प्रयुक्त नहीं हुआ, बल्कि उसे एक **नित्य तत्त्व (Eternal Principle)** के रूप में प्रतिष्ठित किया गया। **भगवद्गीता** में उद्घोषित वाक्य “अक्षरं ब्रह्म परमम्” इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि अक्षर को स्वयं **परब्रह्म (Supreme Absolute Reality)** के पर्याय के रूप में देखा गया है।

ऋषियों के अनुभव में ध्वनि मात्र क्षणिक वायु-कंपन (Air Vibration) नहीं है, वह एक सूक्ष्म स्पंदनात्मक सत्ता (Vibrational Entity) के रूप में आकाश में स्थित रहती है। भारतीय मीमांसा और व्याकरण परंपरा में "शब्दो नित्यः (Eternality of Sound Principle)" की संकल्पना इसी अनुभव पर आधारित है। यह विचार बताता है कि ध्वनि का मूल तत्त्व नष्ट नहीं होता, बल्कि वह सूक्ष्म आकाशीय स्तर (Subtle Etheric Plane) पर स्थित रहता है। इस अवधारणा को आधुनिक शब्दावली में एक प्रकार की आकाशीय अभिलेख संकल्पना (Akashic Recording Concept) कहा जा सकता है, जहाँ प्रत्येक ध्वनि-स्पंदन सूक्ष्म रूप में संरक्षित रहता है।

आधुनिक भौतिकी में ऊर्जा-संरक्षण सिद्धांत (Law of Conservation of Energy) यह प्रतिपादित करता है कि ऊर्जा न उत्पन्न की जा सकती है, न नष्ट, वह केवल रूपांतरित होती है। भारतीय चिंतन ने इस सिद्धांत को और सूक्ष्म आध्यात्मिक आयाम में अनुभव किया, जहाँ ध्वनि को ऊर्जा का एक विशिष्ट आयाम माना गया। उदाहरणार्थ, जब कोई गीत गाया जाता है, तो वह केवल क्षणिक श्रव्य-अनुभव नहीं रहता, उसकी तरंगें अंतरिक्ष में प्रवाहित होकर व्यापक ऊर्जा-क्षेत्र का अंग बन जाती हैं। रेडियो या उपग्रह (Satellite) प्रसारण के माध्यम से हम विशिष्ट आवृत्ति (particular Frequency) पर ट्यून करके उन तरंगों को पुनः ग्रहण कर सकते हैं, यह आधुनिक तकनीकी उदाहरण उस सूक्ष्म दार्शनिक धारणा का स्थूल रूपक (Concrete Analogy) है।

इस प्रकार "अक्षर" की संकल्पना केवल भाषिक इकाई नहीं, बल्कि एक व्यापक अधिभौतिक प्रतिमान (Metaphysical Paradigm) को व्यक्त करती है, जिसमें ध्वनि, चेतना और अस्तित्व एक अद्वैत-संबंध (Non-dual Ontological Unity) में स्थित हैं। यहाँ भाषा सूचना-प्रेषण

का माध्यम भर नहीं, बल्कि नित्य सत्ता की अभिव्यक्ति का साधन बन जाती है।

व्याकरण की परंपरा में, विशेषतः **पाणिनि** ने वर्णों को **“अक्षर-समाम्नाय”** कहा है। “समाम्नाय” का अर्थ है, परंपरा से प्राप्त और व्यवस्थित रूप में संकलित ज्ञान। यह शब्द एक प्रकार की **परंपरागत संरचनात्मक संहिताकरण (traditional systematic codification)** को इंगित करता है। इससे स्पष्ट होता है कि वर्णमाला केवल भाषा-शिक्षण का उपकरण नहीं, बल्कि एक दीर्घकालिक बौद्धिक और आध्यात्मिक साधना का परिणाम है।

प्राचीन ऋषियों ने प्रत्येक अक्षर को केवल ध्वनि नहीं माना, बल्कि एक **बीजात्मक शक्ति (seed potency)** के रूप में अनुभव किया। प्रत्येक अक्षर के अनेक अर्थ बताए गए हैं, और उन अर्थों का संकलन **“एकाक्षर-कोष”** जैसे ग्रंथों में किया गया। यह दर्शाता है कि वर्णों के भीतर एक गहन **अर्थ-बहुलता (semantic multiplicity)** और **चेतनात्मक आयाम (conscious dimension)** निहित है। अक्षर केवल लिखित चिह्न नहीं, बल्कि एक **रूपांतरणकारी ऊर्जा (transformative energy)** के वाहक माने गए हैं।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि “वर्ण” ध्वनि की पहचान है, जबकि “अक्षर” उस ध्वनि की अविनाशी सत्ता का बोध कराता है। “वर्णमाला” इसलिए कि वे ध्वनियाँ एक **सुसंगठित तंत्र (well-organized system)** में पिरोई गई हैं। जो साधक सजगता और गंभीरता से इस विषय का अध्ययन करता है, उसके लिए यह केवल भाषिक अभ्यास नहीं, बल्कि एक गहन **आध्यात्मिक अन्वेषण (spiritual exploration)** का द्वार बन जाता है, ऐसा अन्वेषण, जिसके रहस्य उद्घाटित करने के लिए एक जीवन भी अल्प प्रतीत हो सकता है।

संज्ञानात्मक तंत्रिका-विज्ञान (Cognitive Neuroscience) के आधुनिक अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि जब मनुष्य किसी लिपि को पढ़ता है, तो मस्तिष्क केवल अक्षरों को नहीं देखता, बल्कि वह उन्हें एक जटिल **दृश्य-संज्ञानात्मक प्रक्रिया (Visual-Cognitive Processing)** के माध्यम से पहचानता है। इस प्रक्रिया में मस्तिष्क का एक विशेष भाग सक्रिय होता है, जिसे **दृश्य शब्द-रूप क्षेत्र (Visual Word Form Area – VWFA)** कहा जाता है। यह क्षेत्र मस्तिष्क के **वेंट्रल ऑक्सिपिटो-टेम्पोरल कॉर्टेक्स (Ventral Occipito-Temporal Cortex)** में स्थित होता है और इसका मुख्य कार्य अक्षरों, शब्दों तथा उनके पैटर्न की त्वरित पहचान करना है। अगर हम इस दिशा में बात करें तो देवनागरी लिपि भारतीय भाषाओं की एक अत्यंत **प्राचीन (Ancient)**, **वैज्ञानिक (Scientific)** और **सुसंगठित (Systematic)** लेखन-पद्धति है, जिसका प्रयोग संस्कृत, हिंदी, मराठी आदि भाषाओं के लेखन में किया जाता है। "देवनागरी" शब्द का अर्थ है **देवों की नगरी (City of the Gods)**, जो इसकी **पवित्रता (Sacredness)** और **उच्चता (Sublimity)** को दर्शाता है। जब कोई व्यक्ति देवनागरी जैसी संरचित लिपि को पढ़ता है, तो यह क्षेत्र अक्षरों की आकृतियों, रेखाओं और वक्रों को तुरंत पहचानकर उन्हें ध्वनि और अर्थ से जोड़ देता है।

देवनागरी लिपि की संरचना इस दृष्टि से अत्यंत वैज्ञानिक मानी जाती है, क्योंकि इसमें अक्षरों का निर्माण स्पष्ट **रेखीय संरचनाओं (Linear Structures)**, **वक्र रेखाओं (Curvilinear Forms)** और **संतुलित ज्यामितीय आकृतियों (Balanced Geometric Shapes)** के आधार पर किया गया है। आधुनिक **दृश्य-ग्रहण सिद्धांत (Visual Perception Theory)** के अनुसार मानव मस्तिष्क उन आकृतियों को सबसे तेज़ी से पहचानता है जिनमें स्पष्ट किनारे (Edges), संतुलित आकृति (Symmetry) और स्थिर पैटर्न (Stable Pattern) उपस्थित हों। देवनागरी के अधिकांश

अक्षर जैसे **क, म, श, न** रेखाओं और वक्रों के संयोजन से बने होते हैं, जिससे मस्तिष्क के लिए उनका पैटर्न पहचानना अपेक्षाकृत सरल हो जाता है।

देवनागरी की एक महत्वपूर्ण विशेषता इसकी **शिरोरेखा (Headline/ Top Stroke)** है, जो अधिकांश अक्षरों के ऊपर एक निरंतर क्षैतिज रेखा के रूप में दिखाई देती है। जब शब्द लिखे जाते हैं, तो यह रेखा अक्षरों को जोड़कर एक समेकित दृश्य संरचना बनाती है। आधुनिक **गेस्टाल्ट मनोविज्ञान (Gestalt Psychology)** के अनुसार मानव मस्तिष्क किसी भी दृश्य को अलग-अलग भागों के रूप में नहीं, बल्कि एक संपूर्ण संरचना के रूप में ग्रहण करता है। शिरोरेखा इसी सिद्धांत को सुदृढ़ करती है, क्योंकि यह शब्दों को एक **दृश्य इकाई (Visual Unit)** के रूप में प्रस्तुत करती है। परिणामस्वरूप पाठक पूरे शब्द के पैटर्न को एक साथ पहचान लेता है, जिससे पढ़ने की गति और समझ दोनों बढ़ जाती हैं।

इसके अतिरिक्त देवनागरी में अक्षरों की विविध आकृतियाँ एक स्पष्ट **दृश्य संकेत नेटवर्क (Visual Signal Network)** बनाती हैं। प्रत्येक अक्षर का आकार दूसरे अक्षरों से पर्याप्त रूप से भिन्न होता है, जिससे **दृश्य भेद्यता (Visual Discriminability)** बनी रहती है। आधुनिक **सूचना सिद्धांत (Information Theory)** के अनुसार किसी भी प्रभावी संकेत प्रणाली में यह आवश्यक है कि प्रतीकों के बीच पर्याप्त अंतर हो, ताकि मस्तिष्क उन्हें बिना भ्रम के पहचान सके। देवनागरी की अक्षर संरचना इस सिद्धांत का उत्कृष्ट उदाहरण है, क्योंकि इसमें समान ध्वनि-वर्ग के अक्षरों में भी छोटे-छोटे संरचनात्मक अंतर होते हैं, जो उन्हें अलग-अलग पहचानने में सहायक होते हैं।

न्यूरोसाइंस के प्रयोगों में यह भी पाया गया है कि जब मनुष्य पढ़ने की प्रक्रिया में संलग्न होता है, तो **VWFA (Visual Word Form Area)** केवल अक्षरों को पहचानने तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वह उन्हें

मस्तिष्क के अन्य क्षेत्रों जैसे **ध्वनि प्रसंस्करण क्षेत्र (Phonological Processing Areas)** और **अर्थ प्रसंस्करण क्षेत्र (Semantic Processing Areas)** से भी जोड़ता है। इस प्रकार पढ़ने की प्रक्रिया एक बहु-स्तरीय **न्यूरल नेटवर्क (Neural Network)** का निर्माण करती है, जिसमें दृश्य संकेत ध्वनि और अर्थ में परिवर्तित हो जाते हैं। देवनागरी लिपि की सुव्यवस्थित संरचना इस न्यूरल नेटवर्क को अधिक प्रभावी बनाती है, क्योंकि इसमें ध्वनि और लिपि के बीच स्पष्ट संबंध होता है।

आधुनिक **कम्प्यूटेशनल न्यूरोसाइंस (Computational Neuroscience)** और **कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence)** के क्षेत्र में भी इस प्रकार की संरचित लिपियों का अध्ययन किया जा रहा है। वैज्ञानिकों का मानना है कि जिन लेखन प्रणालियों में अक्षरों का पैटर्न स्पष्ट, संतुलित और नियमबद्ध होता है, वे मशीन-लर्निंग तथा **ऑप्टिकल कैरेक्टर रिकग्निशन (Optical Character Recognition – OCR)** जैसी तकनीकों के लिए अधिक उपयुक्त होती हैं। देवनागरी की रेखीय और संरचनात्मक स्पष्टता इसे एक प्रभावी **दृश्य-संचार प्रणाली (Visual Communication System)** बनाती है, जो न केवल मानव मस्तिष्क बल्कि आधुनिक डिजिटल तकनीकों के लिए भी अत्यंत अनुकूल है।

इस प्रकार, देवनागरी लिपि केवल ध्वनियों को लिखने का माध्यम नहीं है, बल्कि यह मानव मस्तिष्क की **दृश्य-प्रसंस्करण क्षमता (Visual Processing Ability)** के अनुरूप विकसित एक उन्नत **दृश्य-संचार तकनीक (Visual Communication Technology)** है। इसकी संरचना में ध्वन्यात्मक स्पष्टता, दृश्य संतुलन और संज्ञानात्मक अनुकूलता का अद्वितीय संयोजन मिलता है, जो इसे विश्व की अत्यंत वैज्ञानिक और व्यवस्थित लेखन प्रणालियों में स्थान दिलाता है।

इसी संदर्भ में "अक्षर" शब्द का प्रयोग और भी महत्वपूर्ण हो जाता है। अतः **वैदिक ऋषि** वाणी का प्रयोग अत्यंत सजगता से करने का आग्रह

करते हैं, क्योंकि प्रत्येक विचार, प्रत्येक भाव और प्रत्येक उच्चारित शब्द एक स्थायी कंपन उत्पन्न करता है। यदि वह सकारात्मक है तो वह **सकारात्मक स्पंदन-क्षेत्र (positive vibrational field)** निर्मित करता है, यदि नकारात्मक है तो वही नकारात्मक क्षेत्र का निर्माण करता है।

इसीलिए **वैदिक ऋषि प्रार्थना** करते हैं, “**आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः**”, अर्थात् हमारे पास सर्वत्र से शुभ विचार आएँ। यह केवल नैतिक उपदेश नहीं, बल्कि एक गहन **चेतनात्मक अनुशासन (discipline of consciousness)** है। यदि प्रत्येक वर्ण एक रंग है, एक ऊर्जा है और एक अविनाशी स्पंदन है, तो वाणी का प्रत्येक प्रयोग सृष्टि में एक नया कंपन जोड़ता है। इस दृष्टि से “वर्ण” केवल ध्वनि-इकाई नहीं, बल्कि चेतना का रंग है; और “अक्षर” केवल लेखन-चिह्न नहीं, बल्कि अविनाशी स्पंदन का प्रतीक है। यही इस शब्द-प्रयोग का गूढ़ रहस्य है।

“**अ के बाद इ क्यों आता है?**” यह प्रश्न केवल **वर्णक्रम (alphabetical order)** का नहीं, बल्कि **ध्वनि-विज्ञान (phonetics)**, **तत्त्वमीमांसा (metaphysics)** और **साधना-दृष्टि (spiritual perspective)** की गहन समझ से जुड़ा हुआ है। संस्कृत वर्णमाला का क्रम पूर्णतः **वैज्ञानिक (scientific)** और **सुसंगठित (systematic)** है, जिसमें प्रत्येक ध्वनि का स्थान उसके **उच्चारण-स्थान (place of articulation)** और **उच्चारण-प्रक्रिया (articulation process)** के अनुसार निर्धारित किया गया है। “अ” वह मूल स्वर है, जिसमें मुख पूर्णतः **उन्मुक्त (fully open)** रहता है, जिह्वा **विश्रामावस्था (resting position)** में होती है और कण्ठ से ध्वनि का सहज **उद्भव (natural emergence)** होता है, इसलिए इसे **आद्य (primordial)**, **मूलाधार (fundamental base)** और सभी ध्वनियों का **आधार (foundation)** माना जाता है। इसके पश्चात “इ” आता है, जिसमें जिह्वा ऊपर की ओर उठकर तालु के समीप जाती है और

ध्वनि अधिक **संकेंद्रित (focused)** एवं **संकुचित (contracted)** रूप धारण करती है। इस प्रकार ध्वनियों का क्रम **पूर्ण विस्तार (complete expansion)** से **नियंत्रित संकोच (controlled contraction)** की ओर बढ़ता है, जो ध्वनि-निर्माण की एक **क्रमिक विकास-प्रक्रिया (gradual evolutionary process)** को दर्शाता है।

दार्शनिक दृष्टि से "अ" को **ब्रह्म (absolute reality)**, **अखण्ड (indivisible)**, **अनन्त (infinite)** और **सर्वव्यापक (all-pervading)** सत्ता का प्रतीक माना गया है, जो सृष्टि का **आद्य बीज (primordial seed)** है। जब यह **निराकार चेतना (formless consciousness)** स्वयं को व्यक्त करने की ओर अग्रसर होती है, तब उसमें एक सूक्ष्म **स्पन्दन (subtle vibration)** उत्पन्न होता है। यही स्पन्दन दिशा ग्रहण कर **संकेंद्रित (focused)** होता है और "इ" के रूप में प्रकट होता है। इस प्रकार "अ" **अस्तित्व (being)** का बोध कराता है, जबकि "इ" उस अस्तित्व की **चेतन दिशा (intentional awareness)** और **अभिव्यक्ति-शक्ति (power of manifestation)** को दर्शाता है। साधना-दृष्टि से भी "अ" व्यापक चेतना का संकेत है, जबकि "इ" उस चेतना के भीतर उत्पन्न होने वाली एकाग्रता (**concentration**) और अंतर्मुखता (**inward focus**) का प्रतीक है। अतः "अ" से "इ" की यह यात्रा केवल ध्वनि-परिवर्तन नहीं, बल्कि **ब्रह्म से सृष्टि (cosmic manifestation)** और **विस्तार से संकेंद्रण (expansion to concentration)** की एक गहन प्रक्रिया का द्योतक है।

अनुभवात्मक (experiential) अथवा साधना-दृष्टि से विचार करें तो ध्यान की गहन अवस्था में साधक पहले **निर्विकल्प (non-conceptual)** **शुद्ध-अस्तित्व (pure being)** का अनुभव करता है, यह अकार की स्थिति है। जब उसी अस्तित्व में 'मैं' का सूक्ष्म बोध (**subtle awareness of "I"**) उत्पन्न होता है, तब चेतना **बिन्दुरूप (point-like**

awareness) में संकुचित होती है, यह इकार की अवस्था कही जाती है। अतः अकार **अनन्त आकाशवत् विस्तार (infinite expanse)** है, और इकार उसी विस्तार में उदित (arising) होने वाली चेतना की **प्रथम रेखा (first line of awareness)** है।

भारतीय **कोश-परम्परा (lexicographical tradition)** में भी यह दृष्टिकोण पुष्ट (supported) होता है। **वाचस्पत्यम्** तथा **शब्दकल्पद्रुम** जैसे अभिधान-ग्रन्थों (lexical compendiums) में अकार और इकार के अनेक अर्थ (multiple semantic dimensions) दिए गए हैं। इसके अतिरिक्त **एकाक्षर-कोष (single-letter lexicons)** नामक परम्परा में प्रत्येक अक्षर को एक **स्वतंत्र तत्त्व (independent principle)** माना गया है, जिसके विविध **आध्यात्मिक (spiritual)**, **दार्शनिक (philosophical)** और **लौकिक (worldly)** अर्थ मिलते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि संस्कृत में वर्ण मात्र ध्वनियाँ नहीं, बल्कि **चेतना-शक्ति (conscious energy principles)** के प्रतीक हैं।

अकार (अ) को परम्परा में **अनुत्तर (unsurpassable, beyond which nothing exists)** कहा गया है। “अनुत्तर” का अर्थ है, जिसके ऊपर कुछ नहीं, जो **सर्वोच्च (supreme)**, **परम (ultimate)**, और **मूलाधार (fundamental ground)** है। इसी कारण “अ” को **निषेध-बोधक (negative particle)** के रूप में भी प्रयोग किया जाता है, जैसे रूप → अरूप, भद्र → अभद्र, ब्राह्मण → अब्राह्मण। यहाँ “अ” किसी वस्तु का अभाव (absence) प्रकट करता है। दार्शनिक अर्थ में यह “सीमित रूप” का निषेध कर “असीम सत्ता” की ओर संकेत करता है। यह केवल व्याकरणिक (grammatical) नियम नहीं, बल्कि अस्तित्व की उस अवस्था का बोध है जहाँ कोई द्वितीय (second entity) नहीं है।

2.8 “ॐ की वाइब्रेशन: ब्रह्माण्ड का असली साउंड सिस्टम”

श्रीमत् भगवद्गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं, “अक्षराणाम् अकारोऽस्मि” अर्थात् अक्षरों में मैं अकार हूँ। यह कथन अकार को परम-प्रतीक (symbol of the Absolute) के रूप में स्थापित करता है। अकार यहाँ **अद्वैत (non-dual reality)** का द्योतक है, एक ऐसी सत्ता जो स्वयं में पूर्ण (complete in itself) है और जिससे सब उत्पन्न (emerge) होते हैं।

ॐ (ओम्) की संरचना भी इसी क्रम को दर्शाती है, **अ + उ + म**। उपनिषदों में ओम् को **एकाक्षर ब्रह्म (the one-syllabled Absolute)** कहा गया है। इसका आदि अक्षर “अ” है, जो **मूल सत्ता (original being)** है। “उ” **विस्तार (expansion)** और **व्यापन (pervasion)** का प्रतीक है, और “म” **संकोच या लय (dissolution)** का। इस प्रकार **ॐ (ओम्)**, **सृष्टि-चक्र (cycle of manifestation)** का प्रारम्भ-बिंदु है।

महर्षि अरविन्द ने अपने ग्रंथ **वेद का रहस्य (The Secret of the Veda)** में अकार को **परम अस्तित्व की अवस्था (Absolute State of Existence)** का प्रतिनिधि कहा है। उनके अनुसार “अ” वह एक (One) है जो अनेक (Many) बन सकता है, अर्थात् वह अनन्त संभावनाओं (infinite potentials) का मूल स्रोत (source) है। जब यह एक सत्ता स्वयं में अव्यक्त (unmanifest) रहती है, तब वह शुद्ध समत्व (perfect equilibrium) है। जब उसमें अभिव्यक्ति की इच्छा (will to manifest) जागृत होती है “**एकोऽहम् बहुस्याम्**” (**मैं एक हूँ, अनेक हो जाऊँ**) तब विस्तार (expansion) आरम्भ होता है। यह विस्तार “आ” के रूप में देखा जाता है, आ व्यापकता (vastness), आनंद (bliss-expansion), आकाश (space) जैसे शब्दों में प्रकट होता है।

फिर जब यह व्यापक सत्ता गति (movement) ग्रहण करती है, तब स्पन्दन (vibration), कम्पन (throb), और संचार (propagation) उत्पन्न होते हैं। यही गति-तत्त्व “इ” में निहित माना गया है। संस्कृत धातु “इ” (गत्यर्थक धातु – root denoting motion) का अर्थ है, जाना, गतिमान होना (to move, to go)। “इच्छा” शब्द भी इसी से जुड़ा है, क्योंकि इच्छा गति का कारण (impulse toward movement) है। जहाँ अकार पूर्ण स्थैर्य (absolute stillness) है, वहीं इकार सम्बन्ध (relation), संस्पर्श (contact), और द्वैत (relativity) का संकेत देता है। इसीलिए महर्षि अरविन्द ने अपने ग्रंथ में प्रकट “द्वितीयाद् वै भयम् भवति” जहाँ द्वैत है, वहाँ भय (fear) संभव है; अद्वैत में भय नहीं।

दार्शनिक प्रतिपादन (philosophical formulation) इस प्रकार है:

- I. अ = **Absolute State of Existence** (परम अद्वैत सत्ता)
- II. इ = **Relative State of Existence** (संबंधात्मक, द्वैतात्मक अवस्था)
- III. उ = **Pervasive State of Existence** (व्यापक, व्याप्य-व्यापक संबंध)
- IV. ऋ (ॠ) = **Vibratory State of Existence** (स्पन्दित चेतना)
- V. क = **Creation Principle** (सृजन-तत्त्व)

इस सम्पूर्ण दृष्टिकोण में वर्ण मात्र ध्वनियाँ नहीं, बल्कि चेतना-स्तर (planes of consciousness) के प्रतीक हैं। देवनागरी लिपि का विकास (evolution of script) भी एक सचेतन संरचना (conscious structuring) के रूप में देखा गया है जहाँ प्रत्येक अक्षर की रेखा-गतियाँ (stroke movements) भी एक लयात्मकता (rhythmic alignment) को दर्शाती हैं, जो विश्व-छन्द (cosmic rhythm) के अनुरूप मानी गई है।

अतः अकार केवल एक ध्वनि नहीं; वह समत्व (equilibrium), निश्शब्दता (primordial silence), सर्वोत्तमत्व (supremacy), और

परम चेतना (supreme consciousness) का दार्शनिक संकेत है। इकार उससे उत्पन्न गति (movement), इच्छा (will), और संबंध (relation) का आरम्भ है। इस प्रकार संस्कृत वर्णमाला को एक **अस्तित्व-मानचित्र (map of consciousness)** के रूप में भी समझा जा सकता है, जहाँ ध्वनि से सृष्टि, और अक्षर से अस्तित्व की व्याख्या की गई है।

2.9 “कौन, क्या, कब, कहाँ: ‘क’ का प्रश्न-सूत्र”

सारे जो इंटेरोगेटिव, प्रश्नात्मक, प्रश्नवाचक जितने भी शब्द है, क्यों, क्या, कः (कौन), किम् (क्या), कदा (कब), कुत्र (कहाँ), कथम् (कैसे)? सब क से ही क्यों शुरू?

स्वर और व्यंजन के भेद को यदि ध्वन्यात्मक दृष्टि से समझें, तो स्वर वे ध्वनियाँ हैं जिनमें वायु का प्रवाह **निर्बाध (Unobstructed Flow)** रहता है। वे पूर्णतः **अस्पृष्ट (Non-contact Articulation)** हैं, अर्थात् उच्चारण के समय जिह्वा, तालु, दाँत या ओष्ठ किसी प्रकार का कठोर अवरोध नहीं उत्पन्न करते। इसलिए स्वर “ओपन साउंड्स” हैं, उन्हें आप दीर्घ समय तक गा सकते हैं “आ...” तब तक चलता रहेगा जब तक श्वास उपलब्ध है। यही कारण है कि स्वरों को **नादात्मक (Tonal/Sonorous)** कहा जाता है।

इसके विपरीत व्यंजन ध्वनियों में किसी न किसी स्तर पर **अवरोध (Obstruction)** और **स्पर्श (Articulatory Contact)** अनिवार्य होता है। पाश्चात्य ध्वनिविज्ञान में इन्हें “stops” या “mutes” कहा गया है, क्योंकि वहाँ वायु-प्रवाह क्षणभर के लिए रुकता है। संस्कृत व्याकरण में इन्हें “स्पृष्ट” कहा गया, अर्थात् जहाँ वाक्-यंत्रों का स्पृष्ट स्पर्श होता है।

अब प्रश्न उठता है कि पहला व्यंजन “क” ही क्यों है? ध्वनि-स्थान (Place of Articulation) की दृष्टि से “क” कण्ठ्य है, यह कंठ के अत्यंत भीतर के भाग से उत्पन्न होता है। मानव-उच्चारण-तंत्र में यह वह प्रथम बिंदु है

जहाँ स्वर-प्रवाह के पश्चात् हमें स्पष्ट **संकोच (Constriction)** और **रुद्धता (Closure)** का अनुभव होता है। इससे नीचे, अर्थात् कंठ के और भीतर कोई स्वतंत्र, वर्गीकृत व्यंजन-स्थान नहीं है। “ह” जैसे ध्वनि-तत्त्व उष्म (Fricative / Aspirate) माने जाते हैं, परंतु वे वर्गीय “स्पृष्ट व्यंजन” की श्रेणी में नहीं आते।

संस्कृत वर्णमाला का क्रम, कण्ठ्य (क-वर्ग), तालव्य (च-वर्ग), मूर्धन्य (ट-वर्ग), दन्त्य (त-वर्ग), ओष्ठ्य (प-वर्ग) मानव-वाक्-यंत्र की **शारीरिक संरचना (Physiological Structure)** के अनुरूप है। इस क्रम में “क” वास्तव में पहला पूर्ण **स्पर्श-वर्ण (Plosive Consonant)** है। इसलिए यह कहा जाता है कि “क” मानवता का प्रथम अवरोधित ध्वनि-बिंदु है, जहाँ निरंतर बहते स्वर-प्रवाह में पहली बार ठहराव आता है।

अतः जब कहा जाता है कि “क” पहला व्यंजन है, तो उसका आशय केवल वर्णमाला का क्रम नहीं, बल्कि यह है कि मानव-चेतना के ध्वनि-अनुभव में यह पहला स्पष्ट **अवरोध-बिंदु (Point of Articulatory Interruption)** है। स्वर जहाँ प्रवाह हैं, वहीं “क” उस प्रवाह का प्रथम स्पर्शित विराम है और इसी से व्यंजन-विश्व का आरम्भ होता है। इसलिए निष्कर्ष यह है कि “क” से प्रश्नवाचक शब्दों का शुरू होना कोई संयोग नहीं, बल्कि एक प्राचीन **भाषिक परंपरा (Linguistic Tradition)** और साझा **मूल स्रोत (Common Origin)** का परिणाम है।

इस प्रकार संस्कृत भाषा का अध्ययन केवल भाषिक ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया नहीं है, बल्कि यह चेतना, ध्वनि और अर्थ के गहन संबंध को समझने का माध्यम भी है। संस्कृत की वर्णमाला, धातु-प्रणाली, संधि, समास और व्याकरणिक संरचना यह स्पष्ट करती है कि यह भाषा अत्यंत सुव्यवस्थित और वैज्ञानिक आधार पर निर्मित है। इसकी ध्वनियाँ केवल संप्रेषण के उपकरण नहीं, बल्कि **स्पन्दनात्मक ऊर्जा (Vibrational**

Energy) के रूप में भी कार्य करती हैं, जो मन, प्राण और चेतना को प्रभावित कर सकती हैं।

भारतीय परंपरा में भाषा को केवल संचार का माध्यम नहीं, बल्कि **चेतना-विकास (Consciousness Evolution)** का साधन माना गया है। यही कारण है कि मंत्र, स्तोत्र और वैदिक उच्चारण को आध्यात्मिक साधना का अभिन्न अंग समझा गया। आधुनिक विज्ञान ध्वनि, मस्तिष्क और तंत्रिका-तंत्र के बीच संबंधों का अध्ययन कर रहा है, जबकि संस्कृत परंपरा सहस्राब्दियों पूर्व ही ध्वनि और चेतना के इस संबंध को अनुभवजन्य स्तर पर पहचान चुकी थी।

इसके अतिरिक्त संस्कृत की व्याकरणिक संरचना, विशेषकर पाणिनीय प्रणाली, **आधुनिक संगणकीय भाषाविज्ञान (Computational Linguistics)** और **कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence)** के लिए भी अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो रही है। इसकी नियमबद्धता और एल्गोरिथ्मिक संरचना यह संकेत देती है कि प्राचीन भारतीय वैयाकरणों को भाषा की संरचना का अत्यंत सूक्ष्म ज्ञान था।

अतः संस्कृत केवल एक प्राचीन भाषा नहीं, बल्कि ध्वनि-विज्ञान, चेतना-विज्ञान और भाषाविज्ञान का अद्वितीय संगम है। यह भाषा मानव की अभिव्यक्ति को केवल शब्दों तक सीमित नहीं रखती, बल्कि उसे चेतना के उच्चतर आयामों से जोड़ती है। इस दृष्टि से संस्कृत का अध्ययन केवल भाषिक अभ्यास नहीं, बल्कि **आत्म-अन्वेषण (Self-Exploration)**, **बौद्धिक परिष्कार (Intellectual Refinement)** और **आध्यात्मिक उत्कर्ष (Spiritual Elevation)** की एक समग्र यात्रा बन जाता है।

अध्याय 3

प्राचीन मंदिर: आस्था, गणित और इंजीनियरिंग का अद्भुत संगम

3.1 “मंदिर में शांति क्यों मिलती है? Wi-Fi नहीं, ‘Divine-Fi’ है

दोस्तों, हम रोज़ मंदिर जाते हैं, लेकिन बहुत कम लोग यह समझते हैं कि मंदिर केवल एक इमारत नहीं, बल्कि एक गहन **प्रतीकात्मक (symbolic)** और **दार्शनिक (philosophical)** संरचना है। मंदिर का प्रत्येक भाग किसी न किसी **आध्यात्मिक (spiritual)** और **वैज्ञानिक (scientific)** विचार को व्यक्त करता है। जैसे मनुष्य के शरीर में आत्मा होती है, उसी प्रकार मंदिर के भीतर स्थित **प्रतिमा (deity idol)** को उसकी आत्मा माना जाता है और पूरा मंदिर एक **जीवंत इकाई (living entity)** के रूप में देखा जाता है। प्राचीन **वास्तुशिल्प (architecture)** केवल निर्माण कला नहीं थी, बल्कि यह **दूरदर्शी चिंतन (visionary thinking)** का परिणाम थी, जिसमें धर्म, दर्शन और प्रकृति की समझ को एक रूप दिया गया।

मंदिर केवल आस्था और श्रद्धा के प्रतीक नहीं हैं, बल्कि वे **उन्नत स्थापत्य अभियांत्रिकी (Advanced Architectural Engineering)**, **भू-तकनीकी नींव प्रणाली (Geotechnical Foundation System)**, **ज्यामितीय सममिति (Geometric Symmetry)**, **ध्वनिकी अनुनाद (Acoustic Resonance)**, **ज्यामितीय सममिति (Geometric Symmetry)** और **ऊर्जा अनुनाद सिद्धांत (Energy Resonance Principle)** जैसे जटिल वैज्ञानिक सिद्धांतों का अद्भुत उदाहरण भी प्रस्तुत करते हैं। प्राचीन प्राचीन भारतीय शिल्पकारों और वास्तुकारों ने

हजारों वर्ष पहले बिना किसी आधुनिक मशीन, कंप्यूटर सिमुलेशन या डिजिटल ब्लूप्रिंट के ऐसे भव्य मंदिरों का निर्माण किया जिनकी **संरचनात्मक स्थिरता (Structural Stability)** आज भी समय, मौसम और भूकंपीय गतिविधियों का सामना करते हुए कायम है। इन मंदिरों की नींव में प्रयुक्त गहरी आधार संरचनाएँ, पत्थरों की **अंतःसंयोजी संरचना (Interlocking Stone Mechanism)** तथा स्तंभों की ऐसी व्यवस्था मिलती है जो पूरे भवन के भार को संतुलित रूप से वितरित करती है, जिसे **भार-वितरण संतुलन (Load Distribution Balance)** कहा जाता है। यह स्पष्ट करता है कि उस समय के कारीगरों को **संरचनात्मक यांत्रिकी (Structural Mechanics)** और **सामग्री विज्ञान (Material Science)** का अत्यंत गहन ज्ञान था।

इसके अतिरिक्त मंदिरों के शिखर, मंडप और गर्भगृह का निर्माण केवल धार्मिक प्रतीकवाद के लिए नहीं बल्कि अत्यंत सूक्ष्म **गणितीय अनुपात (Mathematical Proportion)**, **सममितीय विन्यास (Symmetrical Arrangement)** और **ध्वनिकी सिद्धांत (Acoustic Principles)** के आधार पर किया जाता था। कई प्राचीन मंदिर इस प्रकार डिज़ाइन किए गए थे कि उनमें सूर्य का प्रकाश विशेष कोणों से गर्भगृह तक पहुँचे, जिससे प्राकृतिक **प्रकाशीय संरेखण (Optical Alignment)** उत्पन्न होता है। साथ ही उनकी संरचना में प्राकृतिक वायु प्रवाह और ताप संतुलन को नियंत्रित करने के लिए **तापीय संतुलन तंत्र (Thermal Regulation System)** का भी उपयोग किया गया था, जो आधुनिक **स्थायी वास्तुकला (Sustainable Architecture)** की अवधारणा से आश्चर्यजनक रूप से मेल खाता है। यही कारण है कि भारतीय मंदिर केवल आध्यात्मिक स्थल नहीं बल्कि मानव सभ्यता की **वैज्ञानिक बुद्धिमत्ता (Scientific Intelligence)**, **वास्तुशिल्पीय नवाचार (Architectural Innovation)** और **गणितीय परिशुद्धता**

(Mathematical Precision) के अद्वितीय उदाहरण माने जाते हैं, जहाँ आध्यात्मिक दर्शन और आधुनिक विज्ञान का असाधारण संगम देखने को मिलता है।

कई प्राचीन मंदिरों का निर्माण इस प्रकार किया गया था कि गर्भगृह के ठीक ऊपर स्थित शिखर और उसके भीतर की संरचना ध्वनि को विशेष प्रकार से प्रतिध्वनित करती है। जब मंदिर में मंत्रोच्चार या घंटियों की ध्वनि उत्पन्न होती है, तो वह पूरे परिसर में फैलकर एक विशेष **अनुनादी कंपन (Resonant Vibrations)** उत्पन्न करती है। आधुनिक विज्ञान के अनुसार ऐसी ध्वनियाँ मानव मस्तिष्क की **न्यूरोलॉजिकल सक्रियता (Neurological Activity)** और मानसिक शांति को प्रभावित कर करती हैं। यही कारण है कि मंदिरों का वातावरण अक्सर गहरी शांति और ध्यान के लिए उपयुक्त माना जाता है। यह दर्शाता है कि प्राचीन भारतीय वास्तुकार केवल संरचना ही नहीं बना रहे थे, बल्कि वे **मानव चेतना (Human Consciousness)**, ध्वनि और वास्तुकला के गहरे संबंध को भी समझते थे।

वेद और अग्नि पुराण जैसे ग्रंथों में मंदिर को मानव शरीर के समान बताया गया है, जहाँ स्थापित मूर्ति उसकी **आत्मा (Soul)** के रूप में मानी जाती है। इस दृष्टिकोण से मंदिर का प्रत्येक भाग जैसे **गर्भगृह (Sanctum sanctorum)**, **मंडप (Hall)**, **शिखर (Spire)** और **कलश (Finial)** एक विशिष्ट **दार्शनिक अर्थ (Philosophical meaning)** को अभिव्यक्त करता है। गर्भगृह वह स्थान है जहाँ देवता की मूर्ति स्थापित होती है, जिसे अत्यंत **पवित्र (Sacred)** और केंद्रबिंदु माना जाता है, जबकि मंडप वह स्थान है जहाँ भक्त एकत्र होकर पूजा और अन्य धार्मिक क्रियाएँ करते हैं।

भारतीय मंदिर वास्तुकला को मुख्यतः दो प्रमुख शैलियों में विभाजित किया गया है **नागर शैली (Nagara style)** और **द्रविड़ शैली (Dravidian**

style)। उत्तर भारत के मंदिर प्रायः नागर शैली में निर्मित होते हैं, जिनमें ऊँचा और घुमावदार शिखर होता है, जबकि दक्षिण भारत के मंदिर द्रविड़ शैली के होते हैं, जिनमें विशाल **गोपुरम (Monumental gateway tower)** और पिरामिडाकार संरचना देखने को मिलती है। इन दोनों शैलियों के बीच का अंतर केवल बाहरी रूप तक सीमित नहीं है, बल्कि इनके निर्माण में निहित **सांस्कृतिक विविधता (Cultural diversity)** और **भौगोलिक प्रभाव (Geographical influence)** को भी दर्शाता है। उदाहरणस्वरूप, उत्तर भारत में मंदिरों का निर्माण प्रायः ऊँचे चबूतरे (**अधिष्ठान (Base platform)**) पर किया जाता है, जबकि दक्षिण भारत में इस प्रकार की संरचना कम देखने को मिलती है। मंदिर का सबसे महत्वपूर्ण भाग **गर्भगृह (sanctum sanctorum)** होता है, जहाँ देवता की मूर्ति स्थापित होती है। इसके अतिरिक्त **मंडप (hall)**, **शिखर (spire)**, और **अधिष्ठान (base platform)** जैसे भाग मिलकर एक पूर्ण संरचना बनाते हैं। हर भाग का अपना **उद्देश्य (purpose)** और **प्रतीक (symbol)** होता है जैसे शिखर ब्रह्मांड की ऊँचाई को दर्शाता है, मंडप सामाजिक और आध्यात्मिक क्रियाओं का स्थान होता है, और गर्भगृह परम सत्य के केंद्र का प्रतीक है।

मंदिरों के विभिन्न भागों जैसे **पीठिका (Pedestal)**, **जंघा (Wall section)**, **वरंध (Moulding band)**, **अमलक (Ribbed disc-like structure)** और **मस्तक (Head portion)** का निर्माण अत्यंत **सूक्ष्म योजना (Meticulous planning)** और **वैज्ञानिक दृष्टिकोण (Scientific approach)** से किया गया है। इन सभी भागों को देवता के शरीर के विभिन्न अंगों से जोड़ा गया है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि मंदिर केवल पूजा का स्थान नहीं, बल्कि एक **जीवंत दार्शनिक अभिव्यक्ति (Living philosophical expression)** है। खजुराहो के कंदारिया महादेव मंदिर जैसे मंदिरों में अनेक मंडप जैसे **नाट्यमंडप (Dance**

hall) और **भोगमंडप (Offering hall)** इस बात का प्रमाण हैं कि मंदिरों में केवल पूजा ही नहीं, बल्कि कला, संगीत और सामाजिक गतिविधियाँ भी सम्पन्न होती थीं। वास्तुशास्त्र के अनुसार मंदिर का निर्माण प्रकृति और ब्रह्मांड के नियमों के अनुरूप होता है, जिसमें **ऊर्जा-संतुलन (energy balance)** और **दिशा-ज्ञान (spatial orientation)** का विशेष ध्यान रखा जाता है। यही कारण है कि उत्तर और दक्षिण भारत के मंदिर अलग दिखते हुए भी एक ही **मूल दर्शन (core philosophy)** को प्रकट करते हैं। अंततः मंदिर केवल पूजा का स्थान नहीं, बल्कि एक ऐसा माध्यम है जो मनुष्य को बाहरी जगत से आंतरिक **चेतना (consciousness)** की ओर ले जाता है।

अतः यह कहा जा सकता है कि मंदिरों का निर्माण किसी साधारण श्रमिक द्वारा नहीं, बल्कि उच्च कोटि के **दूरदर्शी (Visionary)** और **दार्शनिक (Philosophical thinkers)** कलाकारों द्वारा किया गया था, जिन्होंने अपनी **बौद्धिक क्षमता (Intellectual ability)** और **आध्यात्मिक समझ (Spiritual understanding)** के माध्यम से सनातन धर्म के गूढ़ सिद्धांतों को मूर्त रूप दिया। इसलिए जब भी हम किसी मंदिर में जाएँ, तो केवल उसकी बाहरी **सौंदर्य (Aesthetic beauty)** को न देखकर उसके भीतर निहित गहरे अर्थों और उद्देश्यों को समझने का प्रयास करना चाहिए, जिससे हम अपने सांस्कृतिक और आध्यात्मिक विरासत को अधिक गहराई से अनुभव कर सकें।

3.2 “देवता अनेक क्यों? सनातन धर्म का दार्शनिक उत्तर”

“हिंदू हर महीने अपने देवी-देवताओं को क्यों बदलते हैं?” इस प्रश्न का उत्तर सनातन परंपरा की **विकेन्द्रीकृत (decentralized)** और **समन्वित (integrated)** प्रकृति में निहित है। सनातन धर्म में अनेक देवताओं की उपासना किसी भ्रम या **बहुदेववाद (polytheism)** का संकेत नहीं,

बल्कि एक ही **परम सत्य (supreme reality)** के विभिन्न रूपों की स्वीकृति है। यहाँ ईश्वर को केवल एक रूप में सीमित नहीं किया गया, बल्कि उसे **अनेक रूपों में अभिव्यक्त (manifested in multiple forms)** माना गया है, ताकि हर व्यक्ति अपनी **प्रकृति (nature)**, **रुचि (inclination)** और **आध्यात्मिक स्तर (spiritual level)** के अनुसार उपासना कर सके।

स्वामी विवेकानंद के अनुसार किसी भी धर्म के तीन मुख्य अंग होते हैं, **दर्शन (philosophy)**, **पौराणिक कथाएँ (mythology)** और **अनुष्ठान (rituals)**। इनमें दर्शन सबसे महत्वपूर्ण है, क्योंकि वही धर्म का **मूलाधार (foundation)** होता है। सनातन धर्म का दर्शन **अद्वैत (non-dualism)** की ओर संकेत करता है, जहाँ अंततः सब कुछ एक ही **ब्रह्म (absolute existence)** है। पौराणिक कथाएँ इस गूढ़ दर्शन को सरल रूप में समझाने का माध्यम हैं, और अनुष्ठान समय, स्थान तथा समाज के अनुसार बदलते रहते हैं।

इसी कारण अलग-अलग समय पर अलग-अलग देवताओं की पूजा करना कोई विरोधाभास नहीं है, बल्कि यह **लचीलापन (flexibility)** और **व्यापकता (inclusiveness)** दर्शाता है। यदि कोई व्यक्ति केवल एक ही देवता की उपासना करता है, तो भी वह उसी **परम सत्ता (ultimate reality)** की आराधना कर रहा होता है क्योंकि सभी देवता उसी एक सत्य के विविध **रूप (forms)** हैं। यहाँ यह विचार नहीं है कि एक देवता की पूजा करने से दूसरा **नाराज़ (angry)** हो जाएगा, बल्कि यह समझ है कि सभी रूप अंततः एक ही **एकत्व (unity)** में समाहित हैं।

अतः सनातन धर्म यह सिखाता है कि ईश्वर एक ही है, लेकिन उसे समझने और अनुभव करने के मार्ग अनेक हैं। यह परंपरा हमें **आध्यात्मिक स्वतंत्रता (spiritual freedom)** देती है, जहाँ हम अपने अनुसार किसी

भी रूप को चुनकर उसी एक **परम सत्य (supreme truth)** तक पहुँच सकते हैं।

सनातन धर्म के दर्शन को समझने के लिए उसके मूल **षट्दर्शन (six systems of philosophy)** और प्रमुख **सिद्धांत (principles)** को जानना आवश्यक है। वेदों पर आधारित छह दर्शनों **सांख्य (Samkhya)**, **योग (Yoga)**, **न्याय (Nyaya)**, **वैशेषिक (Vaisheshika)**, **मीमांसा (Mimamsa)** और **वेदांत (Vedanta)** के माध्यम से ब्रह्मांड के **सत्य (ultimate reality)** को विभिन्न दृष्टिकोणों से समझाने का प्रयास किया गया है। इनमें विशेष रूप से **सांख्य (Samkhya)** और **वेदांत (Vedanta)** का प्रभाव सबसे अधिक रहा है। सांख्य दर्शन ब्रह्मांड की उत्पत्ति को **प्रकृति (nature)** और उसके तीन **गुण (qualities)** **सत्त्व (purity/balance)**, **रज (activity/passion)** और **तम (inertia/darkness)** के माध्यम से समझाता है, जबकि वेदांत एक **परम ब्रह्म (absolute reality)** की अवधारणा प्रस्तुत करता है, जो **अखण्ड (indivisible)**, **अनन्त (infinite)** और **सर्वव्यापक (all-pervading)** है।

इस प्रकार यदि हम देखें तो **सांख्य (cosmic structure)**, **वेदांत (ultimate unity)**, **कर्म (law of action)** और **पुनर्जन्म (continuity of existence)** ये चारों मिलकर सनातन धर्म के मुख्य **स्तंभ (pillars)** बनाते हैं। इन्हीं के आधार पर विभिन्न **संप्रदाय (traditions)** जैसे शैव, वैष्णव और शाक्त अपने-अपने रूप में ईश्वर की उपासना करते हैं, किंतु अंततः सभी एक ही **परम सत्य (supreme truth)** की ओर अग्रसर होते हैं। इस दृष्टि से सनातन धर्म की विविधता वास्तव में एक गहरे **एकत्व (unity)** की अभिव्यक्ति है, जहाँ अलग-अलग मार्ग अंततः एक ही सत्य में **विलीन (merge)** हो जाते हैं।

सनातन धर्म में **बहुरूपता (plurality)** का सिद्धांत अत्यंत गहन और दार्शनिक आधार पर स्थापित है। सभी हिंदू संप्रदाय अपने मूल में **परब्रह्म (supreme reality)** की अवधारणा को स्वीकार करते हैं, किंतु उसके **सगुण स्वरूप (manifest form)** को अलग-अलग रूपों में देखते हैं। जैसे **वैष्णव संप्रदाय (Vaishnav tradition)** में **महाविष्णु (Vishnu)** को परमब्रह्म का रूप माना जाता है, **शैव संप्रदाय (Shaiva tradition)** में वही परम सत्य **सदाशिव (Shiva)** के रूप में प्रकट होता है, और **शाक्त संप्रदाय (Shakta tradition)** में **आदि शक्ति (divine feminine energy)** को परमब्रह्म की अभिव्यक्ति माना जाता है। यहाँ देवी-देवताओं के विभिन्न रूप जैसे **दुर्गा (Durga)**, **हनुमान (Hanuman)** या अन्य वास्तव में उसी एक परम सत्य तक पहुँचने के विभिन्न **मार्ग (paths)** हैं। इस प्रकार विभिन्न रूपों में भिन्नता दिखाई देती है, किंतु मूल **तत्त्व (essence)** एक ही रहता है। यह धारणा कि एक देवता की पूजा करने से दूसरा देवता **नाराज़ (angry)** हो जाएगा, पूरी तरह **निराधार (baseless)** है, क्योंकि सभी रूप अंततः उसी एक **अद्वैत (non-dual)** सत्ता में **विलीन (merge)** हो जाते हैं।

दार्शनिक दृष्टि से ईश्वर को **निर्गुण (formless)** और **सगुण (with attributes)** दोनों रूपों में समझा जाता है। केवल निराकार या केवल साकार ईश्वर की कल्पना अधूरी मानी जाती है; वास्तविक **ईश्वर (ultimate reality)** वह है जिसमें दोनों ही आयाम समाहित हों। इस प्रकार सनातन धर्म व्यक्ति को यह स्वतंत्रता देता है कि वह अपनी **श्रद्धा (faith)** और **अनुभूति (experience)** के अनुसार किसी भी रूप की उपासना करे, क्योंकि अंततः सभी उपासनाएँ उसी एक **परमब्रह्म (supreme truth)** की ओर ले जाती हैं।

3.3 “शक्ति से सिद्धि तक: नवदुर्गा में छिपा जीवन का विज्ञान”

जब सनातन धर्म में अवतारों की बात आती है, तो एक ओर जहां विष्णु जी के दशावतार प्रसिद्ध हैं, वहीं दूसरी ओर माँ दुर्गा के नौ अवतार भी प्रसिद्ध हैं। जब **विष्णु के दशावतार मानव विकास (human evolution)** और **बुद्धि के क्रमिक विस्तार (gradual intellectual growth)** को दर्शाते हैं, वहीं **माँ दुर्गा के नौ दिव्य रूप मानव जीवन के विकास (human evolution)** और **आंतरिक चेतना (inner consciousness)** की यात्रा का एक अत्यंत सूक्ष्म (subtle) और वैज्ञानिक (scientific) प्रतीक भी है।

शायद सनातन धर्म दुनिया का एकमात्र संप्रदाय है जहाँ ब्रह्मांड की उत्पत्ति के पीछे की शक्ति को स्त्री रूप में देखा जाता है। **माँ दुर्गा** की पूजा का इतिहास बहुत प्राचीन है। माँ दुर्गा का उल्लेख केवल पुराणों, ऐतिहासिक ग्रंथ जैसे रामायण और महाभारत में ही नहीं मिलता बल्कि ऋग्वेद, अथर्ववेद, तैत्तिरीय आरण्यक और देवी उपनिषद में भी मिलता है। **शक्ति** परंपरा में माँ दुर्गा को **निर्गुण ब्रह्म (formless absolute)** का **सगुण स्वरूप (manifest form)** माना गया है, जो यह दर्शाता है कि ब्रह्मांड की मूल शक्ति (cosmic energy) को स्त्री रूप में समझा गया यह विचार अपने आप में अत्यंत प्रगतिशील (progressive) और दार्शनिक रूप से गहन (philosophically profound) है।

माँ के नौ रूप **नवदुर्गा (Nine manifestations of Durga)** वास्तव में मानव जीवन के विभिन्न चरणों (stages of life) का प्रतीकात्मक (symbolic) प्रतिनिधित्व करते हैं। **शैलपुत्री (daughter of the mountain)** जीवन के आरंभिक चरण (initial stage) का प्रतिनिधित्व करती हैं, जहाँ संभावनाएँ (potentialities) अपार होती हैं, ठीक वैसे ही जैसे नवजात शिशु (newborn child) में असीम क्षमताएँ होती हैं। इसके बाद **ब्रह्मचारिणी (one who follows celibacy and discipline)**

का स्वरूप **अनुशासन (discipline)**, **तपस्या (austerity)** और **ज्ञानार्जन (pursuit of knowledge)** को दर्शाता है, जो जीवन के शिक्षण काल (learning phase) से मेल खाता है।

चंद्रघंटा (symbol of courage and readiness) वह अवस्था है जहाँ व्यक्ति अपने कौशल (skills) और क्षमताओं (abilities) से सुसज्जित (equipped) होकर जीवन की चुनौतियों (challenges) के लिए तैयार होता है। वहीं **कूष्मांडा (cosmic creator energy)** सृजन (creation) और ऊर्जा (energy generation) का प्रतीक है, जो जीवन के उस चरण को दर्शाता है जहाँ व्यक्ति सृजनात्मक (creative) और उत्पादक (productive) बनता है। **स्कंदमाता (motherhood form)** मातृत्व (motherhood), करुणा (compassion) और पोषण (nurturing) की भावना को अभिव्यक्त करती हैं, जो जीवन में जिम्मेदारी (responsibility) और प्रेम (love) के उच्चतम स्तर को दर्शाता है।

इसके पश्चात **कात्यायनी (warrior form)** शक्ति (power), आत्मनिर्भरता (self-reliance) और संघर्ष (struggle) की प्रतीक हैं, जो यह दर्शाती हैं कि जीवन में व्यक्ति को अपने अधिकारों (rights) और धर्म (righteousness) की रक्षा के लिए सशक्त (empowered) होना आवश्यक है। **कालरात्रि (destructive fierce form)** जीवन के अंधकार (dark phases), संकट (crisis) और विनाश (destruction) का प्रतिनिधित्व करती हैं, जो यह सिखाती हैं कि परिवर्तन (transformation) के लिए कभी-कभी विनाश (destruction) आवश्यक होता है यह एक गहरा दार्शनिक (philosophical) और मनोवैज्ञानिक (psychological) सत्य है।

इसके बाद **महागौरी (symbol of purity and peace)** शुद्धता (purity), शांति (peace) और संतुलन (balance) की अवस्था को दर्शाती हैं, जहाँ व्यक्ति जीवन के संघर्षों (struggles) के बाद आंतरिक शांति

(inner peace) प्राप्त करता है। अंततः **सिद्धिदात्री (giver of spiritual powers)** वह अवस्था है जहाँ व्यक्ति पूर्ण ज्ञान (complete wisdom), अनुभूति (realization) और मोक्ष (liberation) की ओर अग्रसर होता है यह जीवन का सर्वोच्च (ultimate) लक्ष्य है।

इस प्रकार, नवदुर्गा केवल देवी के नौ रूप नहीं हैं, बल्कि वे मानव जीवन की एक संपूर्ण यात्रा (complete journey) को दर्शाती हैं जन्म (birth) से लेकर ज्ञान (wisdom) और अंततः मोक्ष (liberation) तक। यह अवधारणा दर्शाती है कि सनातन धर्म में आध्यात्मिकता (spirituality) और मनोविज्ञान (psychology) का अद्भुत समन्वय (integration) है, जहाँ देवी के रूपों के माध्यम से मानव चेतना (human consciousness) के विकास को समझाया गया है। इसलिए, नवरात्रि की पूजा केवल बाहरी अनुष्ठान (external ritual) नहीं, बल्कि एक आंतरिक साधना (inner practice) है, जो हमें अपने भीतर छिपी शक्तियों (inner potentials) को पहचानने और उन्हें जागृत (awaken) करने की प्रेरणा देती है।

मित्रों, सनातन धर्म के संदर्भ में जो **विडंबना (Paradox)** दिखाई देती है, वह वास्तव में गहन अध्ययन के अभाव से उत्पन्न एक **भाष्य-भ्रम (Interpretational distortion)** है। एक ओर, देवी, जो समस्त मानवता की जननी मानी गई हैं, के विविध रूपों के माध्यम से **मानव चेतना (Human consciousness)** के क्रमिक उत्कर्ष का दार्शनिक निरूपण किया गया है; वहीं दूसरी ओर वैदिक ग्रंथों में वर्णित **अश्वमेध (Ashvamedha sacrifice)** और **पुरुषमेध (Purushamedha ritual)** जैसे यज्ञों को सतही दृष्टि से **पशु-बलि (Animal sacrifice)** अथवा हिंसा से जोड़ दिया गया है। यह तथाकथित विरोधाभास वास्तव में **शब्दार्थ-भ्रांति (Semantic confusion)**, प्रतीकात्मक तत्त्वों की उपेक्षा तथा कालांतर में हुए **धार्मिक विकृतिकरण (Religious distortion)** का परिणाम है। वस्तुतः इन यज्ञों का तात्पर्य बाह्य हिंसा नहीं, अपितु

आंतरिक अशुद्धियों के त्याग, अहंकार के विसर्जन तथा चेतना के उच्चीकरण से संबंधित आध्यात्मिक प्रक्रियाओं से है, जिन्हें समझने के लिए गूढ़ दार्शनिक दृष्टि आवश्यक है।

3.4 “पशु-बलि का सत्य: वेदों का सिद्धांत या बाद की विकृति?”

मित्रों, जब हम सनातन धर्म में **पशु-बलि (Animal sacrifice)** के विषय को गहराई से समझने का प्रयास करते हैं, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि यह केवल एक सतही **विरोधाभास (Apparent contradiction)** नहीं, बल्कि **इतिहास (History)**, **भाषा (Linguistics)** और **दार्शनिक व्याख्या (Philosophical interpretation)** के जटिल समन्वय का परिणाम है। वैदिक साहित्य अत्यंत प्राचीन है और उसकी भाषा संस्कृत **बहुस्तरीय अर्थवत्ता (Multi-layered semantics)** से युक्त है, जहाँ एक ही शब्द के अनेक अर्थ हो सकते हैं। इसी कारण, यदि किसी शब्द का **संदर्भ (Context)** और **व्याकरणिक आधार (Grammatical basis)** सही प्रकार से न समझा जाए, तो उसका अर्थ पूरी तरह बदल सकता है। इसीलिए, हमारे ब्राह्मण ग्रंथों में हमें ‘**माहिंस्य सर्वभूतनि**’ जैसे शब्द मिलते हैं, जहाँ कहा गया है कि जानवरों को कभी नहीं मारना चाहिए।

उदाहरण के लिए, “**पशु (Animal)**” शब्द का प्रयोग वेदों में केवल जीवित प्राणियों के लिए ही नहीं, बल्कि कई बार **इंद्रिय-नियंत्रण (Sense faculties)**, **मानव प्रवृत्तियाँ (Human tendencies)** या **कृषि-आधारित संसाधन (Agricultural assets)** के रूप में भी किया गया है। इसी प्रकार “**मेध (Sacrifice / Offering / Wisdom act)**” शब्द का अर्थ केवल बलिदान नहीं, बल्कि **बुद्धि-विकास (Intellectual refinement)** और **आंतरिक शुद्धि (Inner purification)** भी होता है। इस प्रकार “अश्वमेध” का एक गूढ़ अर्थ “**अश्व (Mind / Vital**

energy) का नियंत्रण और उन्नयन” भी हो सकता है, न कि केवल घोड़े की बलि।

इसी तरह **“अध्वर (Non-violent ritual)”** शब्द पर ध्यान दें यह **“ध्वर”** (हिंसा) में **“अ”** उपसर्ग जोड़ने से बना है, जिसका सीधा अर्थ है **“जहाँ हिंसा न हो”**। अर्थात् वैदिक यज्ञों की मूल अवधारणा ही **अहिंसा (Non-violence)** पर आधारित थी। यदि यज्ञों का वास्तविक उद्देश्य हिंसा होता, तो उन्हें **“अध्वर”** नहीं कहा जाता। यह स्वयं प्रमाण है कि वैदिक काल में यज्ञों का स्वरूप मूलतः **प्राकृतिक संतुलन (Ecological balance)**, **ऊर्जा रूपांतरण (Energy transformation)** और **सामाजिक समरसता (Social harmony)** से जुड़ा हुआ था।

जब हम सुत्त पिटक के सुत्त निपात में वर्णित **ब्रह्मन्धम्मिका सुत्त (Brahmanadhammika Sutta)** का अध्ययन करते हैं, तो **गौतम बुद्ध (Gautama Buddha)** एक अत्यंत महत्वपूर्ण ऐतिहासिक और नैतिक संकेत देते हैं। वे बताते हैं कि प्राचीन ब्राह्मणों का जीवन **सादगी (Simplicity)**, **संयम (Discipline)** और **ज्ञान-साधना (Pursuit of knowledge)** पर आधारित था। वे **लोभ (Greed)** और **भौतिक आकर्षण (Materialism)** से दूर रहकर समाज के नैतिक मार्गदर्शक थे।

बुद्ध स्पष्ट रूप से कहते हैं कि प्रारंभिक वैदिक परंपरा में यज्ञ **अहिंसात्मक (Non-violent)** थे और उनका उद्देश्य **धार्मिक अनुशासन (Spiritual discipline)** तथा **सामाजिक संतुलन (Social harmony)** था। लेकिन बाद में, जब कर्मकांडों में **आर्थिक लाभ (Economic gain)** और **प्रतिष्ठा (Status)** का तत्व जुड़ गया, तब इन यज्ञों का स्वरूप बदल गया।

इस संदर्भ में बुद्ध का यह कथन अत्यंत महत्वपूर्ण है कि **हिंसात्मक यज्ञ (Violent sacrifices)** न तो देवताओं को प्रिय हैं और न ही वे किसी

वास्तविक आध्यात्मिक फल (Spiritual benefit) को प्रदान करते हैं। इसके विपरीत, **अहिंसात्मक यज्ञ (Non-violent rituals)** ही समाज में शांति, संतुलन और कल्याण लाते हैं।

किन्तु समय के साथ, जब सामाजिक संरचना में परिवर्तन आया और ब्राह्मणों का संपर्क राजसत्ता और धन-संपत्ति से बढ़ा, तब धीरे-धीरे **लालसा (Material desire)** और **स्वार्थ (Self-interest)** ने स्थान लेना शुरू किया। बुद्ध के अनुसार, इसी परिवर्तन के परिणामस्वरूप कुछ यज्ञों का स्वरूप विकृत हुआ और उनमें **हिंसा (Violence)** तथा **पशु-हत्या (Animal killing)** जैसी प्रवृत्तियाँ प्रवेश करने लगीं। इतिहास की दृष्टि से देखें तो बाद के काल में, विशेषकर जब समाज में **राजनीतिक प्रतिस्पर्धा (Political competition)** और **आर्थिक लालसा (Material greed)** बढ़ी, तब कुछ कर्मकांडों को विकृत रूप में प्रस्तुत किया गया। **भाष्यकारों (Commentators)** ने कभी-कभी अपने समय की सामाजिक प्रवृत्तियों के अनुसार वेदों की व्याख्या की, जिससे मूल अर्थ परिवर्तित हो गया। यही कारण है कि **बौद्ध (Buddhist)** और **जैन (Jain)** ग्रंथों में भी उस समय के कुछ यज्ञों में हिंसा की आलोचना मिलती है।

अतः यह वर्णन यह स्पष्ट करता है कि यज्ञों में हिंसा कोई मूल वैदिक सिद्धांत नहीं थी, बल्कि समय के साथ उत्पन्न हुई एक **सामाजिक विकृति (Social distortion)** थी, जिसकी आलोचना स्वयं बुद्ध जैसे महापुरुष ने की। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सनातन परंपरा का मूल आधार **अहिंसा (Non-violence)**, **धर्म (Righteousness)** और **सर्वभूत कल्याण (Welfare of all beings)** ही रहा है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी देखें तो वैदिक यज्ञों का संबंध **पर्यावरणीय संतुलन (Environmental balance)**, **वायुमंडलीय शुद्धि (Atmospheric purification)** और **मानसिक एकाग्रता (Mental**

concentration) से जोड़ा जाता है। यज्ञ में प्रयुक्त जड़ी-बूटियाँ, घी और मंत्रोच्चार एक प्रकार का **ध्वनिक-ऊर्जा संयोजन (Acoustic-energy interaction)** उत्पन्न करते हैं, जो मानव मन और वातावरण दोनों पर सकारात्मक प्रभाव डाल सकता है। अतः यज्ञ का मूल स्वरूप एक प्रकार की **वैज्ञानिक प्रक्रिया (Scientific process)** था, न कि हिंसात्मक अनुष्ठान।

इसके अतिरिक्त, यदि हम **मीमांसा दर्शन (Mimamsa philosophy)** को देखें, तो वहाँ यज्ञों की व्याख्या अत्यंत सूक्ष्म और तार्किक रूप में की गई है। मीमांसा के अनुसार, यज्ञ का उद्देश्य बाहरी बलिदान नहीं, बल्कि **कर्तव्य पालन (Duty fulfillment)** और **आंतरिक अनुशासन (Inner discipline)** है। आचार्य उदयवीर शास्त्री जैसे विद्वानों ने यह स्पष्ट किया है कि “संज्ञापन” जैसे शब्दों का अर्थ **अवलोकन (Observation)** और **मूल्यांकन (Assessment)** है, न कि हत्या।

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि सनातन धर्म का मूल दर्शन **अहिंसा (Non-violence)**, **तर्क (Rationality)** और **आध्यात्मिक उन्नति (Spiritual evolution)** पर आधारित है। पशु-बलि जैसी अवधारणाएँ या तो **प्रतीकात्मक (Symbolic)** थीं, या फिर समय के साथ उत्पन्न हुई **सांस्कृतिक विकृतियाँ (Cultural distortions)** हैं। इसलिए हमें आवश्यक है कि हम ग्रंथों को केवल शब्दशः न पढ़ें, बल्कि उनके **गूढ़ार्थ (Deeper meaning)**, **संदर्भ (Context)** और **वैज्ञानिक दृष्टिकोण (Scientific perspective)** को समझें।

जब हम इस दृष्टि से सनातन धर्म को देखते हैं, तो यह केवल एक धार्मिक परंपरा नहीं, बल्कि एक **समग्र ज्ञान प्रणाली (Holistic knowledge system)** के रूप में सामने आता है, जो मानवता को **संतुलन (Balance)**, **सद्भाव (Harmony)** और **उच्च चेतना (Higher consciousness)** की ओर ले जाने का मार्ग प्रदान करता है।

3.5 मासिक धर्म के दौरान मंदिर प्रवेश क्यों नहीं? परंपरा, विज्ञान और वास्तविकता का विश्लेषण

पिछले कुछ शताब्दियों में महिलाओं से जुड़े अनेक विषयों को सनातन ग्रंथों से तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत (**distorted interpretation**) किया गया है, जिसके कारण आज यह भ्रांति (**misconception**) फैल गई है कि मासिक धर्म (**menstruation**) के दौरान स्त्री अपवित्र (**impure**) हो जाती है। जबकि मूल वैदिक दृष्टिकोण में ऐसा कोई सिद्धांत नहीं मिलता कि स्त्री इस अवस्था में भगवान के लिए अस्वीकार्य (**unacceptable**) हो जाती है। यह प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण है कि क्या वास्तव में ईश्वर, जो सर्वव्यापक (**omnipresent**) और करुणामय (**compassionate**) है, अपनी ही सृजन प्रक्रिया को अपवित्र मान सकता है? स्पष्ट रूप से उत्तर है नहीं।

सनातन धर्म में मासिक धर्म (**Menstruation**) को लेकर जो आज अनेक भ्रम (**misconceptions**) और विकृत धारणाएँ (**distorted beliefs**) प्रचलित हैं, उनका मूल कारण ग्रंथों की अपूर्ण व्याख्या (**incomplete interpretation**) और सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार बनी परंपराओं का अतिशयोक्तिपूर्ण (**exaggerated**) रूप है। मासिक धर्म के दौरान मंदिर प्रवेश पर रोक का विषय केवल धार्मिक नहीं, बल्कि ऐतिहासिक (**historical**), सांस्कृतिक (**cultural**) और वैज्ञानिक (**scientific**) आयामों से जुड़ा हुआ है। प्राचीन समय में यह नियम किसी अशुद्धता (**impurity**) के विचार से नहीं, बल्कि स्त्री के शारीरिक संरक्षण (**physical well-being**) और ऊर्जा संतुलन (**energy balance**) को ध्यान में रखकर बनाया गया था। उस समय न तो आधुनिक स्वच्छता साधन उपलब्ध थे और न ही आरामदायक जीवनशैली, इसलिए महिलाओं को विश्राम (**rest**) देने हेतु उन्हें सामाजिक और धार्मिक कार्यों से अस्थायी विराम दिया जाता था। वास्तव

में वैदिक और आयुर्वेदिक दृष्टिकोण से मासिक धर्म को **अपवित्र (impure)** नहीं बल्कि **पवित्र (sacred)** और **प्राकृतिक प्रक्रिया (natural biological process)** माना गया है, जो **सृजन शक्ति (creative power)** का प्रतीक है। **मासिक धर्म (Menstruation)** की अवधि को सनातन दृष्टिकोण में केवल शारीरिक प्रक्रिया नहीं, बल्कि एक **आध्यात्मिक अवसर (spiritual opportunity)** के रूप में भी देखा गया है। इस अवस्था में स्त्री को **रजस्वला (menstruating state)** कहा जाता है, जहाँ **रज गुण (activity principle)** का क्षय होता है और शरीर में स्वाभाविक रूप से **थकान (fatigue)**, **भारीपन (heaviness)** और **ऊर्जा में कमी (low energy)** अनुभव होती है।

आयुर्वेद (Ayurveda) में वर्णित **रजस्वला परिचर्या (menstrual regimen)** का उद्देश्य स्त्री को सामाजिक रूप से अलग करना नहीं। सनातन परंपरा के अनुसार, इस अवधि में **क्या करें (Do's)**- स्त्री को शांत वातावरण में रहकर **मौन साधना (silent meditation)**, **जप (chanting)** और **ध्यान (meditation)** करना चाहिए, क्योंकि इस समय मन अपेक्षाकृत अधिक स्थिर होता है और **सत्त्व गुण (purity & balance)** की ओर बढ़ना आसान होता है। शरीर को पर्याप्त **आराम (adequate rest)** देना, हल्का और सुपाच्य भोजन करना तथा मानसिक शांति बनाए रखना अत्यंत लाभकारी होता है।

वहीं **क्या न करें (Don'ts)**- अत्यधिक **शारीरिक श्रम (physical exertion)**, **मानसिक तनाव (mental stress)**, अधिक बोलना, शोरगुल में रहना, और अनावश्यक गतिविधियाँ करने से बचना चाहिए, क्योंकि ये **वात (vata)** और **पित्त (pitta)** को असंतुलित कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त, पारंपरिक रूप से कुछ कार्यों से विराम लेने की सलाह दी गई, जिसका उद्देश्य किसी प्रकार का प्रतिबंध नहीं बल्कि **स्वास्थ्य संरक्षण (health preservation)** है।

दार्शनिक रूप से, जब **रज गुण (activity energy)** कम हो जाता है, तब व्यक्ति के भीतर **सत्त्व (clarity)** और **तम (inertia)** के बीच संतुलन बनता है, और यही समय **आत्मिक उन्नति (inner growth)** के लिए अनुकूल होता है। इसी कारण कहा गया है कि यह अवस्था स्त्री के लिए **अभिशाप (curse)** नहीं, बल्कि एक **वरदान (blessing)** है जहाँ शरीर स्वयं शुद्धि (cleansing) करता है और मन साधना के लिए स्वाभाविक रूप से तैयार हो जाता है।

मंदिर न जाने की परंपरा भी किसी **धार्मिक निषेध (religious prohibition)** से अधिक एक **व्यावहारिक कारण (practical reasoning)** से जुड़ी है, क्योंकि बिना स्नान के पूजा-अर्चना करना परंपरागत रूप से उचित नहीं माना गया। साथ ही, **तांत्रिक एवं आगमिक परंपराओं (tantric & agamic traditions)** के अनुसार मंदिरों में उपस्थित **ऊर्जा क्षेत्र (energy fields)** शरीर के संवेदनशील अवस्था में संतुलन को प्रभावित कर सकते हैं। परंतु इसका अर्थ यह नहीं कि स्त्री **अधिकारहीन (deprived of rights)** या **अशुद्ध (impure)** है। इसके विपरीत, **कामाख्या परंपरा (Kamakhyā tradition)** जैसे उदाहरण यह सिद्ध करते हैं कि स्वयं देवी को भी इस अवस्था में पूजनीय माना गया है, जो मासिक धर्म की **दैवीयता (divinity)** को दर्शाता है।

इसके अतिरिक्त, आधुनिक समय में बढ़ती **पीसीओडी (PCOD – Polycystic Ovarian Disease)** और **पीसीओएस (PCOS – Polycystic Ovary Syndrome)** जैसी समस्याएँ यह संकेत देती हैं कि पारंपरिक जीवनशैली और नियमों से दूर जाने पर **हार्मोनल असंतुलन (hormonal imbalance)** और स्वास्थ्य समस्याएँ बढ़ सकती हैं। अतः यह आवश्यक है कि हम सनातन परंपराओं को **अंधविश्वास (blind belief)** के रूप में नहीं, बल्कि **वैज्ञानिक एवं दार्शनिक दृष्टिकोण (scientific and philosophical perspective)** से समझें।

निष्कर्षतः, मासिक धर्म से जुड़े नियम किसी प्रकार का भेदभाव (discrimination) नहीं, बल्कि स्त्री के स्वास्थ्य संरक्षण (health preservation) और आध्यात्मिक उन्नति (spiritual growth) के लिए बनाए गए संतुलित निर्देश हैं, जिन्हें समय के साथ सही संदर्भ में समझने की आवश्यकता है।

3.6 लेपाक्षी मंदिर का लटकता स्तंभ और संरचनात्मक अभियांत्रिकी का वैज्ञानिक विश्लेषण

आंध्र प्रदेश के अनंतपुर जिले में स्थित लेपाक्षी मंदिर भारतीय प्राचीन स्थापत्य-कला (Ancient Architecture), संरचनात्मक अभियांत्रिकी (Structural Engineering) और कलात्मक मूर्तिकला (Sculptural Artistry) का अद्भुत उदाहरण माना जाता है। 16वीं शताब्दी में विजयनगर साम्राज्य के समय निर्मित यह मंदिर भगवान वीरभद्र को समर्पित है, जो भगवान शिव का उग्र रूप माना जाता है। इस मंदिर की विशेषता केवल इसकी भव्यता ही नहीं है, बल्कि इससे जुड़े कई रहस्यमय पहलू भी हैं, जो आज भी इतिहासकारों, वैज्ञानिकों और पुरातत्वविदों के लिए जिज्ञासा का विषय बने हुए हैं। मंदिर की वास्तुकला में ज्यामितीय समरूपता (Geometrical Symmetry), भार संतुलन सिद्धांत (Load Distribution Principle) और पत्थर संरचना तकनीक (Stone Structural Technology) का अत्यंत परिष्कृत उपयोग दिखाई देता है।

लेपाक्षी मंदिर का सबसे प्रसिद्ध रहस्य इसका लटकता हुआ स्तंभ (Hanging Pillar) है, जिसे स्थानीय रूप से आकाश स्तंभ भी कहा जाता है। यह स्तंभ जमीन को पूरी तरह स्पर्श नहीं करता और इसके नीचे से कपड़ा या कागज आसानी से निकल जाता है। आधुनिक इंजीनियरिंग के अनुसार यह संभवतः मंदिर की भार वहन प्रणाली (Load-bearing

System) और **संरचनात्मक संतुलन (Structural Balance)** का परिणाम हो सकता है, जहाँ पूरा मंडप इस प्रकार डिज़ाइन किया गया कि स्तंभों पर पड़ने वाला भार समान रूप से वितरित हो। कुछ शोधकर्ता यह भी मानते हैं कि यह स्तंभ वास्तुकारों की **इंजीनियरिंग दक्षता (Engineering Precision)** को प्रदर्शित करने के लिए जानबूझकर इस प्रकार बनाया गया होगा।

मंदिर परिसर में एक विशाल **पदचिह्न (Giant Footprint)** भी देखने को मिलता है, जिसकी लंबाई लगभग तीन फीट मानी जाती है। स्थानीय परंपराओं के अनुसार यह पदचिह्न देवी सीता, हनुमान या जटायु से संबंधित माना जाता है। इस पदचिह्न की सबसे रोचक विशेषता यह है कि इसमें अक्सर पानी भरा रहता है, जो अत्यधिक गर्मी में भी पूरी तरह सूखता नहीं है। वैज्ञानिक दृष्टि से यह संभवतः **भूमिगत जल स्रोत (Subsurface Water Seepage)** या **सूक्ष्म जल रिसाव तंत्र (Capillary Water Movement)** का परिणाम हो सकता है, जिसके कारण पत्थर की सतह पर लगातार नमी बनी रहती है।

मंदिर का एक और महत्वपूर्ण आकर्षण **नागलिंग मूर्ति (Nagalinga Sculpture)** है, जिसमें एक विशाल शिवलिंग को सात फनों वाले सर्प द्वारा घेरा हुआ दिखाया गया है। यह मूर्ति एक ही ग्रेनाइट पत्थर से तराशी गई है, जो प्राचीन शिल्पकारों की **एकाशमीय मूर्तिकला तकनीक (Monolithic Sculpture Technique)** को दर्शाती है। इस प्रकार की मूर्तियों के निर्माण में अत्यंत सटीक **पत्थर तराशने की विधि (Precision Stone Carving)** और उन्नत **शिल्प अभिकल्पना (Sculptural Design)** की आवश्यकता होती है।

लेपाक्षी मंदिर की छतों पर बने विशाल चित्र भी अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। इनमें भगवान वीरभद्र का भव्य चित्रण मिलता है, जो भारत के सबसे बड़े प्राचीन **भित्ति चित्रों (Fresco Paintings)** में से एक माना जाता है। इन चित्रों में

प्राकृतिक खनिजों और पौधों से बने रंगों का उपयोग किया गया था, जिसे आधुनिक विज्ञान में **प्राकृतिक वर्णक तकनीक (Natural Pigment Technology)** कहा जाता है। यही कारण है कि कई शताब्दियों के बाद भी इन चित्रों के रंग अपेक्षाकृत जीवंत दिखाई देते हैं।

मंदिर जिस पहाड़ी पर स्थित है उसे **कूर्म शैल संरचना (Kurma Hill Formation)** कहा जाता है, क्योंकि उसका आकार कछुए के समान दिखाई देता है। भूविज्ञान की दृष्टि से यह एक प्राकृतिक **ग्रेनाइट चट्टानी संरचना (Granite Rock Formation)** है। प्राचीन वास्तुकार अक्सर मंदिरों के निर्माण के लिए ऐसी प्राकृतिक संरचनाओं का चयन करते थे, जिससे **भौगोलिक स्थिरता (Geological Stability)** और **धार्मिक प्रतीकात्मकता (Sacred Symbolism)** दोनों का समन्वय हो सके।

लेपाक्षी नाम की उत्पत्ति भी रामायण से जुड़ी एक प्रसिद्ध कथा से मानी जाती है। मान्यता के अनुसार जब रावण सीता का हरण कर रहा था, तब जटायु ने उसे रोकने का प्रयास किया और युद्ध में घायल होकर इसी स्थान पर गिर पड़े। जब भगवान राम वहाँ पहुँचे तो उन्होंने जटायु से कहा “ले पक्षी” अर्थात् “उठो, हे पक्षी।” इसी कथन से इस स्थान का नाम लेपाक्षी पड़ा। यह कथा इस मंदिर को **पौराणिक इतिहास (Mythological Heritage)** और **सांस्कृतिक परंपरा (Cultural Tradition)** से जोड़ती है।

मंदिर परिसर में स्थित **अपूर्ण कल्याण मंडप (Incomplete Kalyana Mandapa)** भी इतिहास का एक रोचक रहस्य है। यह मंडप अत्यंत सुंदर नक्काशीदार स्तंभों से बना है, लेकिन इसका निर्माण अधूरा रह गया। इतिहासकारों के अनुसार इसका कारण संभवतः **राजनीतिक परिवर्तन (Political Transition)**, **आर्थिक संसाधनों की कमी (Resource Constraints)** या विजयनगर साम्राज्य के पतन से जुड़ा हो सकता है।

इस प्रकार लेपाक्षी मंदिर केवल एक धार्मिक स्थल नहीं बल्कि **इतिहास (History)**, **वास्तुकला (Architecture)**, **भौतिकी (Physics)** और **पुरातत्व विज्ञान (Archaeology)** के अध्ययन का महत्वपूर्ण केंद्र है। यहाँ के रहस्य यह दर्शाते हैं कि प्राचीन भारतीय शिल्पकारों और वास्तुकारों को **संरचनात्मक गणित (Structural Mathematics)** और **भूविज्ञान (Geology)** जैसे विषयों की गहरी समझ थी। यही कारण है कि लेपाक्षी मंदिर आज भी वैज्ञानिकों, इतिहासकारों और पर्यटकों के लिए समान रूप से आकर्षण और जिज्ञासा का विषय बना हुआ है।

3.7 रानी की वाव “जमीन के अंदर उल्टा मंदिर” स्थापत्य कला, गणितीय ज्यामिति और जल विज्ञान का समन्वय

रानी की वाव (Rani ki Vav), जो **पतन (Patan)** में स्थित है, भारतीय स्थापत्य कला, जल प्रबंधन और सांस्कृतिक प्रतीकवाद का एक अद्वितीय उदाहरण है। यह भव्य सीढ़ीदार बावड़ी 11वीं शताब्दी में **उदयमती (Udayamati)** द्वारा अपने पति **भीमदेव (Bhimdev)** की स्मृति में बनवाई गई थी। यह संरचना न केवल एक जल-स्रोत के रूप में कार्य करती थी, बल्कि अपने अद्भुत स्थापत्य विन्यास के कारण एक **उल्टे मंदिर जैसी संरचनात्मक अवधारणा (Inverted Temple-like Architectural Concept)** को भी प्रदर्शित करती है। आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से देखा जाए तो इसकी पूरी संरचना **हाइड्रोलॉजिकल इंजीनियरिंग (Hydrological Engineering)**, **भू- जल पुनर्भरण प्रणाली (Groundwater Recharge System)** और **संरचनात्मक स्थायित्व (Structural Stability)** जैसे सिद्धांतों पर आधारित प्रतीत होती है।

रानी की वाव का स्थापत्य विन्यास अत्यंत जटिल और सुविचारित है। लगभग **213 फीट लंबी, 66 फीट चौड़ी** और लगभग **92 फीट गहरी** यह बावड़ी सात स्तरों में निर्मित है, जहाँ सीढ़ियों की श्रृंखला एक गहरे

गोलाकार कुएँ तक पहुँचती है। इस संरचना में **200 से अधिक स्तंभ** और बहुमंजिला मंडप बनाए गए हैं, जो **भार-वितरण सिद्धांत (Load Distribution Principle)** और **संरचनात्मक संतुलन (Structural Equilibrium)** के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। आधुनिक सिविल इंजीनियरिंग के दृष्टिकोण से यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारतीय वास्तुकारों को **भू-तकनीकी स्थिरता (Geotechnical Stability)** और **जल-दाब संतुलन (Hydrostatic Pressure Balance)** का गहन ज्ञान था, जिससे इतनी गहरी संरचना सदियों तक सुरक्षित रह सकी।

इस बावड़ी की सबसे विशिष्ट विशेषता इसकी अत्यंत समृद्ध मूर्तिकला है। यहाँ लगभग **500 से अधिक प्रमुख मूर्तियाँ और 1000 से अधिक लघु आकृतियाँ** उकेरी गई हैं, जिनमें विभिन्न **देवी-देवताओं, आकाशीय प्राणियों, साधुओं** और सामान्य जीवन के दृश्य दर्शाए गए हैं। विशेष रूप से **भगवान विष्णु के विभिन्न रूपों, दशावतार, अर्धनारीश्वर तथा नवग्रह की मूर्तियाँ** धार्मिक दर्शन और ब्रह्मांडीय अवधारणाओं को प्रकट करती हैं। इन मूर्तियों की सूक्ष्म नक्काशी केवल कलात्मक कौशल का ही प्रमाण नहीं है, बल्कि यह उस समय की **प्रतीकात्मक ब्रह्मांडीय संरचना (Symbolic Cosmological Representation)** और **धार्मिक दर्शन की दृश्य अभिव्यक्ति (Visual Representation of Spiritual Philosophy)** को भी दर्शाती है।

आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण से रानी की वाव को एक उन्नत **जल संरक्षण और प्रबंधन प्रणाली (Advanced Water Conservation and Management System)** के रूप में भी समझा जा सकता है। सीढ़ीदार संरचना के कारण वर्षा का जल धीरे-धीरे नीचे के जलाशय में एकत्रित होता था और आसपास की मिट्टी में समाहित होकर भूजल स्तर को बनाए रखने में सहायता करता था। इस प्रकार यह संरचना एक प्रकार की **प्राकृतिक जल-संचयन तकनीक (Natural Rainwater Harvesting Technology)** और **सतत जल प्रबंधन मॉडल**

(Sustainable Water Management Model) का उदाहरण प्रस्तुत करती है।

समय के साथ सरस्वती नदी की बाढ़ और गाद के कारण यह पूरी संरचना मिट्टी में दब गई थी, किंतु बाद में इसके पुनः उत्खनन और संरक्षण के प्रयासों से इसकी भव्यता पुनः सामने आई। इसके ऐतिहासिक और स्थापत्य महत्व को देखते हुए **2014** में इसे **UNESCO द्वारा विश्व धरोहर स्थल** के रूप में मान्यता दी गई। इस प्रकार रानी की वाव केवल एक ऐतिहासिक स्मारक नहीं बल्कि प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा, पर्यावरणीय समझ और वैज्ञानिक दृष्टिकोण का जीवंत प्रमाण है, जो यह दर्शाता है कि हमारे पूर्वजों ने कला, धर्म और विज्ञान को एकीकृत करते हुए ऐसी संरचनाएँ निर्मित कीं जो आज भी आधुनिक वैज्ञानिक अध्ययन के लिए प्रेरणादायक बनी हुई हैं।

3.8 विरुपाक्ष मंदिर (Virupaksha Temple) में पिनहोल कैमरा सिद्धांत और स्थापत्य योजना का विश्लेषण

दक्षिण भारत के ऐतिहासिक नगर **हम्पी (Hampi)** में स्थित **विरुपाक्ष मंदिर (Virupaksha Temple)** प्राचीन भारतीय स्थापत्य, आध्यात्मिक परंपरा और आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि का अद्भुत संगम प्रस्तुत करता है। यह मंदिर मुख्यतः **भगवान शिव के विरूपाक्ष स्वरूप** को समर्पित है और इसका इतिहास **विजयनगर साम्राज्य** के वैभव से जुड़ा हुआ है। इस मंदिर की संरचना केवल धार्मिक आस्था का प्रतीक नहीं बल्कि प्राचीन भारतीय अभियंताओं की **सूक्ष्म अभिकल्पना (Precise Engineering Design)**, **प्रकाशिकी सिद्धांत (Optical Principles)** और **संरचनात्मक ज्यामिति (Structural Geometry)** की गहरी समझ को भी दर्शाती है।

मंदिर की सबसे प्रसिद्ध विशेषता इसका **उल्टा प्रतिबिंब प्रभाव (Inverted Shadow Phenomenon)** है। मंदिर के भीतर एक छोटे

अंधकारमय कक्ष में मुख्य गोपुरम का उल्टा चित्र दीवार पर दिखाई देता है। आधुनिक विज्ञान की भाषा में इसे **पिनहोल कैमरा प्रभाव (Pinhole Camera Effect)** कहा जाता है, जहाँ एक छोटे छिद्र से प्रवेश करने वाली प्रकाश किरणें बाहरी वस्तु का उल्टा प्रतिबिंब निर्मित करती हैं। यह तथ्य अत्यंत रोचक है कि सदियों पहले मंदिर के वास्तुकारों को **प्रकाशिकी (Optics)** और **प्रकाश प्रक्षेपण सिद्धांत (Light Projection Principle)** की इतनी सूक्ष्म समझ थी कि उन्होंने इसे मंदिर की संरचना में ही समाहित कर दिया।

इसके अतिरिक्त मंदिर का विशाल **गोपुरम (Temple Tower)** एक और रोचक वैज्ञानिक अनुभव उत्पन्न करता है। जब दर्शक अलग-अलग स्थानों से इसे देखते हैं तो इसकी ऊँचाई भिन्न-भिन्न प्रतीत होती है। यह घटना **दृश्य भ्रम (Optical Illusion)** और **परिप्रेक्ष्य ज्यामिति (Perspective Geometry)** से संबंधित है। वास्तुकारों ने टावर की संरचना को इस प्रकार बनाया कि उसका शीर्ष क्रमशः संकुचित होता जाए, जिससे देखने के कोण के अनुसार उसका अनुपात बदलता हुआ प्रतीत हो। यह प्राचीन भारतीय स्थापत्य में **मानव दृष्टि-विज्ञान (Human Visual Perception)** के प्रयोग का उत्कृष्ट उदाहरण है।

मंदिर परिसर के नीचे कुछ **भूमिगत कक्ष (Subterranean Chambers)** और संभावित सुरंगों के होने की भी चर्चा मिलती है। ऐतिहासिक दृष्टि से इनका उपयोग संभवतः **सुरक्षा तंत्र (Defensive Infrastructure)**, **धार्मिक अनुष्ठान स्थल (Ritual Chambers)** या **धन-संग्रह भंडार (Treasure Storage Chambers)** के रूप में किया जाता रहा होगा। आधुनिक पुरातत्वविद इन संरचनाओं को **भू-भेदन तकनीक (Ground-Penetrating Survey Techniques)** और **भू-भौतिकीय विश्लेषण (Geophysical Analysis)** की सहायता से समझने का प्रयास कर रहे हैं।

मंदिर के गर्भगृह में स्थापित शिवलिंग के समीप निरंतर जल की उपस्थिति भी एक रोचक विषय है। यह संभवतः किसी छिपे हुए जलस्रोत (Hidden Aquifer) या सूक्ष्म जलधार प्रणाली (Subsurface Water Channel) के कारण होता होगा। वैज्ञानिक दृष्टि से यह हाइड्रोलॉजिकल संतुलन (Hydrological Balance) और प्राकृतिक जल संचरण प्रणाली (Natural Water Circulation System) का परिणाम हो सकता है।

इन सभी विशेषताओं से स्पष्ट होता है कि विरुपाक्ष मंदिर केवल एक धार्मिक स्थल नहीं बल्कि प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा का जीवंत उदाहरण है। यहाँ आध्यात्मिक दर्शन (Spiritual Philosophy), स्थापत्य विज्ञान (Architectural Science) और प्राकृतिक सिद्धांतों (Natural Scientific Principles) का ऐसा समन्वय दिखाई देता है, जो यह संकेत देता है कि प्राचीन भारत के वास्तुकार केवल कलाकार ही नहीं बल्कि उत्कृष्ट वैज्ञानिक (Scientists) और अभियंता (Engineers) भी थे।

3.9 शिव का मंदिर जहाँ दोपहर में भी छाया नहीं पड़ती | बृहदेश्वर रहस्य | महादेवसेतु द्वारा

बृहदेश्वर मंदिर (Brihadeeswarar Temple), जो तंजावुर (Thanjavur) (तमिलनाडु) में स्थित है, भारतीय स्थापत्य-कला, उन्नत अभियांत्रिकी (Advanced Engineering) और गणितीय ज्यामिति (Mathematical Geometry) का अद्वितीय उदाहरण माना जाता है। लगभग एक हजार वर्ष पूर्व राजा चोला द्वारा निर्मित यह भव्य मंदिर भगवान शिव को समर्पित है और अपने विशाल विमानम् (Temple Tower) के कारण विश्वभर में प्रसिद्ध है। मंदिर का मुख्य शिखर लगभग 66 मीटर (लगभग 216 फीट) ऊँचा है और उसके शीर्ष पर रखा गया

विशाल पत्थर लगभग **70-80 टन** भार का माना जाता है। आश्चर्य की बात यह है कि इतने विशाल भार और ऊँचाई के बावजूद यह संरचना आज भी अत्यंत स्थिर है, जो प्राचीन भारतीय **संरचनात्मक अभिकल्पना (Structural Design)** और **भार-संतुलन सिद्धांत (Load Distribution Principle)** की गहरी समझ को दर्शाती है।

लोकप्रिय कथाओं में यह कहा जाता है कि इस मंदिर के शिखर की **छाया (Shadow)** दोपहर में भूमि पर दिखाई नहीं देती। यद्यपि वास्तविकता यह है कि छाया पूर्णतः गायब नहीं होती, बल्कि मंदिर की ज्यामितीय संरचना और सूर्य की ऊँचाई के कारण वह प्रायः मंदिर के आधार क्षेत्र (Base Platform) के भीतर ही पड़ती है, जिससे बाहरी भूमि पर स्पष्ट छाया दिखाई नहीं देती। यह घटना **सौर अभिविन्यास (Solar Orientation)** और **कोणीय ज्यामिति (Angular Geometry)** से संबंधित है। जब सूर्य लगभग शीर्ष स्थिति (Near Zenith Position) में होता है, तब ऊँची और सममित संरचनाओं की छाया उनके आधार के आसपास ही सीमित रह जाती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि मंदिर का विन्यास केवल धार्मिक दृष्टि से नहीं बल्कि **खगोलीय अवलोकन (Astronomical Observation)** और **सौर-गणितीय गणना (Solar Mathematical Calculation)** के आधार पर भी किया गया होगा।

इस मंदिर के निर्माण की एक और महत्वपूर्ण विशेषता इसकी **ग्रेनाइट संरचना (Granite Architecture)** है। उल्लेखनीय तथ्य यह है कि तंजावुर के आसपास प्राकृतिक रूप से बड़े ग्रेनाइट पत्थर उपलब्ध नहीं थे, फिर भी पूरे मंदिर का निर्माण विशाल ग्रेनाइट खंडों से किया गया। इससे अनुमान लगाया जाता है कि पत्थरों को दूरस्थ स्थानों से लाकर अत्यंत संगठित **परिवहन प्रणाली (Logistical Transport System)** और **मानव-श्रम आधारित यांत्रिकी (Human-powered Mechanical Systems)** की सहायता से स्थापित किया गया होगा। कई

इतिहासकारों के अनुसार शिखर पर रखे गए विशाल पत्थर को ऊपर चढ़ाने के लिए संभवतः कई किलोमीटर लंबा **मिट्टी का ढालान (Earthen Inclined Ramp)** बनाया गया था, जिसके माध्यम से धीरे-धीरे पत्थर को ऊपर ले जाया गया।

संरचनात्मक दृष्टि से मंदिर में **अंतर-लॉकिंग पत्थर तकनीक (Interlocking Stone Technique)** और **गुरुत्व-संतुलन संरचना (Gravity-based Structural Stability)** का उपयोग किया गया है। इसमें पत्थरों को इस प्रकार काटकर और व्यवस्थित कर रखा गया कि उनका भार स्वयं एक-दूसरे को स्थिर बनाए रखे। यह तकनीक आधुनिक **संरचनात्मक यांत्रिकी (Structural Mechanics)** के सिद्धांतों से भी मेल खाती है, जहाँ भार का वितरण पूरे ढाँचे में संतुलित रूप से फैलाया जाता है। यही कारण है कि एक सहस्राब्दी से अधिक समय बीत जाने के बाद भी यह मंदिर भूकंपीय गतिविधियों, मौसमीय अपरदन और समय के प्रभावों के बावजूद मजबूती से खड़ा है।

वास्तव में बृहदेश्वर मंदिर केवल धार्मिक आस्था का प्रतीक ही नहीं बल्कि प्राचीन भारत की **वैज्ञानिक दृष्टि (Scientific Vision)**, **स्थापत्य गणित (Architectural Mathematics)** और **खगोलीय ज्ञान (Astronomical Knowledge)** का जीवंत प्रमाण है। यह स्मारक यह दर्शाता है कि उस समय के भारतीय वास्तुकार केवल कलाकार ही नहीं बल्कि **उत्कृष्ट गणितज्ञ (Mathematicians)**, **खगोलविद (Astronomers)** और **अभियंता (Engineers)** भी थे। इसी कारण आज यह मंदिर भारतीय वैज्ञानिक और सांस्कृतिक विरासत के सबसे महान उदाहरणों में गिना जाता है।

3.10 मदुरै का मीनाक्षी अम्मन मंदिर: प्राचीन भारतीय वास्तुकला और वैज्ञानिक डिजाइन का अद्भुत उदाहरण

तमिलनाडु (Tamil Nadu) के मदुरै (Madurai), में स्थित मीनाक्षी अम्मन मंदिर (Meenakshi Amman Temple), प्राचीन भारतीय स्थापत्य विज्ञान (Architectural Science), ज्यामितीय योजना (Geometric Planning) और ध्वनिक अभियांत्रिकी (Acoustic Engineering) का अद्भुत उदाहरण है। यह मंदिर केवल धार्मिक आस्था का केंद्र ही नहीं बल्कि अत्यंत उन्नत सममितीय वास्तु योजना (Symmetrical Architectural Layout), संरचनात्मक ज्यामिति (Structural Geometry) और गणितीय अनुपात सिद्धांत (Mathematical Proportion Principle) का उत्कृष्ट उदाहरण भी माना जाता है। लगभग दो हजार वर्षों से अधिक प्राचीन इस मंदिर का वर्तमान स्वरूप मुख्यतः दक्षिण भारतीय द्रविड़ स्थापत्य शैली (Dravidian Architecture) को दर्शाता है। मंदिर का विशाल परिसर लगभग 14 एकड़ क्षेत्र में फैला है और इसके चारों दिशाओं में बने ऊँचे गोपुरम (Gopuram – Pyramid-shaped gateway towers) अत्यंत जटिल त्रि-आयामी शिल्प संरचना (Three-dimensional sculptural structure) का उदाहरण हैं। इनमें हजारों मूर्तियाँ हैं जो केवल धार्मिक प्रतीक ही नहीं बल्कि उस समय की सांस्कृतिक सूचना प्रणाली (Cultural Information System) के रूप में भी कार्य करती थीं। मंदिर परिसर के भीतर लगभग 33,000 से अधिक सूक्ष्म मूर्तियाँ और सैकड़ों स्तंभ हैं, जिनमें से अनेक स्तंभ एक ही चट्टान से तराशे गए हैं। विशेष रूप से प्रसिद्ध हजार स्तंभ मंडप (Thousand Pillar Hall) में वास्तव में 985 स्तंभ हैं, जिन्हें अत्यंत सटीक ज्यामितीय सममिति (Geometrical Symmetry) और संरचनात्मक संतुलन सिद्धांत (Structural Balance Principle) के आधार पर व्यवस्थित किया गया

है। इन स्तंभों की व्यवस्था इस प्रकार की गई है कि वे छत के भार को समान रूप से वितरित करते हैं, जिसे आधुनिक इंजीनियरिंग भाषा में **भार-वितरण संतुलन (Load Distribution Balance)** और **लोड ट्रांसफर मैकेनिज़्म (Load Transfer Mechanism)** कहा जाता है। प्रत्येक स्तंभ का स्थान, आकार और दूरी अत्यंत सटीक **ज्यामितीय ग्रिड प्रणाली (Geometric Grid System)** के आधार पर निर्धारित किया गया है। इससे पूरी संरचना में **संरचनात्मक स्थिरता (Structural Stability)** बनी रहती है और भवन लंबे समय तक सुरक्षित रहता है। यही कारण है कि यह मंदिर सदियों से प्राकृतिक क्षरण और पर्यावरणीय प्रभावों के बावजूद मजबूती से खड़ा है। इन गोपुरमों की ऊँचाई, चौड़ाई और झुकाव में विशेष **संरचनात्मक संतुलन सिद्धांत (Structural Equilibrium Principle)** का पालन किया गया है, जिससे उनका भार नीचे की ओर समान रूप से स्थानांतरित होता है।

इस मंदिर की योजना केवल धार्मिक वास्तुकला नहीं बल्कि उन्नत **पर्यावरणीय वास्तु-प्रबंधन (Environmental Architectural Management)** को भी दर्शाती है। मंदिर के विभिन्न गलियारों, प्रांगणों और खुले स्थानों को इस प्रकार डिज़ाइन किया गया है कि प्राकृतिक **वातायन प्रणाली (Natural Ventilation System)** और **प्रकाश वितरण (Light Distribution Mechanism)** स्वतः संचालित हो सके। यह व्यवस्था आंतरिक तापमान को नियंत्रित रखने में सहायता करती है, जो आधुनिक **तापीय संतुलन तंत्र (Thermal Regulation System)** और **सस्टेनेबल आर्किटेक्चर (Sustainable Architecture)** के सिद्धांतों से काफी मेल खाती है। इसके अतिरिक्त मंदिर के भीतर स्थित **स्वर्ण कमल सरोवर (Golden Lotus Pond)** एक प्रकार का **जल प्रबंधन तंत्र (Hydrological Water Management System)** भी है, जो वर्षा जल और भूजल संतुलन से

जुड़ा हुआ माना जाता है। कई विद्वानों के अनुसार मंदिर की संरचना में प्रयुक्त **अनुनाद और ध्वनि प्रतिध्वनि (Resonance and Sound Reflection)** का सिद्धांत भी दिखाई देता है, विशेष रूप से स्तंभों और मंडपों के निर्माण में।

धार्मिक परंपरा के अनुसार मंदिर की अधिष्ठात्री देवी मीनाक्षी को **दैवी स्त्री ऊर्जा (Divine Feminine Energy)** या **शक्ति (Cosmic Energy)** का प्रतीक माना जाता है, जबकि उनके पति सुंदरेश्वर भगवान शिव के रूप हैं। मंदिर में प्रतिवर्ष आयोजित होने वाला **चिथिरै उत्सव (Chithirai Festival)** एक विशाल सामाजिक-धार्मिक आयोजन है, जिसमें देवी मीनाक्षी और भगवान सुंदरेश्वर के दिव्य विवाह का आयोजन होता है। यह आयोजन केवल धार्मिक अनुष्ठान नहीं बल्कि एक विशाल **सामाजिक-सांस्कृतिक नेटवर्क (Socio-Cultural Network)** और **मानव व्यवहार अध्ययन (Human Behavioral Dynamics)** का भी उदाहरण प्रस्तुत करता है, क्योंकि लाखों श्रद्धालु इसमें भाग लेते हैं।

मंदिर के कई भागों में ध्वनि के प्रसार को भी ध्यान में रखा गया है। विशाल मंडपों की छत और स्तंभों की संरचना इस प्रकार बनाई गई है कि मंत्रोच्चार या संगीत की ध्वनि पूरे परिसर में संतुलित रूप से गूँज सके। इस प्रकार की संरचना आधुनिक **ध्वनिकी अभियांत्रिकी (Acoustic Engineering)** और **अनुनादी कंपन सिद्धांत (Resonant Vibration Principle)** से जुड़ी मानी जाती है। यही कारण है कि मंदिर के भीतर उत्पन्न होने वाली ध्वनि एक विशेष आध्यात्मिक वातावरण का निर्माण करती है।

आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाए तो मीनाक्षी अम्मन मंदिर केवल आस्था का केंद्र ही नहीं बल्कि प्राचीन भारत की **बहु-विषयी ज्ञान प्रणाली (Multidisciplinary Knowledge System)** का जीवंत उदाहरण है, जिसमें **स्थापत्य अभियांत्रिकी (Architectural Engineering)**,

गणितीय सममिति (Mathematical Symmetry), पर्यावरणीय डिजाइन (Environmental Design) और सांस्कृतिक प्रौद्योगिकी (Cultural Technology) का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है।

3.11 समंदर के बीच मीठा पानी? रामेश्वरम का 22 कुओं का रहस्य!

रामेश्वरम (Rameswaram), तमिलनाडु के तट पर स्थित, केवल एक धार्मिक तीर्थस्थल ही नहीं बल्कि भू-वैज्ञानिक (Geological) और हाइड्रोलॉजिकल (Hydrological) दृष्टि से अद्वितीय स्थल है। तमिलनाडु के पंबन द्वीप पर स्थित यह मंदिर हिंदू धर्म के बारह ज्योतिर्लिंगों में से एक से जुड़ा माना जाता है और चार प्रमुख धर्मों में भी इसकी गणना की जाती है। पौराणिक कथा के अनुसार भगवान राम ने लंका विजय के बाद शिव की आराधना करने के लिए यहाँ शिवलिंग की स्थापना की थी। यद्यपि यह कथा धार्मिक आस्था से जुड़ी है, किंतु इस स्थल के आसपास पाए जाने वाले भौगोलिक और जलवैज्ञानिक तत्व इसे वैज्ञानिक दृष्टि से भी अत्यंत रोचक बनाते हैं।

मंदिर का सबसे प्रसिद्ध पहलू इसके भीतर स्थित 22 पवित्र तीर्थकुंड (Sacred Wells) हैं। आश्चर्य की बात यह है कि ये सभी कुंड समुद्र के बिल्कुल निकट होने के बावजूद मीठे पानी के स्रोत हैं। सामान्य विज्ञान के अनुसार, समुद्र के इतने समीप स्थित भूजल (Groundwater) हमेशा खारा होना चाहिए, क्योंकि समुद्र का पानी आस-पास की मिट्टी और चट्टानों में प्रवेश कर जाता है, इसे सी वाटर इंट्रूजन (Sea Water Intrusion) कहा जाता है। किंतु रामेश्वरम के ये कुएँ इस प्राकृतिक नियम (Natural Law) को चुनौती देते हैं और अपने पानी की विशिष्टता (Uniqueness), तापमान (Temperature Variation) और खनिजीय संरचना (Mineral Composition) के कारण वैज्ञानिकों के लिए आज भी परिशीलन (Investigation) का विषय बने हुए हैं।

कुछ वैज्ञानिकों के अनुसार यह घटना द्वीपों में पाई जाने वाली **फ्रेशवॉटर लेंस (Freshwater Lens)** नामक भूवैज्ञानिक प्रक्रिया से संबंधित हो सकती है। जब वर्षा का जल भूमि में रिसकर नीचे जाता है, तो वह समुद्री जल से हल्का होने के कारण उसके ऊपर एक मीठे जल की परत बना लेता है। यह जल चट्टानों और रेत की परतों के बीच फँसकर लंबे समय तक संरक्षित रह सकता है। रामनाथस्वामी मंदिर के आसपास की भू-रचना मुख्यतः **रेतीली और छिद्रयुक्त चूना-पत्थर संरचना (Porous Limestone Formation)** से बनी है, जो वर्षा के जल को संग्रहित करने और प्राकृतिक जलाशयों का निर्माण करने में सहायक होती है।

कुछ भूवैज्ञानिक अनुसंधानों में यह पाया गया है कि रामेश्वरम क्षेत्र की **टेक्टॉनिक प्लेट संरचना (Tectonic Plate Configuration)** और चट्टानों की **विशेष प्रकार की संरचना (Unique Rock Formation)** पानी को प्राकृतिक रूप से फिल्टर करती है। यह प्राकृतिक **जलशोधन प्रणाली (Natural Water Filtration System)** समुद्री जल के खारेपन को रोकती है और मीठा पानी सुनिश्चित करती है। इन 22 कुंडों का एक और रोचक पहलू यह है कि प्रत्येक कुँए का पानी **स्वाद, रासायनिक तत्व और तापमान** के मामले में अलग होता है, जो भूविज्ञान की दृष्टि से अत्यंत असामान्य घटना है। आधुनिक हाइड्रोलॉजी के अनुसार इसे समझने के लिए **हाइड्रोलॉजिकल पैटर्न (Hydrological Patterns)**, **जल प्रवाह (Groundwater Flow)**, **चट्टानों की परमीबिलिटी (Rock Permeability)** और **टेक्टोनिक सक्रियता (Tectonic Activity)** जैसी अवधारणाओं का गहन अध्ययन आवश्यक है। ऐसा इसलिए हो सकता है क्योंकि प्रत्येक स्रोत विभिन्न **खनिजीय परतों (Mineral Layers)** और भूगर्भीय मार्गों से होकर सतह पर आता है। उदाहरण के लिए कुछ जलस्रोतों में कैल्शियम और मैग्नीशियम की मात्रा अधिक हो सकती है, जबकि अन्य में सिलिका या लवणों का अनुपात

अलग हो सकता है। इससे उनके स्वाद और गुणों में अंतर दिखाई देता है। यह तथ्य दर्शाता है कि प्राचीन काल में लोगों को जलस्रोतों की विविधता और उनके महत्व का व्यावहारिक ज्ञान था।

यह दर्शाता है कि प्राचीन भारतीय वास्तुकार और ऋषियों ने केवल **आस्था (Faith)** और **धार्मिक परंपरा (Religious Tradition)** के आधार पर ही नहीं बल्कि **भू-वैज्ञानिक पर्यवेक्षण (Geological Observation)** और **स्थल चयन (Site Selection)** की गहन समझ के साथ यह तीर्थस्थल स्थापित किया था। इतिहास और आस्था की दृष्टि से, भक्त इसे भगवान महादेव का **अद्भुत चमत्कार (Divine Miracle)** मानते हैं, जो प्यासे तीर्थयात्रियों को अमृत समान मीठा जल प्रदान करता है। कल्पना कीजिए कि हजारों साल पहले श्रीराम ने अपनी सेना के लिए इस क्षेत्र में मीठे पानी की खोज की होगी, तब उन्होंने **स्थानिक भूगर्भीय ज्ञान (Local Geological Knowledge)** और **प्राकृतिक जल प्रबंधन (Natural Water Management Techniques)** का लाभ उठाया होगा। यह कुँए केवल तीर्थयात्रियों की भौतिक आवश्यकताओं को नहीं पूरा करते, बल्कि इस स्थल की **सांस्कृतिक और वैज्ञानिक महत्ता (Cultural and Scientific Significance)** को भी रेखांकित करते हैं।

रामेश्वरम मंदिर का स्थापत्य भी अपने आप में एक अद्भुत इंजीनियरिंग उपलब्धि है। रामनाथस्वामी मंदिर के गलियारे विश्व के सबसे लंबे मंदिर गलियारों में गिने जाते हैं, जिनकी कुल लंबाई लगभग 1200 मीटर से अधिक मानी जाती है। इन गलियारों में हजारों पत्थर के स्तंभ एक सीधी रेखा में इस प्रकार बनाए गए हैं कि दूर से देखने पर वे पूर्ण सममिति का अनुभव कराते हैं। यह निर्माण प्राचीन भारतीय वास्तुकारों की **ज्यामितीय योजना (Geometrical Planning)** और **संरचनात्मक संतुलन (Structural Engineering)** की गहरी समझ को दर्शाता है। इतने विशाल स्तंभों और छतों का भार संतुलित रखने के लिए स्तंभों के बीच

समान दूरी और उचित आधार संरचना का उपयोग किया गया है। यह तकनीक आधुनिक **लोड डिस्ट्रीब्यूशन (Load Distribution)** सिद्धांतों से मिलती-जुलती प्रतीत होती है।

रामेश्वरम का महत्व केवल मंदिर तक ही सीमित नहीं है। इस क्षेत्र से जुड़ी एक और महत्वपूर्ण भौगोलिक संरचना है **राम सेतु**, जिसे कभी-कभी **एडम्स ब्रिज** भी कहा जाता है। यह संरचना भारत और श्रीलंका के बीच समुद्र में फैली हुई उथली चट्टानों और रेतीले टापुओं की एक श्रृंखला है। उपग्रह चित्रों में यह लगभग **48 किलोमीटर** लंबी प्राकृतिक रेखा के रूप में दिखाई देती है। पौराणिक परंपरा के अनुसार यह वही पुल है जिसे भगवान राम की सेना ने लंका पहुँचने के लिए बनाया था। आधुनिक भूवैज्ञानिक इसे मुख्यतः समुद्री धाराओं, तलछट के संचय और चूना-पत्थर संरचनाओं के परिणाम के रूप में देखते हैं। कई वैज्ञानिकों का मानना है कि यह क्षेत्र प्राचीन काल में उथले समुद्र और टापुओं की श्रृंखला रहा होगा, जिसे समय के साथ समुद्री प्रक्रियाओं ने वर्तमान स्वरूप दिया।

भूविज्ञान और समुद्र विज्ञान के अध्ययन बताते हैं कि पंबन द्वीप और आसपास का क्षेत्र **तटीय भू-आकृतिक प्रक्रियाओं (Coastal Geomorphological Processes)** से निरंतर प्रभावित होता रहा है। समुद्री धाराएँ, ज्वार-भाटा और चक्रवात इस क्षेत्र की स्थलाकृति को बदलते रहते हैं। इसके बावजूद सदियों से मंदिर की संरचना का सुरक्षित बने रहना यह दर्शाता है कि प्राचीन निर्माताओं ने स्थान के चयन और निर्माण तकनीक में प्राकृतिक परिस्थितियों का सावधानीपूर्वक ध्यान रखा था।

इस प्रकार रामेश्वरम न केवल धार्मिक और ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि यह **प्राकृतिक विज्ञान, भूगर्भशास्त्र और जल विज्ञान (Earth Science, Hydrogeology)** का भी जीवंत उदाहरण प्रस्तुत करता है। यह स्थल यह प्रमाणित करता है कि जब **प्रकृति (Nature)** और **मानव**

बुद्धि (Human Ingenuity) का संयोजन होता है, तो ऐसी अद्भुत घटनाएँ संभव होती हैं, जो न केवल आस्था को पोषित करती हैं बल्कि विज्ञान और तकनीक को भी चुनौती देती हैं। यही कारण है कि यह स्थल आज भी इतिहासकारों, भूवैज्ञानिकों, वास्तुविदों और सांस्कृतिक शोधकर्ताओं के लिए अध्ययन का महत्वपूर्ण केंद्र बना हुआ है।

3.12 एलोरा मंदिर (Ellora Temple): औरंगजेब भी नहीं तोड़ पाया | कैलाश मंदिर का रहस्य

कैलाश कैलाश मंदिर, एलोरा गुफाएँ में स्थित, भारतीय शैल-स्थापत्य अभियांत्रिकी (**Rock-cut Architectural Engineering**) का एक अद्भुत और अनुपम चमत्कार है। इस मंदिर की सबसे आश्चर्यजनक विशेषता यह है कि इसे सामान्य मंदिरों की तरह पत्थरों को जोड़कर नहीं बनाया गया, बल्कि एक विशाल पर्वत-खंड को ऊपर से नीचे की दिशा में तराशकर निर्मित किया गया है। इस प्रकार की निर्माण-पद्धति को आधुनिक विज्ञान में **मोनोलिथिक रॉक-कट आर्किटेक्चर (Monolithic Rock-cut Architecture)** कहा जाता है। इसका अर्थ है कि पूरा मंदिर एक ही विशाल चट्टान से निकाला गया है, जिसमें शिखर, मंडप, स्तंभ, दीवारें और आंगन सब एक ही शिला से तराशे गए हैं।

इतिहासकारों और पुरातत्वविदों के अनुसार यह मंदिर 8वीं शताब्दी में **राष्ट्रकूट वंश** के महान शासक **कृष्ण** के काल में निर्मित हुआ। वैज्ञानिक अनुमान बताते हैं कि इस मंदिर को बनाने के लिए लगभग **चार लाख टन (400,000 tons)** बेसाल्ट पत्थर को काटकर हटाया गया होगा। यह पत्थर दक्कन के पठारी क्षेत्र की **ज्वालामुखीय बेसाल्ट शैल (Volcanic Basalt Rock)** से संबंधित है, जो अत्यंत कठोर और घनी होती है। आधुनिक इंजीनियरिंग की दृष्टि से इतने बड़े द्रव्यमान को इतनी सटीकता से काटना और निकालना अत्यंत जटिल कार्य माना जाता है। यदि आज

की भारी मशीनरी जैसे हाइड्रोलिक ड्रिल, क्रेन और डायमंड कटर का उपयोग किया जाए, तब भी इस स्तर की **ज्यामितीय सटीकता (Geometric Precision)** प्राप्त करना एक लंबी और कठिन प्रक्रिया होगी।

कैलाश मंदिर की योजना अत्यंत जटिल **गणितीय अभिकल्पना (Mathematical Design)** और **त्रि-आयामी वास्तु योजना (Three-dimensional Architectural Planning)** पर आधारित प्रतीत होती है। जब किसी संरचना को ऊपर से नीचे तराशा जाता है, तब उसमें त्रुटि की कोई संभावना नहीं रहती, क्योंकि यदि एक बार चट्टान का कोई भाग अधिक काट दिया जाए तो उसे पुनः जोड़ा नहीं जा सकता। इसका अर्थ यह है कि प्राचीन शिल्पियों के पास मंदिर की संपूर्ण संरचना का अत्यंत सटीक मानसिक या रेखाचित्रात्मक मॉडल अवश्य रहा होगा। यह इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि उस समय के वास्तुकारों को **ज्यामिति (Geometry)**, **भार संतुलन (Load Distribution)** और **शैल-यांत्रिकी (Rock Mechanics)** का गहरा ज्ञान था।

मंदिर की संरचना केवल स्थापत्य ही नहीं बल्कि **हाइड्रोलॉजिकल इंजीनियरिंग (Hydrological Engineering)** का भी उदाहरण प्रस्तुत करती है। परिसर के भीतर वर्षा जल के निकास के लिए एक सुविकसित **जल-निकासी तंत्र (Drainage System)** बनाया गया है, जिससे वर्षा का पानी संरचना को क्षति पहुँचाए बिना बाहर निकल जाता है। इसके अतिरिक्त मंदिर की दीवारों और स्तंभों पर अत्यंत सूक्ष्म नक्काशी में रामायण और महाभारतके दृश्य अंकित किए गए हैं, जो यह दर्शाते हैं कि शिल्पियों ने केवल स्थापत्य ही नहीं बल्कि सांस्कृतिक कथाओं को भी पत्थर में अमर कर दिया।

कैलाश मंदिर से जुड़ा एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक प्रसंग मुगल शासक औरंगजेब के काल से भी जुड़ा हुआ है। लोककथाओं के अनुसार उसके

आदेश पर सैनिकों ने मंदिर को क्षतिग्रस्त करने का प्रयास किया, किंतु मंदिर की अत्यंत मजबूत शैल संरचना के कारण वे इसे पूरी तरह नष्ट नहीं कर सके और केवल कुछ मूर्तियों को ही खंडित कर पाए। यद्यपि इस घटना के विवरण विभिन्न ऐतिहासिक स्रोतों में भिन्न-भिन्न रूप में मिलते हैं, फिर भी यह तथ्य स्पष्ट है कि यह संरचना अत्यंत टिकाऊ और मजबूत है।

सबसे रहस्यमय प्रश्न यह है कि निर्माण के दौरान निकाला गया लगभग चार लाख टन पत्थर कहाँ गया। मंदिर परिसर के आसपास इतना विशाल मलबा स्पष्ट रूप से दिखाई नहीं देता। इतिहासकारों का अनुमान है कि इस पत्थर का उपयोग संभवतः आसपास के निर्माण कार्यों, मार्ग निर्माण या अन्य संरचनाओं में किया गया होगा, या फिर समय के साथ वह प्राकृतिक अपरदन और मानव गतिविधियों के कारण फैल गया होगा। फिर भी यह प्रश्न आज भी शोधकर्ताओं के लिए **पुरातात्विक जिज्ञासा (Archaeological Puzzle)** बना हुआ है।

इस प्रकार कैलाश मंदिर केवल एक धार्मिक स्थल नहीं बल्कि प्राचीन भारतीय सभ्यता की **उन्नत अभियांत्रिकी क्षमता (Advanced Engineering Capability)**, **गणितीय स्थापत्य (Mathematical Architecture)** और **कलात्मक उत्कृष्टता (Artistic Mastery)** का जीवंत प्रमाण है। यह स्मारक यह दर्शाता है कि हजारों वर्ष पूर्व भी भारतीय शिल्पकारों और वास्तुकारों के पास ऐसी तकनीकी और वैज्ञानिक समझ थी, जिसने उन्हें एक ही पर्वत-खंड से इतना विशाल और जटिल मंदिर तराशने की क्षमता प्रदान की। यही कारण है कि आज भी कैलाश मंदिर विश्व के महानतम स्थापत्य चमत्कारों में गिना जाता है।

3.13 कोणार्क सूर्य मंदिर: सौर घड़ी और ब्रह्मांडीय गणना का स्थापत्य चमत्कार

कोणार्क सूर्य मंदिर (Konark Sun Temple), जो **कोणार्क (Konark)** जो वर्तमान **ओडिशा (Odisha)** में स्थित है, भारतीय स्थापत्य, खगोल-विज्ञान और गणितीय अभियांत्रिकी का एक अद्वितीय उदाहरण माना जाता है। कोणार्क सूर्य मंदिर प्राचीन भारतीय **वैज्ञानिक चिंतन (Scientific Thought)**, **खगोल-गणितीय प्रज्ञा (Astro-mathematical Intelligence)** तथा **संरचनात्मक अभियंत्रण (Structural Engineering)** का एक विलक्षण उदाहरण है। **13वीं शताब्दी** में पूर्वी **गंग वंश** के पराक्रमी शासक **नरसिंहादेव** द्वारा निर्मित यह मंदिर केवल धार्मिक आस्था का केंद्र नहीं था, बल्कि इसे ब्रह्मांडीय सिद्धांतों (Cosmic Principles) को स्थापत्य में रूपांतरित करने के उद्देश्य से निर्मित किया गया था। आधुनिक वैज्ञानिक अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि इस मंदिर की रचना में **ज्यामितीय सममिति (Geometrical Symmetry)**, **सौर अभिविन्यास (Solar Orientation)** तथा **खगोलीय संरेखण (Astronomical Alignment)** का अत्यंत सूक्ष्म और सुसंगत प्रयोग किया गया है। यह तथ्य दर्शाता है कि उस काल के वास्तुकारों और गणितज्ञों को पृथ्वी की **घूर्णन गति (Rotational Dynamics of Earth)**, सूर्य की **प्रतीत वार्षिक गति (Apparent Annual Motion of the Sun)** तथा **ऋतु परिवर्तन (Seasonal Variability)** का गहन ज्ञान था। मंदिर की संपूर्ण रचना सूर्यदेव के रथ के रूप में की गई है, जिसमें **24 विशाल पत्थर के पहिए** तथा **सात घोड़े** दर्शाए गए हैं। आधुनिक वैज्ञानिक विश्लेषण के अनुसार ये पहिए केवल कलात्मक अभिव्यक्ति नहीं हैं, बल्कि एक प्रकार की **सौर कालमापन प्रणाली (Solar Chronometric System)** के रूप में कार्य करते हैं। प्रत्येक पहिए की **आठ तीलियाँ** दिन के **आठ प्रहरों** का प्रतिनिधित्व करती हैं, और इन

तीलियों पर पड़ने वाली छाया का अवलोकन करके समय का सटीक अनुमान लगाया जा सकता है। यह व्यवस्था आधुनिक **संडायल यांत्रिकी (Sundial Mechanics)** के सिद्धांतों के अनुरूप है।

आधुनिक खगोल विज्ञान के दृष्टिकोण से देखा जाए तो मंदिर की संरचना में अत्यंत सटीक **खगोलीय ज्यामिति (Celestial Geometry)** का प्रयोग किया गया है। मंदिर को इस प्रकार अभिमुख (Orient) किया गया था कि **विषुव (Equinox)** के समय सूर्य की पहली किरण सीधे गर्भगृह में स्थापित सूर्य प्रतिमा पर पड़े। इस प्रकार की संरचना के लिए सूर्य के **अज़ीमुथ कोण (Solar Azimuth Angle)** तथा **ऊँचाई कोण (Solar Elevation Angle)** का दीर्घकालिक अवलोकन आवश्यक होता है। आधुनिक खगोलविदों के अनुसार ऐसी सटीकता प्राप्त करने के लिए वर्षों तक सूर्य के उदय और अस्त की स्थिति का नियमित निरीक्षण (Systematic Astronomical Observation) करना पड़ता है। यह तथ्य इस बात का प्रमाण है कि उस समय के विद्वानों के पास व्यवस्थित **खगोलीय अवलोकन पद्धति (Astronomical Observational Methodology)** उपलब्ध थी।

कोणार्क मंदिर से जुड़ा एक अत्यंत चर्चित रहस्य इसके शिखर पर स्थापित कथित **विशाल चुंबकीय संरचना (Massive Magnetic Structure)** से संबंधित है। लोक परंपराओं और कुछ यूरोपीय यात्रियों के विवरणों में उल्लेख मिलता है कि मंदिर के शीर्ष पर एक शक्तिशाली चुंबकीय पत्थर लगा था, जो समुद्री जहाजों के कम्पास को प्रभावित करता था। आधुनिक भौतिकी (Modern Physics) के परिप्रेक्ष्य में इस कथन का विश्लेषण करते समय यह संभावना व्यक्त की जाती है कि मंदिर के निर्माण में प्रयुक्त **लौह क्लैम्प (Iron Clamps)** तथा **धात्विक संयोजन प्रणाली (Metallic Joining System)** स्थानीय चुंबकीय प्रभाव उत्पन्न कर सकते थे। हालांकि अभी तक ऐसे विशाल चुंबक के अस्तित्व का प्रत्यक्ष

पुरातात्विक प्रमाण नहीं मिला है, इसलिए वैज्ञानिक समुदाय इसे एक **ऐतिहासिक परिकल्पना (Historical Hypothesis)** के रूप में देखता है। फिर भी यह निर्विवाद तथ्य है कि मंदिर के पथरों को जोड़ने के लिए जिस प्रकार की धातु तकनीक का उपयोग किया गया, वह उस समय की उन्नत **धातु विज्ञान (Metallurgy)** को दर्शाता है।

मंदिर के गर्भगृह का बंद होना भी आधुनिक **संरचनात्मक संरक्षण विज्ञान (Structural Conservation Science)** से जुड़ा हुआ विषय है। समय के साथ प्राकृतिक क्षरण (Weathering), समुद्री आर्द्रता (Marine Corrosion) और ऐतिहासिक आक्रमणों के कारण मंदिर का मुख्य शिखर नष्ट हो गया। ब्रिटिश काल में जब इसके संरक्षण का प्रयास किया गया, तब यह पाया गया कि गर्भगृह की आंतरिक संरचना अत्यंत कमजोर हो चुकी है। इसलिए उसे गिरने से बचाने के लिए अंदर से रेत भर दी गई। बाद में **भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण (Archaeological Survey of India)** ने भी इस व्यवस्था को बनाए रखा क्योंकि यह रेत मंदिर की दीवारों को अंदर से सहारा प्रदान करती है और पूरे ढांचे की **संरचनात्मक स्थिरता (Structural Stability)** को बनाए रखती है।

1984 में इस अद्वितीय स्थापत्य को **UNESCO** द्वारा **विश्व धरोहर स्थल (World Heritage Site)** घोषित किया गया। इसका कारण केवल इसकी कलात्मक भव्यता नहीं बल्कि इसकी **वैज्ञानिक संरचना (Scientific Structural Design)**, **गणितीय अनुपात (Mathematical Proportion)** तथा **खगोलीय अवधारणा (Astronomical Conceptualization)** है। आज कोणार्क सूर्य मंदिर केवल एक ऐतिहासिक स्मारक नहीं बल्कि एक **अंतरविषयी अध्ययन केंद्र (Interdisciplinary Research Case)** बन चुका है, जहाँ वास्तुशास्त्र (Architecture), पुरातत्व (Archaeology), भौतिकी (Physics) और खगोल विज्ञान (Astronomy) के विद्वान मिलकर यह

समझने का प्रयास करते हैं कि प्राचीन भारतीय सभ्यता ने प्रकृति और ब्रह्मांड के नियमों को किस प्रकार स्थापत्य कला में अभिव्यक्त किया।

अतः कोणार्क सूर्य मंदिर यह प्रमाणित करता है कि प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा केवल आध्यात्मिक चिंतन तक सीमित नहीं थी, बल्कि उसमें गहन **वैज्ञानिक अन्वेषण (Scientific Inquiry)** और **प्राकृतिक नियमों की विश्लेषणात्मक समझ (Analytical Understanding of Natural Laws)** भी निहित थी। यही कारण है कि यह स्मारक आज भी आधुनिक वैज्ञानिकों के लिए एक प्रकार की **जीवित प्रयोगशाला (Living Laboratory)** के समान है, जो प्राचीन ज्ञान और आधुनिक विज्ञान के बीच एक महत्वपूर्ण बौद्धिक सेतु (Intellectual Bridge) का निर्माण करती है।

अध्याय 4

विज्ञान के नाम पर भी पाखंड? “Monkey से Man तक... बीच में Logic Missing?”

इस समग्र अध्याय की मूल आत्मा **बौद्धिक ईमानदारी (Intellectual Honesty)** में निहित है। भारतीय समाज ऐतिहासिक रूप से **सहज (Innocent)**, **विश्वासप्रधान (Trust-oriented)** और **भावनात्मक रूप से संवेदनशील (Emotionally Receptive)** रहा है, अतः उसे **भावनात्मक नारेबाज़ी (Emotional Sloganeering)** अथवा **कूट-विज्ञान (Pseudo-Science)** के माध्यम से प्रभावित करना न केवल नैतिक रूप से अनुचित है, बल्कि **वैचारिक रूप से भी अप्रामाणिक (Intellectually Unethical)** है। केवल यह उद्घोषणा कर देना कि “सनातन से ही समस्त ज्ञान उत्पन्न हुआ” तब तक **ज्ञानमीमांसात्मक रूप से वैध (Epistemologically Valid)** नहीं मानी जा सकती, जब तक उसके साथ **तर्कसंगत विश्लेषण (Logical Reasoning)**, **ऐतिहासिक सन्दर्भ (Historical Contextualisation)** तथा **प्रामाणिक साक्ष्य (Empirical & Documentary Evidence)** प्रस्तुत न किए जाएँ। किसी भी अवधारणा को मात्र **राष्ट्रीय अस्मिता (National Identity)** या **सांस्कृतिक गौरव (Cultural Pride)** के आधार पर स्वीकार कर लेना ज्ञानपरंपरा को **दोग्मा (Dogma)** में परिवर्तित कर देता है, जो बौद्धिक विकास के लिए घातक है।

इसी विमर्श के अंतर्गत **बायोपाइरेसी (Biopiracy)** की समस्या अत्यंत प्रासंगिक हो जाती है, जहाँ पश्चिमी शोध-संस्थाएँ अनेक बार भारतीय **पारंपरिक ज्ञान प्रणाली (Traditional Knowledge Systems)** को **पुनर्परिभाषित (Re-contextualise)** कर पेटेंट के माध्यम से अपना

बौद्धिक स्वामित्व (Intellectual Property Rights) घोषित कर देती हैं। वर्ष 1995 में अमेरिका द्वारा घाव भरने हेतु हल्दी पर पेटेंट लेना इसका सुप्रसिद्ध उदाहरण है, जिसे भारत के **CSIR (Council of Scientific and Industrial Research)** ने चुनौती देते हुए 32 **प्राचीन ग्रंथीय एवं लोक-दस्तावेज़ (Ancient Textual and Ethnographic Records)** प्रस्तुत किए और यह सिद्ध किया कि हल्दी का उपयोग आयुर्वेद तथा घरेलू चिकित्सा परंपरा का अभिन्न अंग रहा है। परिणामस्वरूप 1997 में यह पेटेंट निरस्त कर दिया गया। आज "हल्दी वाला दूध" (**Golden Milk**) का वैश्विक पुनरुत्थान इस तथ्य का द्योतक है कि यदि ज्ञान का **व्यवस्थित प्रलेखन (Systematic Documentation)** और **संरक्षण (Preservation)** न किया जाए, तो उसके स्रोतों को लेकर गंभीर **ऐतिहासिक भ्रांति (Historical Misattribution)** उत्पन्न हो सकती है। विधिक दृष्टि से भी पेटेंट का अधिकार केवल **नवीन आविष्कार (Novel Innovation)** पर होना चाहिए, न कि उन प्राकृतिक या पारंपरिक तत्वों पर, जो सदियों से **सामूहिक सांस्कृतिक धरोहर (Collective Cultural Heritage)** का हिस्सा रहे हों। वेद, आयुर्वेद और आधुनिक विज्ञान के मध्य एक **संतुलित, प्रमाण-आधारित और विवेकपूर्ण संवाद (Balanced, Evidence-based Discourse)** अनिवार्य है, जिससे ज्ञान का प्रामाणिक इतिहास सुरक्षित रहे और भावी पीढ़ियाँ वैचारिक भ्रम का शिकार न हों।

इस पूरे विमर्श का मूल संकट केवल विज्ञान बनाम परम्परा का नहीं, बल्कि **बौद्धिक स्वायत्तता (Intellectual Autonomy)** बनाम **प्रामाणिकतावाद (Authoritarianism)** का है। जब समाज यह मान लेता है कि सत्य केवल किसी प्रतिष्ठित संस्था, चर्चित वैज्ञानिक, दार्शनिक या सत्ता-समर्थित ग्रंथ से ही प्रस्फुटित हो सकता है, तब धीरे-धीरे विचार की स्वतंत्र धारा **अन्वेषणशीलता (Spirit of Inquiry)** से हटकर

अनुकरणवाद (Imitative Conformism) में परिवर्तित हो जाती है। **विकासवाद (Evolution Theory)** जैविक परिवर्तन का एक वैज्ञानिक मॉडल है, परंतु जब उसे मानव-चेतना, भाषा, संस्कृति और आध्यात्मिक अनुभवों के **समग्र व्याख्यात्मक ढाँचे (Comprehensive Explanatory Framework)** के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, तब प्रश्न उठना स्वाभाविक है। मनुष्य केवल जैविक सत्ता (Biological Entity) नहीं, बल्कि **चेतन सत्ता (Conscious Being)**, **अर्थ-निर्माता (Meaning-Maker)** और **सांस्कृतिक प्राणी (Cultural Organism)** भी है। यदि ज्ञान पूर्णतः **आकस्मिक (Accidental)** होता, तो भाषा की जटिल संरचना, **प्रतीक-व्यवस्था (Symbolic System)**, **नैतिकता (Ethics)** और **दार्शनिक तर्कशास्त्र (Philosophical Logic)** जैसी **संरचनाएँ केवल प्रवृत्तिजन्य (Instinctive)** स्तर पर सीमित रह जातीं। इसके विपरीत वैदिक-सनातन दृष्टि ज्ञान को **अपौरुषेय (Authorless / Transcendental)** स्रोत से अवतरित मानती है, जहाँ सत्य को खोजा नहीं, अपितु अनुभूत (Realized) किया जाता है। यहाँ समस्या विज्ञान से नहीं, बल्कि उस **मानसिक अनुदारता (Cognitive Dogmatism)** से है जो किसी सिद्धांत को अंतिम सत्य घोषित कर प्रश्न पूछने की क्षमता को कुंठित (Stifle) कर देती है। इतिहास साक्षी है कि जब भी किसी विचारधारा ने स्वयं को **अचूक (Infallible)** घोषित किया, तब आलोचनात्मक विवेक (Critical Reasoning) का अवसान हुआ और सामाजिक जड़ता (Intellectual Stagnation) ने जन्म लिया। अतः आवश्यक है कि हम न तो अंध-परम्परावाद (Blind Traditionalism) में गिरें, न अंध-वैज्ञानिकतावाद (Blind Scientism) में, बल्कि **समन्वयात्मक दृष्टिकोण (Integrative Perspective)** अपनाएँ, जहाँ प्रश्न पूछना अपराध नहीं, बल्कि प्रगति का प्रारंभ माना जाए।

सोचिए एक इंजीनियर रोज़ अपनी कार से ऑफिस जाता है और ट्रैफिक जाम में फँसता है। वह सोचता है, “काश हेलीकॉप्टर होता तो सीधे ऑफिस पहुँच जाते।” लेकिन हेलीकॉप्टर बहुत महँगा है। इसलिए वह कार में थोड़ा-थोड़ा बदलाव करता है, बड़ा इंजन, हल्की बॉडी, ऊपर घूमने वाला पंखा। लेकिन 10–15% बदलाव के बाद कार न तो सड़क पर सही चल पाती है, न ही हवा में उड़ सकती है। इसका कारण है कि **कार और हेलीकॉप्टर का पूरा डिज़ाइन अलग है।** सड़क पर चलने वाली कार को थोड़ा बदलकर उड़ाने की योजना न केवल बेकार है बल्कि खतरनाक भी है। हमारा उदाहरण केवल एक रूपक (Metaphor) नहीं, बल्कि **संरचनात्मक अभिकल्पना (Structural Design Architecture)** की जटिलता को समझाने का प्रयास है। कार और हेलीकॉप्टर के बीच अंतर केवल बाहरी बदलाव का नहीं, बल्कि **मूलभूत विन्यास (Fundamental Configuration)**, **यांत्रिक समन्वय (Mechanical Integration)** और **प्रणालीगत संतुलन (Systemic Balance)** का है। यदि किसी एक घटक में परिवर्तन किया जाए, तो पूरी प्रणाली पर उसका प्रभाव पड़ता है, इसे ही विज्ञान में **परस्पर-निर्भरता (Interdependence)** कहा जाता है। यही प्रश्न **जैव-विकास (Biological Evolution)** के संदर्भ में उठाया जाता है कि क्या जटिल अंग, जैसे आँख, पंख, या द्विपाद चाल (Bipedal Locomotion) क्रमिक, आंशिक और **उपयोगी मध्यवर्ती अवस्थाओं (Functional Intermediate Stages)** के माध्यम से विकसित हो सकते थे? आलोचकों का तर्क है कि अधूरे अंग **कार्यात्मक अपूर्णता (Functional Incompleteness)** की स्थिति में जीव के अस्तित्व (Survival) के लिए बाधा बन सकते थे, क्योंकि वे न पूरी तरह पुराने वातावरण के अनुकूल (Adapted) रहते और न नए के। इसे कभी-कभी **अविकसित संक्रमणीय अवस्था (Underdeveloped Transitional Phase)** की समस्या कहा जाता है। दूसरी ओर, विकासवादी जीवविज्ञान यह प्रतिपादित करता है कि प्रकृति में परिवर्तन सूक्ष्म, दीर्घकालिक और

क्रमिक अनुकूलन (Gradual Adaptation) की प्रक्रिया से होते हैं, जहाँ प्रत्येक छोटा बदलाव तत्कालीन परिवेश में किसी न किसी रूप में लाभकारी (Advantageous) होता है। परंतु दार्शनिक दृष्टि से यह विमर्श केवल जीवाश्मों या डीएनए तक सीमित नहीं, बल्कि **उत्पत्ति-तत्त्व (Origin Principle)**, **उद्देश्यपरकता (Teleology)** और **अस्तित्व-मीमांसा (Ontology)** के गहरे प्रश्नों से जुड़ जाता है। जब हम जीवन की उत्पत्ति पर विचार करते हैं, तो प्रश्न केवल “कैसे” (How) का नहीं, बल्कि “क्यों” (Why) और “किस दिशा में” (Toward What End) का भी होता है। यही वह क्षेत्र है जहाँ वैज्ञानिक परिकल्पनाएँ (Scientific Hypotheses) और दार्शनिक-आध्यात्मिक चिंतन (Philosophical-Spiritual Inquiry) एक-दूसरे से संवाद करने की आवश्यकता महसूस करते हैं।

यही प्रश्न जीवन-विकास (Evolution of Life) की व्याख्या करते समय सबसे अधिक उभरता है। सामान्य विवरण यह कहता है कि प्रारंभिक जीवन जलीय परिवेश (Aquatic Environment) में उत्पन्न हुआ, फिर क्रमशः कुछ जीवों ने स्थलीय पर्यावरण (Terrestrial Habitat) की ओर संक्रमण (Transition) किया और अंततः द्विपाद चाल (Bipedalism) जैसी जटिल क्षमताएँ विकसित हुईं। परंतु जब हम इस प्रक्रिया को सूक्ष्म स्तर पर समझने का प्रयास करते हैं, तो कई **संक्रमणीय अवस्थाएँ (Transitional Stages)** प्रश्न खड़े करती हैं। उदाहरणतः यदि किसी जीव में फेफड़ों का प्रारंभिक, अपूर्ण विकास हुआ, तो वह न पूर्णतः जल-श्वसन (Aquatic Respiration) के लिए सक्षम रहा होगा, न ही वायवीय श्वसन (Aerial Respiration) के लिए। ऐसी **कार्यात्मक अपूर्णता (Functional Incompleteness)** की स्थिति में उसका अस्तित्व (Survival) कैसे बना रहा? इसी प्रकार आधे विकसित पंख, अधूरे पैर या आंशिक रीढ़ीय परिवर्तन किस प्रकार तत्कालीन परिवेश में उपयोगी

(Adaptive Advantage) सिद्ध हुए? आलोचक इसे **जैविक व्यवहार्यता (Biological Viability)** और **अनुकूलनात्मक संगति (Adaptive Coherence)** की चुनौती के रूप में देखते हैं। उनका तर्क है कि किसी भी जटिल संरचना (Complex Structure) को कार्य करने के लिए अनेक अंगों का **समन्वित विकास (Coordinated Development)** आवश्यक होता है; यदि यह समन्वय एक साथ न हो, तो जीव **पर्यावरणीय प्रतिस्पर्धा (Environmental Competition)** में टिक नहीं पाएगा। इस प्रकार जीवन की उत्पत्ति और विकास का प्रश्न केवल “धीरे-धीरे परिवर्तन” (Gradual Change) तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वह **अस्तित्व-गतिकी (Dynamics of Existence)**, **उद्देश्यपरकता (Teleology)** और **उत्पत्तिशास्त्र (Origin Theory)** जैसे गहन दार्शनिक आयामों से भी जुड़ जाता है।

कुछ उदाहरण देखें:

- i. **साँस लेने की समस्या:** पानी में जीव gills से साँस लेते हैं, जमीन पर lungs से। बीच की अवस्था में जीव किससे साँस लेगा? आधे gills और आधे lungs काम नहीं करेंगे।
- ii. **भार और गुरुत्वाकर्षण:** पानी में शरीर हल्का लगता है, लेकिन जमीन पर पूरे पैर भार संभालते हैं। कमजोर पैर जमीन पर कैसे सहन करेंगे?
- iii. **तापमान:** पानी का तापमान धीरे बदलता है, जमीन पर दिन-रात तेजी से। अचानक गर्मी या ठंड झेलने का सवाल।
- iv. **पानी और नमक का संतुलन:** मीठे पानी की मछली खारे पानी में नहीं रह सकती, खारे पानी की मछली मीठे पानी में नहीं।

यानी सिर्फ “धीरे-धीरे सब हुआ” वाली कहानी बीच के अधूरे चरणों की उपयोगिता नहीं बता पाती।

अब मानव शरीर की संरचना पर ध्यान दें। इसे मोटे तौर पर दो भागों में बाँटा जा सकता है:

1. **कोमल अंग (Soft Tissues):** मस्तिष्क, हृदय, फेफड़े, यकृत, रक्त-नलिकाएँ, श्वासनलियाँ, ग्रंथियाँ। ये जीवन के लिए अनिवार्य हैं।
2. **कठोर अंग (Hard Tissues):** हड्डियाँ, जो शरीर को आकार और सहारा देती हैं, लेकिन जीवन का संचालन नहीं करतीं।

किसी भी जैविक अंग (Biological Organ) का महत्व उसके आकार (Size) से नहीं, बल्कि उसकी **कार्यात्मक अनिवार्यता (Functional Criticality)** से निर्धारित होता है। उदाहरणतः मस्तिष्क के आधार पर स्थित पिट्यूटरी ग्रंथि (Pituitary Gland) आकार में अत्यंत लघु होते हुए भी **अंतःस्रावी तंत्र (Endocrine System)** की केंद्रीय नियामक (Master Regulator) मानी जाती है, क्योंकि यह विभिन्न हार्मोनों के स्राव (Hormonal Secretion) को नियंत्रित करती है। यदि इस जटिल **हार्मोनल संतुलन (Hormonal Homeostasis)** में किंचित भी व्यवधान उत्पन्न हो जाए, तो संपूर्ण शरीर-तंत्र (Whole Physiological System) में गंभीर विकृति (Disorder) आ सकती है। इसी प्रकार हृदय के वाल्व (Cardiac Valves) केवल संरचनात्मक इकाइयाँ नहीं, बल्कि **एकदिशीय प्रवाह-नियंत्रक तंत्र (Unidirectional Flow Mechanism)** हैं, जो रक्त-संचार (Blood Circulation) की सुव्यवस्था सुनिश्चित करते हैं। इन सूक्ष्म किन्तु अत्यावश्यक व्यवस्थाओं का अनुमान मात्र अस्थि-अवशेषों (Skeletal Remains) से लगाना अत्यंत सीमित (Restrictive) दृष्टिकोण हो सकता है।

जब विकासवाद (Evolutionary Theory) की व्याख्या मुख्यतः जीवाश्मों (Fossils) और कंकाल-परिवर्तनों (Skeletal Modifications) पर आधारित होती है, तब यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि क्या केवल अस्थि-रचना (Bone Morphology) के आधार पर संपूर्ण **जीव-क्रियात्मक**

जटिलता (Physiological Complexity) को समझा जा सकता है? जीवन की निरंतरता (Continuity of Life) केवल ढाँचे (Structure) पर नहीं, बल्कि **तंत्रिका-समन्वय (Neural Coordination)**, **अंतःस्रावी संतुलन (Endocrine Balance)** और **अंग-प्रणालियों की पारस्परिक निर्भरता (Inter-systemic Interdependence)** पर आधारित है। चूँकि जीवाश्मों में सामान्यतः कोमल ऊतक (Soft Tissues), रक्त-वाहिकाएँ या तंत्रिका-जाल (Neural Networks) सुरक्षित नहीं रहते, इसलिए उनके आधार पर किसी जीव के व्यवहार (Behavior), चयापचय (Metabolism) या संज्ञानात्मक क्षमता (Cognitive Capacity) का पूर्ण चित्र प्रस्तुत करना आंशिक अनुमान (Speculative Reconstruction) पर निर्भर हो सकता है। यही वह बिंदु है जहाँ जैव-विकास की चर्चा केवल संरचनात्मक परिवर्तन (Structural Change) से आगे बढ़कर जीवन-तंत्र की समग्रता (Holistic Biological Integration) पर विचार करने की माँग करती है।

विकासवाद के नाम पर की गई वैज्ञानिक भ्रांतियाँ और धोखाधड़ी

1. “सामाजिक डार्विनवाद से मानवाधिकार तक: ओटा बेंगा और आधुनिक विज्ञान की नैतिक परीक्षा”

ओटा बेंगा (Ota Benga) का प्रकरण आधुनिक इतिहास में **उपनिवेशवाद, नस्लवाद और छद्म-विज्ञान** के अंतर्संबंध का अत्यंत मार्मिक उदाहरण है। वह मध्य अफ्रीका के कांगो क्षेत्र (आज का Republic of the Congo) से लाया गया एक म्बूटी (Mbuti) युवक था। 1904 में उसे अमेरिकी अन्वेषक और व्यापारी Samuel Phillips Verner द्वारा अमेरिका लाया गया। प्रारंभ में उसे प्रदर्शनी उद्देश्यों से प्रस्तुत किया गया और 1906 में उसे न्यूयॉर्क के **ब्रॉन्क्स चिड़ियाघर (Bronx Zoo)** में प्रदर्शित किया गया।

ब्रॉन्क्स चिड़ियाघर में उसे एक ओरांगुटान के साथ रखा गया और संकेतों, बोर्डों तथा प्रस्तुति के माध्यम से यह आभास दिया गया कि वह तथाकथित "मिसिंग लिंक" है अर्थात् मनुष्य और वानर के बीच की मध्य कड़ी। यह प्रस्तुति उस समय **प्रचलित सामाजिक डार्विनवाद (Social Darwinism)**, **नस्लीय श्रेणीकरण (Racial Hierarchy)** और **वैज्ञानिक नस्लवाद (Scientific Racism)** की मानसिकता से प्रभावित थी। यद्यपि विकासवाद स्वयं जैविक सिद्धांत था, किंतु उसकी विकृत व्याख्याएँ नस्लवादी विचारधाराओं को वैधता देने के लिए प्रयुक्त की जा रही थीं।

इस अमानवीय प्रदर्शन का तीव्र विरोध हुआ। विशेष रूप से अफ्रीकी-अमेरिकी पादरियों और बुद्धिजीवियों ने इसे मानव गरिमा का घोर अपमान बताया। अंततः सार्वजनिक दबाव के कारण ओटा बेंगा को चिड़ियाघर से हटाया गया। बाद में वह वर्जीनिया में रहने लगा, परंतु सांस्कृतिक विस्थापन, सामाजिक अलगाव और गहरे मानसिक आघात ने उसके जीवन को प्रभावित किया। 1916 में उसने आत्महत्या कर ली।

यह घटना हमें कई स्तरों पर चिंतन के लिए विवश करती है

- i. जब विज्ञान नैतिक उत्तरदायित्व से विमुख हो जाता है, तो वह मानवीय मूल्यों के विरुद्ध उपकरण बन सकता है।
- ii. औपनिवेशिक सत्ता संरचनाएँ (Colonial Power Structures) और नस्लवादी पूर्वाग्रह, वैज्ञानिक दावों को वैचारिक हथियार बना सकते हैं।
- iii. वैज्ञानिक समुदाय की आत्म-समीक्षा (Self-Critique) और नैतिक अनुशासन (Ethical Discipline) अत्यंत आवश्यक हैं।

आज इस घटना को व्यापक रूप से एक **नैतिक विफलता (Ethical Failure)** और संस्थागत त्रुटि के रूप में स्वीकार किया जाता है। यह प्रसंग स्मरण कराता है कि किसी भी सिद्धांत चाहे वह विकासवाद हो या अन्य

कोई विचारधारा को सिद्ध करने की जिद यदि मानवाधिकार, करुणा और गरिमा से ऊपर रख दी जाए, तो ज्ञान की खोज भी अमानवीय रूप ले सकती है।

इस अमानवीय प्रदर्शन (Dehumanizing Exhibition) ने गहरा विरोध भी उत्पन्न किया; अफ्रीकी-अमेरिकी पादरियों और बुद्धिजीवियों ने इसे मानव गरिमा (Human Dignity) का अपमान बताया। अंततः उसे चिड़ियाघर से हटाया गया, परंतु निरंतर **मानसिक आघात (Psychological Trauma)**, **सांस्कृतिक विस्थापन (Cultural Dislocation)** और **सामाजिक अलगाव (Social Isolation)** ने उसके जीवन को गहराई से प्रभावित किया। 1916 में उसने आत्महत्या कर ली। बाद के वर्षों में संबंधित संस्थाओं ने इस घटना को गंभीर त्रुटि (Grave Error) और नैतिक विफलता (Ethical Failure) के रूप में स्वीकार किया।

यह प्रसंग हमें याद दिलाता है कि जब विज्ञान **नैतिक उत्तरदायित्व (Ethical Responsibility)** से कट जाता है और **वस्तुकरण (Objectification)** की प्रवृत्ति हावी हो जाती है, तब ज्ञान की खोज भी अमानवीय रूप ले सकती है। किसी सिद्धांत चाहे वह विकासवाद हो या कोई अन्य विचारधारा को सिद्ध करने की जिद यदि मानवाधिकार (Human Rights) और करुणा (Compassion) से ऊपर रख दी जाए, तो परिणाम विनाशकारी हो सकते हैं।

2. “मीडिया, विकासवाद और जीवाश्म-विज्ञान: नेब्रास्का मैन का ऐतिहासिक विश्लेषण”

1922 में अमेरिका के नेब्रास्का (Nebraska) में एक दाँत (Tooth) मिलने का दावा किया गया, जिसे बाद में “नेब्रास्का मैन” (Nebraska Man) के नाम से प्रचारित किया गया। 1925 तक उस समय की प्रतिष्ठित

पत्रिकाओं जैसे **National Geographic और Science** में इसे व्यापक प्रचार-प्रसार (**Extensive Publicity**) मिला। दावा किया गया कि यह दाँत मनुष्य और कपि (Ape) के बीच की तथाकथित “**मिसिंग लिंक**” (**Missing Link**) को दर्शाता है। इसकी आयु लगभग **10 लाख वर्ष (1 Million Years)** आँकी गई और इसे **मानव-विकास (Human Evolution)** की अत्यंत महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में प्रस्तुत किया गया। “**नेब्रास्का मैन**” नाम से प्रसिद्ध प्रकरण वैज्ञानिक अनुसंधान, मीडिया-प्रचार और **अनुमानात्मक अतिक्रमण (Speculative Overreach)** के बीच संबंध को समझने का महत्वपूर्ण उदाहरण माना जाता है। **1922 में Harold Cook** नामक भूवैज्ञानिक को Nebraska में एक एकल जीवाश्म दाँत प्राप्त हुआ। इस दाँत का अध्ययन प्रसिद्ध जीवाश्म-विज्ञानी **हेनरी फेयरफील्ड ओसबोर्न (Henry Fairfield Osborn)** (अध्यक्ष, American Museum of Natural History) ने किया और 1922 में इसे **हेस्पेरोपिथेकस हेरोल्डकुकी (Hesperopithecus haroldcookii)** नाम दिया। प्रारंभिक व्याख्या में इसे मानव और कपि के बीच की संभावित “मिसिंग लिंक” के रूप में प्रस्तुत किया गया।

मीडिया और लोकप्रिय प्रस्तुति

1925 तक यह दावा लोकप्रिय पत्रिकाओं जैसे **नेशनल ज्योग्राफिक सोसायटी (National Geographic Society)** की पत्रिका तथा वैज्ञानिक जर्नल Science में चर्चा का विषय बन चुका था। केवल एक दाँत के आधार पर कलाकारों ने संपूर्ण जीव की **काल्पनिक पुनर्रचना (Imaginary Reconstruction)** तैयार कर दी। कुछ चित्रों में तो उसे परिवार सहित दर्शाया गया, मानो उसकी पूर्ण शारीरिक संरचना स्थापित हो चुकी हो। यह उदाहरण बताता है कि किस प्रकार **आंशिक साक्ष्य (Fragmentary Evidence)** से व्यापक विकासवादी निष्कर्ष (**Evolutionary Conclusions**) निकालने का जोखिम उठाया गया।

वैज्ञानिक पुनर्मूल्यांकन

बाद के वर्षों में जब उसी क्षेत्र से अतिरिक्त अवशेष प्राप्त हुए और उनका विस्तृत आकृतिक विश्लेषण (Morphological Examination) किया गया, तो स्पष्ट हुआ कि वह दाँत किसी प्रारंभिक मानव का नहीं, बल्कि एक विलुप्त जंगली सूअर प्रजाति (Prosthennops) का था। परिणामस्वरूप 1927 तक यह दावा औपचारिक रूप से वापस ले लिया गया।

ऐतिहासिक महत्त्व

यह घटना निम्न बातों को रेखांकित करती है:

- i. **वैज्ञानिक प्रमाणीकरण (Scientific Validation)** की प्रक्रिया में पुनरीक्षण (Revision) आवश्यक है।
- ii. **मीडिया-आकर्षण (Media Sensationalism)** कभी-कभी शोध को अतिरंजित रूप दे सकता है।
- iii. **विकासवाद (Evolutionary Theory)** स्वयं इस त्रुटि से अप्रभावित रहा, क्योंकि विज्ञान में आत्म-संशोधन (Self-Correction) की क्षमता अंतर्निहित होती है।

नेब्रास्का मैन प्रकरण को आज विज्ञान के इतिहास में एक **चेतावनी उदाहरण (Cautionary Case Study)** के रूप में देखा जाता है, यह दर्शाता है कि जब प्रारंभिक साक्ष्य को अंतिम सत्य के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, तो वैज्ञानिक विश्वसनीयता पर प्रश्न उठ सकते हैं; परंतु साथ ही यह भी सिद्ध करता है कि वैज्ञानिक पद्धति अंततः त्रुटियों को सुधारने में सक्षम होती है।

3. “पिल्टडाउन मैन: वैज्ञानिक कपट, पुष्टिकरण पूर्वाग्रह और मानव-विकास विमर्श का संकट”

1912 में इंग्लैंड के ससेक्स क्षेत्र में **चार्ल्स डॉसन (Charles Dawson)** ने ऐसे जीवाश्म (Fossils) मिलने का दावा किया, जिन्हें मानव और वानर के बीच की तथाकथित “मिसिंग लिंक” सिद्ध करने वाला बताया गया। इन अवशेषों में खोपड़ी का ऊपरी भाग अपेक्षाकृत मानव-सदृश था, जबकि जबड़ा वानर-सदृश प्रतीत होता था। इस खोज को तत्कालीन वैज्ञानिक प्रतिष्ठान का समर्थन मिला और इसे मानव-विकास की एक महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में प्रस्तुत किया गया। किंतु बाद में यह स्पष्ट हुआ कि यह एक **कृत्रिम संयोजन (Artificial Composite)** था, जिसमें आधुनिक मानव की खोपड़ी को एक ओरांगुटान के जबड़े से जोड़कर, उसे रासायनिक उपचार और रंग-प्रयोग द्वारा पुराना दर्शाया गया था। **1953** में **प्रकृति और विज्ञान (Nature and Science)** में प्रकाशित शोधों के माध्यम से फ्लोराइड परीक्षण (Fluorine Dating Test) और अन्य रासायनिक विश्लेषणों द्वारा यह सिद्ध हुआ कि अवशेषों की आयु में स्पष्ट **असंगति (Inconsistency)** है। यह घटना दर्शाती है कि विज्ञान पूर्णतः **मानवीय त्रुटिपूर्णता (Human Fallibility)** से मुक्त नहीं है; जब **पुष्टिकरण पूर्वाग्रह (Confirmation Bias)** और **बौद्धिक उत्साह (Intellectual Zeal)** हावी हो जाएँ, तो शोधकर्ता अनजाने में भी **अनुमानात्मक अतिक्रमण (Speculative Overreach)** कर सकते हैं। फिर भी, इस प्रकरण ने विज्ञान की वास्तविक शक्ति उसकी **आत्म-सुधार क्षमता (Self-Corrective Nature)** को भी उजागर किया। कठोर परीक्षण, स्वतंत्र समीक्षा और आलोचनात्मक पुनर्मूल्यांकन ने अंततः इस कपट को उजागर कर दिया। आज पिल्टडाउन मैन प्रकरण एक **चेतावनी उदाहरण (Cautionary Example)** के रूप में देखा जाता है, जो यह सिखाता है कि प्रत्येक वैज्ञानिक दावा सदैव **प्रमाण-आधारित सत्यापन**

(Evidence-Based Verification) और **आलोचनात्मक परीक्षण (Critical Examination)** के अधीन होना चाहिए।

4. “पुष्टिकरण पूर्वाग्रह और मानव-वंश की खोज: रामापिथेकस प्रकरण का ऐतिहासिक पुनर्मूल्यांकन”

1930 के दशक में भारत और पाकिस्तान के शिवालिक (Siwalik) क्षेत्र से प्राप्त जीवाश्म अवशेष मुख्यतः जबड़े (Jaw Bone) के कुछ खंड (Fragments) थे। इन्हीं सीमित अस्थियों (Partial Fossil Evidence) के आधार पर संपूर्ण मानवाकृति (Complete Human Reconstruction) की कल्पना प्रस्तुत की गई, चेहरे की बनावट (Facial Morphology), कद-काठी (Height & Body Structure) और यहाँ तक कि व्यवहार (Behavioral Traits) तक का चित्रण किया गया। इन अवशेषों को **रामापिथेकस (Ramapithecus)** नाम देकर मानव-विकास (Human Evolution) की एक संभावित कड़ी (Proposed Ancestor) के रूप में प्रचारित किया गया। उस समय कुछ प्रमुख मानवविज्ञानी, जैसे **एल्विन एल. सिमंस (Elwyn L. Simons)**, ने दंत-विन्यास (Dental Structure) और जबड़े की आकृति के आधार पर इसे मानव-वंश (Human Lineage) के निकट माना।

मूल प्रश्न यहाँ **अनुमानात्मक विस्तार (Speculative Extrapolation)** का है। जब न तो डीएनए विश्लेषण (DNA Analysis) उपलब्ध था, न पूर्ण कंकाल (Complete Skeleton), न मस्तिष्क-अवशेष (Brain Evidence) और न ही कोमल ऊतकों (Soft Tissues) का कोई प्रमाण तब केवल दंत-विन्यास के आधार पर इतना **व्यापक निष्कर्ष (Sweeping Conclusion)** निकालना क्या **वैज्ञानिक सतर्कता (Scientific Caution)** के अनुरूप था? उस युग में आंशिक साक्ष्यों (Fragmentary Data) पर आधारित निष्कर्षों में कभी-कभी **पुष्टिकरण**

पूर्वाग्रह (Confirmation Bias) भी प्रभावी रहा, अर्थात् उपलब्ध तथ्यों को पहले से स्वीकृत सिद्धांत के अनुरूप देखने की प्रवृत्ति।

1970 के दशक में उन्नत तुलनात्मक अध्ययन (Advanced Comparative Studies) और बेहतर जीवाश्म अभिलेख (Improved Fossil Records) के आधार पर यह स्थापित हुआ कि तथाकथित रामापिथेकस वास्तव में Sivapithecus समूह से संबंधित था, जो आधुनिक **ओरंगुटान Orangutan वंश (ओरंगुटान वंश, Orangutan Lineage)** के निकट है, न कि मानव-वंश का प्रत्यक्ष पूर्वज। इस पुनर्मूल्यांकन ने दर्शाया कि प्रारंभिक वर्गीकरण (Initial Classification) **ज्ञानमीमांसात्मक विनम्रता (Epistemic Humility)** के अभाव में किया गया एक अतिशय निष्कर्ष था।

दुर्भाग्यवश, कई दशकों तक इसे पाठ्य-पुस्तकों और लोकप्रिय व्याख्यानो में "मानव की मध्य कड़ी" के रूप में पढ़ाया जाता रहा। यह प्रकरण पुनः स्मरण कराता है कि विज्ञान (Science) जब **व्यापक कथाएँ (Grand Narratives)** गढ़ता है, तब उसे **कठोर सत्यापन (Rigorous Validation)** और सतत पुनरीक्षण (Continuous Reassessment) के अधीन रहना चाहिए। यही उसकी वास्तविक शक्ति **आत्म-संशोधन (Self-Correction)** का आधार है।

5. "लूसी" (Australopithecus afarensis) का उदाहरण
ऑस्ट्रालोपिथेकस अफारेन्सिस (Australopithecus afarensis) जिसका प्रसिद्ध जीवाश्म "लूसी" कहलाता है, 1974 में **डोनाल्ड जोहानसन (Donald Johanson)** और उनकी टीम द्वारा इथियोपिया के हदार (Hadar) क्षेत्र में खोजा गया था। लगभग 40% कंकाल मिलने का तथ्य सही है, परंतु आधुनिक जीवाश्म-विज्ञान (Paleoanthropology) में 40% संरक्षित कंकाल अत्यंत महत्वपूर्ण और अपेक्षाकृत पूर्ण माना जाता है। महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि: लूसी का पूरा

कंकाल नहीं मिला, लगभग **40% अवशेष** ही उपलब्ध हैं, घुटने के नीचे की हड्डी शरीर से काफी दूर और अलग गहराई पर मिली, यह भी निश्चित नहीं कि वह उसी जीव की थी। इसके बावजूद: पूरा कंकाल तैयार किया गया, चलने का तरीका दर्शाया गया, और तो और मानव पूर्वज घोषित किया गया। अब लूसी के सबसे ज़्यादा प्रचारित दावे पर आते हैं, **“लूसी दो पैरों पर सीधी चलती थी, यानी बाइपेडल थी।”** यही दावा उसे “मनुष्य का पूर्वज” बनाने की नींव है। यदि यह दावा गिरता है, तो पूरा ढांचा अपने आप गिर जाता है। **हिप बोन (कूल्हे की हड्डी) का निर्णायक प्रमाण:** मनुष्य की हिप बोन की एक विशिष्ट बनावट होती है। वह **ब्लेड (Blade) जैसी** होती है इसी संरचना के कारण मनुष्य: सीधे खड़ा रह सकता है, संतुलन बना सकता है और लंबे समय तक दो पैरों पर चल सकता है। लेकिन लूसी की हिप बोन: **ब्लेड जैसी नहीं, बल्कि प्लैट (चपटी)** थी, जो संरचना **बंदरों और नक्कल-वॉकर प्रजातियों** में पाई जाती है। इस हड्डी की बनावट के कारण: लूसी कभी भी एड़ी और पंजे दोनों को ज़मीन पर टिकाकर नहीं चल सकती थी। उसकी चाल अनिवार्य रूप से **नक्कल-वॉकिंग (knuckle walking)** या पंजों के बल चलने वाली होती। **पैर के तलवे में आर्च का अभाव:** मनुष्य के पैर में एक महत्वपूर्ण संरचना होती है **आर्च (Arch):** और यही आर्च: शरीर का वजन संतुलित करता है। सीधे खड़े रहने में मदद करता है और लंबे समय तक चलना संभव बनाता है। लूसी के पैर में **यह आर्च पूरी तरह अनुपस्थित थी**, इसका सीधा अर्थ है: संतुलन कमजोर, सीधी चाल अस्थिर और लंबे समय तक दो पैरों पर चलना असंभव। यह विशेषता भी **मनुष्य में नहीं, बल्कि बंदरों में** पाई जाती है। **घुटने के जोड़ (Knee Joint) का एंगल:** लूसी के घुटने के जोड़ का एंगल: न तो मनुष्य जैसा था और न ही मानव चाल के अनुकूल। यह एंगल: बाजू के जोड़ (elbow joint) जैसा अधिक था, जो यह दर्शाता है कि: उसका शरीर भार वहन करने के लिए डिज़ाइन नहीं था, जैसा कि मनुष्य के घुटने करते हैं। **“दो पैरों पर चलना” बनाम**

“मनुष्य की तरह चलना” यहाँ एक महत्वपूर्ण वैज्ञानिक अंतर समझना ज़रूरी है: बहुत से जानवर **दो पैरों पर खड़े हो सकते हैं**, कुछ बंदर **कुछ कदम दो पैरों पर चल भी सकते हैं**। लेकिन: यह उनकी **सामान्य चाल नहीं होती**, वे लंबे समय तक ऐसा नहीं कर सकते और संतुलन बनाए नहीं रख पाते। जैसा कि मनुष्य की चाल: स्थायी, संतुलित, ऊर्जा-कुशल और संरचनात्मक रूप से समर्थित होती है। लूसी की हड्डियों की बनावट इस स्तर की चाल को **समर्थन ही नहीं देती। वैज्ञानिक मतभेद Nature पत्रिका का उल्लेख सन 2000 में Nature पत्रिका में प्रकाशित शोधों में:** स्वयं वैज्ञानिकों ने स्वीकार किया कि लूसी की मॉर्फोलॉजी (Morphology) **नक्कल-वॉकिंग की ओर अधिक संकेत करती है**। अर्थात: यदि वह दो पैरों पर चलती भी थी, तो वह मनुष्य जैसी सीधी चाल नहीं थी। आज स्वयं कई वैज्ञानिक मानते हैं कि: लूसी मानव का प्रत्यक्ष पूर्वज नहीं है, फिर भी: विदामना देखें संग्रहालयों में उसका पूरा ढांचा आज भी प्रदर्शित है।

6. **“कोएलाकैंथ (Coelacanth) मछली कोएलाकैंथ का रहस्य: जीवित जीवाश्म और विकासवाद की वैज्ञानिक व्याख्या”**

कोएलाकैंथ (Coelacanth) का प्रसंग **जीवाश्म-विज्ञान (Paleontology)** के इतिहास में अत्यंत रोचक माना जाता है। इसे लगभग 65 मिलियन वर्षों से विलुप्त समझा जा रहा था, किंतु **1938** में जब दक्षिण अफ्रीका के तट पर एक जीवित कोएलाकैंथ पकड़ी गई, तो यह एक बड़ा **वैज्ञानिक आश्चर्य (Scientific Sensation)** था, क्योंकि जिसे करोड़ों वर्ष पहले विलुप्त माना गया था, वह जीवित मिला। कुछ वैज्ञानिकों ने इसे मछलियों से **स्थलीय कशेरुकियों (Terrestrial Vertebrates)** की ओर **संक्रमण (Transition)** को समझने में संभावित रूप से महत्वपूर्ण माना। विशेषकर इसके **पंखों (Lobed Fins)** की अस्थि-संरचना (Bone Structure) ने ध्यान आकर्षित किया, क्योंकि

वे अन्य मछलियों की तुलना में अधिक जटिल थीं और उनमें कुछ ऐसी **आंतरिक हड्डियाँ (Internal Skeletal Elements)** थीं, जो प्रारंभिक **टेट्रापोड (Tetrapod)** अंगों से सतही समानता रखती थीं। इसके मांसल **लोब फिन्स (Lobe Fins)** की संरचना चारपायी कशेरुकियों से मिलती-जुलती प्रतीत होने के कारण प्रारंभ में इसे जलीय और स्थलीय जीवों के मध्य संभावित **संक्रमणकारी रूप (Transitional Form)** अथवा तथाकथित **मिसिंग लिंक (Missing Link)** के रूप में प्रस्तुत किया गया।

बाद के अध्ययन (Subsequent Studies) में स्पष्ट हुआ कि आधुनिक कोएलाकैंथ में फेफड़े (Lungs) क्रियाशील रूप में उपस्थित नहीं हैं; उसमें एक **वसायुक्त थैली (Fat-Filled Organ)** है, जो प्राचीन फेफड़ों का अवशेष (Vestigial Structure) मानी जाती है। साथ ही, उसके पंख सीधे "हाथ-पैर" (Limbs) में बदलने की प्रक्रिया में नहीं हैं, बल्कि वे तैराकी (Swimming) के लिए अनुकूलित (Adapted) हैं। हालाँकि आगे के गहन **शारीरिक विश्लेषण (Anatomical Analysis)** और **आनुवंशिक अनुक्रमण (Genetic Sequencing)** से स्पष्ट हुआ कि आधुनिक सिलोकेन्थ में पाए जाने वाले **अवशेषी फेफड़े (Vestigial Lungs)** भ्रूण अवस्था में विकसित तो होते हैं, परंतु वयस्क होने पर उनका विकास अवरुद्ध हो जाता है और वे गहरे समुद्र में **उत्प्लावकता संतुलन (Buoyancy Regulation)** हेतु वसायुक्त अंग से आच्छादित हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त, यद्यपि इसके पंख अंगों जैसे दिखते हैं, वे भूमि पर संचलन के लिए नहीं, बल्कि गहरे जल में नियंत्रित तैराकी के लिए अनुकूलित संरचनाएँ हैं। इसलिए वर्तमान वैज्ञानिक सहमति (Scientific Consensus) यह नहीं मानती कि जीवित कोएलाकैंथ स्वयं वह प्रत्यक्ष **संक्रमणीय कड़ी (Direct Transitional Form)** है, जिससे स्थलीय प्राणी विकसित हुए। यानी **evidence से conclusion नहीं, बल्कि conclusion से evidence गढ़ा गया।**

इन सभी तथ्यों को जोड़ने पर निष्कर्ष स्पष्ट है, यह केवल ईमानदार भूल नहीं थी। यह केवल अज्ञानता नहीं थी। यह **पूर्व-निर्धारित सिद्धांत को सही साबित करने की ज़िद** थी। जब विज्ञान निष्पक्ष न रहकर विचारधारा का औज़ार बन जाए, तो वह सत्य की खोज नहीं, बल्कि **प्रचार की मशीन** बन जाता है।

उपरोक्त अवधारणा को समझने के लिए हम एक उदाहरण लेंगे। सोचिए आप दो पेड़ जानते हैं बरगद, जो भारत में आम है, और रेडवुड (Sequoia), जो दुनिया के सबसे ऊँचे पेड़ों में से है। अब अगर किसी अफ्रीका या भूमध्य रेखा के पास रहने वाले व्यक्ति को बरगद का एक पत्ता दे दिया जाए, और भारत में रहने वाले व्यक्ति को रेडवुड का पत्ता, तो क्या केवल पत्ते को देखकर वह पेड़ की ऊँचाई, फैलाव, जीवनकाल या स्वभाव बता पाएगा? जवाब साफ़ है **नहीं**। हम ये इसलिए जान पाते हैं क्योंकि बरगद और रेडवुड अभी जीवित हैं और हम जाकर उन्हें देख सकते हैं। लेकिन अगर पेड़ उपलब्ध ही न हों, तो केवल पत्ते से निष्कर्ष निकालना असंभव है। इसी तरह स्ट्रॉबेरी का उदाहरण लें। अगर किसी ने कभी स्ट्रॉबेरी नहीं देखी और उससे कहा जाए, “इस फल के बीज बाहर होते हैं,” तो शायद विश्वास भी न करे। जब तक हम स्वयं स्ट्रॉबेरी न देखें, हम इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकते।

पहाड़ी बकरी और मैदानी बकरी का उदाहरण भी देखें। मैदानी बकरी को पहाड़ पर छोड़ो तो फिसल जाएगी। पहाड़ी बकरी तीखी चट्टानों पर आराम से चलती है। अगर किसी ने कभी पहाड़ी बकरी नहीं देखी, तो वह मान भी नहीं पाएगा कि ऐसी बकरी होती है। अब यही तर्क **फॉसिल** पर लागू होता है। जिन जीवों के फॉसिल मिलते हैं, वे आज जीवित नहीं हैं। उनके सॉफ्ट टिशू, व्यवहार, चाल, संतुलन कुछ भी प्रत्यक्ष नहीं है। केवल हड्डी के टुकड़े देखकर पूरे जीव की रचना और उसे “मध्य कड़ी” घोषित करना **अनुमान** से आगे नहीं, बल्कि कल्पना पर आधारित दावा है।

विकासवाद के नाम पर हुई भ्रांतियाँ इसलिए होती हैं क्योंकि पहले से तय सिद्धांत को सही दिखाना होता है। बड़ी यूनिवर्सिटी, जर्नल, संग्रहालय आदि बिना सवाल मान लेते हैं। सवाल उठाने पर तुरंत “अवैज्ञानिक” या “रूढ़िवादी” कह दिया जाता है। विज्ञान तभी आगे बढ़ता है जब अपनी गलतियों को स्वीकार करता है। पूरी दुनिया में शायद ही कोई देश गर्व से कहे कि “हमारी विद्या सृष्टि के साथ पैदा हुई थी,” लेकिन आज आधुनिक इंसान आत्मविश्वास से कहता है “हम तो बंदर के पोते हैं।” मतलब, जिन हाथों से उपनिषद लिखे गए, उन्हीं हाथों को अब कुछ लोग पेड़ की डालियों पर लटका हुआ साबित करने में जुटे हैं। विज्ञान आगे बढ़े, यह अच्छी बात है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि अपने पूर्वजों का मज़ाक उड़ाना। मनुष्य संसार का सबसे बुद्धिमान प्राणी है, बाक़ी प्राणी बेवकूफ़ नहीं, पर उनका “अपडेट” लिमिटेड है। हाथी, घोड़ा, कुत्ता, बंदर ट्रेनिंग लेकर कुछ कर सकते हैं, लेकिन इंसान जैसी सोच, सवाल पूछने की आदत और नई विद्या गढ़ने की क्षमता उनमें नहीं आती। यही वजह है कि दुनिया की सारी खोजें और विद्याएँ केवल मनुष्य ने कीं।

जिस वक्त दुनिया के तथाकथित विकसित देश अपनी सीमित खोजों पर **आत्ममुग्धता (Self-Glorification)** का प्रदर्शन कर रहे थे और भारत को केवल सपेरो व लोककथाओं की भूमि कहकर **उपहास (Derision)** का विषय बना रहे थे, उसी काल में भारतीय ग्रंथों में ब्रह्मांड संबंधी गहन **तत्त्वचिंतन (Metaphysical Reflection)** सुरक्षित था। जिन्हें समझने में आधुनिक विज्ञान को सदियाँ लग गईं। यह कोई कोरी कल्पना या मात्र पौराणिक कथा नहीं, बल्कि इसके पीछे एक व्यापक **बौद्धिक विमर्श (Intellectual Discourse)** निहित है। एक ऐसी वैचारिक परंपरा है जिसकी गूँज आज NASA जैसी संस्थाओं से लेकर विश्व की प्रमुख भौतिकी प्रयोगशालाओं तक सुनाई देती है। कहा जाता है कि यह वह महाज्ञान था जिसे हमसे छिपा दिया गया ताकि हम अपनी जड़ों को भूलकर पश्चिम की

बौद्धिक श्रेष्ठता को ही अंतिम सत्य मान लें। हमारे विद्यालयों में हमें चार्ल्स डार्विन (Charles Darwin) का विकासवाद विस्तार से पढ़ाया गया, पर यह शायद ही बताया गया कि जीवन के क्रमिक विकास (Evolutionary Outline) की एक प्रतीकात्मक संरचना (Symbolic Framework) हमारे दशावतार में पहले से मौजूद है। यह उसी कथित सच्चाई से पर्दा उठाने का प्रयास है जो हर भारतीय के भीतर गौरव की अनुभूति जगा सके।

6. “भगवान विष्णु के दशावतार और विकासवाद: जैविक, सामाजिक तथा चेतनात्मक उत्क्रांति का प्रतीकात्मक दार्शनिक विश्लेषण”

बचपन से हम इन्हें चमत्कारों की कहानियों के रूप में सुनते आए हैं, पर यदि इन्हें प्रतीकात्मक दृष्टि से देखा जाए तो यह जीवन और चेतना की एक क्रमिक यात्रा का रूपक भी हो सकते हैं। उन्नीसवीं सदी में डार्विन ने बताया कि जीवन की शुरुआत जल में सूक्ष्म जीवों से हुई, जो धीरे-धीरे विकसित होकर स्थलीय प्राणियों और अंततः मानव में परिवर्तित हुए। यही क्रम यदि दशावतार में देखा जाए तो

प्रथम अवतार मत्स्य है आद्यावस्था (Primordial Stage जलीय जीवन का प्रतीक) ।

मत्स्य को प्रथम अवतार माना गया है, जो आद्यावस्था (Primordial Stage) अर्थात् जलीय जीवन का प्रतीक समझा जाता है। इस संदर्भ में **श्रीमद्भागवतम् (अष्टम स्कन्ध)** में मत्स्यावतार का वर्णन मिलता है।

एक प्रसिद्ध श्लोक इस प्रकार है—

प्रलयपयोधिजले धृतवान् असि वेदं
विहितवहित्रचरित्रमखेदम्।
केशव धृतमीनशरीर जय जगदीश हरे॥

(अर्थ; हे केशव! आपने प्रलय के जल में वेदों की रक्षा के लिए मीन (मत्स्य) शरीर धारण किया। हे जगदीश! आपकी जय हो।)

दूसरा कूर्म है संक्रमणीय अनुकूलन (Transitional Adaptation) जो जल और स्थल दोनों पर रहने वाला प्राणी है उभयचर अवस्था का संकेत ।

कूर्म को भगवान विष्णु का द्वितीय अवतार माना गया है, जो संक्रमणीय अनुकूलन (Transitional Adaptation) अर्थात् जल और स्थल दोनों से संबद्ध अवस्था का प्रतीक समझा जाता है। इसका वर्णन **श्रीमद्भागवतम् (अष्टम स्कन्ध)** में समुद्रमंथन प्रसंग में मिलता है। संबंधित श्लोक इस प्रकार है—

क्षितिर्ह विपुलतरे तव तिष्ठति पृष्ठे

धरणिधरणकिणचक्रगरिष्ठे ।

केशव धृतकच्छपरूप जय जगदीश हरे ॥

(अर्थ; हे केशव! आपने कच्छप (कूर्म) रूप धारण कर अपने विशाल पृष्ठ पर पर्वत को धारण किया और समुद्रमंथन की प्रक्रिया को संभव बनाया। हे जगदीश! आपकी जय हो।)

तीसरा वराह है स्थलीकरण प्रक्रिया (Terrestrial Adaptability) पूर्ण रूप से स्थलीय जीव धरती पर विकसित जीवन का प्रतीक) ।

वराह भगवान विष्णु का तृतीय अवतार माना जाता है, जो स्थलीकरण प्रक्रिया (Terrestrial Adaptability) अर्थात् पूर्ण रूप से स्थलीय जीवन के विकास का प्रतीक समझा जाता है। इसका वर्णन **श्रीमद्भागवतम् (तृतीय स्कन्ध)** में प्राप्त होता है। संबंधित श्लोक इस प्रकार है

वसति दशनशिखरे धरणी तव लग्ना
 शशिनि कलङ्ककलेव निमग्ना।
 केशव धृतसूकररूप जय जगदीश हरे॥

(अर्थ: हे केशव! आपने सूकर (वराह) रूप धारण कर अपने दाँतों के अग्रभाग पर धरणी (पृथ्वी) को धारण किया, जो मानो चन्द्रमा पर स्थित कलंक के समान शोभायमान थी। हे जगदीश! आपकी जय हो।)

चौथा नरसिंह है अंतर्वर्ती चेतना (Intermediate Consciousness)
 आधा पशु, आधा मानव एक संक्रमण अवस्था का रूपक माना जाता है, जहाँ पशुता और मानवता साथ-साथ विद्यमान हैं।

नरसिंह भगवान विष्णु का चतुर्थ अवतार माना जाता है, जिसे आधा-मनुष्य और आधा-सिंह रूप में वर्णित किया गया है। इसे अंतर्वर्ती चेतना (Intermediate Consciousness) की प्रतीकात्मक अवस्था भी माना जाता है, जहाँ पशुता और मानवता का संगम दिखाई देता है। इसका वर्णन **श्रीमद्भागवतम् (सप्तम स्कन्ध)** में मिलता है।

एक प्रसिद्ध स्तुति-श्लोक इस प्रकार है

तव करकमलवरे नखमद्भुतभृङ्गं
 दलितहिरण्यकशिपुतनुभृङ्गम्।
 केशव धृतनरहरिरूप जय जगदीश हरे॥

(अर्थ: हे केशव! आपने नरहरि (नरसिंह) रूप धारण कर अपने कर-कमलों के अद्भुत नखों से हिरण्यकशिपु के शरीर का विदारण किया। हे जगदीश! आपकी जय हो।)

इसके बाद **वामन** है, **अपरिपक्व शारीरिक संरचना (Primitive Physical Form)**- जो प्रारंभिक मानव की अल्प विकसित अवस्था का प्रतीक समझे जाते हैं।

वामन भगवान् विष्णु का पंचम अवतार माना जाता है। वामन रूप को प्रतीकात्मक रूप से अपरिपक्व शारीरिक संरचना (Primitive Physical Form) अथवा प्रारंभिक मानव की अल्प-विकसित अवस्था के रूप में भी व्याख्यायित किया जाता है, जहाँ आकार में लघु होने पर भी चेतना और बुद्धि की शक्ति निहित रहती है। इसका वर्णन **श्रीमद्भागवतम् (अष्टम स्कन्ध)** में प्राप्त होता है। एक प्रसिद्ध स्तुति-श्लोक इस प्रकार है—

**छलयसि विक्रमणे बलिमद्भुतवामन
पदनखनिर्जनितजनपावन।
केशव धृतवामनरूप जय जगदीश हरे॥**

(अर्थ; हे केशव! आपने अद्भुत वामन रूप धारण कर तीन पगों में राजा बलि को वश में किया, और आपके चरण-नखों से प्रवाहित जल ने समस्त लोकों को पवित्र किया। हे जगदीश! आपकी जय हो।)

षष्ठ अवतार परशुराम है प्रौद्योगिक जागरण (Technological Awakening) -औजारों और अस्त्रों के प्रयोग करने वाले मानव का संकेत देते हैं मानव सभ्यता के पाषाण युग की स्मृति ।

परशुराम भगवान् विष्णु का षष्ठ अवतार माने जाते हैं। परशु (फरसा/कुल्हाड़ी) धारण करने के कारण उनका नाम 'परशुराम' पड़ा, जो प्रतीकात्मक रूप से औजारों और अस्त्रों के प्रयोग की आरंभिक मानव-अवस्था प्रौद्योगिक जागरण (Technological Awakening) का संकेत देता है। इसे मानव सभ्यता के पाषाण युग (Stone Age) की स्मृति के रूप में भी व्याख्यायित किया जाता है।

श्रीमद्भागवतम् में परशुरामावतार का वर्णन प्राप्त होता है। एक प्रसिद्ध स्तुति-श्लोक इस प्रकार है

**क्षत्रियरुधिरमये जगदपगतपापं
स्रपयसि पयसि शमितभवतापम्।
केशव धृतभृगुपतिरूप जय जगदीश हरे ॥**

(अर्थ; हे केशव! आपने भृगुपति (परशुराम) रूप धारण कर अधर्मकारी क्षत्रियों का विनाश किया और पृथ्वी को उनके अत्याचार से मुक्त किया। हे जगदीश! आपकी जय हो।)

सातवें अवतार Rama है संस्थागत मर्यादा (Institutional Ethics)- सामाजिक व्यवस्था, मर्यादा और संगठित राज्य व्यवस्था के प्रतीक हैं।

राम भगवान विष्णु के सप्तम अवतार माने जाते हैं और उन्हें संस्थागत मर्यादा (Institutional Ethics), आदर्श सामाजिक व्यवस्था तथा संगठित राज्य-व्यवस्था के प्रतीक के रूप में देखा जाता है। राम का चरित्र धर्म, कर्तव्य, न्याय और राजधर्म की परिपूर्ण अभिव्यक्ति है, जहाँ व्यक्तिगत हित से ऊपर समाज और राज्य की मर्यादा को स्थान दिया गया है। उनका जीवन आदर्श शासन-पद्धति (रामराज्य) और नैतिक नेतृत्व का प्रतिमान प्रस्तुत करता है।

रामचरितमानस में राम के गुणों का वर्णन करते हुए एक प्रसिद्ध दोहा है

**रघुकुल रीति सदा चली आई,
प्राण जाए पर वचन न जाई ॥**

(अर्थ; रघुवंश की यह परंपरा सदा से चली आई है कि प्राण भले चले जाएँ, पर दिया हुआ वचन नहीं त्यागा जाता।)

आठवें अवतार Krishna है **रणनीतिक परिपक्वता (Strategic Sophistication)**- जटिल राजनीतिक, दार्शनिक और नैतिक चेतना के विकास को दर्शाते हैं।

कृष्ण भगवान विष्णु के अष्टम अवतार माने जाते हैं और उन्हें रणनीतिक परिपक्वता (Strategic Sophistication) का प्रतीक समझा जाता है। उनका व्यक्तित्व केवल भक्ति और प्रेम का ही नहीं, बल्कि गहन राजनीतिक सूझ-बूझ, कूटनीति, दार्शनिक गहराई और नैतिक जटिलता का भी द्योतक है। महाभारत में वे एक कुशल रणनीतिकार, मार्गदर्शक और धर्म-संस्थापक के रूप में प्रकट होते हैं, जो परिस्थितियों के अनुसार नीति का प्रयोग करते हुए धर्म की रक्षा करते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता (४.७) में उनका यह उपदेश विशेष रूप से उल्लेखनीय है

**यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥**

(अर्थ — हे भारत (अर्जुन)! जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब मैं स्वयं प्रकट होता हूँ।)

नौवें अवतार Gautama Buddha है **आध्यात्मिक आत्मबोध (Spiritual Self-Realization)**- आत्मज्ञान और चेतना के उत्कर्ष का प्रतिनिधित्व करते हैं, जहाँ विकास केवल शारीरिक नहीं बल्कि आध्यात्मिक आयाम तक पहुँच जाता है।

गौतम बुद्ध को विष्णु का नवम अवतार माना जाता है, जो आध्यात्मिक आत्मबोध (Spiritual Self-Realization) और चेतना के उत्कर्ष का प्रतीक हैं। इस अवस्था में विकास केवल शारीरिक या सामाजिक नहीं, बल्कि गहन आध्यात्मिक आयाम तक पहुँचता है, जहाँ करुणा, अहिंसा

और आत्मज्ञान की प्रधानता होती है। बुद्ध का अवतरण धर्म की शुद्धि, अज्ञान के निवारण और आंतरिक जागरण के लिए माना गया है।

श्रीमद्भागवतम् (प्रथम स्कन्ध, ३.२४) में बुद्धावतार का उल्लेख इस प्रकार है—

ततः कलौ सम्प्रवृत्ते सम्मोहाय सुरद्विषाम्।

बुद्धो नाम्नाञ्जनसुतः कीकटेषु भविष्यति॥

(अर्थ — कलियुग के प्रारम्भ में, सुरद्वेषियों के मोह हेतु, अंजन के पुत्र 'बुद्ध' नाम से कीकट प्रदेश में प्रकट होंगे।)

यहां तक आते-आते भारतीय दर्शन उस ऊंचाई पर पहुंच जाता है, जहां डार्विन की थ्योरी घुटने टेक देती है। डार्विन का विकासवाद सिर्फ शारीरिक बनावट पर आकर रुक जाता है। लेकिन भारतीय दर्शन चेतना के विकास की बात करता है। बुद्ध उस अवस्था के प्रतीक हैं जब इंसान ने भौतिक विकास, राजपाट, समाज, राजनीति इन सब से ऊपर उठकर अपने भीतर की खोज शुरू की। आत्मज्ञान और चेतना के शिखर पर पहुंचना ही मानव जीवन का असली लक्ष्य है।

दसवाँ अवतार कल्कि है चक्राकार पुनर्सृजन (Cyclical Regeneration)- भविष्य की उस निरंतर परिवर्तनशील प्रक्रिया का प्रतीक है, जो दर्शाता है कि विकास कभी रुकता नहीं, बल्कि समय-समय पर नई चेतना के साथ पुनः आरंभ होता है।

कल्कि भगवान विष्णु का दशम और भावी अवतार माना जाता है, जो चक्राकार पुनर्सृजन (Cyclical Regeneration) का प्रतीक है। यह उस सिद्धांत को व्यक्त करता है कि सृष्टि और चेतना का विकास रैखिक (Linear) न होकर चक्रीय (Cyclical) है, जब अधर्म की पराकाष्ठा होती है, तब नवचेतना के साथ पुनः धर्म की स्थापना होती है। कल्कि अवतार

भविष्य में परिवर्तन, शुद्धि और नवीनीकरण की प्रक्रिया का द्योतक है, जहाँ पुरानी संरचनाएँ समाप्त होकर नवीन व्यवस्था का आरम्भ होता है।

श्रीमद्भागवतम् (द्वादश स्कन्ध, २.१९-२०) में इसका वर्णन इस प्रकार मिलता है—

शम्भलग्राममुख्यस्य ब्राह्मणस्य महात्मनः।

भवने विष्णुयशसः कल्किः प्रादुर्भविष्यति॥

अश्वमारुह्य देवदत्तं खड्गमादाय करस्थितम्।

निहनिष्यति दस्यून् स कोटिशो नृपलक्षणान्॥

(अर्थ — कलियुग के अंत में शम्भल ग्राम के महात्मा ब्राह्मण विष्णुयश के घर कल्कि अवतार प्रकट होंगे। वे देवदत्त नामक अश्व पर आरूढ़ होकर कर में खड्ग धारण करेंगे और अधर्माचारी शासकों का विनाश करेंगे।)

अब आप खुद सोचिए क्या यह सिर्फ एक संयोग हो सकता है? दशावतार की परंपरा को यदि केवल धार्मिक आख्यान के रूप में न देखकर एक **प्रतीकात्मक दार्शनिक ढाँचे** के रूप में समझा जाए, तो यह जीवन और चेतना की क्रमिक प्रगति की एक रोचक व्याख्या प्रस्तुत करती है। आधुनिक जीवविज्ञान में जिस **विकासवाद (Evolution)** की अवधारणा को चार्ल्स डार्विन (Charles Darwin) ने वैज्ञानिक रूप से प्रतिपादित किया, उसमें जीवन की उत्पत्ति जल में सूक्ष्म जीवों से मानी जाती है, जो धीरे-धीरे जटिल जीवों में विकसित हुए। आश्चर्यजनक रूप से विष्णु के दशावतार का क्रम भी इसी प्रकार की एक प्रतीकात्मक प्रगति को संकेतित करता हुआ दिखाई देता है। मत्स्य अवतार को **आद्यावस्था (Primordial Stage)** अर्थात् जलीय जीवन के रूपक के रूप में देखा जा सकता है, जबकि कूर्म अवतार **संक्रमणीय अनुकूलन (Transitional Adaptation)** की उस अवस्था का संकेत देता है, जहाँ जीव जल और स्थल दोनों के अनुकूलन की क्षमता प्राप्त करते हैं। इसके बाद वराह

अवतार **स्थलीकरण प्रक्रिया (Terrestrial Adaptability)** का प्रतीक प्रतीत होता है, जहाँ जीवन पूर्णतः भूमि पर स्थापित हो जाता है। नरसिंह अवतार में **अंतर्वर्ती चेतना (Intermediate Consciousness)** का विचार उभरता है, जो पशु और मानव गुणों के मिश्रण को दर्शाता है, जबकि वामन अवतार **प्रारंभिक मानवीय संरचना (Primitive Human Form)** का संकेत देता है। आगे चलकर परशुराम को **प्रौद्योगिक जागरण (Technological Awakening)** का प्रतीक माना जा सकता है, जहाँ मानव औजारों और अस्त्रों के उपयोग द्वारा प्रकृति पर नियंत्रण स्थापित करने लगता है। राम और कृष्ण के अवतार क्रमशः **संस्थागत नैतिकता (Institutional Ethics)** तथा **रणनीतिक परिपक्वता (Strategic Sophistication)** का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो मानव समाज के जटिल सामाजिक-राजनीतिक विकास को दर्शाते हैं। अंततः बुद्ध अवतार **आध्यात्मिक आत्मबोध (Spiritual Self-Realization)** की उस अवस्था को अभिव्यक्त करता है, जहाँ मानव चेतना केवल भौतिक प्रगति तक सीमित न रहकर आत्मिक अन्वेषण की ओर उन्मुख हो जाती है। इस प्रकार जलीय जीव से लेकर उभयचर, स्थलीय प्राणी, पशु-मानव संक्रमण, औजारों वाला मानव, सामाजिक मानव, राजनीतिक मानव और अंततः आध्यात्मिक मानव तक की यह यात्रा केवल बायोलॉजिकल एवोल्यूशन नहीं यह बायोलॉजिकल सोशियोलॉजिकल और स्पिरिटुअल एवोल्यूशन का पूरा खाका है जो डार्विन के पैदा होने से हजारों साल पहले भारत की भूमि पर तैयार हो चुका था। यह हमारे ऋषियों की वह दूरदृष्टि थी जो सिर्फ शरीर को नहीं बल्कि चेतना की गहराइयों को भी नाप सकती थी। यह संपूर्ण क्रम केवल **जैविक विकास (Biological Evolution)** तक सीमित प्रतीत नहीं होता, बल्कि इसमें **सामाजिक उत्क्रांति (Sociological Evolution)** और **आध्यात्मिक परिष्कार (Spiritual Refinement)** की भी स्पष्ट झलक मिलती है। यह दृष्टि केवल शारीरिक परिवर्तन तक सीमित नहीं रहती, बल्कि चेतना के क्रमिक विस्तार की ओर

संकेत करती है, जहाँ मानव केवल जैविक अस्तित्व नहीं, बल्कि नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक सत्ता के रूप में विकसित होता है। इस प्रकार यह संपूर्ण यात्रा शरीर से अधिक **चेतनात्मक उत्क्रांति (Consciousness Evolution)** की कथा बन जाती है। यही वह विशेषता है, जिसे भारतीय ऋषियों की **अंतरदर्शी प्रज्ञा (Introspective Wisdom)** कहा जा सकता है, एक ऐसी बौद्धिक क्षमता, जो भौतिक संरचना के साथ-साथ चेतना की गहराइयों का भी अन्वेषण करती है।

अध्याय 5

“जब आज़ादी नेटपिलवस से सीखी जाए और जिम्मेदारियाँ ‘छोड़ दी जाएँ’!”

अमेरिकी अर्थशास्त्री **थॉमस सोवेल** के अनुसार, अधिकांश खराब नीतियाँ वही होती हैं जो मूलतः अच्छी थीं, किंतु उन्हें सीमा से अधिक विस्तार दे दिया गया। यही विचार **क्रमागत उपयोगिता हास नियम (Law of Diminishing Marginal Utility)** में भी परिलक्षित होता है, जहाँ किसी वस्तु या अनुभव का आनंद उसकी अधिकता के साथ घटने लगता है। यह सिद्धांत केवल अर्थशास्त्र तक सीमित नहीं, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में भी समान रूप से लागू होता है।

इसी परिप्रेक्ष्य में स्पष्ट होता है कि जब किसी अवधारणा को उसकी **उपयोगिता (Utility)** की स्वाभाविक सीमा से परे ले जाया जाता है, तो वह **विकृति (Distortion)** का रूप धारण कर लेती है। उदाहरणतः, स्त्री अधिकार, समानता और परिवार संरक्षण जैसे महत्वपूर्ण विषय जब संतुलित रूप में अपनाए जाते हैं, तो वे समाज के विकास में सहायक होते हैं। किंतु जब कुछ **विचारधाराएँ (Ideologies)** इन्हें एकांगी दृष्टिकोण से अत्यधिक विस्तार देती हैं, तो सामाजिक संतुलन (**Balance**) प्रभावित होने लगता है।

विशेषतः, यदि समानता की अवधारणा को इस प्रकार व्याख्यायित किया जाए कि पारिवारिक भूमिकाओं, पारस्परिक दायित्वों और सांस्कृतिक संरचनाओं की उपेक्षा होने लगे, तो सामाजिक समन्वय में असंतुलन उत्पन्न हो सकता है। उसी प्रकार, स्वतंत्रता (**Liberty**) का अतिरेक स्वेच्छाचार

और अराजकता का कारण बन सकता है, जबकि अनुशासन का अतिरेक बौद्धिक स्वतंत्रता को बाधित कर सकता है।

अतः निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि समस्या किसी विचार में नहीं, बल्कि उसके अतिरेक (**Excess**) में निहित होती है। किसी भी नीति या सिद्धांत का मूल्यांकन उसके संतुलित (**Balanced**) और व्यावहारिक (**Pragmatic**) अनुप्रयोग के आधार पर ही किया जाना चाहिए, ताकि समाज में स्थायी समन्वय और प्रगति सुनिश्चित हो सके।

5.1 “लगजरी बिलीफ: विचारों के माध्यम से सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रदर्शन और उसके छिपे हुए प्रभाव”

अमेरिकी मनोवैज्ञानिक रोब हेंडरसन द्वारा प्रस्तुत “लगजरी बिलीफ (**Luxury Belief**)” की अवधारणा यह दर्शाती है कि आधुनिक समाज में **संपन्न वर्ग** अपनी **सामाजिक प्रतिष्ठा (Social Status)** को केवल भौतिक वस्तुओं के माध्यम से नहीं, बल्कि अपने **विचारों (Beliefs)** के माध्यम से भी प्रदर्शित करता है। पहले जहां धनवान लोग महंगे वस्त्र, आभूषण और भवनों के द्वारा अपनी पहचान स्थापित करते थे, वहीं आज वे अपने **वैचारिक रुझानों (Ideological Trends)** के जरिए स्वयं को **प्रगतिशील (Progressive)** और उच्च वर्ग का प्रतीक दिखाने का प्रयास करते हैं। किंतु इन तथाकथित आधुनिक विचारों का **वास्तविक प्रभाव (Real Impact)** प्रायः समाज के **मध्यम (Middle Class)** और **निम्न वर्ग (Lower Class)** को झेलना पड़ता है, क्योंकि ये वर्ग इन विचारों को अपनाकर अपने जीवन में **अस्थिरता (Instability)** और **सामाजिक विघटन (Social Disintegration)** का सामना करता है।

लगजरी बिलीफ मूलतः एक प्रकार का **वैचारिक फैशन (Ideological Fashion)** है, जिसमें परिवार, विवाह, धर्म और परंपराओं जैसी संस्थाओं को **पुरातन (Outdated)** या बाधक बताया जाता है, जबकि व्यक्तिगत

स्वतंत्रता, ओपन रिलेशनशिप, और सामाजिक नियमों से मुक्त जीवन को **आधुनिकता (Modernity)** का प्रतीक माना जाता है। यह भी देखा जाता है कि जो **उच्च वर्ग (Elite)** इन विचारों का प्रचार करता है, वह स्वयं अपने निजी जीवन में पारंपरिक संरचनाओं जैसे **सुदृढ़ पारिवारिक व्यवस्था (Strong Family Structure)** का पालन करता है। इसके विपरीत, सामान्य वर्ग इन विचारों को अपनाकर **परिवारिक विखंडन (Family Breakdown)**, **मानसिक तनाव (Mental Stress)** और **सामाजिक असुरक्षा (Social Insecurity)** जैसी समस्याओं का सामना करता है।

विशेष रूप से, **परिवार (Family Institution)** इस प्रवृत्ति का सबसे बड़ा शिकार बनता है। अनेक अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि जिन बच्चों का पालन-पोषण **संयुक्त या स्थिर परिवार (Stable Family)** में होता है, उनका **बौद्धिक (Intellectual)** और **मनोवैज्ञानिक विकास (Psychological Development)** अधिक संतुलित होता है। इसके विपरीत, परिवारों के टूटने से बच्चों में **अपराध प्रवृत्ति (Criminal Tendencies)**, **अकेलापन (Isolation)** और **भावनात्मक असंतुलन (Emotional Imbalance)** की संभावना बढ़ जाती है। फिर भी, मीडिया, फिल्मों और सामाजिक विमर्श के माध्यम से ऐसे विचारों को "कूल" और "प्रगतिशील" बनाकर प्रस्तुत किया जाता है, जिससे समाज धीरे-धीरे इनको स्वीकार करने लगता है।

अंततः, यह कहा जा सकता है कि **लगजरी बिलीफ** ऐसे विचार हैं जो सतही रूप से आकर्षक और आधुनिक प्रतीत होते हैं, किंतु उनकी जड़ें अक्सर **यथार्थ से कटे हुए आदर्शवाद (Detached Idealism)** में होती हैं। इसलिए आवश्यक है कि समाज इन विचारों को **आलोचनात्मक दृष्टिकोण (Critical Perspective)** से परखे और यह समझे कि कौन-से विचार वास्तव में **सामाजिक संतुलन (Social Balance)** और **दीर्घकालिक कल्याण (Long-term Welfare)** के लिए उपयुक्त हैं,

तथा कौन-से केवल एक वर्ग विशेष के **प्रदर्शन (Symbolism)** का माध्यम मात्र हैं। कुछ विचारधाराएँ (जैसे आधुनिक नारीवाद) जब **व्यक्तिगत स्वतंत्रता (Individual Freedom)**, **रिश्तों से दूरी (Detachment from Family Structures)** या **पारंपरिक संस्थाओं (Traditional Institutions)** के विरोध को बढ़ावा देती हैं, तो उन्हें "लगजरी बिलीफ" के रूप में देखते हैं अर्थात् ऐसे विचार जो **संपन्न वर्ग (Elite Class)** के लिए सुरक्षित होते हैं, लेकिन आम समाज के लिए **जोखिमपूर्ण (Risky)** हो सकते हैं। "जब नारीवाद के कुछ विचार वास्तविक सामाजिक परिस्थितियों से हटकर केवल वैचारिक फैशन बन जाते हैं, तब वे 'लगजरी बिलीफ' का रूप लेते हैं।"

5.2 नारीवाद (फेमिनिज्म) वास्तव में क्या है? क्या यह सशक्तिकरण का साधन है या प्रचार का?

नारीवाद (फेमिनिज्म) है क्या? क्योंकि इसके पक्ष और विपक्ष में बहुत सारी बातें कही जाती हैं, और जब बड़े-बड़े **इन्फ्लुएंसर्स** तथा **सेलिब्रिटीज** इस विषय पर बोलते हैं, तो हम बहुत जल्दी अपना एक **दृष्टिकोण** बना लेते हैं कि फेमिनिज्म क्या है। आज सोशल मीडिया पर अनेक प्रकार के **विचार** प्रचलित हैं, और हम भी अनजाने में उन्हीं के आधार पर अपनी **धारणा** निर्मित कर लेते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि वे फेमिनिस्ट नहीं हैं, और कुछ को यह सुनकर **झुंझलाहट** होती है, क्योंकि उनके अनुसार लोगों को फेमिनिज्म का वास्तविक अर्थ ही ज्ञात नहीं है। कई लोग अब भी इसे पुराने **प्रतीकों** से जोड़कर देखते हैं और इसे केवल स्त्री-पुरुष की **बराबरी** तक सीमित कर देते हैं, जबकि कुछ लोग इसे बिल्कुल **निरर्थक** मानते हैं और कहते हैं कि स्वतंत्र बनो, अपने कार्य पर ध्यान दो, और यदि कोई स्त्री **गृहिणी** है तो उसे छोटा न समझो, क्योंकि वह भी एक अत्यंत **महत्वपूर्ण योगदान** देती है।

कुछ विचार यह भी सामने आते हैं कि स्त्री और पुरुष पूरी तरह समान नहीं हो सकते, क्योंकि प्रकृति ने दोनों को अलग-अलग **जैविक संरचना** दी है। वहीं कुछ लोग यह मानते हैं कि फेमिनिज्म के **अतिवादी रूप** के कारण परिवार, बच्चों और महिलाओं के **मानसिक स्वास्थ्य** पर भी प्रभाव पड़ रहा है। दूसरी ओर, कुछ लोग यह कहते हैं कि वे फेमिनिस्ट नहीं हैं, क्योंकि वे पुरुषों के विरुद्ध संघर्ष में विश्वास नहीं करते, बल्कि उनका मानना है कि स्त्री और पुरुष को **सहयोगात्मक दृष्टि** से साथ मिलकर समस्याओं का समाधान करना चाहिए। जहां तक **समानता** का प्रश्न है, तो वे वेतन और अवसरों में समानता का समर्थन करते हैं, लेकिन यह भी मानते हैं कि पूर्ण समानता का अर्थ यह नहीं कि सभी लोग एक जैसे हो जाएं, क्योंकि **विविधता** ही समाज को रोचक बनाती है।

आज की स्थिति यह है कि कुछ लोग फेमिनिज्म को एक **प्रचार तंत्र (प्रोपेगेंडा)** के रूप में देखते हैं, जबकि कुछ इसे आवश्यक मानते हैं। विशेषकर युवाओं में यह धारणा बन गई है कि यदि कोई लड़की फेमिनिज्म की बात करती है, तो उससे दूरी बना लेनी चाहिए, जबकि वही लोग सैद्धांतिक रूप से स्त्रियों के **विकास** का समर्थन भी करते हैं। यह एक प्रकार का **विरोधाभास** है। वास्तव में, अनेक लोग फेमिनिज्म के **ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य** को समझे बिना ही उस पर अपनी राय बना लेते हैं। इसका उद्भव उन समाजों में हुआ जहां स्त्रियों को लंबे समय तक **दमन, असमानता** और अधिकारों से वंचित रखा गया, इसलिए वहां समानता की मांग के रूप में यह आंदोलन विकसित हुआ।

भारतीय संदर्भ में कुछ लोग यह तर्क देते हैं कि यहां स्त्री को **शक्ति, प्रकृति** और यहां तक कि **परम सत्ता** का स्वरूप माना गया है, इसलिए यहां फेमिनिज्म की आवश्यकता नहीं थी। लेकिन यह भी एक **सरलीकृत निष्कर्ष** हो सकता है, क्योंकि हर समाज में समय-समय पर **सामाजिक चुनौतियां** रही हैं। कई लोग यह भी मानते हैं कि फेमिनिज्म यह स्थापित

करता है कि सभी महिलाएं **पीड़ित** हैं, जो कि एक **नकारात्मक परिकल्पना** है। भारतीय चिंतन में स्त्री और पुरुष को एक-दूसरे के **पूरक** के रूप में देखा गया है, न कि विरोधी के रूप में। यहां **स्वधर्म** की अवधारणा प्रमुख रही है, जहां केवल अधिकारों की नहीं, बल्कि कर्तव्यों की भी चर्चा होती है।

आज समस्या यह है कि फेमिनिज्म को समझने के बजाय कई बार इसे केवल **विरोध**, **बाहरी स्वतंत्रता**, या **आकर्षण** तक सीमित कर दिया गया है। जबकि वास्तविक सशक्तिकरण का अर्थ है **शिक्षा**, **स्वास्थ्य**, **आत्मनिर्भरता**, और **आत्मबोध**। यदि कोई स्त्री शिक्षित होकर, अपने परिवार और समाज के प्रति जिम्मेदार रहते हुए आगे बढ़ती है, तो वही वास्तविक **सशक्तिकरण** है। अतः यह आवश्यक है कि हम फेमिनिज्म को **अतिवाद** या **भ्रम** के बजाय एक संतुलित और **तार्किक दृष्टिकोण** से समझें, जहां स्त्री और पुरुष दोनों मिलकर समाज के **समन्वित विकास** में योगदान दें।

5.3 क्या भारत में गृहिणियां नारीवाद (फेमिनिज्म) से सशक्त हो रही हैं या पीड़ित हो रही हैं?

आज का फेमिनिज्म **स्वतंत्रता** की वास्तविक और **सार्थक** बातें नहीं करता, बल्कि अक्सर यह केवल बाहरी दिखावे तक सीमित दिखाई देता है। लोग कहते हैं कि हम फ्री हैं, हमें **स्वाधीनता** चाहिए, लेकिन यह प्रश्न महत्वपूर्ण है कि यह स्वतंत्रता आखिर किस चीज़ की है। अधिकांशतः यह केवल **शारीरिक स्तर** तक सीमित रह जाती है, जहां इसे **उच्छृंखलता** या फोहड़ता के रूप में प्रस्तुत किया जाता है जैसे कि "मैं शराब पीऊँ, यह मेरा अधिकार है।" जबकि वास्तविकता यह है कि ऐसे कार्यों से स्त्री और पुरुष दोनों के स्वास्थ्य जैसे **यकृत (लिवर)** और **वृक्क (किडनी)** पर समान रूप से नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

अब यदि हम समाज की वास्तविकता देखें, तो आज भी अधिकांश महिलाएं **गृहिणी (हाउसवाइफ)** हैं। वे धीरे-धीरे आगे बढ़ रही हैं, कार्यक्षेत्र में प्रवेश कर रही हैं, लेकिन घर संभालने वाली महिलाओं की संख्या अभी भी अधिक है। ऐसे में यह प्रश्न उठता है कि क्या फेमिनिज्म वास्तव में उन्हें **सशक्त (empower)** कर रहा है या फिर कहीं न कहीं उन्हें **पीड़ित (victimized)** के रूप में प्रस्तुत कर रहा है।

कुछ चर्चाओं में यह भी सामने आता है कि यदि एक महिला अपने परिवार के लिए भोजन बनाती है, बच्चों और पति की देखभाल करती है, तो उसे कमतर समझा जाता है, जबकि दूसरी ओर पुरुष भी 14-16 घंटे मेहनत करता है फैक्ट्री में या मजदूरी करके। ऐसे में दोनों के कार्यों की तुलना करना स्वयं में **असमुचित** है, क्योंकि दोनों की भूमिकाएं अलग होते हुए भी **परस्पर पूरक** हैं।

भारतीय परंपरा में स्त्री को **शक्ति स्वरूपा** माना गया है, जो हर प्रकार के कार्य में सक्षम रही है। इतिहास में कुछ परिस्थितियों जैसे आक्रमणों के कारण स्त्रियों को घर तक सीमित किया गया, जिससे **सती प्रथा, जौहर** और **घूंघट** जैसी परंपराएं विकसित हुईं। लेकिन यह कहना कि हर स्त्री आज भी बंधन में है, एक **अतिसामान्यीकरण (overgeneralization)** होगा।

कुछ तथाकथित **स्वयंभू आचार्य (self-styled thinkers)** यह कहते हैं कि घर के कार्यों में कोई मूल्य नहीं है जैसे खाना बनाना। परंतु यह दृष्टिकोण अधूरा है, क्योंकि किसी भी कार्य से मिलने वाली **आत्मसंतुष्टि (self-fulfillment)** वही होती है जो एक कलाकार को चित्र बनाते समय, एक गायक को गीत गाते समय या एक कवि को कविता लिखते समय मिलती है।

वास्तव में, बहुत सी महिलाएं गृहिणी होना पसंद करती हैं और उसमें आनंद अनुभव करती हैं। यदि उन्हें विकल्प दिया जाए, तो वे घर संभालने को भी उतना ही **सम्मानजनक (respectable)** मानती हैं जितना किसी पेशे को। इसलिए यदि कोई व्यक्ति यह कहता है कि “तुमने घर संभालकर क्या कर लिया,” तो वह स्वयं फेमिनिज्म के मूल सिद्धांत **चयन की स्वतंत्रता (freedom of choice)** का ही उल्लंघन कर रहा है।

समस्या तब उत्पन्न होती है जब घर को संभालना **बंधन** मान लिया जाता है, जबकि यह वास्तव में एक **स्वैच्छिक (voluntary)** निर्णय हो सकता है। विवाह भी एक **संस्कार** है, न कि केवल बंधन। घर को संवारना समाज के एक महत्वपूर्ण हिस्से को संवारना है, और यदि प्रत्येक व्यक्ति अपना **धर्म (duty)** निभाए, तो समाज, देश और अंततः विश्व भी सुसंगठित हो सकता है।

भारतीय परंपरा में स्त्री को प्रथम **गुरु** माना गया है चाहे वह **आर्य अंबा** हों, जिन्होंने **आदि शंकराचार्य** का पालन-पोषण किया, या **उभय भारती**, जिन्होंने शास्त्रार्थ में उन्हें चुनौती दी, या **सावित्री**, जो दृढ़ता और निष्ठा का प्रतीक हैं। ये सभी उदाहरण दर्शाते हैं कि स्त्री केवल एक भूमिका तक सीमित नहीं है, बल्कि वह **बहुआयामी (multidimensional)** शक्ति का स्वरूप है।

“**गृहस्वामिनी**” जैसा **सशक्त** और **अधिकारसूचक** शब्द वास्तव में स्त्री की उस **स्वायत्तता** और **अधिष्ठात्री भूमिका** को प्रकट करता है, जिसे सामान्यतः “हाउसवाइफ” जैसे शब्दों में सीमित कर दिया जाता है। गृहस्वामिनी का अर्थ मात्र घर संभालने वाली नहीं, बल्कि उस समग्र व्यवस्था की **संरक्षिका**, **नियंत्रिका** और **संचालिका** है। अथर्ववेद में नववधू के अधिकारों का अत्यंत **सूक्ष्म** और **सुस्पष्ट** वर्णन मिलता है, किंतु समस्या यह है कि लोग इन विषयों पर चर्चा तो करते हैं, परंतु मूल ग्रंथों का **गंभीर अध्ययन** नहीं करते। विवाह मंत्रों का **दर्शन** कराने वाली ऋषिका

सूर्या सावित्री का उदाहरण यह स्पष्ट करता है कि वैदिक परंपरा में स्त्रियाँ केवल अनुयायी नहीं, बल्कि ज्ञान की **प्रवर्तक** भी थीं। जब स्वयं मंत्रों का ज्ञान हमें एक ऋषिका के माध्यम से प्राप्त होता है, तब यह कहना कि समाज मूलतः स्त्री-विरोधी था, एक **अविवेकी निष्कर्ष** प्रतीत होता है।

इसी संदर्भ में सती प्रथा को लेकर जो **विवादास्पद धारणाएँ** प्रस्तुत की जाती हैं, वे भी प्रायः **अधूरी जानकारी** और **विकृत व्याख्या** पर आधारित हैं। अथर्ववेद (18.3.2) में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि पति के दाह संस्कार के पश्चात स्त्री को पुनः जीवन की ओर अग्रसर होना चाहिए यह किसी भी प्रकार की **आत्मदाह प्रथा** का समर्थन नहीं करता। **महर्षि दयानंद सरस्वती** ने भी इस तथ्य को **प्रमाणिक** रूप से स्थापित किया था कि वेद स्त्रियों को सती होने की कोई आज्ञा नहीं देते। इसके विपरीत, कुछ **वामपंथी व्याख्याएँ** मध्यकालीन स्रोतों के आधार पर पूरे वैदिक धर्म को दोषपूर्ण ठहराने का प्रयास करती हैं, जबकि वेदों के अध्ययन हेतु **निरुक्त, निघंटु** और **व्याकरण** जैसे आधारभूत शास्त्रों की उपेक्षा कर दी जाती है।

इतिहास में यदि हम निष्पक्ष दृष्टि से देखें, तो अनेक ऐसे उदाहरण मिलते हैं जहाँ स्त्रियों ने केवल आत्मबल ही नहीं, बल्कि **राजनीतिक और सैन्य नेतृत्व** का भी प्रदर्शन किया। उदाहरणस्वरूप **गढ़वाल की रानी करणावती, जिन्हें “नाक-कटी रानी”** कहा गया, उन्होंने औरंगज़ेब की विशाल सेना के समक्ष अद्भुत **रणनीतिक कौशल** का परिचय दिया। इसके बावजूद, ऐसे प्रेरणादायक उदाहरणों को **उपेक्षित** कर सती जैसी घटनाओं को बार-बार उभारना एक **एकांगी दृष्टिकोण** को दर्शाता है।

प्राचीन भारतीय वैदिक परंपरा में नारी शिक्षा के विषय पर आज भी व्यापक चर्चा होती है। अनेक लोगों के मन में यह धारणा बनी हुई है कि प्राचीन काल में महिलाओं को वेदों का अध्ययन करने का अधिकार नहीं था, परंतु जब वैदिक साहित्य और संबंधित ग्रंथों का गंभीर अध्ययन किया जाता है

तो यह स्पष्ट होता है कि यह विचार पूरी तरह **भ्रांति (Misconception)** है। वैदिक दृष्टिकोण में ज्ञान को एक सार्वभौमिक **विद्या-परंपरा (Universal Knowledge Tradition)** माना गया है, जिसका उद्देश्य केवल किसी एक वर्ग या लिंग का नहीं बल्कि पूरे समाज का **कल्याण (Welfare)** है। यदि ईश्वर को समस्त सृष्टि का **सृष्टिकर्ता (Divine Creator)** माना जाता है और वेदों को उसी परम सत्ता द्वारा प्रदत्त **ज्ञान-संहिता (Sacred Knowledge Corpus)** समझा जाता है, तो यह तर्कसंगत नहीं लगता कि उस ज्ञान को केवल पुरुषों तक सीमित कर दिया जाए और महिलाओं को उससे वंचित कर दिया जाए। वैदिक चिंतन में ज्ञान का मूल उद्देश्य मानव जीवन को **उन्नत (Elevated)** और समाज को **सुसंस्कृत (Cultured)** बनाना है, इसलिए ज्ञान का अधिकार स्वाभाविक रूप से व्यापक माना गया है। इस संदर्भ में विशेष रूप से **यजुर्वेद** के एक प्रसिद्ध **मंत्र (अध्याय 26, मंत्र 2)** का उल्लेख किया जाता है,

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः ।

ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय ॥

(**भावार्थ: कल्याणमयी वाणी (Auspicious Knowledge)** अर्थात् वेदों का ज्ञान समाज के सभी वर्गों **ब्राह्मण (Brahmin)**, **क्षत्रिय (Kshatriya)**, **वैश्य (Vaishya)** और **शूद्र (Shudra)** के लिए हितकारी है।)

कई विद्वान इस मंत्र की व्याख्या करते हुए यह भी कहते हैं कि इन सभी वर्गों की स्त्रियाँ चाहे वे माता हों, पुत्री हों या पत्नी भी इस ज्ञान की अधिकारी हैं। इस प्रकार वैदिक परंपरा में ज्ञान को एक व्यापक **सार्वभौमिक अधिकार (Universal Access to Knowledge)** के रूप में देखा गया है। यह दृष्टिकोण इस बात को दर्शाता है कि वैदिक संस्कृति में शिक्षा को केवल सामाजिक प्रतिष्ठा का साधन नहीं बल्कि मानव जीवन के

आध्यात्मिक विकास (Spiritual Development) और नैतिक उन्नति का माध्यम माना गया था।

वर्तमान पीढ़ी, जिसे सामान्यतः “जेन-ज़ी” कहा जाता है, अत्यंत **संवेदनशील (Sensitive)** और **प्रभावग्राही (Impressionable)** है। जब उन्हें बिना संदर्भ के क्रूर कथाएँ सुनाई जाती हैं, तो वे सहज ही उससे **प्रभावित** होकर अपनी परंपरा से दूर हो सकते हैं। जबकि वास्तविकता यह है कि वैदिक परंपरा में केवल “पतिव्रता” ही नहीं, बल्कि “पत्नीव्रत” का भी सिद्धांत है। यजुर्वेद में पुरुष के लिए भी एकनिष्ठता का **आदर्श** प्रस्तुत किया गया है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि **नैतिकता (Morality)** दोनों के लिए समान रूप से **अनिवार्य** थी।

इसी प्रकार, **रामायण** में माता सीता को केवल एक पीड़ित स्त्री के रूप में प्रस्तुत करना भी एक **अधूरा चित्रण (Incomplete portrayal)** है। उनके लिए “योगिनी” शब्द का प्रयोग, उनके **उपनयन संस्कार** का उल्लेख, और स्वयंवर के माध्यम से पति का चयन ये सभी तथ्य उनके **सशक्त व्यक्तित्व** को दर्शाते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन समाज में स्त्रियों को **निर्णयात्मक अधिकार (Decisive agency)** प्राप्त थे।

अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि वेद और पुराणों की व्याख्या करते समय हमें उनके **प्रतीकात्मक (symbolic)** और **दार्शनिक (Philosophical)** आयामों को समझना आवश्यक है। सती की कथा, जहाँ सती देवी (पार्वती) द्वारा यज्ञ में आत्माहुति दी जाती है, उसे शाब्दिक न लेकर **आध्यात्मिक रूपांतरण (Spiritual transformation)** के रूप में समझना चाहिए जहाँ अहंकार का दहन होता है और पार्वती रूप में एक नई **चेतना** का उदय होता है। यदि इन प्रसंगों की **गूढ़ व्याख्या** को समझे बिना केवल बाह्य रूप में ग्रहण किया जाए, तो भ्रम उत्पन्न होना स्वाभाविक है।

अंततः समस्या यह नहीं है कि परंपरा में दोष है, बल्कि यह है कि उसकी **असम्यक व्याख्या (Misinterpretation)** और **अपर्याप्त अध्ययन (Inadequate understanding)** के कारण एक **विकृत धारणा** निर्मित हो गई है। वेदों को समझना सरल नहीं है यह एक **दीर्घकालिक साधना** और **बौद्धिक परिश्रम (Intellectual effort)** की मांग करता है, जिसका प्रमाण स्वयं यह है कि महान विद्वानों को भी जीवन भर अध्ययन करने पर पूर्णता प्राप्त नहीं हो सकी।

5.4 कुछ गुरु ऐसा क्यों मानते हैं कि महिलाएं वेदों के लिए अनुपयुक्त हैं?

हम हम बाहरी आलोचकों की आलोचना को यदि उपेक्षित भी कर दें, तब भी हमारे अपने समाज में ऐसे लोग विद्यमान हैं जो ग्रंथों का अध्ययन करने के पश्चात यह **प्रतिपादित (Propound)** करते हैं कि स्त्रियाँ “पापयोनि” हैं और उन्हें मोक्ष की प्राप्ति हेतु पुरुष जन्म लेना अनिवार्य है। वे यह भी कहते हैं कि स्त्रियाँ वेद-मंत्र या गायत्री मंत्र का उच्चारण नहीं कर सकतीं तथा उनका उपनयन संस्कार **वर्जित (Prohibited)** है। यह अत्यंत **विचारणीय (Contemplative)** है कि ऐसे कथन बाहरी नहीं, अपितु अपने ही तथाकथित आचार्य और गुरु करते हैं। अतः यह प्रश्न **प्रासंगिक (Relevant)** हो जाता है कि इस **विकृत दृष्टिकोण (Distorted perspective)** का समाधान क्या हो।

हमारा दृष्टिकोण यह है कि बाह्य **वेशभूषा (Attire)** जैसे गेरुआ वस्त्र, तिलक या त्रिपुण्ड किसी को **ज्ञानी (Enlightened)** सिद्ध नहीं करते। यदि किसी व्यक्ति में **करुणा (Compassion)**, **मैत्री (Friendliness)** और **विश्व-बंधुत्व (Universal brotherhood)** का अभाव है, तो वह वास्तविक ज्ञान से वंचित है, क्योंकि ज्ञान का स्वभाव **संयोजन (Integration)** है, न कि **विभाजन (Division)**। वर्तमान में अनेक

कथावाचक केवल **प्रदर्शनात्मक प्रशिक्षण (Performative training)** लेकर आते हैं और उनका प्रमुख उद्देश्य **आर्थिक लाभ (Financial gain)** अर्जित करना होता है; वे दूसरों को “माया त्यागने” का उपदेश देते हैं, परंतु स्वयं उसी में **आसक्त (Attached)** रहते हैं। इसी प्रकार उच्च पदों पर आसीन व्यक्तियों को शास्त्रों का स्मरण तो हो सकता है, किंतु “पोथी पढ़-पढ़ जग मुआ, पंडित भया न कोय” की उक्ति यह स्पष्ट करती है कि केवल **पाठ्यज्ञान (Bookish knowledge)** पर्याप्त नहीं है।

“पापयोनि” की अवधारणा स्वयं में **विरोधाभासी (Contradictory)** है, क्योंकि समस्त जीव-जगत स्त्री-योनि से ही उत्पन्न होता है। अतः जो व्यक्ति स्त्री को पापयोनि कहता है, वह वस्तुतः अपने ही अस्तित्व का **खंडन (Negation)** करता है। यह हमारी भूल है कि हम बाह्य स्वरूप देखकर किसी को ज्ञानी मान लेते हैं, जबकि ज्ञान का संबंध **आंतरिक चेतना (Inner consciousness)** से है, न कि **आडंबर (Showmanship)** से। धर्म का वास्तविक अर्थ है **धारणीय सिद्धांत (Sustainable principles)**, न कि **पाखंड (Hypocrisy)** या प्रदर्शन; वेद-विरुद्ध आचरण ही वास्तविक पाखंड है।

समाज में किसी ने स्त्रियों के अधिकार “गायत्री मंत्र का जप” का **निषेध (Prohibition)** किया, तब यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उत्पन्न हुआ कि यदि मंत्र ईश्वर-प्रदत्त हैं, तो क्या ईश्वर **पक्षपाती (Biased)** हो सकता है? मंत्रों का उद्देश्य **बौद्धिक जागरण (Intellectual awakening)** है, मात्र **यांत्रिक जप (Mechanical chanting)** नहीं। किंतु आज हमने उन्हें केवल **औपचारिकता (Formality)** तक सीमित कर दिया है। इसी प्रकार, हमने राम के आदर्श को **नारेबाज़ी (Sloganism)** तक सीमित कर दिया है, जबकि उनके **चरित्रगत अनुकरण (Character emulation)** का अभाव है।

गायत्री मंत्र का सार “बुद्धि का प्रेरण” है तो क्या यह केवल पुरुषों तक सीमित है? हमारे शास्त्रों में गार्गी, मैत्रेयी, लोपामुद्रा जैसी **विदुषी (Learned women scholars)** स्त्रियों के उदाहरण विद्यमान हैं, फिर भी उन्हें “अपवाद (Exception)” कह देना एक सामाजिक **पूर्वाग्रह (Prejudice)** है। समाज में यह **विसंगति (Inconsistency)** स्पष्ट है कि स्त्री के उत्कृष्ट कार्य को अपवाद कहा जाता है, जबकि त्रुटि को **सामान्यीकृत (Generalized)** कर दिया जाता है। आज सोशल मीडिया पर अधिकारों की चर्चा तो होती है, किंतु **कर्तव्यबोध (Sense of duty)** का अभाव है।

इतिहास और वैदिक साहित्य में कई ऐसी **विदुषी (Learned Women Scholars)** का उल्लेख मिलता है जिन्होंने न केवल वेदों का अध्ययन किया बल्कि **दार्शनिक विमर्श (Philosophical discourse)** में सक्रिय भाग भी लिया। उदाहरण के लिए Gargi Vachaknavi को प्राचीन भारत की महान दार्शनिक महिलाओं में गिना जाता है। उन्होंने वैदिक सभाओं में गहन **दार्शनिक संवाद (Philosophical debate)** किए और ब्रह्मज्ञान से संबंधित जटिल प्रश्न उठाए। इसी प्रकार Maitreyi का नाम भी उपनिषदों में अत्यंत सम्मान के साथ लिया जाता है। वे आत्मा और ब्रह्म के ज्ञान के प्रति अपनी गहरी **जिज्ञासा (Curiosity)** के लिए प्रसिद्ध थीं। इसके अतिरिक्त Lopamudra का उल्लेख भी मिलता है, जिनके नाम से वैदिक मंत्रों की रचना मानी जाती है। यह तथ्य अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे यह स्पष्ट होता है कि स्त्रियाँ केवल शिष्या ही नहीं, बल्कि **मंत्रद्रष्टा (Seer of Vedic Mantras)** अर्थात् प्रत्यक्ष अनुभूति करने वाली ऋषिकाएँ भी थीं।

वैदिक ग्रंथों के अतिरिक्त अन्य परंपरागत ग्रंथों में भी स्त्री शिक्षा के संकेत मिलते हैं, जैसे **आपस्तम्ब धर्मसूत्र एवं आश्वलायन गृह्य सूत्र**, जिनमें यह उल्लेख मिलता है कि योग्य स्त्रियाँ भी वैदिक शिक्षा प्राप्त कर सकती थीं।

इन ग्रंथों में शिक्षा को एक ऐसी प्रक्रिया माना गया है जो **नैतिक संस्कार (Moral formation)**, **आत्मसंयम (Self-discipline)** और **आध्यात्मिक चेतना (Spiritual awareness)** को विकसित करती है। अतः शिक्षा को किसी एक लिंग तक सीमित करना वैदिक विचारधारा के मूल उद्देश्य के विपरीत है।

प्राचीन ग्रंथों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि स्त्रियों को शिक्षा, उपासना और आध्यात्मिक उन्नति के समान अवसर प्राप्त थे। वैदिक काल में स्त्रियों के दो प्रमुख वर्ग वर्णित हैं **ब्रह्मवादिनी (Women devoted to Vedic knowledge)** और **सद्यःवधू (Women who studied till marriage)**। ब्रह्मवादिनी स्त्रियाँ वेदों का अध्ययन करने के साथ-साथ **उपनयन संस्कार (Sacred thread initiation)** ग्रहण कर **यज्ञोपवीत (Sacred thread)** धारण करती थीं। **बृहदारण्यक उपनिषद्** में गार्गी और मैत्रेयी जैसी विदुषियों का उल्लेख मिलता है, जहाँ वे गहन दार्शनिक चर्चाओं में भाग लेती हैं, जिससे उनकी उच्च **बौद्धिक क्षमता (Intellectual capacity)** और **दार्शनिक प्रखरता (Philosophical sharpness)** सिद्ध होती है।

विशेषतः सूर्या सावित्री का उल्लेख अत्यंत **प्रासंगिक (Significant)** है, जिन्होंने Rigveda में संकलित विवाह सूक्त के मंत्रों की रचना की। यह तथ्य न केवल उनकी बौद्धिक क्षमता को दर्शाता है, बल्कि उस समय स्त्रियों की **सशक्त उपस्थिति (Strong presence)** और **स्वायत्तता (Autonomy)** का भी परिचायक है। उस युग में स्त्रियाँ केवल अनुगामी नहीं थीं, बल्कि वे **निर्णायक भूमिका (Decisive role)** निभाने वाली स्वतंत्र व्यक्तित्व थीं।

विवाह जैसे महत्वपूर्ण संस्कार में आज भी जिन वैदिक मंत्रों का उच्चारण किया जाता है, उनमें स्त्री द्वारा रचित मंत्रों का समावेश यह सिद्ध करता है कि उस काल में **लैंगिक समानता (Gender equality)** और

सांस्कृतिक सहभागिता (Cultural participation) का स्तर अत्यंत उन्नत था। यह दृष्टांत इस बात का सशक्त प्रमाण है कि प्राचीन भारतीय समाज में स्त्रियाँ ज्ञान, धर्म और संस्कारों की **धुरी (Core pillar)** थीं, न कि केवल एक सीमित सामाजिक भूमिका तक बंधी हुई। वैदिक ग्रंथों के अतिरिक्त अन्य परंपरागत ग्रंथों में भी स्त्री शिक्षा के संकेत मिलते हैं। उदाहरण के लिए **आपस्तम्ब धर्मसूत्र एवं आश्वलायन गृह्य सूत्र (Apastamba Dharmasutra and Ashvalayana Grihya Sutra)** जैसे ग्रंथों में ऐसे उल्लेख मिलते हैं जिनसे यह संकेत मिलता है कि योग्य स्त्रियाँ भी वैदिक शिक्षा प्राप्त कर सकती थीं। इन ग्रंथों में शिक्षा को एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में देखा गया है जो व्यक्ति के **नैतिक संस्कार (Moral Formation)**, **आत्मसंयम (Self-discipline)** और **आध्यात्मिक चेतना (Spiritual Awareness)** को विकसित करती है। इसलिए शिक्षा को किसी एक लिंग तक सीमित करने की धारणा वैदिक विचारधारा के मूल उद्देश्य से मेल नहीं खाती।

प्राचीन ग्रंथों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि स्त्रियों को शिक्षा, उपासना और आध्यात्मिक उन्नति के समान अवसर प्राप्त थे। वैदिक काल में स्त्रियों के दो प्रमुख वर्ग वर्णित हैं **ब्रह्मवादिनी (Women devoted to Vedic knowledge)** और **सद्यःवधू (Women who studied till marriage)**। ब्रह्मवादिनी स्त्रियाँ न केवल वेदों का अध्ययन करती थीं, बल्कि वे **उपनयन संस्कार (Sacred thread initiation)** ग्रहण कर **यज्ञोपवीत (Sacred thread)** धारण भी करती थीं। गार्गी वाचक्नवी और मैत्रेयी जैसी विदुषियों का उल्लेख बृहदारण्यक उपनिषद् में मिलता है, जहाँ वे गहन दार्शनिक चर्चाओं में भाग लेती हैं, जिससे उनकी उच्च **बौद्धिक क्षमता (Intellectual capacity)** और **दार्शनिक प्रखरता (Philosophical sharpness)** सिद्ध होती है।

विशेषतः सूर्या सावित्री का उल्लेख अत्यंत प्रासंगिक है, जिन्होंने ऋग्वेद (Rigveda) में संकलित विवाह सूक्त (Marriage Hymn) के अनेक मंत्रों की रचना की। यह तथ्य न केवल उनकी बौद्धिक क्षमता (Intellectual Ability) को दर्शाता है, बल्कि उस समय के समाज में स्त्रियों की सशक्त उपस्थिति (Empowered Presence) और स्वतंत्रता (Independence) का भी परिचायक है। उस युग में स्त्रियाँ केवल अनुगामी (Subordinate) नहीं थीं, बल्कि वे निर्णायक भूमिका (Decisive Role) निभाने वाली स्वायत्त व्यक्तित्व (Autonomous Personalities) थीं।

विवाह जैसे महत्वपूर्ण संस्कार (Sacrament) में आज भी जिन वैदिक मंत्रों (Vedic Mantras) का उच्चारण किया जाता है, उनमें स्त्री द्वारा रचित मंत्रों का समावेश यह सिद्ध करता है कि उस काल में लैंगिक समानता (Gender Equality) और सांस्कृतिक सहभागिता (Cultural Participation) का स्तर अत्यंत उन्नत (Advanced) था। यह दृष्टांत इस बात का सशक्त प्रमाण (Evidence) है कि प्राचीन भारतीय समाज में स्त्रियाँ ज्ञान, धर्म और संस्कारों की धुरी (Pillar/Core) थीं, न कि केवल एक सीमित सामाजिक भूमिका तक बंधी हुई (Confined)।

इसी प्रकार, महिलाओं को गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त करने का भी अधिकार था, जो उस समय की शैक्षिक समावेशिता (Educational inclusivity) को दर्शाता है। वे न केवल ज्ञान अर्जित करती थीं, बल्कि शास्त्रार्थ (Philosophical debate) में भी भाग लेकर अपनी तार्किक क्षमता (Logical ability) का प्रदर्शन करती थीं। जहाँ तक गायत्री मंत्र (Sacred Vedic mantra) के जाप का प्रश्न है, ऋग्वेद में ऐसा कोई निषेध नहीं मिलता, जिससे यह स्पष्ट होता है कि स्त्रियाँ भी मंत्र-जाप और आध्यात्मिक साधना (Spiritual practice) करने के लिए स्वतंत्र थीं।

साथ ही, रामायण में सीता द्वारा अग्निहोत्र करने का उल्लेख यह प्रमाणित करता है कि महिलाएँ **पूजा-अर्चना (Ritual worship)** और वैदिक अनुष्ठानों में सक्रिय रूप से सहभागी थीं।

1. माता के महत्व पर (स्त्री का उच्च स्थान)

आचार्याणां शतं पित्रा सहस्रं तु पितुः स्मृतम्।

सहस्राणि तु मातृणां गौरवेणातिरिच्यते॥

(मनुस्मृति (2.145))

(अर्थ: एक आचार्य से पिता सौ गुना श्रेष्ठ है, और पिता से माता हजार गुना अधिक **गौरवशाली (More venerable)** मानी गई है।)

2. स्त्रियों के सम्मान पर

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।

यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वस्तित्राफलाः क्रियाः॥

(मनुस्मृति (3.56))

(अर्थ: जहाँ स्त्रियों का **सम्मान (Respect)** होता है, वहाँ देवता निवास करते हैं; और जहाँ उनका सम्मान नहीं होता, वहाँ सभी कर्म **निष्फल (Fruitless)** हो जाते हैं।)

3. वैदिक स्त्री की विद्वत्ता (गार्गी संवाद) (यहाँ गार्गी वाचक्ववी द्वारा याज्ञवल्क्य से ब्रह्म विषयक गूढ़ प्रश्न पूछे गए हैं।)

सा होवाच गार्गी वाचक्ववी...

(बृहदारण्यक उपनिषद (3.6-8, भावार्थ))

(अर्थ: गार्गी ने अत्यंत **गूढ़ (Profound)** दार्शनिक प्रश्नों द्वारा यह सिद्ध किया कि स्त्रियाँ भी उच्चतम **ब्रह्मविद्या (Knowledge of ultimate reality)** की अधिकारी थीं।)

नीचे प्रमुख ऋषिकाओं (Vedic women seers) के मूल श्लोक (संक्षेप में) दिए जा रहे हैं, जो यह प्रमाणित करते हैं कि स्त्रियाँ वेदों की रचयिता (Composer) और विदुषी (Learned) थीं:

i. लोपामुद्रा (Lopamudra)

लोपामुद्रा वरुणं निर् ऋचक्षे
मनो न योषा अधि चक्रे अस्य।

ऋग्वेद (1.179.1)

(अर्थ: ऋषिका लोपामुद्रा अपने विचारों और भावों को प्रकट करती हैं यह दर्शाता है कि स्त्री भी गहन आध्यात्मिक चिंतन (Spiritual reflection) और वेद रचना (Vedic composition) में सक्षम थी।)

ii. घोषा (Ghosha)

इमं मे अश्विना हवमश्विना गतम् उप नः।

ऋग्वेद (10.39.1)

(अर्थ: ऋषिका घोषा अश्विनीकुमारों का आह्वान करती हैं यह उनके मंत्रद्रष्टा (Seer of mantra) होने का प्रमाण है।)

iii. अपाला (Apala)

काण्वस्य पुत्री अपाला इन्द्रं हवते।

ऋग्वेद (8.91.1)

(अर्थ: ऋषिका अपाला इन्द्र का आह्वान करती हैं यह स्त्रियों की यज्ञीय सहभागिता (Participation in rituals) को दर्शाता है।)

iv. विश्ववारा (Vishvavara)

अग्निं हुवे विश्ववारा...

ऋग्वेद (5.28.1)

(अर्थ: ऋषिका विश्ववारा अग्नि की स्तुति करती हैं यह उनके वैदिक ज्ञान (Vedic knowledge) और ऋत्विज् भूमिका (Priestly role) को दर्शाता है।)

v. गार्गी वाचक्नवी (Gargi)

सा होवाच गार्गी वाचक्नवी...

बृहदारण्यक उपनिषद (3.6-8)

(अर्थ: गार्गी वाचक्नवी ने याज्ञवल्क्य से ब्रह्म पर गूढ़ प्रश्न किए यह उनकी दार्शनिक प्रखरता (Philosophical brilliance) को दर्शाता है।)

vi. मैत्रेयी (Maitreyi)

येनाहं नामृता स्याम् किमहं तेन कुर्याम्?

बृहदारण्यक उपनिषद (2.4.1)

(अर्थ: मैत्रेयी अमरत्व (मोक्ष) के ज्ञान की इच्छा प्रकट करती हैं यह उनकी ब्रह्मविद्या (Knowledge of ultimate reality) के प्रति जिज्ञासा दर्शाता है।)

इन सभी श्लोकों और उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि स्त्रियाँ ऋषिका (Female seers) थीं, वे मंत्रद्रष्टा (Revealer of hymns) और वेद रचयिता (Composer of Vedic hymns) थीं। इतने सारे प्रमाणों से हमें पता चला है कि वैदिक महिलाएं वेदों का अध्ययन करती थीं और जनयु धारण करती थीं। उन्हें शिक्षा (Education), यज्ञ (Rituals) और दार्शनिक संवाद (Philosophical discourse) का पूर्ण अधिकार था।

शास्त्रों में पुरुषों के लिए **ब्रह्मचर्य (Celibacy discipline)** का अनुशासन स्पष्ट रूप से वर्णित है, परंतु उसका पालन अत्यंत **नगण्य (Negligible)** है। यह आवश्यक है कि व्यक्ति पहले स्वयं का **संशोधन (Self-correction)** करे, तत्पश्चात् दूसरों को उपदेश दे। वर्तमान में अनेक लोग स्त्रियों के प्रति **अपमानजनक भाषा (Derogatory language)** का प्रयोग करते हुए स्वयं को सनातनी कहते हैं, यह एक स्पष्ट **विरोधाभास (Contradiction)** है। हमने शास्त्रीय विचारों और पश्चिमी धारणाओं का मिश्रण कर एक **विकृत संरचना (Distorted structure)** निर्मित कर दी है।

ज्योतिष में **द्वादश भाव (Twelfth house)** मोक्ष का प्रतीक माना जाता है, जिसकी अधिष्ठात्री देवी काली हैं, तथा दुर्गा सप्तशती में **नवार्ण मंत्र (Navarna mantra)** को अत्यंत प्रभावशाली बताया गया है; अतः स्त्रियों की **अयोग्यता (Ineligibility)** का प्रश्न **निराधार (Baseless)** प्रतीत होता है। यदि Adi Shankaracharya स्वयं अपनी माता की अनुमति के बिना संन्यास ग्रहण नहीं करते और भगवान शिव द्वारा पार्वती को समस्त ज्ञान प्रदान किया जाता है, तो स्त्रियों को ज्ञान से **वंचित (Deprived)** करना **तार्किक (Logical)** नहीं है।

अतः जो गुरु मन में **भेदभाव (Discrimination)** उत्पन्न करे, उसका **परित्याग (Rejection)** ही उचित है। समस्या यह है कि पूर्व में **त्रुटिपूर्ण लेखन (Faulty writing)**, वर्तमान में **त्रुटिपूर्ण पठन (Faulty interpretation)**, और अब आगामी पीढ़ी द्वारा उसका **औचित्यकरण (Justification)** यह एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया बन गई है। जबकि हमारे ग्रंथों में **विदुषी स्त्रियों (Learned women)** के पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध हैं, फिर भी हम मध्यकालीन **विकृतियों (Distortions)** के प्रभाव में उलझे रहते हैं। वर्तमान में भी स्त्रियों के लिए गुरुकुल और वेद-अध्ययन की व्यवस्था उपलब्ध है; अतः यदि किसी को संदेह है, तो उसे

तार्किक विमर्श (Logical discourse) और गंभीर अध्ययन (Serious study) के माध्यम से प्रस्तुत करना चाहिए, न कि केवल आरोप-प्रत्यारोप (Allegations and counter-allegations) के आधार पर। यहाँ से स्पष्ट होता है कि धर्म के विषय में व्याप्त अज्ञानता (Ignorance) का दुष्प्रभाव समाज पर गहराई से पड़ा है, और यह केवल पुरुषों तक सीमित नहीं है, बल्कि स्त्रियों ने भी अनजाने में इसे आगे बढ़ाया है।

5.5 लड़कियां मिस वर्ल्ड बनने के सपने को लेकर इतनी जुनूनी क्यों होती हैं?

इसी संदर्भ में एक अन्य महत्वपूर्ण समस्या उभरकर आती है, बालिकाओं के मन में बचपन से ही यह आकांक्षा (Aspiration) भर दी जाती है कि उन्हें बड़ा होकर मिस वर्ल्ड बनना है या Madhuri Dixit जैसी अभिनेत्री बनना है। यह मानसिकता (Mindset) पहली दृष्टि में आकर्षक प्रतीत हो सकती है, किंतु गहराई से देखने पर यह पूर्णतः संतुलित (Balanced) या समग्र (Holistic) नहीं है, क्योंकि यह व्यक्तित्व के केवल एक आयाम बाह्य सौंदर्य (External appearance) पर अत्यधिक केंद्रित हो जाती है।

समस्या तब और गंभीर हो जाती है जब समाज सौंदर्य के कृत्रिम मानदंड (artificial beauty standards) स्थापित कर देता है। जो बालिकाएँ उन मानकों पर खरी नहीं उतरतीं, वे बचपन से ही हीनभावना (inferiority complex) और अपराधबोध (guilt) से ग्रस्त हो जाती हैं। परिवार के भीतर ही जब मासी, चाची या अन्य लोग रंग, रूप या शरीर को लेकर टिप्पणी करते हैं, तो यह मानसिकता और गहरी हो जाती है कि “सुंदरता ही मूल्य है।”

इसके साथ ही ग्लैमर इंडस्ट्री और बड़े ब्रांड्स जैसे **लॉरियल (L'Oréal)** इन ब्यूटी पेजेंट्स के माध्यम से एक विशेष प्रकार का **आदर्श (idealization)** स्थापित करते हैं। जैसे ही कोई भारतीय महिला **मिस यूनिवर्स या मिस वर्ल्ड (Miss Universe या Miss World)** बनती है, समाज की बालिकाएँ उसे आदर्श मानकर उसी दिशा में स्वयं को ढालने लगती हैं। यह आदर्श अक्सर **अप्राकृतिक (unnatural)** होता है, जैसे तथाकथित **“गोल्डन रेशियो”** के अनुसार चेहरा, शरीर की बनावट आदि। परिणाम यह होता है कि धीरे-धीरे सभी एक जैसे दिखने की कोशिश में अपनी **स्वाभाविकता (authenticity)** खोने लगते हैं।

इसके विपरीत, यदि हम भारतीय कला और स्थापत्य जैसे **खजुराहो मंदिर (Khajuraho Temples)** को देखें, तो वहाँ स्त्रियों के जो रूप उकेरे गए हैं, वे प्राकृतिक, विविध और जीवन के करीब हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि हमारी परंपरा में सौंदर्य का दृष्टिकोण कहीं अधिक **समावेशी (inclusive)** और **स्वाभाविक** था।

आधुनिक समय में समस्या यह है कि बालिकाओं का ध्यान उनके **बौद्धिक विकास (intellectual growth)** और **आत्मिक उन्नति (spiritual growth)** से हटाकर केवल रूप-सज्जा और आकर्षण पर केंद्रित कर दिया जाता है। जब तक उन्हें बाहरी प्रशंसा मिलती है, तब तक उन्हें अपनी “वैल्यू” का अनुभव होता है, लेकिन जैसे-जैसे उम्र बढ़ती है और रूप बदलता है, वही आधार कमजोर पड़ने लगता है। इससे **असुरक्षा (insecurity)**, **ईर्ष्या (jealousy)** और अंततः **अवसाद (depression)** जैसी स्थितियाँ उत्पन्न हो सकती हैं।

इसका समाधान यह नहीं है कि सपने देखना गलत है, बल्कि यह समझना है कि केवल एक ही दिशा में सीमित होना **असम्यक (imbalanced)** है। बालिकाओं को यह सिखाना आवश्यक है कि वे पहले से ही सुंदर हैं,

लेकिन उनकी वास्तविक शक्ति उनके **ज्ञान, चरित्र, तप (discipline)** और **स्व-विकास (self-development)** में निहित है।

अतः आवश्यक है कि समाज सौंदर्य के संकीर्ण मानकों से आगे बढ़कर बालिकाओं को **उच्च शिक्षा (higher education)**, **विचारशीलता (critical thinking)** और **आंतरिक विकास (inner evolution)** की ओर प्रेरित करे। जब यह संतुलन स्थापित होगा, तभी वास्तविक **सशक्तिकरण (empowerment)** संभव होगा जहाँ स्त्री केवल दिखने के लिए नहीं, बल्कि अपने सम्पूर्ण अस्तित्व के साथ पहचानी जाएगी

5.6 “स्वतंत्रता बनाम संबंध: आधुनिक स्त्री के सामने वास्तविक चुनौती”

यह कहा जा सकता है कि यदि कोई स्त्री **नारीवाद (Feminism)** विचारधारा को बिना सम्यक् **विवेक (Critical Understanding)** के अपनाती है, तो उसके कारण उसके जीवन के महत्वपूर्ण संबंधों जैसे पिता, भाई और पति के प्रति **दृष्टिकोण (Perception)** प्रभावित हो सकता है। ऐसी स्थिति में वह अनजाने में **भावनात्मक दूरी (Emotional Distance)** या **विमुखता (Detachment)** की ओर बढ़ सकती है। अपने परिवार के पुरुषों से दूर हो चुकी एक महिला को नियंत्रित करना अपेक्षाकृत सरल माना जाता है। यदि उस महिला का पिता है, तो वह अपनी बेटी की सुरक्षा और देखभाल को अपना **कर्तव्य (Duty)** समझता है और उसके कल्याण के लिए सदैव **समर्पित (Dedicated)** रहता है। इसी प्रकार, पति भी अपनी पत्नी की सुरक्षा और सुख-सुविधा के लिए अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं का **त्याग (Sacrifice)** करने को तैयार रहता है। एक बेटा भी अपनी मां के प्रति गहरे **भावनात्मक जुड़ाव (Emotional Attachment)** के कारण उसकी देखभाल और रक्षा करना चाहता है। ये तीनों पुरुष पिता, पति और पुत्र महिला के जीवन में

अत्यंत महत्वपूर्ण (Significant) और संवेदनशील (Sensitive) भूमिका निभाते हैं। उदाहरणस्वरूप, पिता की चिंता को कभी-कभी नियंत्रणकारी व्यवहार (Controlling Behavior) और अनुशासन को दमन (Oppression) के रूप में देखा जाता है। इसी संदर्भ में “पितृसत्ता (Patriarchy)” जैसे शब्दों का प्रयोग होता है, जिन्हें कई बार नकारात्मक अर्थों में प्रस्तुत किया जाता है। जबकि ऐतिहासिक रूप से पिता की भूमिका को एक संरक्षक (Protector) के रूप में भी देखा गया है, जो अपने अनुभव के आधार पर अपनी संतान के हित में निर्णय लेना चाहता है।

इसी प्रकार, पति की भूमिका को भी कई बार आलोचनात्मक दृष्टिकोण (Critical Perspective) से देखा जाता है। यदि वह परिवार या सुरक्षा को महत्व देता है, तो उसे नियंत्रणकारी (Controlling) कहा जा सकता है, और यदि वह पारिवारिक दायित्वों की अपेक्षा करता है, तो इसे शोषण (Exploitation) के रूप में भी व्याख्यायित किया जाता है। इन विचारों के कारण वैवाहिक संबंधों में तनाव (Conflict) और विघटन (Disintegration) की संभावना बढ़ सकती है। इसी क्रम में, पुत्र की भूमिका को भी नए सामाजिक दृष्टिकोणों में पुनर्परिभाषित किया जाता है। आधुनिक विचारों में कभी-कभी पारंपरिक पौरुष (Masculinity) को नकारात्मक रूप में देखा जाता है, जिससे परिवार में पुरुष की भूमिका को सीमित करने की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। परिणामस्वरूप, पारिवारिक संरचना में परिवर्तन (Transformation) आता है, जहाँ पारंपरिक भूमिकाएँ धीरे-धीरे कमजोर पड़ने लगती हैं। जब ये पारंपरिक संबंध कमजोर होते हैं, तो उनके स्थान पर अन्य संस्थाएँ (Institutions) जैसे राज्य (State), कॉर्पोरेट (Corporate) और विभिन्न संगठन अधिक प्रभावशाली हो जाते हैं। ये संस्थाएँ व्यक्ति के जीवन में विभिन्न प्रकार की सहायता (Support) और सुविधाएँ (Facilities) प्रदान करती हैं, किंतु इनके साथ भावनात्मक जुड़ाव का स्तर सीमित होता है। अंततः यह विचार

सामने आता है कि किसी भी व्यक्ति के जीवन में **प्रेम (Love)** और **भावनात्मक संबंध (Emotional Bonds)** अत्यंत महत्वपूर्ण होते हैं। इनके अभाव में वास्तविक सुरक्षा और संतुलन बनाए रखना कठिन हो सकता है। जब कोई महिला अपने निकटतम संबंधों से अलग हो जाती है, तो उसके जीवन में **अकेलापन (Isolation)** और **असुरक्षा (Insecurity)** की भावना बढ़ सकती है। संकट के समय न तो कोई **विचारधारा (Ideology)** काम आती है और न ही कोई बाहरी **संस्था (Institution)** उस समय केवल परिवार, संबंध और मानवीय साहस ही सहारा बनते हैं। पुरुष का यह कंधा केवल शारीरिक बल का प्रतीक नहीं, बल्कि **उत्तरदायित्व (Responsibility)**, **संरक्षण (Protection)** और **समर्पण (Dedication)** का प्रतीक है। इसी प्रकार स्त्री का उस कंधे पर विश्वास करना **आस्था (Trust)** और **संबंधों की गहराई (Depth of Bonding)** को दर्शाता है। इस प्रकार, स्वतंत्रता और **सशक्तिकरण (Empowerment)** की अवधारणा के साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि व्यक्ति अपने पारिवारिक और सामाजिक संबंधों के संतुलन को समझे और बनाए रखे। इसी ऐतिहासिक और सामाजिक परिप्रेक्ष्य को यदि हम आधुनिक संदर्भ में देखें, तो स्पष्ट होता है कि सामाजिक परिवर्तन आज भी निरंतर नए रूपों में सामने आ रहे हैं।

5.7 “आधुनिकता की कीमत: संयुक्त परिवार से न्यूक्लियर परिवार तक: परिवर्तन या षड्यंत्र?”

आधुनिक स्त्री के लिए वास्तविक चुनौती यह है कि वह **स्वतंत्रता (Freedom)** और **संबंधों (Relationships)** के बीच संतुलन बनाए रखते हुए अपनी **पहचान (Identity)** और **भावनात्मक जुड़ाव (Emotional Bond)** दोनों को सुरक्षित रख सके। जबकि इसके विपरीत परिवारों का टूटना आज के समय में एक ऐसी **सामाजिक वास्तविकता (social reality)** बनता जा रहा है, जिसका सीधा संबंध आधुनिक **बाजार**

व्यवस्था (market system) से जोड़ा जाता है। पहले जहां एक **संयुक्त परिवार (joint family)** एक ही घर, एक ही वाहन और सीमित संसाधनों में सहज रूप से जीवनयापन कर लेता था, वहीं अब परिवारों के बिखरने के साथ **उपभोग (consumption)** की मात्रा कई गुना बढ़ गई है। एक ही परिवार के अलग-अलग हिस्सों के लिए अलग-अलग घर, कार, टीवी, वाशिंग मशीन जैसी वस्तुएँ आवश्यक हो गई हैं, जिससे बाजार का विस्तार तेजी से हुआ है। बीते कुछ वर्षों में बाजारों की समृद्धि तो बढ़ी है, परंतु इसके साथ-साथ **परिवारिक एकता (family cohesion)** और सामाजिक जुड़ाव कमजोर होता दिखाई देता है।

भारतीय समाज में पारंपरिक रूप से संयुक्त परिवार एक मजबूत **सामाजिक सुरक्षा तंत्र (social security system)** के रूप में कार्य करता था, जहाँ बुजुर्गों का सम्मान, बच्चों के संस्कार और भावनात्मक सहारा स्वाभाविक रूप से मिलता था। उस समय **अकेलापन (loneliness)** या **मानसिक तनाव (mental stress)** जैसी समस्याएँ उतनी व्यापक नहीं थीं जितनी आज देखने को मिलती हैं। आधुनिक समय में, विशेषकर वैश्वीकरण और पश्चिमी प्रभाव के बाद, जीवनशैली में बड़ा परिवर्तन आया है। व्यक्तिगत स्वतंत्रता, आत्मनिर्भरता और आधुनिकता के नाम पर छोटे परिवारों को प्रोत्साहित किया गया, जबकि संयुक्त परिवार को कई बार नकारात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया।

मीडिया, मनोरंजन उद्योग और डिजिटल प्लेटफॉर्म जैसे **नेटफ्लिक्स, यूट्यूब और इंस्टाग्राम** ने भी लोगों की **जीवनशैली (lifestyle)** और **सोच (mindset)** को प्रभावित किया है। आज बच्चों के संस्कार कई बार परिवार के बुजुर्गों के बजाय सोशल मीडिया और इन्फ्लुएंसर्स से निर्मित हो रहे हैं। वहीं **ज़ोमैटो** जैसे प्लेटफॉर्म ने सुविधा तो बढ़ाई है, लेकिन पारिवारिक भोजन और साथ बैठने की परंपरा को भी कहीं न कहीं प्रभावित किया है।

परिणामस्वरूप, आज समाज में **भावनात्मक दूरी (emotional distance)**, रिश्तों की कमजोरी और अकेलेपन की समस्या बढ़ती जा रही है। पहले जिन कार्यों को परिवार के सदस्य मिलकर करते थे, आज उनके लिए बाहरी सेवाओं जैसे काउंसलिंग या डिजिटल ऐप्स पर निर्भरता बढ़ गई बाजार के लिए यह स्थिति अनुकूल है, क्योंकि हर समस्या एक नए उत्पाद या सेवा में परिवर्तित हो जाती है। यदि हम अपने बुजुर्गों का सम्मान करेंगे, बच्चों को परिवार से जोड़ेंगे और त्योहारों को केवल उपभोग का माध्यम न बनाकर **सांस्कृतिक उत्सव (Cultural Celebration)** के रूप में मनाएंगे, तो हम इस परिवर्तन के बीच भी अपनी पहचान और संबंधों को सुरक्षित रख सकते हैं।

आधुनिकीकरण के नाम पर हमारे ही समाज में एक गहरा खेल चल रहा है। जब अपनी ही परंपरा हमें अजनबी प्रतीत होने लगे, तो यह समझ लेना चाहिए कि यह केवल **आधुनिकता (Modernity)** का प्रभाव नहीं, बल्कि हमारी **सांस्कृतिक पहचान (Identity)** के **क्षरण (Erosion)** का संकेत है। वास्तव में, किसी भी समाज की **अस्मिता (Essence/Identity)** उसकी परंपराओं, मूल्यों और जीवन-पद्धति में निहित होती है।

जब हम इन्हें **अप्रासंगिक (Irrelevant)** या **पिछड़ा (Backward)** मानकर त्यागने लगते हैं, तब हम अनजाने में अपनी जड़ों से दूर हो जाते हैं। यह स्थिति एक प्रकार की **आत्मविस्मृति (Self-forgetfulness)** को जन्म देती है, जहाँ व्यक्ति बाहरी प्रभावों के प्रति आकर्षित तो होता है, किंतु अपनी **मौलिकता (Originality)** खो देता है।

अतः सच्ची आधुनिकता का अर्थ अपनी परंपराओं का परित्याग नहीं, बल्कि उनके साथ **समन्वय (Harmony/Coordination)** स्थापित करते हुए प्रगति करना है, ताकि हमारी **सांस्कृतिक निरंतरता (Cultural Continuity)** बनी रहे और हमारी पहचान सुरक्षित रह सके।

5.8 “भाषा, वेशभूषा और संस्कृति: टूटते संबंधों की कहानी”

यदि हम कहें कि **दिल्ली (Delhi)** जैसे **महानगर (Metropolis)** में अपने ही घर के आसपास **धोती-कुर्ता (Dhoti-Kurta)** पहने किसी व्यक्ति को देखकर मन क्षणभर के लिए **असहज (Uneasy)** हो उठता है, तो यह सुनने में भले ही **विचित्र (Strange)** लगे, परंतु यह हमारे समाज की **वास्तविकता (Reality)** को उजागर करता है। आज के **शहरी परिवेश (Urban Environment)** में, जहाँ अधिकांश लोग **शर्ट-पैंट (Shirt-Pant)** जैसी **पाश्चात्य वेशभूषा (Western Attire)** में दिखाई देते हैं, वहाँ **पारंपरिक परिधान (Traditional Attire)** धारण करने वाला व्यक्ति एक **अपवाद (Exception)** या **व्यतिक्रम (Deviation)** प्रतीत होता है।

यह स्थिति केवल वस्त्रों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह हमारी **सांस्कृतिक चेतना (Cultural Consciousness)** और **मानसिकता (Mindset)** में आए परिवर्तन को भी दर्शाती है। जो परिधान कभी हमारी **परंपरा (Tradition)** और **पहचान (Identity)** का **अभिन्न अंग (Integral Part)** था, वही आज हमें **अजनबी (Alien/Strange)** और **विस्मयकारी (Astonishing)** लगने लगा है। यह एक प्रकार का **आत्म-निर्वासन (Self-exile)** है, जहाँ हम अपनी ही जड़ों से **विमुख (Alienated)** होते जा रहे हैं। **दिल्ली (Delhi)** में पली-बढ़ी नई पीढ़ी के लिए **धोती-कुर्ता (Dhoti-Kurta)** पहने व्यक्ति किसी ‘एलियन’ से कम नहीं लगता, जबकि **दक्षिण भारत (South India)** में यही वेशभूषा आज भी **सातत्य (Continuity)** और **सांस्कृतिक निरंतरता (Cultural Continuity)** का प्रतीक बनी हुई है। वहाँ यह केवल परिधान नहीं, बल्कि **जीवनशैली (Lifestyle)** का **अभिन्न तत्व (Integral Element)** है।

वस्त्र केवल शरीर को ढकने का माध्यम नहीं होते, बल्कि वे किसी समाज की **संस्कृति (Culture)**, **परंपरा (Tradition)** और **इतिहास**

(History) के प्रतीक भी होते हैं। जब हम अपनी **वेशभूषा (Attire)** को त्यागते हैं, तो धीरे-धीरे हम अपनी **भाषा (Language)**, **संस्कार (Values)** और **स्मृतियाँ (Memories)** से भी दूर होते चले जाते हैं। इस प्रकार वह **सेतु (Bridge)**, जिसे हम परंपरा कहते हैं, धीरे-धीरे ढहने लगता है।

अतः यह आवश्यक है कि हम अपनी **पारंपरिक वेशभूषा (Traditional Attire)** को केवल विशेष अवसरों तक सीमित न रखें, बल्कि उसे अपने दैनिक जीवन में भी स्थान दें। यदि प्रतिदिन नहीं, तो कम से कम सप्ताह में कुछ दिन **धोती-कुर्ता (Dhoti-Kurta)** धारण करने का **अभ्यास (Practice)** अवश्य करें, ताकि यह हमारी संस्कृति का केवल संग्रहालयीय अवशेष (**Museum Relic**) बनकर न रह जाए, बल्कि एक **जीवंत परंपरा (Living Tradition)** के रूप में आगे बढ़ता रहे।

5.9 शिक्षा और राजनीति में महिलाओं की भागीदारी कम क्यों है?

हमारी लड़कियाँ उच्च शिक्षा में अपेक्षित रूप से दिखाई नहीं देतीं, यह देखकर आप **आश्चर्यचकित (Astonished)** रह जाएंगे कि **पीएचडी (PhD)** स्तर पर भी बहुत कम लड़कियाँ उपस्थित होती हैं, केवल **इक्का-दुक्का (Very Few)**। यदि आप किसी भी **बौद्धिक मंच (Intellectual Platform)** पर जाएँ, तो वहाँ महिलाओं की **उपस्थिति (Presence)** अत्यंत सीमित दिखाई देती है। इसका एक प्रमुख कारण यह है कि उन्हें प्रारंभ से ही एक **मानसिक जाल (Mental Trap)** में बाँध दिया जाता है, जहाँ उनकी ऊर्जा केवल **सौंदर्य (Beauty)**, **वस्त्र (Attire)** और **बाह्य आकर्षण (External Attraction)** में ही **निमग्न (Absorbed)** रखी जाती है, मानो अन्य सभी उत्तरदायित्व पुरुषों द्वारा ही निभाए जाएंगे।

इसी संदर्भ में जब हम आधुनिक मीडिया और डिजिटल मंचों का **विश्लेषण (Analysis)** करते हैं, तो यह स्पष्ट होता है कि महिलाओं की

सहभागिता (Participation) अपेक्षाकृत कम है, जबकि विषय केवल पुरुषों तक सीमित नहीं हैं। यह समस्या मात्र संसाधनों की कमी नहीं, बल्कि एक गहन **मनोवैज्ञानिक संरचना (Psychological Structure)** का परिणाम है, जिसमें बाल्यावस्था से ही बालिकाओं के मन में यह **प्रविष्ट (Implanted)** कर दिया जाता है कि उनका मूल्य केवल उनके रूप और आकर्षण में **निहित (Inherent)** है।

जब हम इस स्थिति की **गहन समीक्षा (Deep Analysis)** करते हैं, तो यह ज्ञात होता है कि समाज ने एक विशेष प्रकार की **आकांक्षा (Aspiration)** और मांग (**Demand**) **निर्मित (Constructed)** कर दी है, जो स्त्रियों को **बौद्धिक विकास (Intellectual Development)** से **विमुख (Alienated)** कर केवल बाह्य प्रदर्शन की ओर **प्रेरित (Motivated)** करती है। तथाकथित **सशक्तिकरण (Empowerment)** भी कई बार वास्तव में पुरुषों की **अपेक्षाओं (Expectations)** पर आधारित होता है, न कि स्त्रियों की वास्तविक **स्वतंत्रता (Freedom)** पर। **सोशल मीडिया (Social Media)** पर जो लोग अधिक **लोकप्रियता (Popularity)** प्राप्त करते हैं, वे प्रायः वही होते हैं जो बाहरी प्रदर्शन और **उत्तेजना (Stimulation)** को प्रस्तुत करते हैं, और उनके **अनुयायी (Followers)** भी अधिकांशतः पुरुष होते हैं। यह एक गहरे **सामाजिक पूर्वाग्रह (Bias)** को दर्शाता है, जिसमें **बौद्धिकता (Intellect)** की अपेक्षा आकर्षण को अधिक महत्व दिया जाता है।

इसके परिणामस्वरूप बालिकाओं की **चेतना (Consciousness)** को इस प्रकार **परिवर्तित (Transformed)** कर दिया जाता है कि वे **दर्शन (Philosophy)**, **राजनीति (Politics)**, **समाजशास्त्र (Sociology)** या **विज्ञान (Science)** जैसे गंभीर विषयों से दूर होती चली जाती हैं। उनकी **मनोसंरचना (Psychological Framework)** में प्रारंभ से ही यह स्थापित कर दिया जाता है कि यदि वे सुंदर नहीं दिखेंगी, तो उनका

सामाजिक मूल्य (Value) कम हो जाएगा। यह एक प्रकार का मनोवैज्ञानिक जाल (Psychological Trap) है, जिसमें उन्हें उलझा दिया जाता है। इसके विपरीत, पुरुषों के लिए ऐसे सौंदर्य-मानदंड (Beauty Standards) अत्यंत सीमित होते हैं, जबकि महिलाओं के लिए बाज़ार में असंख्य विविधताएँ (Countless Varieties) प्रस्तुत कर दी जाती हैं जैसे फाउंडेशन, लिप शेड, वस्त्र और आभूषण (Ornaments) जिससे वे द्वंद्व (Conflict) और भ्रम (Confusion) की स्थिति में फँस जाती हैं।

यदि हम इस पूरे परिदृश्य (Scenario) का सम्यक विश्लेषण (Comprehensive Analysis) करें, तो स्पष्ट होता है कि यह समस्या केवल व्यक्तिगत नहीं, बल्कि एक व्यापक सामाजिक संरचना (Structure) की देन है, जिसमें स्त्रियों को उनके वास्तविक बौद्धिक (Intellectual) और आंतरिक विकास (Inner Development) से विमुख कर दिया जाता है और उन्हें एक सीमित भूमिका में परिभाषित (Defined) कर दिया जाता है।

5.10 “समग्र शिक्षा का भारतीय मॉडल: गुरुकुल परंपरा और आधुनिक चुनौतियाँ”

प्राचीन भारत में शिक्षा का मुख्य आधार गुरुकुल प्रणाली (Gurukul System) थी, जिसमें विद्यार्थी गुरु के आश्रम में निवास करते हुए केवल शैक्षिक ज्ञान ही नहीं, बल्कि जीवनोपयोगी मूल्यों का भी अर्जन करते थे। यहाँ अनुशासन (Discipline), सेवा (Service), अध्ययन (Study) तथा आत्मसंयम (Self-control) को शिक्षा का अनिवार्य अंग माना जाता था। इस प्रणाली में व्याकरण, वेद, उपनिषद, दर्शन, गणित, खगोलशास्त्र (Astronomy), आयुर्वेद, नैतिकता और जीवन-दर्शन जैसे विविध विषयों का समावेश होता था, जिससे विद्यार्थियों का समग्र व्यक्तित्व (Holistic

Personality) विकसित होता था। शिक्षा का उद्देश्य केवल आजीविका अर्जन नहीं, बल्कि व्यक्ति को **कर्तव्यपरायण (Duty-oriented)**, **विवेकशील (Discerning)** और समाजोपयोगी बनाना था। ऐतिहासिक परिवर्तनों और सामाजिक परिस्थितियों के कारण समय के साथ इस व्यवस्था में कुछ **हास (Decline)** हुआ तथा कुछ क्षेत्रों में स्त्री शिक्षा **सीमित (Restricted)** हो गई, किन्तु वैदिक परंपरा में महिलाओं को पूर्णतः **वंचित (Deprived)** मान लेना तथ्यात्मक रूप से उचित नहीं है; गार्गी और मैत्रेयी जैसी विदुषियों का उल्लेख इस सत्य की पुष्टि करता है।

केवल महिलाएँ ही नहीं, बल्कि हमारा संपूर्ण भारतीय समाज भी 1833 में हाउस ऑफ कॉमन्स में Thomas Babington Macaulay द्वारा प्रस्तुत शिक्षा संबंधी विचारों से गहराई से प्रभावित हुआ। यह घटना भारतीय इतिहास में एक महत्वपूर्ण **विवादास्पद (Controversial)** मोड़ के रूप में देखी जाती है, क्योंकि इसके परिणामस्वरूप एक ऐसी शिक्षा प्रणाली स्थापित हुई, जिसने पारंपरिक भारतीय ज्ञान-व्यवस्था को धीरे-धीरे **हाशिए पर (Marginalized)** डाल दिया। मैकॉले का उद्देश्य एक ऐसी मध्यवर्ती श्रेणी तैयार करना था, जो “रक्त और रंग से भारतीय, किन्तु रुचि, विचार, आचरण और बुद्धि से अंग्रेज़” हो। यह दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से एक **औपनिवेशिक मानसिकता (Colonial Mindset)** को दर्शाता है, जिसमें भारतीय भाषाओं, ग्रंथों और ज्ञान-परंपरा को **हीन (Inferior)** समझा गया तथा अंग्रेज़ी शिक्षा को **श्रेष्ठ (Superior)** स्थापित किया गया।

इस नीति के प्रभाव से शिक्षा का उद्देश्य धीरे-धीरे जीवन के **आदर्शों (Ideals)** और **संस्कारों (Values)** से हटकर केवल प्रशासनिक और आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति तक सीमित होता चला गया। भारतीय भाषाओं और पारंपरिक विषयों का **अवमूल्यन (Devaluation)** हुआ, जिससे नई पीढ़ी अपनी सांस्कृतिक जड़ों से **विमुख (Alienated)** होने लगी। तथापि, यह मान लेना कि केवल भाषा परिवर्तन से ही किसी राष्ट्र की

प्रगति (Progress) या **अवनति (Decline)** निर्धारित होती है, एक **सरलीकृत दृष्टिकोण (Oversimplified View)** है। वास्तविकता यह है कि भाषा केवल एक माध्यम है; किसी भी शिक्षा प्रणाली की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि वह व्यक्ति के **बौद्धिक (Intellectual)**, **नैतिक (Moral)** और **आत्मिक विकास (Spiritual Development)** को किस प्रकार संतुलित करती है।

अतः आज आवश्यकता इस बात की है कि हम अतीत और वर्तमान के बीच **समन्वय (Synthesis)** स्थापित करें, जहाँ एक ओर आधुनिक विज्ञान और तकनीक को अपनाया जाए, वहीं दूसरी ओर भारतीय ज्ञान-परंपरा, भाषाओं और मूल्यों को भी समान महत्व दिया जाए। तभी एक ऐसी संतुलित शिक्षा प्रणाली विकसित हो सकेगी, जो न केवल **व्यावसायिक दक्षता (Professional Competence)** प्रदान करे, बल्कि व्यक्ति और समाज दोनों के **सर्वगीण विकास (Overall Development)** का मार्ग प्रशस्त करे।

इस संदर्भ में गुरुकुल प्रणाली एक अत्यंत **प्रभावी (Effective)** और **समग्र (Holistic)** मॉडल के रूप में सामने आती है, जहाँ शिक्षा को छात्र की **क्षमता (Capability)** और **ग्रहणशीलता (Learning ability)** के अनुसार अनुकूलित किया जाता था। इसके अतिरिक्त, इस प्रणाली में **दर्शनशास्त्र (Philosophy)**, **आध्यात्मिकता (Spirituality)** और जीवन मूल्यों का समावेश होता था, जो व्यक्ति के **समग्र विकास (Overall development)** में सहायक था। गुरुकुलों में शिक्षा को केवल व्यवसाय नहीं, बल्कि एक **धार्मिक और सामाजिक उत्तरदायित्व (Moral and social responsibility)** माना जाता था। यहाँ **संसाधनों का संतुलित उपयोग (Optimal use of resources)**, **सादगी (Simplicity)** और **आत्मनिर्भरता (Self-reliance)** पर विशेष बल दिया जाता था, जिससे शिक्षा सभी वर्गों के लिए सुलभ बनती थी। साथ ही,

इसे एक **आजीवन प्रक्रिया (Lifelong process)** के रूप में देखा जाता था, जो व्यक्ति के जीवन के प्रत्येक चरण में उपयोगी होती थी।

यदि बच्चों को प्रारम्भ से ही वेद, उपनिषद्, दर्शनशास्त्र और व्याकरण जैसे विषय आधुनिक विज्ञान के साथ पढ़ाए जाएँ, तो उनके व्यक्तित्व के विकास पर गहरा **प्रभाव (Impact)** पड़ सकता है। वैदिक शिक्षाएँ केवल अनुष्ठान नहीं सिखातीं, बल्कि **नैतिकता (Ethics)**, **अनुशासन (Discipline)**, **आत्मसंयम (Self-control)** और **सात्त्विक जीवनदृष्टि (Sattvic worldview)** को विकसित करने पर बल देती हैं, जिससे व्यक्ति का मानसिक और आध्यात्मिक संतुलन बना रहता है।

5.11 प्राचीन भारतीय ग्रंथों में विवाह और ब्रह्मचर्य: बाल-विवाह पर ऐतिहासिक दृष्टि

कुछ विद्वान यह तर्क देते हैं कि हिंदुइज्म कोई धर्म कैसे हो सकता है जब ये चाइल्ड मैरिज जैसी कुरीतियों को जन्म देने वाला है? अच्छा, हमें सिखा दिया गया है हां, बाल विवाह एक सामाजिक बुराई है। जिसे नकारा नहीं जा सकता। पर क्या यह वास्तव में **सनातन धर्म (Sanatana Dharma)** की देन है?

मनुस्मृति के अध्याय 3 के श्लोक 4 में कहा गया है कि **ब्रह्मचर्य आश्रम (Brahmacharya Ashrama)** में वेदों का पूर्ण अध्ययन करने के बाद ही **गृहस्थ आश्रम (Grihastha Ashrama)** में प्रवेश करना चाहिए—

“गुरौ वसन् ब्रह्मचारी वेदमधीत्य यथाविधि।

अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाव्रजेत्॥”

अर्थात् पहले शिक्षा और ब्रह्मचर्य, उसके बाद ही विवाह।

इसी ग्रंथ के **अध्याय 9 के श्लोक 89** में स्पष्ट कहा गया है—

**“काममामरणात्तिष्ठेद् गृहे कन्या ऋतुमत्यपि।
न चैवैनां प्रयच्छेत् तु गुणहीनाय कर्हिचित्॥”**

अर्थात् यदि योग्य वर न मिले तो कन्या का अविवाहित रहना भी स्वीकार्य है, परंतु उसे किसी **गुणहीन (Unworthy)** व्यक्ति से विवाह नहीं करना चाहिए।

प्राचीन धर्मशास्त्रीय ग्रंथ **गौतम धर्मसूत्र (Gautama Dharmasutra)** में **ब्रह्मचर्य आश्रम (Brahmacharya Ashrama)** और वेद-अध्ययन के महत्व का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। उसमें कहा गया है कि विद्यार्थी को वेदों के अध्ययन की पूर्णता तक गुरु के आश्रम में रहकर ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए।

श्लोक (गौतम धर्मसूत्र):

“आचार्यकुले वसन् ब्रह्मचारी वेदानधीयीत यथाविधि।”

अर्थ: विद्यार्थी को **आचार्य के आश्रम (Teacher's Hermitage)** में निवास करते हुए विधिपूर्वक **वेदों (Vedas)** का अध्ययन करना चाहिए और ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए।

यह सिद्धांत प्राचीन भारतीय **आश्रम-व्यवस्था (Ashrama System)** का महत्वपूर्ण भाग था, जिसमें जीवन के प्रारंभिक चरण को **शिक्षा (Education)**, **अनुशासन (Discipline)** और **आत्म-विकास (Self-Development)** के लिए समर्पित माना गया था। इसके बाद ही व्यक्ति **गृहस्थ आश्रम (Householder Stage)** में प्रवेश करता था।

आयुर्वेद के महान आचार्य सुश्रुत द्वारा रचित सुश्रुत संहिता में **यौवन (Maturity)** और **संतानोत्पत्ति (Procreation)** के लिए शारीरिक

परिपक्वता के महत्व का उल्लेख मिलता है। वहाँ यह संकेत दिया गया है कि शरीर के पूर्ण विकास के बाद ही गर्भाधान उचित माना जाता है।

श्लोक (सुश्रुत संहिता):

“पञ्चविंशे तु वर्षे पुंसः पूर्णं भवति यौवनम्।
तदा वीर्यं समृद्धं स्यात् गर्भधारणयोग्यताम्॥”

अर्थ: लगभग **पच्चीसवें वर्ष (25th year)** के आसपास पुरुष का **यौवन (Physical Maturity)** पूर्ण होता है। उसी समय उसका **वीर्य (Reproductive Capacity)** भी पूर्ण रूप से विकसित होता है और वह संतति उत्पन्न करने के लिए योग्य होता है।

आयुर्वेदिक परंपरा में इसी कारण यह माना गया कि **पूर्ण शारीरिक विकास (Complete Physiological Development)** के बाद ही विवाह और संतानोत्पत्ति उचित है, जिससे माता-पिता और संतान दोनों का स्वास्थ्य सुरक्षित रहे।

वैदिक साहित्य विशेषतः ऋग्वेद में स्त्री-पुरुष के परिपक्व होने के बाद विवाह का संकेत मिलता है। ऋग्वेद में ऋषि अगस्त्य और उनकी पत्नी लोपामुद्रा के संवाद में यह भाव मिलता है कि दांपत्य जीवन युवावस्था और परिपक्वता के बाद आरम्भ होना चाहिए। ऋग्वेद में लोपामुद्रा का संवाद यह संकेत देता है कि स्त्री को **ब्रह्मचर्य और शिक्षा (Education)** के बाद ही विवाह करना चाहिए। वहीं वैदिक विवाह सूक्तों में यह भी कहा गया है कि जब कन्या में **प्रजनन-शक्ति (Reproductive Maturity)** और पूर्ण शारीरिक विकास हो जाए, तभी विवाह उपयुक्त है।

श्लोक (ऋग्वेद 1.179 – लोपामुद्रा सूक्त):

“पूर्वीरहं शरदः शश्रमाणा
दोषा वस्तो रुषसो जरयन्तीः ।
मिनाति श्रियं जरिमा तनूनाम्
अप्य नु पत्नीर् वृषणो जगम्युः ॥”

अर्थ: लोपामुद्रा कहती हैं कि अनेक वर्षों तक तप, संयम और ब्रह्मचर्य में समय व्यतीत हो चुका है; अब शरीर पर आयु का प्रभाव भी आने लगा है। अतः उचित समय आने पर दांपत्य जीवन का आरम्भ होना चाहिए। यह संकेत करता है कि विवाह **परिपक्व आयु (Mature Age)** और जीवन की तैयारी के बाद होना चाहिए।

इसी प्रकार वैदिक विवाह सूक्त में भी कन्या को परिपक्व होकर नए जीवन में प्रवेश करने की कामना की गई है।

श्लोक (ऋग्वेद 10.85 – विवाह सूक्त):

“सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव ।
ननान्दरी सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवेषु ॥”

(अर्थ: हे वधू! तुम अपने नए परिवार में **सम्मानित और समर्थ (Empowered)** बनो, अपने ससुर, सास और परिवार में प्रतिष्ठा प्राप्त करो।)

इन मंत्रों में विवाह को एक **परिपक्व सामाजिक संस्कार (Mature Social Sacrament)** के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जहाँ शिक्षा, परिपक्वता और उत्तरदायित्व के साथ दांपत्य जीवन का आरम्भ होता है।

कालिदास के समय में सांस्कृतिक और बौद्धिक उन्नति अपने चरम पर थी, और उस युग में **प्रसिद्धि (Fame)** तथा **साहित्यिक प्रतिष्ठा (Literary prestige)** प्राप्त करने वाले अनेक विद्वान विद्यमान थे। उसी काल में

प्रभावती गुप्ता, जो चंद्रगुप्त द्वितीय की पुत्री थीं, ने शासन-प्रशासन में सक्रिय भूमिका निभाई, जो स्त्रियों की **राजनीतिक सहभागिता (Political participation)** और **प्रशासनिक क्षमता (Administrative capability)** का सशक्त उदाहरण है। इससे यह संकेत मिलता है कि उस समय तक स्त्रियों की शिक्षा और सामाजिक स्थिति में कुछ **संतुलन (Balance)** बना हुआ था।

किन्तु 9वीं-10वीं शताब्दी के आगमन के साथ सामाजिक परिस्थितियों में **परिवर्तन (Transformation)** आया, जिसमें बाहरी आक्रमणों और अस्थिरता के कारण विवाह की आयु में **हास (Decline)** हुआ और यह 12-13 वर्ष से घटकर लगभग 9 वर्ष तक पहुँच गई। इस परिवर्तन का स्त्रियों की शिक्षा पर गहरा **प्रतिकूल प्रभाव (Adverse impact)** पड़ा, क्योंकि अल्पायु विवाह के कारण उनके लिए शिक्षा प्राप्त करना कठिन हो गया। इतिहासकार अनंत सदाशिव अल्टेकर के अनुसार उस समय पुरुषों की साक्षरता लगभग 30% थी, जबकि महिलाओं की साक्षरता केवल 10% के आसपास थी, जो स्पष्ट रूप से **लैंगिक असमानता (Gender inequality)** को दर्शाती है। समय के साथ सामाजिक संरचनाओं और परंपराओं में हुए निरंतर परिवर्तनों के कारण यह प्रतिशत और भी घटता गया, जिससे स्त्रियों की **शैक्षिक स्थिति (Educational status)** और कमजोर होती चली गई।

5.12 “स्वतंत्रता तभी टिकाऊ होती है, जब वह उत्तरदायित्व और संबंधों के साथ संतुलित हो।”

इस विचार को विस्तार से समझें तो यह केवल “स्वतंत्रता बनाम नियंत्रण” का मुद्दा नहीं है, बल्कि **स्वतंत्रता (Freedom)**, **उत्तरदायित्व (Responsibility)** और **सामाजिक संतुलन (Social Balance)** के बीच के सूक्ष्म संबंध का प्रश्न है।

पिछले कुछ दशकों में **सशक्तिकरण (Empowerment)** का अर्थ मुख्यतः "व्यक्ति को अपने निर्णय स्वयं लेने की पूर्ण स्वतंत्रता" के रूप में प्रस्तुत किया गया। यह परिवर्तन अपने आप में सकारात्मक था, क्योंकि इससे विशेषकर महिलाओं को शिक्षा, करियर और आत्मनिर्भरता के नए अवसर मिले। लेकिन समस्या तब उत्पन्न होती है जब इस स्वतंत्रता को **उत्तरदायित्व (Responsibility)** से अलग कर दिया जाता है।

पहले **परिवार (Family)** और **समुदाय (Community)** एक प्रकार के **अनौपचारिक नियामक तंत्र (Informal Regulatory Systems)** के रूप में कार्य करते थे। उदाहरण के लिए, निर्णय लेने से पहले बुजुर्गों का अनुभव मार्गदर्शन देता था। सामाजिक मानदंड (Norms) व्यक्ति के व्यवहार को संतुलित रखते थे। कठिन परिस्थितियों में भावनात्मक और व्यावहारिक सहयोग सहज रूप से उपलब्ध होता था। इसे ही **सामाजिक नियंत्रण (Social Regulation)** कहा जाता है, जो किसी बाहरी दबाव से अधिक एक **सांस्कृतिक अनुशासन (Cultural Discipline)** होता है।

लेकिन आधुनिक समय में **व्यक्तिवाद (Individualism)** के बढ़ने से यह संरचना धीरे-धीरे कमजोर हुई है। अब व्यक्ति को यह बताया जाता है कि "तुम्हारी ज़िंदगी, तुम्हारे नियम, किसी को जवाब देने की आवश्यकता नहीं" ऐसे विचार व्यक्ति को स्वतंत्र तो बनाते हैं, लेकिन साथ ही उसे **निर्णय लेने के जोखिम (Decision Risks)** के साथ अकेला भी छोड़ देते हैं।

परिणामस्वरूप कुछ महत्वपूर्ण बदलाव देखने को मिलते हैं,

1. निर्णयों का एकाकीकरण (Isolation in Decision-Making):

अब व्यक्ति अपने जीवन के बड़े निर्णय (रिश्ते, करियर, जीवनशैली) बिना पर्याप्त मार्गदर्शन के लेता है। इससे गलत निर्णय की संभावना बढ़ जाती है।

2. भावनात्मक सुरक्षा में कमी (Decline in Emotional Security):

परिवार पहले एक सुरक्षा कवच (Safety Net) की तरह कार्य करता था। उसके कमजोर होने से अकेलापन (Loneliness) और मानसिक तनाव (Stress) बढ़ सकता है।

3. अनुभव का अभाव (Lack of Intergenerational Wisdom):

पुरानी पीढ़ियों का अनुभव अब कम महत्व पा रहा है, जिससे व्यक्ति बार-बार वही गलतियाँ दोहराता है जो पहले ही समझी जा चुकी थीं।

4. बाहरी प्रभावों की संवेदनशीलता (Vulnerability to External Influence):

जब व्यक्ति परिवार और समुदाय से कटता है, तो वह मीडिया, सोशल नेटवर्क या बाहरी विचारधाराओं से अधिक प्रभावित हो सकता है, क्योंकि उसे संतुलित करने वाला आंतरिक तंत्र कमजोर हो जाता है।

अंततः, समस्या स्वतंत्रता में नहीं है, बल्कि असंतुलित स्वतंत्रता (Unbalanced Freedom) में है। एक स्वस्थ समाज वही है जहाँ स्वतंत्रता हो, पर उसके साथ उत्तरदायित्व भी हो, व्यक्तिवाद हो, पर सामूहिकता (Collectivism) का संतुलन भी बना रहे। आधुनिकता हो, पर परंपरा (Tradition) का मार्गदर्शन भी बना रहे।

अध्याय 6

वेद, आयुर्वेद और सुश्रुत की वैज्ञानिक शल्य-परंपरा

कहते हैं अंग्रेज चले गए, अंग्रेज़ी छोड़ गए; अब यह भी कहा जा सकता है कि अंग्रेज चले गए, लेकिन अंग्रेज़ी डॉक्टर छोड़ गए। भारत में **एलोपैथिक चिकित्सा (Allopathic Medicine)** से जुड़े संस्थागत ढांचे को देखकर कई बार ऐसा आभास होता है कि **सर्वोच्च संस्था (Institution)**, इंडियन मेडिकल एसोसिएशन (**आईएमए — Indian Medical Association**) अपने दृष्टिकोण में अत्यधिक **संस्थागत प्रभुत्व (Institutional Dominance)** का प्रतिनिधित्व करती है। देशभर में इलाज के नाम पर मरीजों के साथ **शोषण (Exploitation)** या डॉक्टरों की **लापरवाही (Negligence)** से होने वाली घटनाओं पर अक्सर अपेक्षित प्रतिक्रिया नहीं दिखती, किंतु जैसे ही उसके **व्यावसायिक हित (Commercial Interests)** प्रभावित होते हैं, वह तत्काल **आक्रामक रुख (Aggressive Stance)** अपनाता हुआ प्रतीत होता है। आधुनिक भारत में चिकित्सा के क्षेत्र में एलोपैथिक प्रणाली का **वर्चस्व (Dominance)** स्पष्ट है, परंतु इसके समानांतर **आयुर्वेदिक परंपरा (Ayurvedic Tradition)** के प्रति एक प्रकार का **संशय (Doubt)** और **विरोधाभास (Contradiction)** भी **दृष्टिगोचर (Visible)** होता है। यह स्थिति केवल चिकित्सा पद्धतियों के **वैज्ञानिक मूल्यांकन (Scientific Evaluation)** तक सीमित नहीं, बल्कि कहीं न कहीं **औपनिवेशिक मानसिकता (Colonial Mindset)** का भी संकेत देती है।

भारत की प्राचीन चिकित्सा परंपरा, विशेषकर **आयुर्वेद (Ayurveda)**, हजारों वर्षों से **रोग-निदान (Diagnosis)**, उपचार और **शल्य-चिकित्सा**

(Surgery) के क्षेत्र में अत्यंत **समृद्ध (Rich)** रही है। Sushruta जैसे आचार्यों ने **शल्य-विज्ञान (Surgical Science)** को जिस स्तर तक विकसित किया, वह आज भी वैश्विक चिकित्सा इतिहास में **अद्वितीय (Unique)** माना जाता है। इसके विपरीत, आधुनिक चिकित्सा प्रणाली अपेक्षाकृत **नवीन (Modern/Recent)** होते हुए भी अपने **संस्थागत ढांचे (Institutional Framework)** और वैश्विक प्रभाव के कारण प्रमुख स्थान प्राप्त कर चुकी है।

समस्या तब उत्पन्न होती है जब इन दोनों पद्धतियों के बीच **संतुलन (Balance)** और **समन्वय (Coordination)** के स्थान पर **प्रतिस्पर्धा (Competition)** और **अविश्वास (Distrust)** का वातावरण बन जाता है। किसी एक प्रणाली को पूर्णतः **श्रेष्ठ (Superior)** या दूसरी को पूर्णतः **अमान्य (Invalid)** ठहराना न केवल **अवैज्ञानिक (Unscientific)** है, बल्कि समाज के हितों के भी विरुद्ध है। आवश्यकता इस बात की है कि हम **तथ्यपरक दृष्टिकोण (Evidence-based Approach)** अपनाते हुए, दोनों पद्धतियों के **सकारात्मक पहलुओं (Positive Aspects)** को समझें और एक **समन्वित चिकित्सा प्रणाली (Integrated Healthcare System)** की दिशा में अग्रसर हों, जिससे **मानव कल्याण (Welfare)** सर्वोपरि बना रहे।

6.1 “दादी का काढ़ा बनाम लैब का डेटा: आखिरकार जीनोम ने मान ही लिया ‘दादी सही थी!’”

ईशावास्य उपनिषद (Isha Upanishad) का “**पूर्णमदः पूर्णमिदम्**” (Purnamadah Purnamidam) सिद्धांत यह प्रतिपादित करता है कि ब्रह्मांड का प्रत्येक अंश अपने आप में **पूर्ण (complete/whole)** है, और उस पूर्णता में से यदि कुछ निकाला जाए, तो शेष भी पूर्ण ही रहता है। जब इस विचार को आधुनिक **जीनोमिक्स (genomics)** के संदर्भ में देखा

जाता है, तो एक अद्भुत **वैचारिक साम्य** (conceptual similarity) प्रकट होता है।

जीनोम (genome), जो किसी भी जीव का संपूर्ण **आनुवंशिक खाका** (genetic blueprint) है, उसमें उपस्थित प्रत्येक **डीएनए अनुक्रम** (DNA sequence) केवल एक निष्क्रिय संरचना नहीं, बल्कि एक सक्रिय **सूचनात्मक इकाई** (informational unit) है। वैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाए तो एक छोटा-सा डीएनए खंड भी, उचित परिस्थितियों में, पूरे जीव के विकास की **संभाव्यता** (potentiality) को धारण कर सकता है, जैसे **स्टेम सेल** (stem cell) में सम्पूर्ण शरीर के विभिन्न अंगों में विकसित होने की क्षमता होती है। यह दर्शाता है कि सूक्ष्मतम स्तर पर भी एक प्रकार की **समग्रता** (wholeness) विद्यमान है।

यही वह बिंदु है जहाँ उपनिषद् का “पूर्ण” और विज्ञान का “जीनोम” एक-दूसरे के समानांतर प्रतीत होते हैं। उपनिषद् जिस **ब्रह्म** (Brahman) या **सर्वव्यापी चेतना** (universal consciousness) की बात करते हैं, वह केवल एक आध्यात्मिक अवधारणा नहीं, बल्कि एक ऐसी **एकीकृत वास्तविकता** (unified reality) का संकेत है, जिसमें प्रत्येक अंश सम्पूर्ण से जुड़ा हुआ है। उसी प्रकार, जीनोम में प्रत्येक **जीन** (gene), प्रत्येक अनुक्रम, पूरे जीव की संरचना और कार्यप्रणाली से गहराई से **अंतर्संबद्ध** (interconnected) होता है। यह समानता केवल एक **रूपक** (metaphor) नहीं, बल्कि एक गहन **अंतर्दृष्टि** (insight) है, जो यह दर्शाती है कि प्रकृति के नियम सूक्ष्म और स्थूल दोनों स्तरों पर एक ही प्रकार की **संगति** (coherence) और **एकरूपता** (unity) को प्रकट करते हैं।

एक ओर वैज्ञानिक जीनोम, डीएनए अनुक्रम और **एपिजेनेटिक्स** (epigenetics) के माध्यम से जीवन के रहस्यों को सुलझाने में निरंतर **अनुसंधानात्मक** (research-oriented) प्रयास कर रहे हैं, वहीं दूसरी ओर हमारे ऋषि-मुनियों ने सहस्राब्दियों पूर्व ही **चेतना** (consciousness),

प्रज्ञान (higher knowledge) और **पूर्णता** (completeness) जैसे **गूढ़ तत्त्वों** (profound principles) का सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत किया था। वर्तमान **परिप्रेक्ष्य** (context) में यह स्थिति एक प्रकार की **ज्ञानात्मक पुनर्पुष्टि** (cognitive validation) का रूप ले चुकी है, जहाँ आधुनिक विज्ञान क्रमशः उन सिद्धांतों की ओर अग्रसर होता दिखाई देता है, जिन्हें भारतीय परंपरा ने पहले ही **अनुभूतिजन्य** (experiential) स्तर पर स्वीकार कर लिया था।

इसी संदर्भ में, एपिजेनेटिक्स का सिद्धांत विशेष महत्व प्राप्त करता है, क्योंकि यह दर्शाता है कि जीन केवल स्थिर **सूचना-वाहक** (information carriers) नहीं हैं, बल्कि उनकी **अभिव्यक्ति** (expression) पर्यावरणीय प्रभावों, **व्यवहारिक प्रवृत्तियों** (behavioral tendencies) और **मानसिक अवस्थाओं** (mental states) के अनुसार परिवर्तित हो सकती है। यह विचार भारतीय दर्शन में वर्णित **संस्कार सिद्धांत** (theory of samskara) के अत्यंत निकट प्रतीत होता है, जहाँ यह माना गया है कि व्यक्ति के **आचार-विचार** (conduct and thoughts), जीवनशैली और **आंतरिक प्रवृत्तियाँ** (inner tendencies) उसके व्यक्तित्व एवं भविष्य को आकार देती हैं।

आधुनिक विज्ञान की अनुसंधानात्मक यात्रा ने यह स्पष्ट कर दिया है कि केवल डीएनए अनुक्रम ही मानव जीवन का **नियामक तत्त्व** (determinant factor) नहीं है, बल्कि उसके साथ जुड़ा हुआ एपिजेनेटिक प्रभाव भी उतना ही महत्वपूर्ण है। पहले यह माना जाता था कि यदि किसी व्यक्ति में **ऑन्कोजीन** (oncogene) या अन्य रोग-संबंधी जीन उपस्थित हैं, तो रोग की संभावना लगभग **अनिवार्य** (inevitable) है; किन्तु अब यह ज्ञात हुआ है कि जीन की अभिव्यक्ति पूर्णतः व्यक्ति के पर्यावरण, **आहार-विहार** (diet and lifestyle), तथा मानसिक अवस्थाओं पर निर्भर करती है। यह विचार अत्यंत **क्रांतिकारी**

(revolutionary) है, क्योंकि यह दर्शाता है कि मानव केवल अपने जीन का दास नहीं, बल्कि अपने जीवन-परिस्थितियों के माध्यम से स्वयं का **रचनाकार** (creator) भी है।

यहीं पर भारतीय संस्कार-सिद्धांत की गूढ़ता और वैज्ञानिक **प्रासंगिकता** (relevance) उजागर होती है। हमारे शास्त्रों में कहा गया है कि मनुष्य के संस्कार, चाहे वे इस जन्म के हों या जन्म-जन्मांतर के, उसके व्यक्तित्व और प्रवृत्तियों को प्रभावित करते हैं। आज का एपिजेनेटिक्स इसी सत्य को आधुनिक भाषा में **प्रतिपादित** (establish) कर रहा है कि बाह्य वातावरण और आंतरिक विचार-धाराएं हमारे **जैविक ढांचे** (biological framework) को संशोधित कर सकती हैं। यह केवल एक वैज्ञानिक **परिकल्पना** (hypothesis) नहीं, बल्कि एक **अनुभवसिद्ध तथ्य** (empirical reality) बनता जा रहा है।

इसी प्रकार, **उपवास** (fasting) जैसी परंपराएं, जिन्हें कभी मात्र **आडंबरपूर्ण अनुष्ठान** (ritualistic practice) समझा जाता था, आज वैज्ञानिक अनुसंधानों में अत्यंत प्रभावकारी **चिकित्सा-पद्धति** (therapeutic method) के रूप में उभर रही हैं। यह सिद्ध हो चुका है कि नियंत्रित उपवास शरीर में **कोशिकीय पुनरुत्थान** (cellular regeneration) को सक्रिय करता है और कई गंभीर रोगों के विरुद्ध **संरक्षणात्मक प्रभाव** (protective effect) प्रदान करता है। किंतु विचारणीय तथ्य यह है कि जिन अवधारणाओं को हमारे पूर्वजों ने सहज रूप से अपनाया, उन पर संगठित अनुसंधान न करने के कारण वैश्विक स्तर पर उनका श्रेय अन्य देशों को प्राप्त हो गया। विशेष रूप से, जब विज्ञान यह उद्घोष करता है कि "उपवास शरीर की **चयापचयी प्रक्रियाओं** (metabolic processes) को संतुलित करता है" अथवा "**ध्यान** (meditation) जीन-अभिव्यक्ति को प्रभावित कर सकता है," तब

यह कथन केवल एक नवीन खोज नहीं रह जाता, बल्कि वह एक प्राचीन संस्कार-आधारित जीवनदर्शन की आधुनिक पुष्टि बन जाता है।

भारतीय परंपरा में उपवास, ध्यान, **प्राणायाम** (breath regulation) और **दिनचर्या** (daily regimen) को केवल धार्मिक अनुष्ठान नहीं, बल्कि **समग्र स्वास्थ्य** (holistic well-being) के साधन के रूप में देखा गया है। यह दृष्टिकोण इस तथ्य को रेखांकित करता है कि मनुष्य का अस्तित्व केवल **जैविक संरचना** (biological structure) तक सीमित नहीं, बल्कि वह एक **बहुआयामी तंत्र** (multidimensional system) है, जिसमें मानसिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक आयाम समान रूप से सक्रिय होते हैं।

आयुर्वेद में वर्णित **दिनचर्या** (daily routine) और **ऋतुचर्या** (seasonal regimen) का सिद्धांत आज के **कार्डियो-मेटाबोलिक स्वास्थ्य विज्ञान** (cardio-metabolic health science) से पूर्णतः **सामंजस्य** (alignment) रखता है। आधुनिक संस्थाएं अब यह स्वीकार कर रही हैं कि मानव स्वास्थ्य का मूल आधार केवल औषधि नहीं, बल्कि जीवनशैली का समुचित संतुलन है। यह दृष्टिकोण उस पाश्चात्य **भ्रांति** (misconception) को भी चुनौती देता है, जिसमें स्वास्थ्य को केवल दवाओं के माध्यम से प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है, जबकि वास्तविक स्वास्थ्य के लिए **आत्मानुशासन** (self-discipline) और संतुलित जीवन-प्रणाली आवश्यक है।

अंततः, यह समस्त **विमर्श** (discourse) हमें एक अत्यंत गंभीर बौद्धिक प्रश्न के समक्ष खड़ा करता है—क्या हम अपने ही **ज्ञान-भंडार** (knowledge repository) के प्रति पर्याप्त **जिज्ञासु** (curious) और **सजग** (aware) हैं? यदि आधुनिक वैज्ञानिक समुदाय अपने समय का एक अंश भी भारतीय दर्शन और परंपरागत ज्ञान-प्रणालियों के सूक्ष्म अध्ययन में लगाए, तो निस्संदेह अनेक **नवोन्मेषी आविष्कार** (innovative

discoveries) और वैज्ञानिक **क्रांतियाँ** (revolutions) संभव हैं। आवश्यकता केवल इस बात की है कि हम अपनी **मानसिक पराधीनता** (mental subordination) से ऊपर उठकर, अपने ज्ञान को वैश्विक परिप्रेक्ष्य में पुनः **प्रतिष्ठित** (re-establish) करने का साहस दिखाएं।

6.2 “सलाद देखकर दिल खुश, चिकन देखकर सवाल क्यों?

वर्तमान युग में भोजन (food) के संदर्भ में जो विमर्श विकसित हुआ है, वह केवल स्वाद (taste) या परंपरा (tradition) तक सीमित न रहकर एक गहन **नैतिकता** (ethics), **वैज्ञानिकता** (scientificity) और **समाजशास्त्रीय संरचना** (sociological construct) का विषय बन चुका है। विशेष रूप से **शाकाहार** (vegetarianism) एक ऐसी जीवन-पद्धति के रूप में उभरता है, जो **अहिंसा** (non-violence), **करुणा** (compassion) और **सह-अस्तित्व** (co-existence) के सिद्धांतों पर आधारित है। जहाँ स्थानीय **नैतिक मानदंड** (moral norms) समय और समाज के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं, वहीं सार्वभौमिक **नीतिशास्त्रीय सिद्धांत** (ethical principles) यह संकेत करते हैं कि अनावश्यक रूप से किसी जीव को कष्ट देना उचित नहीं है, और यही बिंदु शाकाहार को एक उच्चतर मानवीय विकल्प बनाता है। यह पूरा अध्याय हमें एक अत्यंत गहरे **नैतिक** (ethical), **पोषण** (nutritional) और **सामाजिक** (social) विमर्श की ओर ले जाता है, जहाँ “क्या खाना चाहिए” का प्रश्न केवल शरीर (body) तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वह हमारी **मान्यताओं** (belief systems), **संवेदनाओं** (sensitivities) और **चेतना** (consciousness) से भी जुड़ जाता है।

सबसे पहले, मानव की **स्वाभाविक प्रवृत्ति** (instinctive tendency) पर विचार करें, जब हम फलों और सब्जियों को देखते हैं, तो उन्हें तोड़कर खाने की इच्छा होती है, लेकिन किसी जीवित प्राणी जैसे मुर्गी, गाय या

बकरी को देखकर वैसी इच्छा नहीं होती। जहाँ **पीड़ा (suffering)** को न्यूनतम करने की बात होती है। यदि हम “दर्द (pain)” और “पीड़ा (suffering)” के अंतर को समझें, तो शाकाहार इस विचार को बल देता है कि अनावश्यक रूप से किसी संवेदनशील जीव (sentient being) को कष्ट देना टाला जा सकता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से यह स्पष्ट होता है कि आधुनिक मनुष्य में एक प्रकार की **मनोवैज्ञानिक विच्छिन्नता (psychological disconnect)** विकसित हो गई है, जिसके कारण वह भोजन और उसके स्रोत के बीच संबंध को अनुभव नहीं कर पाता। अधिकांश व्यक्ति मांस (meat) का उपभोग तो करते हैं, परंतु स्वयं किसी जीव की हत्या (killing) करने में असमर्थ होते हैं। यह स्थिति दर्शाती है कि हमारा आहार-चयन मुख्यतः **संस्कारजन्य अभ्यस्तता (conditioned habit)** पर आधारित है, न कि पूर्णतः **तर्कसंगत निर्णय (rational decision)** पर। इसके विपरीत, शाकाहार व्यक्ति को अधिक **संवेदनशीलता (sensitivity)** और **नैतिक जागरूकता (ethical awareness)** की ओर प्रेरित करता है।

हालाँकि, एक व्यावहारिक (practical) समस्या भी सामने आती है जैसा कि **किसी जानवर को मारना (killing) और उसका मांस खाना (eating) दो अलग-अलग, disconnected प्रक्रियाएँ हैं।** आधुनिक समाज ने इस प्रक्रिया को इतना विभाजित कर दिया है कि उपभोक्ता (consumer) उस पीड़ा से भावनात्मक रूप से अलग (emotionally detached) हो जाता है। यदि वही व्यक्ति स्वयं उस जीव की हत्या करे, तो संभवतः उसका दृष्टिकोण बदल जाए। यह **संवेदनात्मक विच्छेदन (emotional disconnection)** शाकाहार के पक्ष में एक महत्वपूर्ण तर्क प्रस्तुत करता है।

यह संकेत देता है कि हमारी **प्राकृतिक अनुकूलता (natural compatibility)** पौध-आधारित आहार की ओर अधिक हो सकती है।

शाकाहार का आधार **अहिंसा (non-violence)** की उस भावना पर टिका है, जो भारतीय चिंतन में अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। जब मनुष्य यह अनुभव करता है कि प्रत्येक जीव में चेतना (consciousness) और पीड़ा (suffering) का अनुभव करने की क्षमता है, तब उसके भीतर स्वाभाविक रूप से **करुणा (compassion)** का उदय होता है। यही करुणा उसे इस विचार की ओर ले जाती है कि केवल स्वाद (taste) या आदत (habit) के लिए किसी जीव की हत्या करना आवश्यक नहीं है। इस प्रकार, शाकाहार एक प्रकार से **नैतिक संयम (moral restraint)** का प्रतीक बन जाता है।

द्वितीय, यदि हम इसे **वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य (scientific perspective)** से देखें, तो **मानव शरीर की संरचना (anatomy)** और **पाचन-तंत्र (digestive system)** कई मायनों में पौध-आधारित आहार के अनुकूल मानी जाती है। **उच्च फाइबर (fiber)**, **एंटीऑक्सीडेंट्स (antioxidants)** और **फाइटो-न्यूट्रिएंट्स (phytonutrients)** से भरपूर शाकाहारी आहार **हृदय रोग (heart disease)**, **मधुमेह (diabetes)** और **मोटापा (obesity)** जैसी **जीवनशैली-जनित बीमारियों (lifestyle diseases)** को नियंत्रित करने में सहायक पाया गया है।

मानव शरीर की **पाचन-प्रणाली (digestive system)** भी इस तथ्य की ओर संकेत करती है कि हमारा शरीर उच्च रेशायुक्त, वनस्पति-आधारित आहार के लिए अधिक अनुकूलित है। **लंबी आंत (long intestine)** और **धीमी पाचन प्रक्रिया** यह दर्शाती है कि मांसाहारी भोजन अपेक्षाकृत अधिक समय लेता है और उसमें **विषैले उप-उत्पाद (toxic by-products)** बनने की संभावना भी बढ़ सकती है, जबकि पौधों से प्राप्त आहार आसानी से पचता है और शरीर को स्वच्छ बनाए रखने में सहायक होता है। साथ ही, **हार्मोनल संतुलन (hormonal balance)** बनाए

रखने में भी शुद्ध शाकाहारी आहार महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, क्योंकि पशु-आधारित खाद्य पदार्थों में उपस्थित हार्मोन शरीर के प्राकृतिक संतुलन को प्रभावित कर सकते हैं।

वनस्पति-आधारित आहार (plant-based diet) को अपनाने के लिए केवल भावनात्मक या नैतिक दृष्टिकोण ही नहीं, बल्कि **वैज्ञानिक समझ (scientific understanding)** और संतुलित योजना भी अत्यंत आवश्यक है। जब हम **संपूर्ण खाद्य पदार्थ (whole foods)** जैसे अनाज, दालें, फल और सब्जियाँ ग्रहण करते हैं, तो हमें पर्याप्त मात्रा में **सूक्ष्म पोषक तत्व (micronutrients)**, **रेशा (fiber)** तथा प्राकृतिक ऊर्जा प्राप्त होती है। यद्यपि कुछ लोग यह तर्क देते हैं कि नट्स (nuts) और एवोकाडो जैसे खाद्य पदार्थ महंगे होते हैं, परंतु यह समझना आवश्यक है कि प्रकृति ने भोजन की उपलब्धता को सरल और संतुलित रूप में प्रस्तुत किया है। **सीमित मात्रा (moderation)** का सिद्धांत यहाँ अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि अत्यधिक सेवन किसी भी पोषक तत्व का असंतुलन उत्पन्न कर सकता है।

पृथ्वी पर सभी पोषक तत्वों के मूल स्रोत **प्राथमिक उत्पादक (primary producers)** अर्थात् पौधे (plants) ही हैं, जो **प्रकाश संश्लेषण (photosynthesis)** के माध्यम से ऊर्जा और पोषण का निर्माण करते हैं। इस दृष्टि से प्रत्यक्ष रूप से वनस्पति-आधारित आहार ग्रहण करना अधिक **प्राकृतिक (natural)** और **ऊर्जाक्षम (energy-efficient)** माना जाता है। जब हम **प्राकृतिक खाद्य-पदार्थ (natural foods)** जैसे ताजे फल, हरी सब्जियाँ, साबुत अनाज और दालों का सेवन करते हैं, तो हमें न केवल आवश्यक **पोषक तत्व (nutrients)** प्राप्त होते हैं, बल्कि शरीर में **जैव-रासायनिक संतुलन (biochemical balance)** भी बना रहता है। इसके विपरीत, अत्यधिक परिष्कृत (refined) और पशु-

आधारित आहार शरीर में **चयापचय विकार (metabolic disorders)** उत्पन्न कर सकते हैं।

विशेष रूप से **रेशा (fiber)** की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है, जिसे हम **आहार-रेशा (dietary fiber)** भी कहते हैं। यह न केवल पाचन क्रिया को सुचारु बनाता है, बल्कि आंतों में उपस्थित **सूक्ष्मजीव समुदाय (gut microbiota)** को भी पोषण प्रदान करता है। जब ये सूक्ष्मजीव रेशे का अपघटन करते हैं, तो वे **लघु-श्रृंखला वसीय अम्ल (short-chain fatty acids)** उत्पन्न करते हैं, जो शरीर के लिए अत्यंत लाभकारी होते हैं। ये तत्व न केवल ऊर्जा प्रदान करते हैं, बल्कि **प्रतिरक्षा तंत्र (immune system)** को भी सुदृढ़ करते हैं और आंतों की आंतरिक परत को स्वस्थ बनाए रखते हैं। यदि आहार में रेशा की कमी हो जाए, तो यह **कब्ज (constipation)**, **लीकी गट (leaky gut syndrome)** तथा अन्य पाचन संबंधी समस्याओं का कारण बन सकता है। इसके विपरीत, पशु-आधारित तथा अत्यधिक प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों में रेशा की कमी होती है, जिससे स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार दूध (milk) एवं डेयरी उत्पादों के संदर्भ में भी यह विचार उभर रहा है कि उनका अत्यधिक सेवन शरीर में **अम्ल-क्षार असंतुलन (acid-base imbalance)** उत्पन्न कर सकता है, जिसके कारण हड्डियों से कैल्शियम का क्षरण होकर **अस्थिक्षय (osteoporosis)** जैसी समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं।

अब यदि हम **वसा (fat)** और **कार्बोहाइड्रेट (carbohydrates)** के संतुलन को समझें, तो यह ज्ञात होता है कि शरीर में अतिरिक्त कार्बोहाइड्रेट **लिपोजेनेसिस (lipogenesis)** की प्रक्रिया द्वारा वसा में परिवर्तित हो जाता है। इसलिए केवल वसा से बचना ही समाधान नहीं है, बल्कि संतुलित मात्रा में प्राकृतिक वसा जैसे कि मूंगफली, तिल, नारियल आदि से प्राप्त का सेवन आवश्यक है। यहाँ यह भी समझना आवश्यक है कि **आवश्यक वसा अम्ल (essential fatty acids)** शरीर के लिए

अनिवार्य होते हैं और इनके अभाव में कई जैविक प्रक्रियाएँ प्रभावित हो सकती हैं।

6.3 “दिल, दिमाग और डाइट तीनों का कनेक्शन गहरा है!

मानव समाज में जो भी **मूल्य-निर्माण (Value Construction)** और **मानसिक-ढाँचे (Mental Constructs)** बने हुए हैं, वे अक्सर हमारी कल्पना और सामाजिक मान्यताओं पर आधारित होते हैं, न कि किसी शाश्वत सत्य पर। हम सफलता को अंकों, प्रदर्शन और बाहरी उपलब्धियों से जोड़ देते हैं, जबकि वास्तविक उद्देश्य **जीवन-संतुलन (Life Balance)** और **मानसिक-शांति (Mental Peace)** होना चाहिए। इसी प्रकार आहार के क्षेत्र में भी हमने कई **भ्रांत-धारणाएँ (Misconceptions)** विकसित कर ली हैं, जैसे कि शक्ति और प्रोटीन केवल मांसाहार से ही प्राप्त होते हैं, जबकि वैज्ञानिक दृष्टि से यह पूर्णतः सत्य नहीं है क्योंकि दालें, अनाज और अन्य वनस्पति स्रोत भी पर्याप्त प्रोटीन प्रदान करते हैं। वास्तव में प्रोटीन की कमी केवल **कुपोषण (malnutrition)** या **भुखमरी (starvation)** की अवस्था में ही देखी जाती है, जबकि प्रोटीन की अधिकता **अम्लता (acidity)**, **गठिया (gout)** तथा अन्य चयापचयी विकारों (metabolic disorders) का कारण बन सकती है। यहाँ **अमीनो अम्ल (amino acids)** का संतुलन महत्वपूर्ण होता है, जिसे विविध आहार (dietary diversity) के माध्यम से आसानी से प्राप्त किया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त, **हार्मोनल संतुलन (hormonal balance)** भी शाकाहारी आहार से गहराई से जुड़ा हुआ है। आधुनिक शोध यह संकेत करते हैं कि पशु-आधारित खाद्य पदार्थों में उपस्थित बाह्य हार्मोन (external hormones) शरीर के अंतःस्रावी तंत्र (endocrine system) को प्रभावित कर सकते हैं, जिससे **मधुमेह (diabetes)**, **थायरॉइड**

विकार (thyroid disorders), पीसीओडी (PCOD) तथा विभिन्न प्रकार के **हार्मोन-निर्भर कैंसर (hormone-dependent cancers)** का जोखिम बढ़ सकता है। इसके विपरीत, पौध-आधारित आहार इन जोखिमों को कम करने में सहायक होता है और शरीर को प्राकृतिक रूप से संतुलित बनाए रखता है।

स्वास्थ्य (health) केवल रोग के अभाव का नाम नहीं, बल्कि एक समग्र **समन्वित अवस्था (integrated state)** है, जिसमें शारीरिक (physical), मानसिक (mental) और जैव-रासायनिक (biochemical) संतुलन सम्मिलित होता है। आहार के संदर्भ में विशेष रूप से **शाकाहारी आहार (vegetarian diet)** को यदि वैज्ञानिक रूप से संतुलित और सुव्यवस्थित ढंग से अपनाया जाए, तो यह हृदय-स्वास्थ्य (cardiovascular health) के लिए अत्यंत लाभकारी सिद्ध हो सकता है। अनेक अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि पौध-आधारित आहार (plant-based diet) शरीर में **कोलेस्ट्रॉल स्तर (cholesterol level)** को नियंत्रित करता है, **सूजन (inflammation)** को कम करता है तथा धमनियों में होने वाले **अवरोध (arterial blockage)** की प्रगति को धीमा कर सकता है। साथ ही, इसमें उपस्थित **रेशा (dietary fiber)**, **प्रतिऑक्सीडेंट (antioxidants)** तथा **फाइटोन्यूट्रिएंट्स (phytonutrients)** शरीर की कोशिकाओं को सुरक्षित रखते हैं और रोग-प्रतिरोधक क्षमता (immunity) को सुदृढ़ बनाते हैं।

हालांकि, शाकाहार को अपनाते समय यह समझना आवश्यक है कि केवल “नॉन-वेज न खाना” पर्याप्त नहीं है। यदि कोई व्यक्ति केवल ब्रेड, जंक फूड या अत्यधिक प्रोसेस्ड (processed) शाकाहारी वस्तुएँ खाता है, तो वह तकनीकी रूप से शाकाहारी (technically vegetarian) तो होगा, परंतु **पोषणीय दृष्टि से संतुलित (nutritionally balanced)** नहीं। अतः एक **संतुलित शाकाहारी आहार (balanced vegetarian diet)**

में दालें (legumes), अनाज (grains), फल (fruits), सब्जियाँ (vegetables), मेवे (nuts) और बीज (seeds) का समुचित समावेश आवश्यक है।

इसलिए यह भी आवश्यक है कि शाकाहारी आहार को अपनाते समय कुछ **सूक्ष्म पोषक तत्वों (micronutrients)** जैसे **विटामिन B12 (Vitamin B12)**, **ओमेगा-3 वसा अम्ल (Omega-3 fatty acids)** तथा उच्च गुणवत्ता वाले **प्रोटीन (protein)** की पूर्ति का ध्यान रखा जाए, अन्यथा दीर्घकाल में **पोषण-असंतुलन (nutritional imbalance)** उत्पन्न हो सकता है। ये दोनों ही तत्व प्राकृतिक शाकाहारी आहार में सीमित मात्रा में पाए जाते हैं, अतः इनके लिए **पूरक आहार (supplementation)** या सूर्य प्रकाश जैसे वैकल्पिक स्रोतों का सहारा लेना पड़ सकता है। आधुनिक **अत्यधिक स्वच्छ जीवनशैली (hyper-hygienic lifestyle)** के कारण इसकी कमी शाकाहारी और मांसाहारी दोनों में देखी जाती है। इसके अतिरिक्त, यह धारणा कि मांसाहार से ही शक्ति या आक्रामकता (aggression) प्राप्त होती है, एक सामाजिक **मिथक (myth)** है, वास्तव में शरीर की ऊर्जा और बल का स्रोत संतुलित **पोषण (nutrition)** है, न कि केवल भोजन का प्रकार। आधुनिक विज्ञान यह भी इंगित करता है कि मानव मस्तिष्क (human brain) पोषक तत्वों की खोज करता है, न कि विशेष रूप से पशु या वनस्पति स्रोतों की, अतः उचित संयोजन के माध्यम से शाकाहारी आहार से भी सम्पूर्ण पोषण प्राप्त किया जा सकता है। अतः आवश्यकता पड़ने पर **पूरक (supplements)** लेना एक व्यावहारिक (practical) समाधान है, न कि शाकाहार की असफलता का प्रमाण।

कोलेस्ट्रॉल का विषय अत्यंत **जटिल (complex)** और **व्यक्तिनिष्ठ (individual-specific)** है। यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि हमारे शरीर में भोजन से प्राप्त कोलेस्ट्रॉल का **अवशोषण (absorption)** प्रत्येक व्यक्ति

में अलग-अलग होता है किसी में यह लगभग 5% से 20% तक होता है, तो कुछ लोगों में 50-70% तक भी हो सकता है। यह अंतर मुख्यतः **आनुवंशिक प्रवृत्ति (genetic predisposition)** और **एंजाइमीय क्रियाशीलता (enzymatic activity)** पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिए, कुछ व्यक्तियों में **पारिवारिक हाइपरकोलेस्ट्रॉलेमिया (familial hypercholesterolemia)** जैसी स्थिति होती है, जिसमें शरीर स्वाभाविक रूप से अधिक कोलेस्ट्रॉल बनाता है या उसे सही ढंग से नियंत्रित नहीं कर पाता, जिससे हृदय रोगों का जोखिम बढ़ जाता है।

यह भी समझना आवश्यक है कि शरीर में उपस्थित अधिकांश कोलेस्ट्रॉल बाहरी भोजन से नहीं, बल्कि आंतरिक रूप से यकृत (liver) द्वारा निर्मित होता है। अतः केवल आहार को दोष देना एक **अधूरा निष्कर्ष (incomplete conclusion)** होगा। फिर भी, आहार की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता, विशेषकर जब हम पशु-आधारित खाद्य पदार्थों का सेवन करते हैं, जिनमें प्रत्यक्ष रूप से कोलेस्ट्रॉल पाया जाता है। इसके विपरीत, **वनस्पति-आधारित आहार (plant-based diet)** में कोलेस्ट्रॉल नहीं होता, जिससे शरीर पर अतिरिक्त भार नहीं पड़ता और **लिपिड प्रोफाइल (lipid profile)** संतुलित रहने में सहायता मिलती है। भारतीय परंपरा में किण्वित (fermented) आहार, जैसे गाजर और चुकंदर से निर्मित कांजी, केवल स्वाद ही नहीं बल्कि **प्रोबायोटिक-समृद्धि (Probiotic Enrichment)** का भी उत्कृष्ट उदाहरण है, जो पाचन तंत्र को सुदृढ़ बनाती है। इससे यह सिद्ध होता है कि बिना मांसाहार के भी हम अपने शरीर की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकते हैं।

इसके साथ ही यह भी समझना आवश्यक है कि हर परंपरा या प्रथा वर्तमान में उचित हो, यह अनिवार्य नहीं, अतः **समालोचनात्मक-विवेक (Critical Reasoning)** के आधार पर ही आहार का चयन करना चाहिए। उदाहरणतः, दूध और दुग्ध उत्पादों के संदर्भ में आज **लैक्टोज-**

असहिष्णुता (Lactose Intolerance) तथा हार्मोनल प्रभावों पर चर्चा बढ़ी है, जिससे कई लोग वैकल्पिक शाकाहारी मार्ग अपना रहे हैं।

6.4 “धरती कह रही है: थोड़ा हल्का खाओ, मुझे भी सांस लेने दो!

शाकाहार का एक और गहरा आयाम है **पर्यावरणीय संतुलन (environmental sustainability)**। पर्यावरण के संदर्भ में, मांसाहार विशेषकर बड़े पैमाने पर होने वाली **पशुपालन-प्रणाली (Livestock Farming)**, जल-संकट और **कार्बन-पदचिह्न (Carbon Footprint)** को अत्यधिक बढ़ाती है। उदाहरणतः, एक किलोग्राम मांस के उत्पादन में हजारों लीटर जल की आवश्यकता होती है, जो वर्तमान **जल-अभाव (Water Scarcity)** की स्थिति में अत्यंत चिंताजनक है। इसके विपरीत, यदि हम सीधे पौधों से प्राप्त आहार अपनाते हैं, तो यह अधिक **संसाधन-कुशल (Resource Efficient)** और पर्यावरण-अनुकूल होता है। पशुपालन (animal farming) की तुलना में पौध-आधारित आहार जल (water), भूमि (land) और ऊर्जा (energy) का कम उपयोग करता है, जिससे यह पृथ्वी के संसाधनों के संरक्षण (resource conservation) में सहायक बनता है। इस दृष्टि से शाकाहार केवल व्यक्तिगत स्वास्थ्य नहीं, बल्कि **वैश्विक कल्याण (global well-being)** से भी जुड़ा हुआ है। अंततः, शाकाहार को केवल “क्या खाना है” के प्रश्न तक सीमित नहीं किया जा सकता; यह “कैसे जीना है” का भी उत्तर देता है। यह हमें **संवेदनशीलता (sensitivity)**, **संतुलन (balance)** और **जिम्मेदारी (responsibility)** की ओर प्रेरित करता है। साथ ही, समस्या केवल मांसाहार तक सीमित नहीं है, बल्कि आधुनिक उपभोक्तावादी संस्कृति में बढ़ते **अतिउत्पादन (Overproduction)** और **व्यावसायीकरण (Commercialization)** भी इसका मुख्य कारण हैं। चाहे वह मांस हो, प्रसंस्कृत (processed) भोजन हो या परिष्कृत तेल सब कुछ बड़े पैमाने

पर उत्पादन और लाभ कमाने की मानसिकता से जुड़ा है, जिससे पर्यावरण और स्वास्थ्य दोनों प्रभावित होते हैं।

अतः समाधान किसी एक चरम (extreme) को अपनाने में नहीं, बल्कि **संतुलित-दृष्टिकोण (Balanced Approach)** में निहित है। यदि व्यक्ति स्थानीय स्तर पर, सीमित संसाधनों के साथ, **स्वावलंबी-आहार (Self-sustained Diet)** जैसे किचन गार्डन अपनाता है, तो वह न केवल पर्यावरण की रक्षा कर सकता है, बल्कि अपने स्वास्थ्य को भी बेहतर बना सकता है। अंततः, शाकाहार एक ऐसा विकल्प प्रस्तुत करता है जो **नैतिकता (Ethics)**, **पर्यावरण-संरक्षण (Environmental Conservation)** और **स्वास्थ्य (Health)** तीनों के बीच समन्वय स्थापित करता है, और यही आधुनिक समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है।

6.5 “जब दिमाग कहे सलाद खाओ, और दिल बोले—पिज़्ज़ा ही मंगाओ!”

यदि शाकाहार (vegetarianism) के संदर्भ में गहराई से समझें, तो एक अत्यंत महत्वपूर्ण बिंदु सामने आता है हम आधुनिक समाज में लगातार **जैविक प्रक्रियाओं (biological processes)** को अपने **सामाजिक ढाँचे (social constructs)** में फिट करने का प्रयास कर रहे हैं। मनुष्य का शरीर (body) एक प्राकृतिक प्रणाली (natural system) के अनुसार कार्य करता है, लेकिन हमारा भोजन (food) और जीवनशैली (lifestyle) अब प्राकृतिक न होकर **निर्मित (constructed)** हो चुकी है। उदाहरण के लिए, पहले भोजन सीधे प्रकृति (nature) से आता था फल, सब्जियाँ, अनाज जो हमारी **स्वाभाविक प्रवृत्ति (instinct)** के अनुकूल थे। परन्तु आज हम विज्ञापन (advertisement), बाजार (market) और सामाजिक प्रभाव (social influence) के आधार पर निर्णय लेते हैं। इस संदर्भ में

शाकाहार केवल एक विकल्प नहीं, बल्कि **प्राकृतिकता (naturalness)** की ओर लौटने का प्रयास भी प्रतीत होता है।

इसके साथ ही, आर्थिक (economic) और सामाजिक (social) पहलू भी अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। भारत जैसे देश में जहाँ एक बड़ी जनसंख्या अभी भी **पोषणीय भोजन (nutritious food)** तक पहुँच नहीं रखती, वहाँ शाकाहार विशेषकर पारंपरिक **दाल, चावल, रोटी, सब्जी (plant-based staples)** एक सस्ता (affordable) और संतुलित (balanced) विकल्प हो सकता है। परंतु समस्या यह है कि आज लोग प्राकृतिक शाकाहार छोड़कर **प्रोसेस्ड फूड (processed food)** जैसे मैदा (refined flour), चीनी (sugar), और रिफाईंड तेल (refined oil) की ओर बढ़ रहे हैं, जो स्वास्थ्य के लिए अधिक हानिकारक हैं।

आधुनिक खाद्य-प्रणाली में '**प्रसंस्करण (Processing)**' और '**विपणन-रणनीति (Marketing Strategy)**' ने हमारी आहार-चेतना को गहराई से प्रभावित किया है। जो पदार्थ पहले '**अपशिष्ट (Waste)**' माने जाते थे, उन्हें आज परिष्कृत कर '**उपभोग्य उत्पाद (Consumable Products)**' के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है, जिससे मानव स्वाभाविकता से दूर होता जा रहा है। उदाहरणस्वरूप, बीजों से निकाले गए तेलों को अत्यधिक '**परिष्करण (Refinement)**' के पश्चात उपयोग में लाया जाता है, जबकि उनकी मूल प्रकृति में वे '**अखाद्य (Non-edible)**' अथवा सीमित उपयोग के योग्य होते हैं। इसी प्रकार, दूध से उत्पन्न अवशेष जैसे '**व्हे (Whey)**' को भी सुखाकर महंगे उत्पादों के रूप में बेचा जाता है, जो कि एक प्रकार से '**व्यावसायीकरण (Commercialization)**' का परिणाम है।

यह समस्त प्रक्रिया यह दर्शाती है कि हमारी खाद्य-व्यवस्था अब '**प्राकृतिक संतुलन (Natural Balance)**' के स्थान पर '**कृत्रिम उपभोग (Artificial Consumption)**' की ओर अग्रसर हो चुकी है। विशेष रूप से शाकाहारी (Vegetarian) दृष्टिकोण से देखें तो '**संपूर्ण**

आहार' (Whole Food) जैसे फल, सब्जियाँ, अनाज, दालें अधिक **'पोषण-संपन्न' (Nutrient-rich)** एवं **'पर्यावरण-संगत' (Eco-friendly)** होते हैं, क्योंकि उनमें न्यूनतम प्रसंस्करण होता है और वे प्रकृति के साथ संतुलन बनाए रखते हैं। इसके विपरीत, अत्यधिक संसाधित खाद्य पदार्थ न केवल स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो सकते हैं, बल्कि वे **'पर्यावरणीय क्षरण' (Environmental Degradation)** को भी बढ़ावा देते हैं।

आज के समय में दूध तथा अन्य पशु-आधारित खाद्य पदार्थों के संदर्भ में केवल परंपरा या आदत के आधार पर निर्णय लेना पर्याप्त नहीं है, बल्कि हमें **'स्वास्थ्य-चेतना' (Health Awareness)**, **'पर्यावरणीय प्रभाव' (Environmental Impact)** तथा **'नैतिक दृष्टिकोण' (Ethical Perspective)** इन तीनों आयामों पर सम्यक् विचार करना आवश्यक है। प्रारम्भ में दूध को एक **'नीतिगत आवश्यकता' (Policy-driven Necessity)** के रूप में बढ़ावा दिया गया, विशेषकर बच्चों के पोषण हेतु, किन्तु समय के साथ यह एक विशाल **'उद्योग' (Industry)** का रूप ले चुका है, जहाँ उत्पादन की मात्रा बढ़ाने के लिए अनेक कृत्रिम उपाय अपनाए जाते हैं। परिणामस्वरूप, दूध में **'रासायनिक अवशेष' (Chemical Residues)**, **'प्रतिजैविक अंश' (Antibiotic Traces)** तथा अन्य **'विषाक्त तत्व' (Toxic Substances)** पाए जाने की आशंका बढ़ जाती है, जो मानव स्वास्थ्य के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकते हैं।

इसके अतिरिक्त, **'आहार-श्रृंखला' (Food Chain)** के उच्च स्तर पर स्थित पशु-उत्पादों में ये विषैले तत्व अधिक मात्रा में **'संकेंद्रित' (Concentrated)** हो जाते हैं, जिससे जोखिम और भी बढ़ जाता है। यही कारण है कि आधुनिक विज्ञान भी अब **'संपूर्ण वनस्पति-आधारित आहार' (Whole Food Plant-Based Diet)** की ओर झुकाव दिखा रहा है, जिसमें ताजे फल, हरी सब्जियाँ, अनाज, बीज एवं मेवे सम्मिलित होते हैं। उदाहरणस्वरूप, सुबह का **'स्मूदी' (Smoothie)** जिसमें पालक,

पुदीना, फल एवं **‘अलसी बीज’ (Flaxseeds)** सम्मिलित हों न केवल पोषण से भरपूर होता है, बल्कि पाचन के लिए भी सरल होता है। इसी प्रकार दोपहर एवं रात्रि में संतुलित मात्रा में सलाद, दाल, अनाज एवं सब्जियों का संयोजन एक **‘संतुलित आहार’ (Balanced Diet)** प्रदान करता है।

‘भ्रम’ (Misconception) और **‘धारणाएँ’ (Perceptions)** अक्सर हमें वास्तविक स्वास्थ्य-सत्य से दूर कर देती हैं, विशेषकर जब हम वृद्धावस्था को केवल एक समस्या के रूप में देखने लगते हैं। वास्तव में, शरीर का जो बाहरी **‘आकर्षण’ (Appearance)** या **‘संरचना’ (Structure)** है, वह आंशिक रूप से **‘अनुवांशिकता’ (Genetics)** पर आधारित होता है, किन्तु दीर्घकालिक स्वास्थ्य मुख्यतः हमारे **‘जीवन-शैली’ (Lifestyle)** और **‘आहार-चयन’ (Dietary Choices)** पर निर्भर करता है। यदि हम प्रारम्भ से ही संतुलित, प्राकृतिक एवं शाकाहारी (Vegetarian) भोजन अपनाते हैं जैसे ताजे फल, हरी सब्जियाँ, साबुत अनाज एवं बीज तो हम न केवल रोगों की संभावना को कम कर सकते हैं, बल्कि एक **‘सक्रिय वृद्धावस्था’ (Active Aging)** भी सुनिश्चित कर सकते हैं, जिसमें व्यक्ति स्वयं चल-फिर सके, स्वतंत्र रूप से जीवन जी सके और दूसरों पर निर्भर न रहे।

इसके अतिरिक्त, यह समझना भी आवश्यक है कि केवल किसी एक **‘वैल्यू सिस्टम’ (Value System)** या ट्रेंड को अपनाना पर्याप्त नहीं है, बल्कि उसके साथ सही ज्ञान और मार्गदर्शन भी अनिवार्य है। उदाहरण के लिए, यदि कोई व्यक्ति बिना समझ के केवल ‘वीगन’ (Vegan) बन जाता है और संतुलित पोषण का ध्यान नहीं रखता, तो यह उसके स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो सकता है। इसलिए **‘पोषण-ज्ञान’ (Nutritional Knowledge)**, **‘मार्गदर्शन’ (Guidance)** और कभी-कभी विशेषज्ञ या **‘कोचिंग’ (Coaching)** की सहायता लेना आवश्यक हो जाता है, ताकि हम अपने आहार को सही प्रकार से संतुलित कर सकें।

अंततः जीवन का वास्तविक उद्देश्य केवल बाहरी उपलब्धियों या सामाजिक मानकों तक सीमित न होकर **स्वास्थ्य-संतुलन (Health Balance)**, **मानसिक शांति (Mental Peace)** और **स्वतंत्र जीवन (Independent Living)** की प्राप्ति होना चाहिए। इसके लिए मनुष्य को **सजग चयन (Conscious Choice)** अपनाना आवश्यक है, जहाँ आहार केवल स्वाद या परंपरा का विषय न होकर, बल्कि स्वास्थ्य, पर्यावरण और करुणा के समन्वय का माध्यम बने। जब हम **प्राकृतिक (Natural)**, **संतुलित (Balanced)** और **विविध (Diverse)** आहार को अपनाते हैं, तब शरीर को आवश्यक पोषक तत्व मिलते हैं, जिससे **दीर्घकालिक स्वास्थ्य (Long-term Health)** और **स्वस्थ वृद्धावस्था (Healthy Aging)** सुनिश्चित होती है।

इसके साथ ही यह समझना भी आवश्यक है कि स्वास्थ्य केवल आहार पर निर्भर नहीं करता, बल्कि यह एक **बहुआयामी (Multifactorial)** प्रक्रिया है, जिसमें **आनुवंशिकी (Genetics)**, **जीवनशैली (Lifestyle)** और **पर्यावरणीय कारक (Environmental Factors)** भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। विशेष रूप से शाकाहारी आहार तब अधिक प्रभावी होता है जब वह **न्यूनतम संसाधित (Minimally Processed)**, **पोषक (Nutritious)** और वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर आधारित हो। केवल "शाकाहारी" होना पर्याप्त नहीं है, बल्कि भोजन का **गुणात्मक चयन (Qualitative Selection)** और उचित **योजनाबद्धता (Planning)** भी उतनी ही आवश्यक है।

अतः यह आवश्यक है कि हम अपने आहार-चयन में **'सजगता' (Awareness)** एवं **'विवेकशीलता' (Rationality)** अपनाएँ, और ऐसे खाद्य पदार्थों को प्राथमिकता दें जो न केवल शरीर के लिए हितकारी हों, बल्कि प्रकृति और समस्त जीव-जगत के प्रति भी **'अहिंसात्मक' (Non-violent)** एवं संतुलित दृष्टिकोण को प्रकट करें।

अतः यह स्पष्ट होता है कि शाकाहार केवल भोजन की एक शैली नहीं, बल्कि एक **समग्र जीवन-दृष्टि (Holistic Lifestyle)** है, जो **पर्यावरणीय संतुलन (Environmental Sustainability)**, **नैतिक उत्तरदायित्व (Ethical Responsibility)** और **मानवीय संवेदना (Human Sensitivity)** को सुदृढ़ करती है। इस प्रकार, जब मनुष्य विवेकपूर्ण और संतुलित आहार अपनाता है, तब वह न केवल अपने वर्तमान जीवन को स्वस्थ बनाता है, बल्कि भविष्य के लिए भी एक अधिक संतुलित, जागरूक और आनंदमय जीवन की नींव रखता है।

6.6 “आपका पेट: एक लैब या डस्टबिन? आयुर्वेद से जानिए सच्चाई!”

वेद **आयुर्वेद (Ayurveda)** की वैचारिक जड़ हैं, जिसमें केवल घरेलू उपचार ही नहीं, बल्कि **औषधि-निर्माण (Pharmacology)**, **रोग-निदान (Diagnosis)**, **उपचार-पद्धति (Therapeutics)** तथा **शल्य-चिकित्सा (Surgery)** तक का व्यवस्थित और संगठित ज्ञान (**Systematised Medical Knowledge**) प्राप्त होता है। इस प्रकार वेदों की परंपरा ने एक **संरचित चिकित्सा विज्ञान (Organised Medical Science)** की आधारशिला रखी। आयुर्वेद, जिसे वेदों का **उपवेद (Applied Knowledge)** माना जाता है, आधुनिक चिकित्सा को एक **समग्र स्वास्थ्य दृष्टि (Holistic Health Perspective)** प्रदान करता है, जहाँ **मन, शरीर और आत्मा (Mind-Body-Spirit Balance)** के संतुलन पर बल दिया जाता है। आयुर्वेद के अनुसार भोजन का प्रभाव केवल उसके **स्वाद (taste)** तक सीमित नहीं होता, बल्कि उसकी **गुण (qualities)**, **वीर्य (potency heating/cooling effect)**, **विपाक (post-digestive effect)** और **प्रभाव (specific action)** भी शरीर पर गहरा असर डालते हैं। यही कारण है कि एक ही

भोजन अलग-अलग परिस्थितियों, मात्रा और व्यक्ति की प्रकृति (**constitution**) के अनुसार अलग परिणाम देता है।

सबसे पहले यदि हम छह रसों को और विस्तार से समझें, तो प्रत्येक रस केवल स्वाद नहीं बल्कि एक पूर्ण **फिजियोलॉजिकल प्रभाव (physiological effect)** उत्पन्न करता है।

- i. **मधुर या मीठा रस (sweet taste)** शरीर में पोषण (**nourishment**) और ऊतक निर्माण (**tissue building**) करता है, लेकिन अधिक होने पर मोटापा (**obesity**) और कफ वृद्धि (**kapha aggravation**) करता है।
- ii. **अम्ल या खट्टा रस (sour taste)** जठराग्नि (**digestive fire**) को प्रबल करता है, परंतु अधिक मात्रा में लेने पर अम्लता (**acidity**) और त्वचा रोग उत्पन्न कर सकता है।
- iii. **लवण या नमकीन रस (salty taste)** शरीर में जलधारण (**water retention**) बढ़ाता है और इलेक्ट्रोलाइट संतुलन (**electrolyte balance**) में मदद करता है, लेकिन अधिक सेवन से उच्च रक्तचाप (**high blood pressure**) हो सकता है।
- iv. **कटु या तीखा रस (pungent taste)** मेटाबॉलिज्म (**metabolism**) बढ़ाता है और कफ नाशक (**kapha reducing**) होता है, परंतु अधिक सेवन से शुष्कता (**dryness**) और कमजोरी आ सकती है।
- v. **तिक्त या कड़वा रस (bitter taste)** शरीर का प्रमुख डिटॉक्सिफायर (**detoxifier**) है, यह रक्त शोधन (**blood purification**) करता है और सूजन (**inflammation**) को कम करता है।
- vi. **कषाय या 'कसैला' रस (astringent taste)** कच्चा केला या आंवला (खाने पर मुंह में कसैलापन महसूस होना)। **संकोचक**

(contracting) गुण वाला होता है, जो शरीर के द्रव (fluids) को नियंत्रित करता है इसलिए यह दस्त (diarrhea) में लाभकारी और अधिक सेवन पर कब्ज (constipation) कारक बनता है।

अब कुछ उदाहरण लेते हैं अनार, खीरा, शहद, पालक, मूली, दही और दूध को आयुर्वेदिक दृष्टि से देखें, तो उनका प्रभाव स्पष्ट हो जाता है:

- i. **अनार (pomegranate)** में मुख्यतः कषाय + मधुर रस (astringent + sweet) होता है, इसलिए यह पाचन (digestion) को सुधारता है, हल्की कब्ज (mild constipation) में सहायक होता है, लेकिन अधिक सेवन पर कब्ज बढ़ा सकता है।
- ii. **खीरा (cucumber)** में मधुर + तिक्त (sweet + bitter) गुण होते हैं, यह शरीर को शीतल (cooling) और हाइड्रेट (hydrating) करता है, पित्त को शांत करता है।
- iii. **शहद (honey)** विशेष है क्योंकि यह योगवाहि (catalytic carrier) होता है, यह अन्य पदार्थों के प्रभाव को गहराई तक ले जाता है, साथ ही कफ को कम करता है और मेटाबॉलिज्म बढ़ाता (boosts metabolism) है।
- iv. **पालक (spinach)** तिक्त रस प्रधान है, इसलिए यह डिटॉक्स (detox) करता है और रक्त को शुद्ध करता है, परंतु अधिक सेवन से वात वृद्धि (vata aggravation) हो सकती है।
- v. **मूली (radish)** कटु रस प्रधान है, यह पाचन शक्ति (digestive power) बढ़ाती है और गैस को कम करती है, परंतु अधिक लेने पर जलन या पित्त बढ़ा सकती है।
- vi. **दही (curd)** अम्ल रस प्रधान है, यह पाचन को सक्रिय करता है लेकिन रात में लेने पर कफ बढ़ा सकता है और बलगम (mucus) उत्पन्न कर सकता है।

vii. **दूध (milk)** मधुर और शीतल होता है, यह शरीर को **पोषण (nourishment)** देता है, लेकिन कमजोर पाचन वाले व्यक्ति में यह **अम्लता (indigestion)** या कफ बढ़ा सकता है।

आयुर्वेद का एक अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्धांत है “**अग्नि (digestive fire)**”। यदि आपकी अग्नि मजबूत है, तो आप लगभग सभी प्रकार के भोजन को पचा सकते हैं, लेकिन यदि अग्नि कमजोर है, तो सबसे उत्तम भोजन भी **आम (toxins)** में परिवर्तित हो सकता है। इसलिए भोजन का चयन केवल उसकी प्रकृति से नहीं, बल्कि अपनी पाचन क्षमता से भी करना चाहिए।

इसके अलावा आयुर्वेद में **काल (timing)** और **ऋतु (season)** का भी विशेष महत्व है। जैसे

- i. सुबह हल्का और पचने में आसान भोजन लेना चाहिए।
- ii. दोपहर में **जठराग्नि (digestive fire)** सबसे प्रबल होती है, इसलिए मुख्य भोजन इसी समय लेना चाहिए।
- iii. रात में हल्का और जल्दी पचने वाला भोजन करना चाहिए।
- iv. गर्मियों में **शीतल (cooling foods)** जैसे खीरा, तरबूज उपयुक्त हैं, जबकि सर्दियों में **उष्ण (heating foods)** जैसे घी, मेवे अधिक लाभकारी होते हैं।

अंततः, आयुर्वेद हमें यह सिखाता है कि भोजन कोई सामान्य वस्तु नहीं बल्कि एक **व्यक्तिगत चिकित्सा प्रणाली (personalized medicine system)** है। यदि हम अपने शरीर की प्रकृति, समय, मौसम और भोजन के गुणों को समझ लें, तो हम बिना किसी दवा के ही अपने स्वास्थ्य को संतुलित रख सकते हैं। यही आयुर्वेद की वास्तविक **विशेषता (uniqueness)** और **वैज्ञानिकता (scientific approach)** है।

6.7 “यथापिंडे तथा ब्रह्मांडे: मतलब आप भी एक चलता-फिरता यूनिवर्स हैं!”

आयुर्वेद (Ayurveda) ज्ञान का मूल आधार “यथापिंडे तथा ब्रह्मांडे (microcosm equals macrocosm)” का सिद्धांत है, जो भारतीय दर्शन की अत्यंत गूढ़ (profound) और दार्शनिक (philosophical) अवधारणा को प्रकट करता है। इसका अर्थ है कि जो कुछ इस विशाल ब्रह्मांड (cosmos) में घटित हो रहा है, वही सूक्ष्म रूप में हमारे शरीर (human body) में भी घटित होता है। अर्थात् मानव शरीर एक सूक्ष्म ब्रह्मांड (miniature universe) है, जिसमें वही नियम, वही ऊर्जा प्रवाह और वही प्राकृतिक सिद्धांत (natural laws) कार्य करते हैं, जो बाह्य जगत में सक्रिय हैं।

इस सिद्धांत के अनुसार शरीर और ब्रह्मांड दोनों ही पंचमहाभूत (five fundamental elements) पृथ्वी (earth), जल (water), अग्नि (fire), वायु (air) और आकाश (space) से निर्मित हैं। यह केवल एक आध्यात्मिक कल्पना (spiritual notion) नहीं, बल्कि एक प्रकार का प्राकृतिक समरूपता सिद्धांत (principle of natural correspondence) है, जो यह दर्शाता है कि प्रकृति के नियम सार्वभौमिक (universal) होते हैं। जैसे

- i. ब्रह्मांड में सूर्य ऊर्जा और ताप का स्रोत है, उसी प्रकार शरीर में अग्नि (digestive fire/metabolism) ऊर्जा और पाचन का केंद्र है।
- ii. जैसे पृथ्वी पर जल जीवन को बनाए रखता है, वैसे ही शरीर में रस (body fluids) जीवन को पोषित करते हैं।
- iii. जैसे वायु ब्रह्मांड में गति (motion) प्रदान करती है, वैसे ही शरीर में प्राण वायु (vital energy) सभी गतिविधियों को नियंत्रित करती है।

यह सिद्धांत आयुर्वेद के **त्रिदोष सिद्धांत (three dosha theory)** वात (**motion principle**), पित्त (**transformation principle**) और कफ (**structure principle**) का आधार भी है। ये तीनों दोष वास्तव में पंचमहाभूतों के विभिन्न संयोजन हैं, जो शरीर के सभी **जैविक क्रियाकलापों (biological processes)** को नियंत्रित करते हैं।

आधुनिक विज्ञान के संदर्भ में यदि इसे समझें, तो यह सिद्धांत **फ्रैक्टल ज्योमेट्री (fractal geometry)** और **होलोग्राफिक यूनिवर्स (holographic universe theory)** जैसे विचारों से मेल खाता हुआ प्रतीत होता है, जहाँ प्रत्येक छोटा भाग पूरे तंत्र का प्रतिबिंब होता है। उदाहरण के लिए, हमारी कोशिकाओं (cells) में मौजूद **डीएनए (DNA)** पूरे शरीर की संरचना की जानकारी रखता है ठीक वैसे ही जैसे सूक्ष्म में विशाल का प्रतिबिंब होता है।

अतः **“यथापिंडे तथा ब्रह्मांडे”** केवल एक आध्यात्मिक वाक्य नहीं, बल्कि एक **समग्र दृष्टिकोण (holistic perspective)** है, जो हमें यह समझने में सहायता करता है कि यदि हम अपने शरीर के संतुलन को बनाए रखते हैं, तो हम प्रकृति के साथ भी **सामंजस्य (harmony)** स्थापित कर सकते हैं। यही कारण है कि आयुर्वेद और सनातन दर्शन में स्वास्थ्य को केवल रोग की अनुपस्थिति नहीं, बल्कि शरीर, मन और प्रकृति के बीच **संतुलित समन्वय (balanced integration)** माना गया है।

यही कारण है कि आज पश्चिमी चिकित्सा प्रणालियों में भी आयुर्वेद और योग के सिद्धांतों का **एकीकरण (Integration)** निरंतर बढ़ रहा है, जो प्राचीन भारतीय ज्ञान की **कालातीत प्रासंगिकता (Timeless Relevance)** को रेखांकित करता है। आयुर्वेद केवल घरेलू नुस्खों या साधारण चूर्णों तक सीमित कोई लोक-चिकित्सा नहीं है, बल्कि यह एक **समग्र, सुव्यवस्थित और वैज्ञानिक चिकित्सा-दर्शन (Holistic & Systematic Medical Philosophy)** है, जिसमें **शल्य-चिकित्सा**

(Surgery), चिकित्सीय उपकरणों (Medical Instruments) का प्रयोग, रोगों की उत्पत्ति (Etiology / Pathogenesis), निदान (Diagnosis) तथा उपचार-पद्धतियों (Therapeutic Protocols) का विस्तृत और तर्कसंगत विवेचन उपलब्ध है। ज्ञान की उत्पत्ति, अर्थात् (origin of thoughts), स्वयं में एक गहन दार्शनिक (Philosophical) और वैज्ञानिक (Scientific) समस्या है, जिस पर वैदिक परंपरा सूक्ष्म दृष्टि से विचार करती है। वैदिक मत के अनुसार मानव को मूलभूत ज्ञान वेदों के साथ प्राप्त हुआ, किंतु यह ज्ञान पूर्णतः विकसित न होकर बीज-रूप (Seed Form of Knowledge) में निहित था। कालांतर में ऋषियों ने अपनी प्रज्ञा (Intuitive Wisdom), अनुभव (Empirical Observation) और तर्कशील चिंतन (Rational Analysis) के माध्यम से इस ज्ञान का क्रमिक विस्तार किया। यही ज्ञान की सतत विकास-प्रक्रिया (Continuous Evolution of Knowledge) वैदिक साहित्य की एक केंद्रीय विशेषता है। इसी कारण आयुर्वेद को वेदों का उपवेद (Applied or Auxiliary Veda) माना गया है, क्योंकि इसके मूल सिद्धांत, कार्य-प्रणाली और दृष्टिकोण सीधे वैदिक चिंतन से संबद्ध हैं। आयुर्वेद की सिस्टमैटिक संरचना (Systematic Framework) और उसका वैज्ञानिक स्वरूप विशेष रूप से चरक संहिता और सुश्रुत संहिता में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। इसमें रोग की परिभाषा, कारण और समाधान तीनों को एक साथ समझाया गया है, जो किसी भी वैज्ञानिक चिकित्सा का आधार है। इतिहास में कई ऐसे प्रमाण मिलते हैं जहाँ भारत में की गई शल्य-चिकित्सा ने पश्चिमी दुनिया को चकित कर दिया। इसका सबसे प्रसिद्ध उदाहरण नाक का पुनर्निर्माण (Rhinoplasty) है। 1792 में पुणे के कुम्हार कौवासजी (Cowasjee) ने एक यूरोपीय सैनिक की कटी हुई नाक को माथे की त्वचा से सफलतापूर्वक दोबारा बनाया। यह प्रक्रिया पूरी तरह सुश्रुत संहिता में वर्णित प्राचीन भारतीय शल्य-विधि

के अनुसार थी। बाद में ब्रिटिश सर्जनों ने इस प्राचीन तकनीक को अपनाया और इसे “

“भारतीय पद्धति”(Indian Method) कहा, जिससे यह स्पष्ट होता है कि **प्लास्टिक सर्जरी (Plastic Surgery)** की जड़ें भारत में अत्यंत गहरी (**Deep-Rooted**) और प्राचीन (**Ancient**) हैं। एक दिलचस्प ऐतिहासिक तथ्य यह है कि **बौद्ध ग्रंथों (Buddhist Texts)** में **शल्य-चिकित्सा (Surgery)** का विरोध मिलता है, जिसका प्रत्यक्ष अर्थ यह निकलता है कि उस कालखंड में **हिंदू परंपरा (Hindu Tradition)** के अंतर्गत शल्य-चिकित्सा का **सक्रिय और व्यावहारिक अभ्यास (Active Surgical Practice)** व्यापक रूप से प्रचलित था। कालांतर में सामाजिक, धार्मिक और ऐतिहासिक परिवर्तनों के कारण यह **जीवित शल्य-परंपरा (Living Surgical Tradition)** क्रमशः **क्षीण (Decline)** होती चली गई। आज की स्थिति यह है कि ग्रामीण क्षेत्रों में पारंपरिक **वैद्य (traditional physicians)** तो मिल जाते हैं, किंतु स्वतंत्र रूप से कार्य करने वाले **आयुर्वेदिक शल्य-चिकित्सक (Ayurvedic surgeons)** लगभग **लुप्त (extinct)** हो चुके हैं। यह तथ्य इस ओर संकेत करता है कि इतिहास में विद्यमान शल्य-परंपरा की **निरंतरता (continuity)** कहीं न कहीं **खंडित (disrupted)** हो गई है, जो हमारे लिए किसी भी दृष्टि से हितकारी नहीं है। अतः यह अत्यंत आवश्यक है कि हम इस परंपरा को **पुनर्जीवित (revive)** करने के लिए गंभीर और संगठित प्रयास करें, ताकि हम पुनः अपने आयुर्वेदिक शल्य-चिकित्सा के गौरव की ओर अग्रसर हो सकें।

6.8 “आचार्य सुश्रुत और प्राचीन भारतीय शल्य-चिकित्सा का वैज्ञानिक दृष्टिकोण”

सुश्रुत संहिता (Sushruta Samhita) जो लगभग छठी शताब्दी ईसा-पूर्व (6th Century BCE) की मानी जाती है, में मोतियाबिंद शल्य-चिकित्सा (Cataract Surgery) और नेत्र-विज्ञान (Ophthalmology) का अत्यंत विस्तृत, तकनीकी और वैज्ञानिक वर्णन (Detailed & Technical Description) उपलब्ध है। आचार्य सुश्रुत ने ‘काउचिंग तकनीक (Couching Technique)’ का उल्लेख किया है, जिसमें एक विशेष रूप से मुड़ी हुई सुई, जिसे यवबाक्त्र शलाका (Yavakaktra Shalaka) कहा गया है, के माध्यम से आँख के धुंधले लेंस को हटाकर दृष्टि-सुधार (Restoration of Vision) किया जाता था। यह विधि अपने समय में अत्यंत उन्नत (Advanced) और प्रयोगधर्मी (Experimental) थी तथा आधुनिक नेत्र-चिकित्सा (Modern Eye Surgery) की आधारशिला (Foundation) मानी जाती है। इस प्रकार सुश्रुत संहिता न केवल एक प्राचीन ग्रंथ है, बल्कि यह विश्व चिकित्सा इतिहास में वैज्ञानिक शल्य-चिकित्सा (Scientific Surgery) की एक महत्वपूर्ण और प्रमाणिक उपलब्धि के रूप में प्रतिष्ठित होती है। इसी कारण सुश्रुत संहिता (Sushruta Samhita) को चिकित्सा इतिहास में एक उन्नत (Advanced) और वैज्ञानिक शल्य-चिकित्सा ग्रंथ (Scientific Surgical Treatise) के रूप में मान्यता प्राप्त है। अकादमिक दृष्टि (Academic Consensus) से यह स्वीकार किया जाता है कि सुश्रुत संहिता लगभग ढाई हजार वर्ष (Nearly 2500 Years Old) प्राचीन है। इस ग्रंथ में 300 से अधिक शल्य-क्रियाओं (Over 300 Surgical Procedures) का व्यवस्थित और तकनीकी विवरण मिलता है, जो उस काल की सर्जिकल दक्षता (Surgical Expertise) और प्रायोगिक क्षमता (Experimental Capability) को दर्शाता है।

इसके अतिरिक्त, इसमें **125 से अधिक शल्य उपकरणों (More than 125 Surgical Instruments)** का वर्गीकृत वर्णन है, जिनकी **रचना (Design)** और **कार्य-विधि (Functional Mechanism)** आधुनिक सर्जिकल औजारों से आश्चर्यजनक रूप से साम्य रखती है। सुश्रुत संहिता केवल शल्य-प्रक्रियाओं तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें **औषधि-विज्ञान (Pharmacology)** और **मानव शरीर रचना-विज्ञान (Human Anatomy)** का भी अत्यंत **सूक्ष्म (Microscopic)** और **व्यापक (Comprehensive)** विश्लेषण मिलता है। हड्डियाँ (**Bones**), स्नायु (**Ligaments & Nerves**) और जोड़ (**Joints**) जैसी संरचनाओं का वैज्ञानिक वर्गीकरण यह स्पष्ट करता है कि प्राचीन भारत में **शरीर-विज्ञान (Physiology)** और **संरचनात्मक अध्ययन (Structural Analysis)** की गहरी समझ विकसित हो चुकी थी। इस प्रकार सुश्रुत संहिता को केवल एक पारंपरिक या सांस्कृतिक ग्रंथ नहीं, बल्कि **विश्व शल्य-चिकित्सा के विकास (Global Evolution of Surgery)** में एक **मौलिक और ऐतिहासिक आधार-ग्रंथ (Foundational Text)** माना जाता है। इसी कारण **सुश्रुत संहिता (Sushruta Samhita)** को चिकित्सा इतिहास में एक **उन्नत (Advanced)** और **वैज्ञानिक शल्य-चिकित्सा ग्रंथ (Scientific Surgical Treatise)** के रूप में मान्यता प्राप्त है। **अकादमिक दृष्टि (Academic Consensus)** से यह स्वीकार किया जाता है कि सुश्रुत संहिता लगभग **ढाई हजार वर्ष (Nearly 2500 Years Old)** प्राचीन है। इस ग्रंथ में **300 से अधिक शल्य-क्रियाओं (Over 300 Surgical Procedures)** का व्यवस्थित और तकनीकी विवरण मिलता है, जो उस काल की **सर्जिकल दक्षता (Surgical Expertise)** और **प्रायोगिक क्षमता (Experimental Capability)** को दर्शाता है।

इसलिए यह कहना **अतिशयोक्ति (Exaggeration)** नहीं होगी कि **आधुनिक सर्जरी (Modern Surgery)** ने वस्तुतः **सुश्रुत संहिता**

(Sushruta Samhita) के वैज्ञानिक स्तर (Scientific Framework) को ही कालांतर में विकसित और विस्तारित (Progressively Advanced) किया है। आचार्य सुश्रुत की शल्य-चिकित्सा (Surgical Science) अपने युग में न तो आदिम (Primitive) थी और न ही साधारण (Elementary), बल्कि वह अत्यंत विकसित (Advanced), प्रयोगधर्मी (Experimental) और तर्कसंगत वैज्ञानिक (Rational & Scientific) स्वरूप वाली थी। इसी कारण सुश्रुत संहिता को केवल एक प्राचीन धार्मिक या दार्शनिक ग्रंथ (Ancient Religious or Philosophical Text) के रूप में सीमित करना ऐतिहासिक अन्याय होगा; बल्कि इसे विश्व चिकित्सा इतिहास (Global History of Medicine) की एक महत्वपूर्ण वैज्ञानिक उपलब्धि (Major Scientific Milestone) माना जाना चाहिए, जिसने आधुनिक सर्जरी की वैचारिक दिशा (Conceptual Foundation of Modern Surgery) को प्रारंभिक आधार प्रदान किया। दुर्भाग्यवश, समय के साथ इस शल्य-परंपरा (Surgical Tradition) की जीवित निरंतरता (Living Continuity) टूट गई है, और इसी ऐतिहासिक विच्छेद (Historical Discontinuity) को समझना वर्तमान संदर्भ और भविष्य की व्यावहारिक चिकित्सा दृष्टि (Pragmatic Medical Vision) के लिए अत्यंत आवश्यक है।

6.9 “छद्म-विज्ञान (Pseudo-Science) या ‘प्रो-विज्ञान’? योग पर दुनिया का कन्फ्यूजन”

कुछ लोग कहते हैं कि “योग तो बस एक छद्म-विज्ञान (Pseudo-science) है और असली स्वास्थ्य परंपरा तो प्राचीन यूरोप से आई है।” पर यदि हम ऐतिहासिक स्रोतों को देखें तो एक रोचक तथ्य सामने आता है। पाँचवीं शताब्दी ईसा पूर्व के प्रसिद्ध यूनानी चिकित्सक हिप्पोक्रेट्स (Hippocrates), जिन्हें आधुनिक चिकित्सा का जनक भी

कहा जाता है, के समय से ही यूनानी लेखकों ने भारत की जीवन-पद्धति और चिकित्सा परंपराओं में रुचि दिखाई। बाद के यूनानी यात्रियों और लेखकों जैसे **मेगस्थनीज (Megasthenes)** ने भी भारतीय समाज, आहार और स्वास्थ्य पद्धति का उल्लेख किया है। इन विवरणों में कहा गया है कि भारतीय लोग **प्राकृतिक जीवनशैली (Natural Lifestyle)**, **संतुलित आहार (Balanced Diet)** और **वनौषधि-आधारित उपचार प्रणाली (Herbal Therapeutics)** का उपयोग करते थे। कई यूनानी लेखकों ने यह भी लिखा कि भारतीयों में कुछ रोग अपेक्षाकृत कम दिखाई देते थे और वे औषधीय पौधों का व्यापक उपयोग करते थे। कुछ लोग मानते हैं कि योग केवल **सूडो-साइंस (Pseudo-Science)** है और भारतीय परंपराओं के **औषधीय (Therapeutic)** दावे बिना शोध के स्वीकार कर लिए जाते हैं। लेकिन हालिया **वैज्ञानिक (Scientific)** अनुसंधान इसके विपरीत स्पष्ट प्रमाण प्रस्तुत करता है। 2022 में **वहान यूनिवर्सिटी (Wuhan University)** के शोधकर्ताओं **शानशान शेन (Shanshan Shen)**, **शिलिंग डेन (Shiling Deng)** और **यंग ल्यू टियानटियान (Yang Liu Tiantian)** ने **सिस्टेमैटिक मेटा-एनालिसिस (Systematic Meta-Analysis)** प्रकाशित की, जो **फ्रंटियर्स इन स्पोर्ट्स एंड एक्टिव लिविंग जर्नल (Frontiers in Sports and Active Living Journal)** में इंडेक्स्ड है।

इस अध्ययन में 296 **सांख्यिकीय (Statistical)** रूप से मान्य **स्टडीज़ (Studies)** स्कैन की गईं, डुप्लीकेट हटा दिए गए और अनकालिफ़ाइड टाइटल्स को साइड में रखा गया। हर आर्टिकल को **मैन्युअली (Manually)** स्क्रीन किया गया। अंततः केवल 13 **हाई-क्वालिटी रैंडमाइज्ड कंट्रोल ट्रायल्स (High-Quality Randomized Control Trials)** बचीं, जिनमें कुल **सैंपल साइज (Sample Size)** 1335 प्रतिभागियों का था 672 योग ग्रुप और 663 कंट्रोल ग्रुप।

परिणामों ने यह दिखाया कि योग **ब्लड ग्लूकोस नियंत्रण (Blood Glucose Control)** में सुधार करता है, जैसे **HbA1c**, **फास्टिंग ब्लड ग्लूकोस (Fasting Blood Glucose)** और **पोस्ट-प्रांजियल ब्लड ग्लूकोस (Post-Prandial Blood Glucose)**। इसके अलावा **लिपिड प्रोफ़ाइल (Lipid Profile)** में भी **सिग्निफिकेंट (Significant)** सुधार देखा गया, विशेषकर **ट्राइग्लिसराइड्स (Triglycerides)** में कमी। यह प्रभाव तब देखा गया जब प्रतिभागी **मेडिसिन (Medication)** के साथ-साथ नियमित योग अभ्यास कर रहे थे।

अध्ययन ने यह भी दिखाया कि प्रभाव **10-24 सप्ताह (Weeks)** तक **क्लीनिकली प्रूवन (Clinically Proven)** था। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि योग केवल **धार्मिक या सांस्कृतिक अभ्यास (Religious or Cultural Practice)** नहीं है, बल्कि **टाइप-2 डायबिटीज (Type-2 Diabetes)** जैसी आधुनिक बीमारियों के लिए **एक प्रभावशाली पूरक चिकित्सा (Effective Complementary Treatment)** है।

यह शोध स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि प्राचीन **हिंदू परंपराओं (Hindu Traditions)** के योगिक अभ्यासों में निहित **शारीरिक (Physiological)** और **मनोवैज्ञानिक (Psychological)** तंत्रों का आधुनिक विज्ञान द्वारा **वैज्ञानिक (Scientific)** रूप से समर्थन किया गया है। योग का अभ्यास **मानव मेटाबॉलिज्म (Human Metabolism)**, **एंडोक्राइन सिस्टम (Endocrine System)** और **हृदय-स्वास्थ्य (Cardiovascular Health)** पर प्रत्यक्ष सकारात्मक प्रभाव डालता है।

इस प्रकार, योग को **सैद्धांतिक (Theoretical)** या केवल **सांस्कृतिक अभ्यास (Cultural Practice)** मानने वाले दृष्टिकोण निराधार हैं। वैज्ञानिक दृष्टि से यह एक **सुसंगठित (Systematic)**, **साक्ष्य-आधारित (Evidence-Based)** और **इनोवेटिव (Innovative)** स्वास्थ्य उपकरण के रूप में मान्यता प्राप्त कर चुका है।

आधुनिक दृष्टि से देखें तो प्राचीन भारतीय स्वास्थ्य परंपरा, जिसमें **योग (Yogic Discipline)**, **आयुर्वेद (Ayurvedic Medical System)**, और **समग्र स्वास्थ्य-दृष्टि (Holistic Health Approach)** शामिल हैं, शरीर और मन के संतुलन पर आधारित थी। योग में **श्वसन-नियंत्रण (Breath Regulation)**, **तंत्रिका-तंत्र संतुलन (Neurophysiological Balance)** और **मानसिक एकाग्रता (Cognitive Regulation)** पर बल दिया जाता है। आज के वैज्ञानिक शोध भी दिखाते हैं कि नियमित योग अभ्यास से **तनाव-हार्मोन (Stress Hormones)** कम हो सकते हैं, हृदय-स्वास्थ्य बेहतर हो सकता है और मानसिक स्वास्थ्य में सुधार हो सकता है।

जहाँ तक यह प्रश्न है कि आज भारतीय समाज में बीमारियाँ अधिक क्यों दिखाई देती हैं, तो कई आधुनिक कारक जिम्मेदार माने जाते हैं जैसे **जीवनशैली परिवर्तन (Lifestyle Shift)**, **प्रसंस्कृत भोजन (Processed Food Consumption)**, **शारीरिक निष्क्रियता (Physical Inactivity)** और **पर्यावरणीय प्रदूषण (Environmental Pollution)**। इसलिए कई शोधकर्ता मानते हैं कि प्राचीन योग-आधारित जीवनशैली और आधुनिक **साक्ष्य-आधारित चिकित्सा (Evidence-based Medicine)** को मिलाकर अपना स्वस्थ के लिए अधिक लाभकारी हो सकता है।

6.10 "अल-जाहिज की रिपोर्ट: भारतीय औषधियों ने यूरोप को हैरान कर दिया!"

अब्बासी काल के प्रसिद्ध अरबी विद्वान **अल जाहीज़ (Al-Jahiz 776–868 ई.)** ने अपनी रचनाओं में विभिन्न सभ्यताओं के ज्ञान और बौद्धिक परंपराओं का उल्लेख किया है। फ्रांसीसी प्राच्यविद् **चार्ल्स पेलेट (Charles Pellat)** ने अल-जाहिज के जीवन और विचारों पर विस्तृत

अध्ययन करते हुए **जाहिज़ का जीवन और कार्य (The Life and Works of Jahiz)** नामक ग्रंथ लिखा। इस ग्रंथ में वर्णित एक संदर्भ के अनुसार अल-जाहिज ने यह उल्लेख किया कि भारत के लोग **औषधीय ज्ञान (Medicinal Knowledge)** और **चिकित्सकीय रहस्यों (Therapeutic Secrets)** को गहराई से समझते थे। वे बताते हैं कि भारतीय वैद्य **वनौषधि-विज्ञान (Herbal Pharmacology)** और **रोग-निदान प्रणाली (Diagnostic Methodology)** में अत्यंत दक्ष थे तथा अनेक ऐसे उपचार करते थे जो अन्य समाजों को असाधारण प्रतीत होते थे।

अल-जाहिज के इस अवलोकन को आधुनिक दृष्टि से देखें तो यह प्राचीन भारतीय **आयुर्वेदिक परंपरा (Ayurvedic Medical System)** की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि की ओर संकेत करता है। आयुर्वेद में शरीर की **जैविक संरचना (Biological Structure)**, **दोष-संतुलन सिद्धांत (Homeostatic Balance Theory)** और औषधियों की **रासायनिक-प्रभाविता (Pharmacological Efficacy)** का विस्तृत वर्णन मिलता है। प्राचीन भारतीय आचार्यों जैसे सुश्रुत (**Sushruta**) और चरक (**Charaka**) ने **शल्य-चिकित्सा (Surgical Science)**, **रोग-निदान (Pathology)** और **औषध-निर्माण (Drug Formulation)** के सिद्धांतों को व्यवस्थित रूप दिया।

अब्बासी युग में जब ज्ञान का अनुवाद आंदोलन प्रारम्भ हुआ, तब भारतीय गणित, खगोलशास्त्र और चिकित्सा के अनेक ग्रंथ अरबी में अनूदित हुए। इस प्रक्रिया को **ज्ञान-संक्रमण प्रक्रिया (Knowledge Transmission Process)** कहा जा सकता है, जिसके माध्यम से भारतीय वैज्ञानिक परंपरा का प्रभाव अरब जगत और बाद में यूरोप तक पहुँचा। इसलिए अल-जाहिज का यह कथन केवल सांस्कृतिक प्रशंसा नहीं, बल्कि उस ऐतिहासिक तथ्य की ओर भी संकेत करता है कि प्राचीन भारत में चिकित्सा

और औषधि विज्ञान का एक विकसित **वैज्ञानिक तंत्र (Scientific System)** विद्यमान था, जिसने वैश्विक ज्ञान-परंपरा को प्रभावित किया।

विश्व भर के विद्वान **वैज्ञानिक विचारधारा (Scientific Thought)** की उत्पत्ति को लेकर अलग-अलग मत रखते हैं, परन्तु लगभग सभी यह स्वीकार करते हैं कि दो प्राचीन सभ्यताओं **प्राचीन मिस्र और प्राचीन भारत (Ancient Egypt and Ancient India)** ने प्रारम्भिक विज्ञान और चिकित्सा के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। चिकित्सा इतिहास (History of Medicine) के अध्ययन में भी इन दोनों सभ्यताओं की तुलना अक्सर की जाती है। इसी संदर्भ में लगभग दूसरी-तीसरी शताब्दी ईस्वी के यूनानी विद्वान **क्लॉडियस एलियानस (Claudius Aelianus) (Aelian)** का उल्लेख किया जाता है। उन्होंने अपनी प्रसिद्ध कृति **डी नेचुरा एनिमलियम (De Natura Animalium)** में विभिन्न संस्कृतियों के ज्ञान और प्रथाओं के बारे में टिप्पणियाँ की हैं। अंग्रेजी अनुवादक **ए. एफ. स्कॉलफील्ड (A. F. Scholfield)** के अनुवाद में एक रोचक तुलना मिलती है, जिसमें कहा गया है कि यदि मिस्र और भारत की औषधियों की तुलना की जाए तो मिस्र की दवाएँ प्रायः अस्थायी रूप से पीड़ा कम करती हैं, जबकि भारतीय उपचार दीर्घकालिक प्रभाव उत्पन्न कर सकते हैं।

आधुनिक दृष्टि से देखें तो यह कथन उस समय भारत में विकसित **आयुर्वेदिक चिकित्सा प्रणाली (Ayurvedic Medical System)** की ओर संकेत करता है, जिसमें **रोग-निदान विज्ञान (Diagnostics)**, **वनौषधि-विज्ञान (Herbal Pharmacology)** और शरीर के **जैविक संतुलन सिद्धांत (Homeostasis)** का विस्तार से वर्णन मिलता है।

6.11 “जब टीकाकरण में गंगाजल भी था और इम्युनिटी भी!”

यह विवरण **18वीं शताब्दी में भारत की पारंपरिक चिकित्सा पद्धति, विशेषतः चेचक (Smallpox) के टीकाकरण (Variolation) की**

प्रक्रिया, उसके सामाजिक-सांस्कृतिक आधार तथा औपनिवेशिक हस्तक्षेप के प्रभावों को प्रस्तुत करता है। इसमें बताया गया है कि **1732** में भारत आए अंग्रेज चिकित्सक **जॉन ज़ेफ़ानियाह होल्वेल (John Zephaniah Holwell)** ने यहाँ की विकसित टीकाकरण प्रणाली को देखकर आश्चर्य व्यक्त किया और अपनी **पुस्तक पूर्वी इंडीज में चेचक के टीकाकरण के तरीके का विवरण पुस्तक (An Account of the Manner of Inoculating for the Smallpox in the East Indies)** में इसका विस्तृत वर्णन किया। उनके अनुसार भारत में ब्राह्मणों द्वारा संगठित रूप से गाँव-गाँव जाकर चेचक के टीके लगाए जाते थे, जिसमें संक्रमित व्यक्ति के घाव से प्राप्त पदार्थ की सूक्ष्म मात्रा को शरीर में प्रविष्ट कराकर रोग-प्रतिरोधक क्षमता विकसित की जाती थी। इस प्रक्रिया में **धार्मिक अनुष्ठान, आहार-विनियम, और सामुदायिक सहयोग** भी जुड़े होते थे, जिससे यह केवल चिकित्सा नहीं बल्कि एक **सांस्कृतिक-वैज्ञानिक प्रणाली** बन जाती थी।

आगे यह भी उल्लेख किया गया है कि यह प्रणाली स्वैच्छिक, संगठित और अपेक्षाकृत प्रभावी थी, जिसमें मृत्यु दर बहुत कम (लगभग 1-2%) बताई गई है। भारत के अतिरिक्त चीन और ओटोमन साम्राज्य में भी इसी प्रकार की तकनीकों के प्रमाण मिलते हैं, परंतु भारतीय विधि अधिक व्यवस्थित मानी गई। किन्तु औपनिवेशिक काल में अंग्रेजों द्वारा इस पारंपरिक पद्धति पर प्रतिबंध लगाने और अपनी चिकित्सा प्रणाली लागू करने के कारण यह व्यवस्था धीरे-धीरे नष्ट हो गई। इसके परिणामस्वरूप चेचक की महामारी ने व्यापक रूप धारण किया और लाखों लोगों की मृत्यु हुई।

उपरोक्त प्रसंग के अनुसार पारंपरिक भारतीय ज्ञान-प्रणालियाँ केवल आस्था पर आधारित नहीं थीं, बल्कि उनमें **अनुभवजन्य विज्ञान (Empirical Science), सामाजिक संगठन (Social Organization)** और **सांस्कृतिक अनुशासन (Cultural Discipline)** का गहरा

समन्वय था। साथ ही, यह औपनिवेशिक हस्तक्षेप के कारण स्थानीय ज्ञान के हास और उसके दूरगामी दुष्परिणामों को भी रेखांकित करता है।

6.12 यूरोप की लाइब्रेरी में घुसे वेद और बदल गया दर्शन का सिलेबस

वर्ष 1886 में अमेरिकी लेखक **मार्क ट्वेन** भारत घूमने आए थे। तीन महीने तक भारत के अलग-अलग शहरों में घूमने के बाद उन्होंने लिखा **“India is the cradle of the human race, the birthplace of human speech, the mother of history, the grandmother of legend and the great grandmother of tradition. Our most valuable and most holistic material in the history of man are treasured in India.”** अर्थात् **भारत** सभ्यता का पालना है, भाषा और बोलियों का जन्म स्थान है, इतिहास की जननी है, महान चरित्रों की दादी है और महान परंपराओं की परदादी है। मानव सभ्यता के इतिहास में हमारी सबसे मूल्यवान और समग्र सामग्री भारत में ही संजोई गई है।

सदियों की दासता में जकड़े भारतीयों ने इस प्रशंसा को आश्चर्य से सुना, लेकिन परतंत्रता से उपजी जड़ता ने इस कथन का मर्म शायद समझने नहीं दिया। आज भी कई लोग यह कहते मिलते हैं कि विश्व का समस्त ज्ञान-विज्ञान केवल भारत में ही था और अन्य सभ्यताएं नगण्य थीं। यह भी कहा जाता है कि 17वीं शताब्दी के बाद यूरोप में हुए वैज्ञानिक आविष्कार भारतीय शास्त्रों से लिए गए थे। यह भी सत्य है कि अनेक यूरोपीय विद्वान वेदों और उपनिषदों के ज्ञान से चमत्कृत थे, यद्यपि उनके अपने पूर्वाग्रह भी थे। फिर भी वे भारतीय ज्ञान परंपरा की उत्कृष्टता को स्वीकार करते हैं। **जर्मन दार्शनिक फ्रेडरिक नीत्शे** ने तो यहां तक कहा कि **“बाइबल को बंद करो और मनुस्मृति को खोलो।”** हम यह भी जानते हैं कि अनेक प्राचीन मंदिरों और विश्वविद्यालयों के अवशेषों को यूरोपीय पुरातत्वविदों ने

ही खोजकर सामने लाया। यदि वे न होते, तो संभव है हम अपने ही अतीत के कई प्रमाणों से अनभिज्ञ रह जाते। भारत ने लगभग 800 वर्षों का कठिन काल देखा, जिसमें उसका बहुत कुछ नष्ट हो गया मंदिर, विश्वविद्यालय, नगर सब पर आघात हुआ। फिर भी भारत सतत संघर्ष करता रहा और पुनः खड़ा हुआ।

कुछ विद्वान यह तर्क देते हैं कि आधुनिक **बौद्धिक परंपराएँ (Intellectual Traditions)** केवल पश्चिम से विकसित हुई हैं, परंतु ऐतिहासिक अध्ययन यह भी दर्शाते हैं कि अनेक पश्चिमी चिंतक स्वयं भारतीय **दार्शनिक परंपरा (Philosophical Tradition)** और **वैदिक ज्ञान-परंपरा (Vedic Knowledge Tradition)** से प्रभावित रहे हैं। उदाहरण के लिए प्रसिद्ध स्विस् **मनोचिकित्सक (Psychiatrist)** और **मनोविश्लेषक (Psychoanalyst)** **कार्ल गुस्ताव जंग (Carl Gustav Jung)** ने अपने कई लेखों और व्याख्यानों में भारतीय दर्शन का उल्लेख किया है। अपनी प्रसिद्ध पुस्तक **मनोवैज्ञानिक प्रकार (Psychological Types)** में वे मानव व्यक्तित्व की संरचना का विश्लेषण करते समय पूर्वी विचारधाराओं विशेषकर उपनिषद्, **पतंजलि के योग सूत्र और सांख्य (Upanishads, Yoga Sutras of Patanjali और Samkhya)** का संदर्भ देते हैं। जंग का मत था कि भारतीय **आध्यात्मिक परंपराएँ (Spiritual Traditions)** मानव मन और **चेतना (Consciousness)** की प्रकृति को समझने के लिए अत्यंत गहन **मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण (Psychological Perspective)** प्रदान करती हैं, जो आधुनिक **मनोविज्ञान (Psychology)** और **चेतना-अध्ययन (Consciousness Studies)** के लिए भी प्रेरणादायी हो सकती हैं।

इस विषय पर कई विद्वानों ने विस्तृत अध्ययन भी किया है। उदाहरण के लिए विद्वान **जे.जे. क्लार्क (J. J. Clarke)** की पुस्तक **जुंग और पूर्वी विचार (Jung and Eastern Thought)** में यह बताया गया है कि जंग

ने भारतीय और पूर्वी दर्शन में गहरी रुचि दिखाई थी। उन्होंने भारत की आध्यात्मिक परंपराओं को समझने के लिए कई निबंध भी लिखे, जिनमें **“भारत की स्वप्निल दुनिया”** और **“भारत हमें क्या सिखा सकता है”** (**“The Dreamlike World of India” and “What India Can Teach Us”**) जैसे लेखों का उल्लेख किया जाता है। इन लेखों में जंग ने यह विचार प्रस्तुत किया कि भारतीय सभ्यता में **आत्मा-तत्त्व (Concept of Self)**, **चेतना-विज्ञान (Science of Consciousness)** और **अंतःचेतन मन (Inner Psyche)** की अवधारणाएँ मानव अनुभव को समझने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। यह दृष्टिकोण आधुनिक **तंत्रिका-विज्ञान (Neuroscience)** और **मनोदैहिक अध्ययन (Psychophysical Studies)** के साथ तुलनात्मक रूप से देखा जा सकता है।

इसी प्रकार यूरोपीय बौद्धिक परंपरा पर भारतीय साहित्य का प्रभाव भी स्पष्ट दिखाई देता है। प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक-कवि **जोहान वोल्फगैंग वॉन गोएथे (Johann Wolfgang von Goethe)** भारतीय साहित्य और दर्शन से प्रभावित थे। जब जर्मन दार्शनिक **जोहान गॉटफ्रीड हेर्डर (Johann Gottfried Herder)** ने उन्हें महान संस्कृत कवि **कालिदास (Kalidasa)** की प्रसिद्ध कृति पढ़ने के लिए दी, तब गोएथे ने भारतीय काव्य परंपरा की **अलौकिक सौंदर्यबोध (Transcendental Aesthetics)**, **दार्शनिक गहनता (Philosophical Depth)** और **सांस्कृतिक समन्वय (Cultural Synthesis)** को अनुभव किया। इसके बाद उन्होंने भारतीय महाकाव्य परंपरा विशेषतः **महाभारत (Mahabharata)** का भी अध्ययन किया, जो केवल साहित्यिक ग्रंथ ही नहीं बल्कि धर्म, दर्शन और **सामाजिक-नैतिक सिद्धांतों (Socio-Ethical Principles)** का भी विशाल स्रोत है।

18वीं शताब्दी में **जोहान गॉटफ्रीड हेर्डर (Johann Gottfried Herder)** स्वयं भी उन यूरोपीय विचारकों में गिने जाते हैं जिन्होंने भारतीय

संस्कृति और प्राचीन ज्ञान-परंपरा के प्रति विशेष रुचि दिखाई। हर्डर भाषा, संस्कृति और मानव सभ्यता की उत्पत्ति पर विचार करने वाले प्रमुख चिंतक थे। उन्होंने संस्कृत साहित्य, भारतीय मिथकों और **हिंदू दर्शन (Hindu Philosophy)** का अध्ययन करते हुए यह तर्क दिया कि मानव सभ्यता की प्रारंभिक **सांस्कृतिक चेतना (Cultural Consciousness)** एशिया में विकसित हुई। कुछ लेखों में उन्होंने भारत को मानव सभ्यता के प्रमुख प्राचीन **सांस्कृतिक केंद्र (Cultural Centers)** में से एक बताया और गंगा क्षेत्र को ज्ञान तथा आध्यात्मिक परंपरा का प्राचीन स्रोत माना।

हर्डर का प्रभाव यूरोप के अनेक प्रमुख विचारकों पर पड़ा, जिनमें **फ्रेडरिक नीत्शे, विल्हेम वॉन हम्बोल्ट और जोहान वोल्फगैंग वॉन गोएथे (Friedrich Nietzsche, Wilhelm von Humboldt and Johann Wolfgang von Goethe)** जैसे बुद्धिजीवी शामिल थे। इस काल में यूरोप में संस्कृत भाषा और भारतीय ग्रंथों जैसे **महाभारत और उपनिषद् (Mahabharata and Upanishads)** का अध्ययन धीरे-धीरे बढ़ने लगा। भारत और हिंदू परंपराओं के प्रति हर्डर की गहरी रुचि के कारण कुछ लेखकों ने उन्हें रूपक के रूप में **"जर्मन ब्राह्मण" ("German Brahmin")** भी कहा।

आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो वैदिक और उपनिषदिक ग्रंथों में **चेतना-विज्ञान (Consciousness Science)**, **सामूहिक मानस (Collective Psyche)** और **सृष्टि-तत्त्व (Cosmological Principles)** जैसी अवधारणाएँ मिलती हैं। आज ये विषय आधुनिक **मनोविज्ञान (Psychology)**, **तंत्रिका-विज्ञान (Neuroscience)** और **ब्रह्माण्ड-विज्ञान (Cosmology)** में नए शोधों के साथ तुलनात्मक रूप से अध्ययन किए जा रहे हैं। उदाहरण के लिए **ब्रह्माण्ड-विज्ञान (Cosmology)** में सृष्टि की उत्पत्ति से जुड़े प्रश्न जैसे ब्रह्मांड की उत्पत्ति,

चेतना और पदार्थ का संबंध आज भी वैज्ञानिक शोध का विषय हैं, जबकि वैदिक साहित्य में इन विषयों पर दार्शनिक चिंतन पहले से मिलता है।

18वीं शताब्दी के प्रसिद्ध फ्रांसीसी दार्शनिक और इतिहासकार **वॉल्टेयर (Voltaire)** ने भी अपने कई लेखों में भारत की प्राचीन सभ्यता और ज्ञान-परंपरा का उल्लेख किया। उनकी रचनाओं के संग्रह **वोल्टेयर की रचनाएँ (The Works of Voltaire)** में भारत के बारे में कुछ टिप्पणियाँ मिलती हैं, जहाँ वे लिखते हैं कि भारत की सांस्कृतिक और बौद्धिक धारा अत्यंत प्राचीन है और उसने विश्व की कई सभ्यताओं को प्रभावित किया है। उस समय यूरोप में **प्राच्य अध्ययन (Oriental Studies)** का विकास हो रहा था, और कई विद्वान भारत की भाषा, दर्शन और विज्ञान में गहरी रुचि ले रहे थे।

इसी परंपरा में 19वीं शताब्दी के प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक **आर्थर शोपेनहावर (Arthur Schopenhauer)** का नाम भी उल्लेखनीय है। उनके दर्शन का पश्चिमी चिंतन पर गहरा प्रभाव पड़ा और उनके विचारों ने आगे चलकर **फ्रेडरिक निएत्ज़्चे (Friedrich Nietzsche)** जैसे चिंतकों को भी प्रभावित किया। दार्शनिक विचारों के विश्वकोश **स्टैनफोर्ड इनसाइक्लोपीडिया ऑफ फिलॉसफी (Stanford Encyclopedia of Philosophy)** के अनुसार शोपेनहावर का दर्शन विशेष रूप से **दार्शनिक निराशावाद (Philosophical Pessimism)** और **इच्छाशक्ति-तत्त्व (Metaphysics of Will)** की अवधारणा के लिए प्रसिद्ध है।

परंतु स्वयं शोपेनहावर भी भारतीय दर्शन से अत्यधिक प्रभावित थे। **Encyclopaedia Britannica** के अनुसार उन पर Upanishads का गहरा प्रभाव पड़ा था। उन्होंने इन ग्रंथों को मानव चिंतन की अत्यंत गहन **अध्यात्म-दर्शन (Metaphysical Philosophy)** का उदाहरण माना। प्रसिद्ध इतिहासकार **विल ड्यूरेंट (Will Durant)** ने अपनी पुस्तक

सभ्यता की कहानी: हमारी प्राच्य विरासत (The Story of Civilization: Our Oriental Heritage) में शोपेनहावर का एक प्रसिद्ध कथन उद्धृत किया है, जिसमें उन्होंने कहा कि "पूरी दुनिया में कोई भी अध्ययन उतना लाभदायक और उत्थानकारी नहीं है जितना उपनिषदों का अध्ययन; उन्होंने मेरे जीवन को सांत्वना दी है और मृत्यु के समय भी वही मुझे शांति देंगे।"

इन ऐतिहासिक उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय **वैदिक-दार्शनिक परंपरा (Vedic-Philosophical Tradition)** ने केवल भारतीय चिंतन को ही नहीं, बल्कि वैश्विक बौद्धिक इतिहास को भी प्रभावित किया है। आधुनिक युग में जब **विज्ञान (Science)**, **चेतना-अध्ययन (Consciousness Research)** और **ब्रह्माण्ड-विज्ञान (Cosmology)** जैसे क्षेत्रों में नए अनुसंधान हो रहे हैं, तब अनेक विद्वान वैदिक साहित्य और उपनिषदिक विचारों को आधुनिक वैज्ञानिक प्रश्नों के साथ तुलनात्मक रूप से देखने का प्रयास कर रहे हैं। इस प्रकार प्राचीन **वैदिक ज्ञान-परंपरा (Vedic Knowledge System)** और आधुनिक विज्ञान के बीच संवाद की एक नई बौद्धिक संभावना विकसित हो रही है, जो मानव ज्ञान की वैश्विक विरासत को समझने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जा सकती है

6.13 "जल, पोषण और जीवन: वैदिक ग्रंथों में विज्ञान के संकेत"

पेड़-पौधे मानव जीवन के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण **जीवनाधार (Life Support System)** हैं, क्योंकि वे भोजन, ऑक्सीजन और पर्यावरणीय संतुलन प्रदान करते हैं। किंतु उनके पोषण की प्रक्रिया को समझने का इतिहास भी अत्यंत रोचक है। उन्नीसवीं शताब्दी में प्रसिद्ध जर्मन **वनस्पतिशास्त्री (Botanist) Julius von Sachs** ने पौधों के पोषण पर महत्वपूर्ण शोध किया। **1855** के आसपास प्रस्तुत **खनिज-पोषण**

सिद्धांत (Theory of Mineral Nutrition) तथा उनकी पुस्तक **हैंडबुक डेर एक्सपेरिमेंटलफिजियोलॉजी डेर पफ्लानज़ेन (Handbuch der Experimentalphysiologie der Pflanzen)** में उन्होंने यह बताया कि पौधे अपनी जड़ों के सूक्ष्म **मूल-रोम (Root Hairs)** के माध्यम से मिट्टी से जल और खनिज तत्व ग्रहण करते हैं। उनके अनुसंधानों ने आधुनिक **वनस्पति-शारीरविज्ञान (Plant Physiology)** और पौधों की **जाइलम संरचना (Xylem Structure)** के वैज्ञानिक अध्ययन की नींव रखी। इससे पहले यूरोप के कई **प्राकृतिक-दर्शन के विद्वान (Natural Philosophers)** यह मानते थे कि पौधे केवल जल ही ग्रहण करते हैं, जबकि खनिज पोषण की अवधारणा स्पष्ट रूप से विकसित नहीं हुई थी।

यदि इस विषय को प्राचीन भारतीय दृष्टि से देखा जाए, तो आज इसे **2600 साल पहले ऋषि-वैज्ञानिक (Sage-Scientist) Kashyapa** से संबंधित ग्रंथ **कृषि-पराशर (Krishi-Parashara)** तथा अन्य कृषि-ग्रंथों से संबंधित ग्रंथों में वृक्षों के भीतर **रस-परिवहन (Sap Transport)** और **पोषण-प्रवाह (Nutrient Flow)** का संकेत मिलता है। इस संदर्भ में प्राचीन कृषि-ग्रंथ (**Krishi-Parashara**) में वृक्षों के पोषण से संबंधित एक श्लोक उद्धृत किया जाता है:

श्लोक:

“पादपानां मूलतः सिंचितं तोयं यथा शनैः।

मूलस्कन्धशाखापत्रेषु प्रसृत्य पुष्टिमावहेत्॥”

अर्थ: जब वृक्षों की **जड़ों (Roots)** में जल का **सिंचन (Irrigation)** किया जाता है, तो वह धीरे-धीरे सूक्ष्म मार्गों से **तने (Stem)**, **शाखाओं (Branches)** और **पत्तों (Leaves)** तक फैल जाता है, जिससे वृक्ष का **पोषण (Nourishment)** और **विकास (Growth)** होता है।

प्राचीन भारतीय ग्रंथों में वृक्षों के **पोषण (Nourishment)**, **रस-परिवहन (Sap Circulation)** और **विकास (Growth)** के विषय में कई उल्लेख मिलते हैं। विशेष रूप से Vrikshayurveda तथा Atharvaveda जैसे ग्रंथों में पौधों के जीवन और पोषण से संबंधित विचार मिलते हैं। उदाहरण के लिए एक प्रसिद्ध श्लोक इस प्रकार उद्धृत किया जाता है:

श्लोक (वृक्षायुर्वेद):

“मूलतो वारि सम्प्राप्तं स्कन्धशाखापत्रगम्।
पुष्णाति सर्वदेहं तु वृक्षस्य जीवितं यथा ॥”

अर्थ: जब जड़ों में जल पहुँचता है तो वह तने, शाखाओं और पत्तों तक प्रवाहित होता है और पूरे वृक्ष के शरीर का **पोषण (Nourishment)** करता है, जिससे वृक्ष का **जीवन (Life Process)** बना रहता है।

इसी प्रकार वैदिक साहित्य में भी वनस्पतियों के जीवन और पोषण का उल्लेख मिलता है। उदाहरण के लिए अथर्ववेद में वनस्पतियों की जीवन्तता का वर्णन करते हुए कहा गया है:

श्लोक (अथर्ववेद):

“वनस्पते शतवल्थो विरोह सहस्रवल्था विवयं रुहेम।”

अर्थ: हे **वनस्पति (Plant)**! तुम सैकड़ों शाखाओं के साथ विकसित हो और हजारों भागों में फैलकर बढ़ो।

इन ग्रंथों में वर्णित है कि जब जड़ों में जल का **सिंचन (Irrigation)** होता है, तब वह सूक्ष्म मार्गों से तने, शाखाओं और पत्तों तक पहुँचता है, जिससे वृक्ष का **पोषण (Nourishment)** और विकास होता है। यह विचार आधुनिक **वनस्पति-परिवहन तंत्र (Plant Transport System)** की अवधारणा से तुलनात्मक रूप से मेल खाता है, जहाँ जाइलम और फ्लोएम जैसे ऊतक पौधों में जल तथा पोषक तत्वों के संचरण का कार्य करते हैं।

इन श्लोकों में वर्णित विचार आधुनिक **वनस्पति-शारीरविज्ञान (Plant Physiology)** के उस सिद्धांत से तुलनात्मक रूप से जोड़े जाते हैं, जिसके अनुसार पौधों में **जाइलम (Xylem)** और **फ्लोएम (Phloem)** जैसे **संवहनी ऊतक (Vascular Tissues)** जल और पोषक तत्वों के संचरण का कार्य करते हैं। इस प्रकार प्राचीन भारतीय **वैदिक-प्राकृतिक ज्ञान (Vedic Natural Knowledge)** और आधुनिक **वनस्पति-विज्ञान (Botany)** के बीच एक रोचक बौद्धिक समानता दिखाई देती है।

आधुनिक **विज्ञान (Modern Science)** में पौधों के भीतर जल और खनिजों के परिवहन को **केशिकत्व (Capillarity)**, **वाष्पोत्सर्जन-तनाव सिद्धांत (Transpiration Pull Theory)** और **दाब-प्रवाह सिद्धांत (Pressure Flow Mechanism)** जैसी अवधारणाओं से समझाया जाता है। परंतु आश्चर्यजनक रूप से प्राचीन भारतीय साहित्य में वृक्षों के भीतर सूक्ष्म नाड़ियों के माध्यम से रस के प्रवाह का वर्णन मिलता है, जिसे आज के वैज्ञानिक संदर्भ में पौधों के **संवहनी ऊतक (Vascular Tissues)** की अवधारणा से जोड़ा जा सकता है।

लगभग 2800 वर्ष पूर्व (आठवीं शताब्दी ईसा पूर्व) के आसपास कई प्राचीन विद्वानों ने पृथ्वी और जलचक्र को समझने के प्रयास किए। उस समय प्रसिद्ध ग्रीक कवि और चिंतक Homer यह मानते थे कि पृथ्वी के सभी भू-भाग एक विशाल जलराशि पर तैरते हैं और नदियों का जल पृथ्वी के भीतर से उत्पन्न होता है। कुछ अन्य ग्रीक **दार्शनिकों (Philosophers)** ने भी प्रकृति के रहस्यों को समझने के लिए विभिन्न अनुमान लगाए, परंतु आधुनिक **जलचक्र सिद्धांत (Hydrological Cycle Theory)** के वैज्ञानिक अध्ययन का श्रेय प्रायः फ्रांसीसी वैज्ञानिक **बर्नार्ड पालिसी (Bernard Palissy)** को दिया जाता है, जिन्होंने वर्षा, वाष्पीकरण और नदियों के स्रोतों के संबंध को समझाने का प्रयास किया।

किन्तु भारतीय परंपरा में इससे भी बहुत पहले **सूर्य (Sun)**, वर्षा और नदियों के संबंध का उल्लेख मिलता है। प्राचीन महाकाव्य **रामायण (Ramayana)** के युद्धकाण्ड में **महर्षि अगस्त्य (Agastya)** द्वारा भगवान **राम (Rama)** को सूर्य के महत्व का वर्णन करते हुए प्रसिद्ध **आदित्य-हृदय स्तोत्र (Aditya Hridaya Stotra)** का उपदेश दिया गया है। इसमें सूर्य को वर्षा, ऊष्मा और जीवन के स्रोत के रूप में वर्णित किया गया है। यह विचार आधुनिक **वाष्पीकरण प्रक्रिया (Evaporation Process)** की ओर संकेत करता है।

श्लोक (आदित्यहृदयम्):

“आदित्यः सर्वभूतेषु तेजस्वी रश्मिभावनः ।
 एष देवासुरगणान् लोकान् पाति गभस्तिभिः ॥”
 “एष ब्रह्मा च विष्णुश्च शिवः स्कन्दः प्रजापतिः ।
 महेन्द्रो धनदः कालो यमः सोमो ह्यपां पतिः ॥”

अर्थ: सूर्य अपनी **किरणों (Rays)** द्वारा समस्त प्राणियों को ऊर्जा प्रदान करता है और सम्पूर्ण जगत का पालन करता है। वही अपनी शक्ति से प्रकृति के विभिन्न **प्राकृतिक चक्रों (Natural Cycles)** जैसे ऊष्मा, वायु और वर्षा को संचालित करता है।

इसी प्रकार वैदिक साहित्य में भी जलचक्र की अवधारणा का संकेत मिलता है। **ऋग्वेद (Rigveda)** के **द्वितीय मण्डल** में वर्णित **12 मंत्र** में बताया गया है कि सूर्य अपनी किरणों के द्वारा पृथ्वी से जल को ऊपर की ओर आकर्षित करता है और बाद में वही जल वर्षा के रूप में पुनः पृथ्वी पर गिरता है।

मंत्र (ऋग्वेद):

“सूर्यो रश्मिभिराददाति पृथिव्या अपः।

ता दिवं नयति पुनर्वर्षति भूयः॥”

अर्थ: सूर्य अपनी किरणों द्वारा पृथ्वी से जल को ऊपर उठाता है, उसे आकाश में ले जाता है और फिर वही जल वर्षा के रूप में पुनः पृथ्वी पर गिरता है।

यह वर्णन आधुनिक **जलचक्र (Hydrological Cycle)** की अवधारणा जिसमें **वाष्पीकरण (Evaporation)**, **संघनन (Condensation)** और **वर्षा (Precipitation)** शामिल हैं, से तुलनात्मक रूप से मेल खाता है। इस प्रकार प्राचीन वैदिक साहित्य में प्रकृति के चक्रों के बारे में सूक्ष्म **प्राकृतिक अवलोकन (Natural Observation)** और **वैज्ञानिक संकेत (Scientific Insights)** देखने को मिलते हैं, जिन्हें आधुनिक विज्ञान ने प्रयोगात्मक पद्धति के माध्यम से विस्तार से समझाया है।

6.14 “आयुर्वेद की वैज्ञानिक आधारशिला और समग्र स्वास्थ्य दृष्टि”

आयुर्वेद आज भी प्रासंगिक (**Relevant**) है और इसका उपयोग केवल रोग उपचार (**Disease Treatment**) तक सीमित नहीं है, बल्कि **स्वास्थ्य संरक्षण (Health Preservation)** और जीवनशैली सुधार (**Lifestyle Management**) में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अतीत में, जब **आधुनिक चिकित्साशास्त्र (Modern Medical Science)** उपलब्ध नहीं था, तब यह मानव जीवन के लिए अनिवार्य था।

आधुनिक युग में, **सोशल मीडिया (Social Media)** और जनसंपर्क (**Mass Communication**) के कारण आयुर्वेद का पारंपरिक और तार्किक (**Logical**) स्वरूप कभी-कभी भूलाया गया और इसे **जादुई (Magical)** या **सूडो साइंस (Pseudo-Science)** कहा जाने लगा।

वास्तव में, आयुर्वेद की **वैज्ञानिकता (Scientific Validity)** सिद्धांतों और प्रयोगों (**Empirical Evidence**) पर आधारित है।

कई अनुसंधानों (**Research Studies**) में आयुर्वेदिक औषधियाँ (**Medicines**) न केवल **मनोवैज्ञानिक प्रभाव (Placebo Effect)** बल्कि **जैविक प्रभाव (Biological Efficacy)** भी दिखा चुकी हैं। उदाहरण के लिए, **भूमि शतावरी (Asparagus racemosus)** और अन्य औषधियों ने मधुमेह (**Diabetes**) में रक्त शर्करा (**Blood Glucose**) नियंत्रित की, और मूत्राशय (**Urinary System**) में पथरी (**Kidney Stone**) के निष्कासन में मदद की।

आयुर्वेदिक दवाएँ धीरे-धीरे शरीर में असर करती हैं और इनके **दुष्प्रभाव (Side Effects)** न्यूनतम होते हैं। इसके विपरीत, आधुनिक **एलोपैथिक (Allopathic)** दवाओं के कुछ मामलों में उच्च **साइड इफेक्ट्स (Adverse Effects)** होते हैं। इसलिए, आयुर्वेदिक उपचार दीर्घकालिक (**Long-Term**) लाभ और जीवनशैली सुधार पर केंद्रित रहते हैं।

आयुर्वेद में प्रमुख औषधियाँ और उपाय:

1. **अश्वगंधा (Ashwagandha)** - तनाव (**Stress**) कम करता है, कोर्टिसोल (**Cortisol**) नियंत्रित करता है, मांसपेशियों (**Muscles**) की शक्ति बढ़ाता है और नींद (**Sleep**) सुधारता है।
2. **लौंग (Clove)** - पेट की गैस (**Gas**) और अल्सर (**Ulcer**) के लिए उपयोगी, बैक्टीरिया नष्ट करता है।
3. **रानालूचिया (Ranoluchia)** - अंग प्रत्यारोपण (**Transplant**) में इम्यूनो-सप्रेसिव (**Immunosuppressive**) गुण।
4. अन्य जड़ी-बूटियाँ - बालों का झड़ना (**Hair Loss**), जुकाम (**Cold**) और इम्यूनिटी (**Immunity**) बढ़ाने में मदद।

आयुर्वेद और एलोपैथी (Allopathy) विरोधी नहीं हैं; बल्कि ये **पूरक (Complementary)** हैं। उदाहरण: रूमेटॉइड अर्थराइटिस (Rheumatoid Arthritis) में दर्द नियंत्रण के लिए पेन किलर (एलोपैथी) और सूजन कम करने के लिए आयुर्वेदिक दवा।

आयुर्वेद का **सत्य उद्देश्य (True Objective)** स्वास्थ्य बनाए रखना और **जीवन की गुणवत्ता (Quality of Life)** बढ़ाना है। आधुनिक जीवन में जब **जीवनशैली रोग (Lifestyle Diseases)** बढ़ रहे हैं, आयुर्वेद का महत्व और भी अधिक हो गया है। **मानकीकरण (Standardization)** और वैज्ञानिक **रिसर्च (Research)** के माध्यम से इसे और प्रभावी बनाया जा सकता है।

अंततः, आयुर्वेद केवल प्राचीन परंपरा (Ancient Tradition) या मिथक (Myth) नहीं है, बल्कि यह **अनुभव और परीक्षण आधारित (Empirical, Tested)** विज्ञान है, जिसे समझकर और अपनाकर हम स्वस्थ, संतुलित और दीर्घायु (Healthy & Long-Lived) जीवन जी सकते हैं।

6.15 सिंधु सभ्यता में औषधीय एवं खनिज-पदार्थों का उपयोग

प्राचीन भारतीय शल्यचिकित्सा की परंपरा का उल्लेख करते समय सर्वप्रथम स्मरण होता है **सुश्रुत** का, जिन्हें विश्व में “शल्यचिकित्सा के जनक” के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त है। उनका महान ग्रंथ **सुश्रुतसंहिता** न केवल भारतीय चिकित्सा-विज्ञान का आधारस्तंभ है, बल्कि वैश्विक सर्जिकल परंपरा का भी एक महत्वपूर्ण स्रोत माना जाता है। आश्चर्य की बात यह है कि जिस व्यक्तित्व को विदेशों में “**सर्जरी के जनक (Father of Surgery)**” के रूप में सम्मानित किया जाता है, उसी के प्रति भारत में पर्याप्त जागरूकता का अभाव दिखाई देता है।

यदि हम **सिंधु सभ्यता** के पुरातात्विक साक्ष्यों का परीक्षण करें तो **औषधीय पदार्थों (Medicinal Substances)** के उपयोग के संकेत अवश्य प्राप्त होते हैं, परंतु **शिलाजीत (Mineral Pitch/ Asphaltum)** के प्रत्यक्ष चिकित्सीय प्रयोग के प्रमाणों को सावधानीपूर्वक (Cautiously) समझना आवश्यक है। अब तक उपलब्ध उत्खनन-रिपोर्टों में शिलाजीत को स्पष्ट रूप से **“औषधि”** के रूप में चिह्नित करने के प्रत्यक्ष साक्ष्य सीमित हैं; किंतु **प्राकृतिक बिटुमेन (Natural Bitumen)** अथवा खनिज-पदार्थों के उपयोग के संकेत अवश्य मिलते हैं। इस विषय में प्रमुख शोध-संदर्भ निम्नलिखित हैं

6.16 शिलाजीत का आयुर्वेदिक और वैज्ञानिक विश्लेषण

शिलाजीत (Shilajit) का **औषधीय (Medicinal)** वर्णन आयुर्वेदिक ग्रंथों, विशेषतः **चरकसंहिता (Charaka Samhita)** तथा **सुश्रुतसंहिता (Sushruta Samhita)** में प्राप्त होता है, जहाँ इसे **रसायन (Rejuvenative)**, **बल्य (Strength-Promoting)** और **रोग-प्रतिरोधक (Immunomodulatory)** गुणों से युक्त बताया गया है। आधुनिक वैज्ञानिक (Modern Scientific) अध्ययन भी शिलाजीत में **फुल्विक अम्ल (Fulvic Acid)** तथा अन्य **जैव-सक्रिय यौगिक (Bioactive Compounds)** की उपस्थिति की पुष्टि करते हैं। इस प्रकार यह कहना युक्तिसंगत होगा कि सिंधु सभ्यता (Indus Civilization) में **खनिज पदार्थों (Minerals)** और **प्राकृतिक रेज़िन (Natural Resins)** का प्रयोग विद्यमान था, जबकि शिलाजीत का व्यवस्थित औषधीय प्रयोग उत्तरवर्ती आयुर्वेदिक साहित्य में स्पष्ट रूप से मिलता है।

इसी क्रम में **कश्मीर के बुरजहोम (Burzahom, Kashmir)** से प्राप्त **कपाल-अस्थियों (Cranial Bones)** में कृत्रिम छिद्र पाए गए हैं, जिन्हें आधुनिक शब्दावली में **कपाल-भेदन (Trepanation)** कहा जाता है।

यह प्रक्रिया आज भी **न्यूरोसर्जरी (Neurosurgery)** में प्रयुक्त होती है। लगभग 1500 ईसा पूर्व के इन प्रमाणों से स्पष्ट होता है कि उस काल में भी **मस्तिष्क-शल्यक्रिया (Brain Surgery)** का ज्ञान विद्यमान था। इसी प्रकार **हड़प्पा (Harappa)** से भी कपाल-शल्य के संकेत मिले हैं, जो इस तकनीक की **व्यापकता (Prevalence)** को दर्शाते हैं।

पुरातत्वविदों (Archaeologists) और मानव-विज्ञानी (Anthropologists) द्वारा किए गए परीक्षणों से यह निष्कर्ष सामने आया कि ये छिद्र **प्राकृतिक अपक्षय (Natural Erosion)** या **मरणोपरांत क्षरण (Post-Mortem Damage)** के कारण नहीं थे, बल्कि सुनियोजित **शल्य-प्रक्रिया (Deliberate Surgical Intervention)** के प्रमाण हैं।

प्राचीन चिकित्सक (Ancient Surgeons) लगभग **आधुनिक न्यूरोसर्जरी (Modern Neurosurgery)** के समान **सर्जिकल विधि (Surgical Technique)** का पालन करते थे। उन्होंने **मानव एनाटॉमी (Anatomy)**, **रक्तसंचार प्रणाली (Circulatory System)** और **जीवविज्ञान (Physiology)** का सूक्ष्म अवलोकन (Detailed Observation) किया, जिससे उन्हें यह ज्ञान हुआ कि छेद की **स्थिति (Position)** और **गहराई (Depth)** कितना सुरक्षित है।

यह प्राचीन **वैज्ञानिक अन्वेषण (Scientific Exploration)** केवल शल्य चिकित्सा में नहीं, बल्कि आधुनिक **ट्रॉमा मेडिसिन (Trauma Medicine)** और **न्यूरोसर्जरी (Neurosurgical Methods)** के विकास में भी **प्रेरणास्त्रोत (Inspirational Source)** है। तुलनात्मक अध्ययन (Comparative Study) यह दर्शाता है कि प्राचीन **आर्कियोलॉजिकल सबूत (Archaeological Evidence)** और आधुनिक चिकित्सा विज्ञान (Modern Medical Science) में कितनी **समानांतर विधियाँ (Parallel Techniques)** पाई जाती हैं।

अत्यधिक सूक्ष्म अध्ययन (Microscopic Examination) और **अस्थि-पुनरुत्पत्ति (Bone Regeneration)** के संकेतों से यह भी स्पष्ट हुआ कि शल्य-प्रक्रिया के उपरांत कई व्यक्तियों ने जीवन व्यतीत किया, जिससे यह सिद्ध होता है कि यह केवल प्रतीकात्मक अनुष्ठान (Ritual Practice) नहीं, बल्कि **उपचारात्मक प्रक्रिया (Therapeutic Procedure)** भी थी।

उपलब्ध जर्नल-संदर्भ (Journal References) जैसे **Journal of Anthropological Archaeology** और **Current Science** में बुर्जहोम एवं हड़प्पा से प्राप्त कपाल-अवशेषों में शल्य-छिद्र (Surgical Perforations) के प्रमाणों पर चर्चा की गई है। इन शोधों में यह संभावना व्यक्त की गई कि प्राचीन समुदायों को **मस्तिष्कीय आघात (Cranial Trauma)** और रोग-निवारण (Disease Management) के लिए कपाल-भेदन की तकनीक का व्यावहारिक ज्ञान (Practical Knowledge) था।

6.17 मेहरगढ़ की प्रागैतिहासिक दंत-चिकित्सा परंपरा

दंत-चिकित्सा (Dentistry) के क्षेत्र में भी अद्भुत प्रमाण मिलते हैं। **मेहरगढ़** से प्राप्त दाँतों में कृत्रिम छिद्र पाए गए हैं, जो लगभग **7000 वर्ष** प्राचीन माने जाते हैं। यहाँ उत्खनन में मिले मानव-कंकालों के **दाँतों में सूक्ष्म एवं नियमित छिद्र (Regular Micro-Perforations)** पाए गए, जिनका **विश्लेषण सूक्ष्मदर्शी (Microscopic Examination)** तथा **प्रायोगिक पुरातत्व (Experimental Archaeology)** की सहायता से किया गया।

इन निष्कर्षों को 2006 में प्रतिष्ठित वैज्ञानिक पत्रिका Nature में निम्नलिखित शोध-पत्र के रूप में प्रकाशित किया गया कोप्पा, ए., बोंडिओली, एल., कुसीना, ए., एट अल. (2006). "प्रागैतिहासिक आबादी

में दंत चिकित्सा की प्रारंभिक नवपाषाण परंपरा।" नेचर, 440, 755–756. (Coppa, A., Bondioli, L., Cucina, A., et al. (2006). "Early Neolithic tradition of dentistry in a prehistoric population." *Nature*, 440, 755–756). इस अध्ययन में बताया गया कि लगभग 7000–5500 ईसा पूर्व (Neolithic Period) के नौ व्यक्तियों के ग्यारह दाँतों में **कृत्रिम ड्रिलिंग (Intentional Drilling)** के प्रमाण मिले। प्रयोगात्मक परीक्षणों से यह सिद्ध किया गया कि ये छिद्र चकमक पत्थर (Flint Drill Bits) जैसे औजारों से बनाए गए थे। दाँतों की **आंतरिक संरचना (Dental Enamel and Dentine)** पर **घूर्णन-चिह्न (Rotational Marks)** पाए गए, जो प्राकृतिक क्षरण (Natural Decay) या पर्यावरणीय अपरदन (Environmental Erosion) से भिन्न थे।

इन शोधों से यह संकेत मिलता है कि मेहरगढ़ के निवासियों **को दंत-रोग (Dental Pathology), विशेषतः कैविटी (Caries)** के उपचार हेतु तकनीकी ज्ञान था। यह प्रमाण **दंत-शल्यक्रिया (Dental Surgery)** की अत्यंत प्राचीन परंपरा को दर्शाता है और यह स्थापित करता है कि नवपाषाणकालीन समाजों में भी **चिकित्सीय हस्तक्षेप (Therapeutic Intervention)** की उन्नत समझ विद्यमान थी।

6.18 तक्षशिला के धातु-निर्मित शल्य-उपकरण और उनका विश्लेषण

इसके अतिरिक्त **तक्षशिला** से प्राप्त **शल्य-उपकरण (Surgical Instruments)** यह संकेत देते हैं कि धातु-निर्मित (Metal Implements) सूक्ष्म औजारों का प्रयोग चिकित्सा में किया जाता था। उत्खनन कार्य का नेतृत्व करने वाले **जॉन मार्शल** ने इन उपकरणों को शल्यक्रिया में प्रयुक्त होने वाला माना। इन उपकरणों में **द्विमुखी सुई (Double-Ended Needle), छेदन-औजार (Piercing**

Instrument) और **सूक्ष्म ड्रिल (Fine Drill)** सम्मिलित थे, जिनका प्रयोग **कर्ण, नासिका और दंत-चिकित्सा** में किया जाता होगा। यद्यपि सभी उपकरणों को निश्चित रूप से “**शल्य-उपकरण**” (**Surgical Instruments**) के रूप में वर्गीकृत करना सर्वसम्मत निष्कर्ष नहीं है, तथापि कुछ विद्वानों ने उनकी संरचना (Morphology) और सूक्ष्मता (Fine Craftsmanship) के आधार पर उन्हें चिकित्सा-संबंधी उपयोग से जोड़ा है। इन प्रकाशनों में वर्णित उपकरणों में **द्विमुखी सुई (Double-Ended Needle)**, **सूक्ष्म छेदन-औजार (Fine Piercing Instrument)** तथा **ड्रिल-आकृति (Drill-like Implements)** सम्मिलित हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि इनका प्रयोग **कर्ण-छेदन (Ear Piercing)**, **नासिका-भेदन (Nasal Piercing)** अथवा **दंत-चिकित्सा (Dental Procedures)** में किया जाता रहा होगा; जबकि अन्य इन्हें शिल्प-कला (Craft Activity) या अलंकरण-निर्माण (Ornamental Production) से भी संबंधित मानते हैं। अतः उपलब्ध जर्नल-साक्ष्य यह संकेत देते हैं कि तक्षशिला में धातु-निर्माण की उन्नत तकनीक विद्यमान थी।

इसी प्रकार कौशांबी से प्राप्त मृण-शिल्प (Terracotta Model) में मानव उदर (Abdomen) तथा छोटी-बड़ी आँतों का अंकन पाया गया है, जो यह संकेत देता है कि शरीर-रचना-विज्ञान (Anatomy) का शिक्षण मॉडल (Teaching Model) के माध्यम से कराया जाता था। यह पद्धति आधुनिक मेडिकल शिक्षा की प्रारंभिक झलक प्रस्तुत करती है।

6.19 कौशांबी के मृण-शिल्प और प्रारंभिक शरीर-रचना ज्ञान

कौशांबी से प्राप्त मृण-शिल्प (Terracotta Model) में मानव उदर (Abdomen) तथा आंत्ररचना (Intestinal Depiction) के अंकन का उल्लेख पुरातात्विक उत्खनन-रिपोर्टों में मिलता है, जो प्राचीन भारत की

शरीर-रचना संबंधी जिज्ञासा (**Anatomical Curiosity**) का संकेत देता है। इन प्रतिमाओं में वर्णित मृण-प्रतिमाओं की संरचना (**Structural Detailing**), उदर-भाग की रेखांकन-प्रणाली (**Abdominal Markings**) तथा आंत्र-सदृश आकृतियों (**Intestinal Motifs**) का विश्लेषण किया गया है। कुछ विद्वान इन आकृतियों को धार्मिक या सांस्कृतिक संदर्भ में प्रतीकात्मक निरूपण (**Symbolic Representation**) मानते हैं, जबकि अन्य शोधकर्ता इन्हें प्रारंभिक शरीर-विज्ञान बोध (**Proto-Anatomical Awareness**) का द्योतक मानते हैं। विशेष रूप से आंत्र-जाल जैसी संरचनाओं का अंकन यह दर्शाता है कि कलाकार को आंतरिक अंगों की रूपरेखा का कुछ न कुछ अनुभवजन्य ज्ञान अवश्य रहा होगा, जिसे उसने कलात्मक माध्यम से अभिव्यक्त किया। इस प्रकार ये मृण-शिल्प केवल सौंदर्यपरक (Aesthetic) कृतियाँ न होकर संभावित रूप से शैक्षिक या ज्ञान-प्रदर्शनात्मक माध्यम (**Didactic or Demonstrative Medium**) भी हो सकते हैं, जो प्राचीन चिकित्सा-चेतना की एक सूक्ष्म किन्तु महत्वपूर्ण झलक प्रस्तुत करते हैं। कुछ विद्वान इन्हें प्रतीकात्मक (Symbolic Representation) मानते हैं, जबकि अन्य इन्हें प्रारंभिक शरीर-ज्ञान (Proto-Anatomical Awareness) का संकेत मानते हैं।

इन समस्त प्रमाणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्राचीन भारत में शल्यचिकित्सा, अस्थि-चिकित्सा (**Orthopedics**), दंत-चिकित्सा तथा कपाल-शल्यक्रिया जैसी जटिल प्रक्रियाओं का सुविकसित ज्ञान विद्यमान था। अतः यह धारणा कि भारतीय चिकित्सा-विज्ञान पूर्णतः विदेशी प्रभाव का परिणाम है, ऐतिहासिक साक्ष्यों के आलोक में असंगत प्रतीत होती है। भारतीय आयुर्वेदिक परंपरा केवल दार्शनिक चिंतन तक सीमित नहीं रही, बल्कि उसने व्यावहारिक और वैज्ञानिक दृष्टि से भी चिकित्सा-विज्ञान को समृद्ध किया।

6.20 “आयुर्वेद की वैज्ञानिक एवं संस्थागत प्रासंगिकता”

आधुनिक एमबीबीएस (MBBS) की तरह आयुर्वेद (Ayurveda) भी केवल दवाइयों (Medicines) तक सीमित नहीं है, बल्कि यह शरीर-विज्ञान (Physiology), रोग-विज्ञान (Pathology) और पैथोलॉजी (Pathological Analysis) को समग्र रूप से समाहित करता है। इसके साथ-साथ आयुर्वेद में उपचार (Therapeutics), रोग-निवारण (Preventive Medicine), जीवनशैली प्रबंधन (Lifestyle Management) और आहार-विज्ञान (Dietary Science) पर विशेष बल दिया गया है। इसी कारण आयुर्वेद को झूठा विज्ञान (Pseudo-Science) कहना तथ्यात्मक रूप से अनुचित है; बल्कि यह एक सरकारी मान्यता प्राप्त चिकित्सा प्रणाली (Government-Recognized Medical System) है, जिसके अंतर्गत BAMS की डिग्री (Bachelor of Ayurvedic Medicine and Surgery), प्रशिक्षित चिकित्सक (Trained Physicians) और विशेषीकृत अस्पताल (Specialized Hospitals) व्यवस्थित रूप से कार्यरत हैं।

6.21 “प्राचीन भारतीय रसायन विज्ञान: पुरातात्विक साक्ष्य, शल्य-उपकरण और ज्ञान की सतत विकास-परंपरा”

प्रसिद्ध वैज्ञानिक (Scientist) और इतिहासकार (Historian) आचार्य प्रफुल्ल चंद्र रे (Prafulla Chandra Ray) ने अपनी सुप्रसिद्ध कृति “A History of Hindu Chemistry” में प्राचीन भारतीय रसायन विज्ञान (Ancient Indian Chemistry) का अत्यंत वैज्ञानिक, प्रामाणिक और आलोचनात्मक विश्लेषण (Scientific & Critical Analysis) प्रस्तुत किया है। यह ग्रंथ 1902 तथा 1909 में प्रकाशित हुआ, जिसमें उन्होंने संस्कृत ग्रंथों (Sanskrit Texts), रासायनिक विधियों (Chemical Procedures), अनुवादों (Translations) और दृश्य

साक्ष्यों (Illustrations) के माध्यम से यह स्पष्ट किया कि प्राचीन भारत में रसायन विज्ञान (Chemistry) केवल सैद्धांतिक नहीं, बल्कि प्रयोगधर्मी और विकसित विज्ञान (Experimental & Advanced Science) था। इस शोधकार्य के परिणामस्वरूप भारतीय विज्ञान (Indian Science) को पहली बार अंतरराष्ट्रीय अकादमिक मान्यता (International Academic Recognition) प्राप्त हुई। आचार्य प्रफुल्ल चंद्र रे ने अपने अध्ययन में पुरातात्विक प्रमाणों (Archaeological Evidence) का भी उल्लेख किया, जिनसे यह सिद्ध होता है कि सुश्रुत संहिता (Sushruta Samhita) में वर्णित शल्य एवं रासायनिक उपकरण (Surgical & Chemical Instruments) तक्षशिला विश्वविद्यालय के आसपास हुई खुदाइयों (Excavations) में प्राप्त हुए हैं। इन खोजों का संदर्भ प्रसिद्ध पुरातत्वविद् जॉन मार्शल (John Marshall) की रिपोर्टों में भी मिलता है। विशेष रूप से यह तथ्य अत्यंत रोचक है कि प्राचीन काल के रासायनिक पात्र (Chemical Vessels) आकार, संरचना और उपयोगिता में आज की लैब ग्लासवेयर (Laboratory Glassware) से अत्यधिक साम्यता (Structural Similarity) रखते हैं। यह समानता किसी प्रकार की “कॉपी” (Imitation) नहीं, बल्कि ज्ञान के सतत विकास (Continuous Development of Knowledge) का स्पष्ट प्रमाण (Proof) है, जिसमें प्राचीन वैज्ञानिक अवधारणाओं (Ancient Scientific Concepts) के आधार पर समय के साथ नई तकनीकों (New Techniques) का निर्माण और परिष्कार होता रहा

अध्याय 7

आयुर्वेद (चरक संहिता, सुश्रुत संहिता और अष्टांग हृदयम्)

आयुर्वेद में मांस का उल्लेख मिलता है या नहीं, यह समझने के लिए सबसे पहले यह जानना आवश्यक है कि हमारे ग्रंथों की **प्रामाणिकता (Authenticity)** और उनकी **श्रेणियाँ (Categories)** क्या हैं। इस संदर्भ में “**आर्ष (Arsha)**” और “**अनार्ष (Anarsha)**” का अंतर अत्यंत महत्वपूर्ण है। आर्ष ग्रंथ वे होते हैं जो ऋषियों द्वारा रचित माने जाते हैं, अतः वे **सत्यनिष्ठ (Truthful)**, मूल और प्रामाणिक होते हैं; जबकि अनार्ष ग्रंथ वे हैं जो बाद के काल में लिखे गए, जिनमें मूल सिद्धांतों के साथ **संशोधन (Modifications)**, **व्याख्याएँ (Interpretations)** तथा कभी-कभी **मिश्रित विचार (Mixed Ideas)** भी सम्मिलित हो जाते हैं। आयुर्वेद के प्रमुख ग्रंथ—**चरक संहिता (Charaka Samhita)**, **सुश्रुत संहिता (Sushruta Samhita)** और **अष्टांग हृदय (Ashtanga Hridaya)**—आर्ष परंपरा से जुड़े माने जाते हैं, जबकि बाद के ग्रंथ प्रायः **संकलन (Compilations)** के रूप में विकसित हुए हैं।

प्राचीन आयुर्वेदिक परंपरा में ज्ञान केवल लिखित रूप में सीमित नहीं था, बल्कि **संवाद (Dialogue)**, **संभाषा (Discussion)** और **परीक्षण (Experimentation)** के माध्यम से विकसित होता था। विभिन्न ऋषि एक ही विषय पर अपने-अपने मत प्रस्तुत करते थे और गहन विमर्श के पश्चात् एक **सारगर्भित निष्कर्ष (Substantive Conclusion)** तक पहुँचते थे। यह प्रक्रिया आज के **वैज्ञानिक विमर्श (Scientific Discourse)** के समान थी, जिससे स्पष्ट होता है कि आयुर्वेद एक **गतिशील विज्ञान (Dynamic Science)** था, न कि स्थिर और

अपरिवर्तनीय (Unchangeable) प्रणाली। समय के साथ ग्रंथों में **प्राचीनता (Antiquity)** के कारण **पाठभेद (Textual Variations)**, परिवर्तन तथा **प्रक्षिप्त अंश (Interpolated Parts)** भी जुड़ते गए।

ग्रंथों के **तिथि-निर्धारण (Dating)** में प्रायः **ज्योतिषीय गणनाएँ (Astronomical Calculations)** सहायक होती हैं। कई बार किसी ग्रंथ का प्रत्यक्ष प्रमाण प्रारंभिक काल में उपलब्ध नहीं होता, किंतु उसके **संदर्भ (References)** और **विवरण (Descriptions)** बाद के ग्रंथों में मिलते हैं, जिससे यह **निष्कर्ष (Conclusion)** निकाला जाता है कि उसकी **रचना (Composition)**, **टीका (Commentary)** और **संपादन (Editing)** पूर्वकाल में ही हो चुके थे।

चरक संहिता (Charaka Samhita) का मूल आधार **अग्निवेश तंत्र (Agnivesha Tantra)** है, जिसे ऋषि अग्निवेश ने रचा था। बाद में इसका **पुनर्संस्करण (Redaction)** और विस्तार चरक द्वारा किया गया तथा आगे चलकर द्रिडबल ने भी इसमें कुछ अंशों को पूर्ण किया, क्योंकि मूल ग्रंथ के कुछ भाग समय के साथ **नष्ट (Lost)** हो गए थे। इसी प्रकार, **अष्टांग हृदयम् (Ashtanga Hridayam)** के रचयिता वाग्भट्ट के ग्रंथों में कुछ ऐसे तत्वों का उल्लेख मिलता है, जो पूर्ववर्ती ग्रंथों में नहीं मिलते, जिससे उनके अपेक्षाकृत बाद के काल में रचित होने का संकेत मिलता है।

आयुर्वेद केवल औषधियों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह **जीवनशैली (Lifestyle)** और **अनुशासन (Discipline)** पर भी आधारित है। उदाहरण के लिए, **मधुमेह (Diabetes)** के संदर्भ में सुश्रुत संहिता में जीवन-पद्धति में परिवर्तन, परिश्रम और सादगी को उपचार का महत्वपूर्ण अंग माना गया है। आयुर्वेदिक ग्रंथों में सैकड़ों जड़ी-बूटियों का **वर्गीकरण (Classification)** किया गया है, जिनमें अधिकांश **शाकाहारी (Plant-based)** स्रोतों से संबंधित हैं। इन जड़ी-बूटियों के **गुण (Properties)**

आधुनिक विज्ञान द्वारा भी अनेक स्तरों पर **समर्थित (Supported)** पाए गए हैं।

आयुर्वेद में अनेक ऐसे प्रयोग और औषधीय निर्देश वर्णित हैं, जो आधुनिक व्यक्ति को **अद्भुत (Remarkable)** प्रतीत हो सकते हैं। कुछ ग्रंथों में **तांत्रिक प्रयोग (Tantric Practices)** जैसे विशिष्ट आयाम भी मिलते हैं, जो उस समय की विविध चिकित्सा पद्धतियों का संकेत देते हैं।

अतः समग्र रूप से देखा जाए तो आयुर्वेद एक व्यापक, बहुआयामी और विकसित ज्ञान-परंपरा है, जिसमें समय-समय पर विभिन्न स्तरों पर परिवर्तन, विस्तार और व्याख्या होती रही है। इसे समझने के लिए आवश्यक है कि हम इसके मूल ग्रंथों, उनकी **प्रामाणिकता (Authenticity)** और ऐतिहासिक संदर्भों का संतुलित एवं **तथ्यपरक (Evidence-based)** अध्ययन करें।

आयुर्वेद में **सूक्ष्म स्तर (Microscopic Level)** से संबंधित विचारों के संकेत मिलते हैं, जैसे **क्रोमोज़ोम (Chromosomes)** और **गर्भ विज्ञान (Embryology)** की अवधारणाएँ। अनेक ग्रंथों में **इंद्रिय औषधियाँ (Potent Medicines)** वर्णित हैं, जो अल्प मात्रा में ही प्रभाव दिखाती हैं। उदाहरणतः कुछ औषधियाँ कड़वी होती हैं और उनमें हल्का **विसर्जन प्रभाव (Laxative Effect)** पाया जाता है, जिन्हें अनुभव के आधार पर नियंत्रित किया जाता था। 18वीं शताब्दी के विद्वान गंगाधर तथा अन्य आयुर्वेदिक चिकित्सकों ने अपने प्रयोगों और ग्रंथों के माध्यम से चिकित्सा परंपरा को समृद्ध किया; उन्होंने अनेक संस्कृत ग्रंथों की रचना की, जिनके प्रभाव के व्यापक होने के उल्लेख भी मिलते हैं।

आयुर्वेद की एक प्रमुख **विशेषता (Feature)** यह है कि इसमें **औषधि परीक्षण (Drug Testing)** और **शल्य चिकित्सा (Surgery)** के लिए सुव्यवस्थित विधियाँ वर्णित हैं। Sushruta ने **शरीर रचना (Anatomy)**

को समझने हेतु क्रमबद्ध **विच्छेदन (Dissection)** की प्रक्रिया बताई, जिससे **अंग-प्रत्यंग (Organs)** और **रक्त वाहिकाएँ (Blood Vessels)** का सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त हो सके—यह एक स्पष्ट **वैज्ञानिक दृष्टिकोण (Scientific Approach)** को दर्शाता है। इसके अतिरिक्त, शल्य अभ्यास के लिए पशुओं का उपयोग अनिवार्य नहीं माना गया; उदाहरणतः **मोतियाबिंद (Cataract)** के अभ्यास हेतु पीपल के पत्ते का उपयोग कर **स्थिरता (Stability)** और **कौशल (Skill)** विकसित कराया जाता था, जो **अहिंसा (Non-violence)** आधारित **वैकल्पिक विधियाँ (Alternative Methods)** की ओर संकेत करता है। Charaka Samhita में चिकित्सक के लिए **अहिंसात्मक (Non-violent)** और **करुणाशील (Compassionate)** होना अनिवार्य बताया गया है, अर्थात् प्रत्येक **प्राणी (Living Being)** के प्रति दया-भाव रखना चाहिए।

वर्तमान समय में आयुर्वेद के नाम पर अनेक **भ्रामक प्रयोग (Misleading Practices)** और **अप्रमाणित औषधियाँ (Unverified Medicines)** प्रचलित हो रही हैं, जिससे चिकित्सा परंपरा के **भ्रष्ट (Corrupted)** होने का खतरा उत्पन्न हो गया है। अतः अध्ययन के लिए **प्रमाणिक ग्रंथ (Authentic Texts)** का सहारा लेना आवश्यक है, जैसे “चिकित्सा समरोदय”, तथा रोग-निदान के लिए लक्षणों के साथ **आधुनिक मेडिकल रिपोर्ट (Medical Reports)** की समझ भी जरूरी है। केवल पारंपरिक ज्ञान पर्याप्त नहीं; **आधुनिक चिकित्सा विज्ञान (Modern Medical Science)** की जानकारी उपचार को अधिक **सटीक (Accurate)** और **सुरक्षित (Safe)** बनाती है। उदाहरण के लिए, **पीलिया (Jaundice)** और **हेपेटाइटिस (Hepatitis)** के मामलों में यदि बिना विशेषज्ञता के कुछ **घृत-आधारित औषधियाँ (Ghee-based Medicines)** दी जाएँ, तो वे **हानिकारक (Harmful)** सिद्ध हो सकती हैं।

आयुर्वेद की प्राचीन पांडुलिपियाँ अपूर्ण रूप में प्राप्त होती हैं जैसे सुश्रुत संहिता की प्रतियाँ बंगाल और नेपाल से आंशिक रूप में प्राप्त हुई हैं। इसके बावजूद सिंधु घाटी सभ्यता से औषधीय ज्ञान के संकेत मिलते हैं। आज **जड़ी-बूटियाँ (Medicinal Herbs)** और आयुर्वेदिक संसाधनों का **संरक्षण (Preservation)** तथा सरकारी **सहयोग (Support)** अत्यंत आवश्यक है, अन्यथा यह परंपरा धीरे-धीरे **लुप्त (Extinct)** हो सकती है। आयुर्वेद केवल आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के लिए विकल्प नहीं, बल्कि एक **प्रभावशाली (Effective)** चिकित्सा प्रणाली है, जो विशेषकर बच्चों की सामान्य बीमारियों में **सुरक्षित (Safe)** और किफायती सिद्ध होती है।

आयुर्वेद में शरीर के **आंतरिक अंग (Internal Organs)** का वर्णन केवल **शारीरिक संरचना (Anatomy)** तक सीमित नहीं है, बल्कि उनके **कार्यात्मक (Functional)** और **चेतनात्मक (Psychophysiological)** आयामों के साथ किया गया है। Ashtanga Hridayam सहित प्रमुख ग्रंथों में यह स्पष्ट होता है कि शरीर, मन और चेतना को एक **समग्र दृष्टिकोण (Holistic Perspective)** के अंतर्गत समझा गया है।

7.1 मानव देह के प्रमुख आंतरिक अंगों का समन्वित कार्य: जीवन-धारण, पाचन, श्वसन, उत्सर्जन और प्रतिरक्षा की जैविक प्रणाली

7.1.1 हृदय (Heart) प्राण का आधार –

हृदय को प्राणायतन (प्राण का आधार) और चेतना का आसन कहा गया है। यह केवल रक्त-संचार (Circulation) का केन्द्र नहीं, बल्कि मन, बुद्धि और ओज का भी निवास-स्थान माना गया है।

आयुर्वेद में **हृदय (Heart)** की अवधारणा केवल एक **शारीरिक अंग (Physical Organ)** तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक **बहुआयामी जैव-दार्शनिक संकल्पना (Multidimensional Bio-Philosophical)**

Concept) है। संस्कृत व्याकरण के अनुसार “हृदय” शब्द तीन धातुओं (Verbal Roots) “हृ” (हरण करना / ग्रहण करना), “दा” (देना), हृद् (Grahana / To Receive), द (To Give) और य (To Propel or Move) “य” (गति या नियमन करना) से निर्मित है, जो इसके कार्यात्मक स्वरूप (Functional Nature) को स्पष्ट करता है। इस प्रकार हृदय वह अंग है जो रक्त और प्राण को ग्रहण करता है, वितरित करता है और सम्यक् गति प्रदान करता है। अतः ‘हृदय’ नाम उसके ग्रहण, वितरण और जीवन-नियमन के समन्वित कार्यों को अभिव्यक्त करता है। यह दर्शाता है कि आयुर्वेद में अंग-नामकरण केवल शरीर-विज्ञान तक सीमित नहीं, बल्कि द्रव्यात्मक (Material) और चेतनात्मक (Conscious) दोनों आयामों को समेटे हुए है। इस प्रकार हृदय शरीर और चेतना के मध्य सेतु (Bridge) के रूप में प्रतिष्ठित है।

आयुर्वेद में हृदय को प्राणायतन (प्राण का आधार), चेतना का आसन तथा ओज का मुख्य स्थान कहा गया है। जैविक स्तर पर हार्ट (Biological Heart) रक्त को ग्रहण (Reception) करता है, उसे पंप (Pumping Mechanism) के माध्यम से आगे प्रेषित (Transmission) करता है और पूरे शरीर में रक्त-संचार (Circulation) को गतिशील बनाए रखता है, जिससे जीवन-प्रणाली संतुलित (Homeostasis) रहती है। यह केवल रक्त-संचार का केंद्र नहीं, बल्कि मन (Mind), बुद्धि (Intellect) और भावनात्मक चेतना का भी आश्रय माना गया है। हृदय में स्थित ओज जीवन-ऊर्जा (Vital Essence) का प्रतिनिधित्व करता है; इसके क्षीण होने पर जीवन-शक्ति दुर्बल हो जाती है।

किन्तु आयुर्वेदिक और शास्त्रीय परंपरा में हृदय केवल यह एनाटॉमिकल संरचना (Anatomical Structure) नहीं है। जैसे सामान्य भाषा में कहा जाता है, “हृदय से धन्यवाद” यहाँ हृदय का आशय मन (Mind), भावना

(Emotion) और आंतरिक संवेदना (Inner Conscious Response) से होता है। वैदिक-शास्त्रीय ग्रंथों में हृदय को **मन, बुद्धि और चेतना (Mind–Intellect–Consciousness Complex)** का **केन्द्रीय आश्रय (Central Locus)** माना गया है। जिस प्रकार मन **विषयों को ग्रहण (Perception)** करता है, **त्याग (Rejection)** करता है और **विचारों को गति (Cognitive Flow)** देता है, उसी प्रतीकात्मक और कार्यात्मक अर्थ में **हृदय** शब्द का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार आयुर्वेद में **हृदय** की व्याख्या **द्विस्तरीय (Dual Interpretation)** है, एक ओर यह **जैविक अंग (Physiological Organ)** है, तो दूसरी ओर यह **भावनाओं, विचारों और संकल्पों (Emotions, Thoughts & Intentions)** का **केन्द्र (Psychological–Conscious Center)** भी है।

7.1.2 यकृत (Liver): शरीर का प्रमुख चयापचय एवं विषहरण अंग–

इसे रक्तधातु और पित्त के निर्माण एवं परिपाक से सम्बद्ध अंग माना गया है। यह चयापचय (Metabolism), रंजक पित्त (Bile Pigment) और रासायनिक रूपान्तरण का मुख्य केन्द्र है।

चरक संहिता तथा सुश्रुत संहिता में **यकृत (Yakṛt)** का उल्लेख केवल एक शारीरिक अंग के रूप में नहीं, बल्कि एक विशिष्ट **कार्यात्मक सत्ता (Functional Entity)** के रूप में किया गया है। 'यकृत' शब्द की **व्युत्पत्ति (Etymology)** पर विचार करें तो यह **“य” (गमन या प्रवाह का सूचक)** और **“कृत्” (करने वाला, निर्माण करने वाला)** धातु से सम्बन्धित माना जाता है। इस दृष्टि से यकृत वह अंग है जो निरन्तर **रक्तनिर्माण (Hematopoiesis)**, **रंजक पित्त-उत्पादन (Bile Pigment Formation)** तथा **चयापचय-क्रिया (Metabolic Processing)** को संपादित करता है। अर्थात् इसका नाम स्वयं इसके **कर्मप्रधान स्वरूप (Function-Centric Identity)** को व्यक्त करता

है। आयुर्वेद में यकृत को **रक्तधातु (Blood Tissue)** और **पित्तदोष (Biliary Principle)** का प्रमुख आश्रय माना गया है। यह शरीर की **रासायनिक रूपान्तरण-प्रक्रिया (Biochemical Transformation)** का केन्द्रीय स्थल है, जहाँ **पोषक अंशों का परिणाम (Metabolic Conversion)** होकर वे उपयोगी धातुओं में परिवर्तित होते हैं। यदि यकृत में **दोषदृष्टि (Pathological Derangement)** हो जाए तो **कामला (Jaundice-like Condition)**, **पाण्डु (Anemic Disorder)** अथवा **उदररोग (Hepato-Abdominal Disorders)** उत्पन्न हो सकते हैं।

इस प्रकार आयुर्वेद में 'यकृत' नाम मात्र **नामकरण (Nomenclature)** नहीं, बल्कि उसके **गुण (Qualitative Attributes)**, **कर्म (Physiological Functions)** और **द्रव्यात्मक-चेतनात्मक भूमिका (Material-Subtle Significance)** का द्योतक है। यह नाम इंगित करता है कि यह अंग केवल भौतिक (Physical) स्तर पर नहीं, बल्कि शरीर की **जीवनीय शक्ति (Vital Regulatory Intelligence)** के संचालन में भी सहभागी है। आयुर्वेद की यह **नाम-तत्त्वमीमांसा (Functional Nomenclatural Philosophy)** दर्शाती है कि प्रत्येक अंग का नाम उसकी आन्तरिक क्रियाशीलता और जीवन-समर्थन में उसकी अनिवार्य भूमिका को प्रकट करता है।

7.1.3 प्लीहा (Spleen): शरीर की प्रतिरक्षा और रक्त शोधन से संबंधित अंग-

प्लीहा को रक्त के भण्डारण और शोधन से जोड़ा गया है। आयुर्वेद में इसे रक्तदोषों से विशेष सम्बन्धित अंग माना गया है।

चरक संहिता तथा सुश्रुत संहिता के अनुसार **प्लीहा** को शरीर में **रक्तवह स्रोतस् (Hematological Channel)** का एक महत्त्वपूर्ण अंग माना गया है। आयुर्वेदिक दृष्टि से प्लीहा का कार्य केवल शारीरिक संरचना तक

सीमित नहीं, बल्कि यह रक्तधातु (Blood Tissue) के संचयन (Storage), परिशोधन (Purification) तथा संरक्षण (Preservation) से सम्बद्ध है। जब प्लीहा में विकृति उत्पन्न होती है, तब रक्तदोष (Vitiation of Blood) प्रकट होते हैं, जिनसे पाण्डु (Anemic Condition), कामला (Jaundice-like Disorder) अथवा प्लीहावृद्धि (Splenomegaly) जैसी अवस्थाएँ जन्म ले सकती हैं। आयुर्वेद में प्लीहा का सम्बन्ध विशेषतः पित्तदोष (Biliary-Metabolic Principle) और रक्तप्रसारण (Circulatory Regulation) से जोड़ा गया है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि यह अंग शरीर की आन्तरिक रक्त-संतुलन प्रणाली (Hematodynamic Balance) का नियामक है।

इस प्रकार आयुर्वेद में प्रत्येक अंग का नाम केवल नामकरण (Nomenclature) नहीं, बल्कि उसके गुण (Qualitative Attributes), कर्म (Physiological Functions) और द्रव्यात्मक-चेतनात्मक भूमिका (Material-Subtle Significance) का द्योतक है। यहाँ शरीर को एक समन्वित जैव-चेतन तंत्र (Integrated Psycho-Somatic System) के रूप में देखा गया है, जहाँ प्राण (Vital Energy), मन (Mind) और शरीर (Body) परस्पर अविभाज्य (Inseparable) हैं। यह दृष्टिकोण आधुनिक शरीर-विज्ञान (Modern Physiology) से भिन्न होते हुए भी एक समग्र चिकित्सकीय परिप्रेक्ष्य (Holistic Medical Paradigm) प्रस्तुत करता है, जिसमें प्रत्येक अंग भौतिक (Physical) के साथ-साथ सूक्ष्म (Subtle) स्तर पर भी सक्रिय माना जाता है।

7.1.4 आमाशय (Stomach): भोजन के पाचन और संग्रह का प्रमुख अंग-

यह अन्न के प्रथम पाचन (Primary Digestion) का स्थान है। यहाँ जठराग्नि क्रियाशील रहती है, जो समस्त धातुओं के पोषण का मूल है।

चरक संहिता और अष्टांग हृदयम् के अनुसार **आमाशय** केवल अन्न को रखने का थैला नहीं, बल्कि सम्पूर्ण शारीरिक संरचना का मूलाधार माना गया है। आयुर्वेद में इसे **अन्नवह स्रोतस्** का प्रमुख अंग कहा गया है, जहाँ **जठराग्नि (Digestive Fire)** निरंतर क्रियाशील रहती है। यही जठराग्नि अन्न को **रसधातु (Primary Nutrient Essence)** में परिवर्तित करती है, जो आगे चलकर क्रमशः **रक्त (Blood Tissue)**, **मांस (Muscle Tissue)**, **मेद (Adipose Tissue)**, **अस्थि (Bone Tissue)**, **मज्जा (Marrow/Nervous Tissue)** और **शुक्र (Reproductive Tissue)** का पोषण करती है। इस प्रक्रिया को **धातुपोषण क्रम (Sequential Tissue Nourishment Theory)** कहा जाता है।

आमाशय में होने वाली पाचन-क्रिया केवल भौतिक अपघटन नहीं, बल्कि एक सूक्ष्म **परिणामक प्रक्रिया (Transformative Metabolic Process)** है, जिसमें अन्न स्थूल (Gross) अवस्था से सूक्ष्म (Subtle) स्तर में परिवर्तित होता है। यदि जठराग्नि संतुलित रहे तो इसे **समाग्नि (Balanced Digestive State)** कहा जाता है, जिससे शरीर में ओज (Vital Essence) की वृद्धि होती है; परन्तु जब यह **अग्नि मंद (Low Metabolic Activity)** या **तीक्ष्ण (Hypermetabolic State)** हो जाती है, तब **अम (Toxic Undigested Residue)** उत्पन्न होता है, जो अनेक रोगों का मूल कारण माना गया है।

इस प्रकार आयुर्वेद में आमाशय को केवल स्टमक (Stomach) के रूप में नहीं, बल्कि सम्पूर्ण शारीरिक-मानसिक संतुलन के केन्द्र के रूप में देखा गया है। यह दृष्टिकोण आधुनिक **गैस्ट्रोइंटेस्टाइनल फिज़ियोलॉजी**

(Gastrointestinal Physiology) से भिन्न होते हुए भी उसे पूरक करता है, क्योंकि आज का विज्ञान भी **गट-ब्रेन ऐक्सिस (Gut-Brain Axis)** की अवधारणा के माध्यम से यह स्वीकार करता है कि पाचन-तंत्र का मानसिक स्वास्थ्य से गहरा संबंध है। अतः आयुर्वेद का आमाशय-विवेचन एक **समग्र (Holistic)** और **चेतनात्मक-भौतिक (Psycho-Somatic)** परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत करता है, जहाँ शरीर, मन और प्राण एकीकृत तंत्र के रूप में कार्य करते हैं।

7.1.5 पक्काशय (Large Intestine): जल अवशोषण और मल निर्माण का प्रमुख अंग –

इसे वात का मुख्य स्थान कहा गया है। मल-निर्माण और अवशोषण (Absorption) की प्रक्रिया यहाँ सम्पन्न होती है।

चरक संहिता तथा सुश्रुत संहिता के अनुसार **पक्काशय (Pakvāśaya / Large Intestine)** को **वातदोष (Vāta Principle)** का मुख्य अधिष्ठान कहा गया है। 'पक्काशय' शब्द की **व्युत्पत्ति (Etymology)** अत्यंत सारगर्भित है 'पक्क' अर्थात् पूर्णतः पका हुआ या परिपक्व (**Fully Processed**) और 'आशय' अर्थात् आश्रय या स्थान (**Abode / Reservoir**)। इस प्रकार पक्काशय वह स्थान है जहाँ **अन्न का अंतिम परिणाम (Final Transformation)** होकर वह **मल (Fecal Matter)** के रूप में व्यवस्थित होता है। यह नाम स्वयं संकेत करता है कि यहाँ पाचन-प्रक्रिया का **परिपाक-अवस्था (Terminal Digestive Stage)** सम्पन्न होती है।

आयुर्वेदिक मत में पक्काशय केवल **मल-निर्माण (Fecal Formation)** का स्थल नहीं, बल्कि **अवशोषण-क्रिया (Absorptive Function)** और **द्रव-संतुलन (Fluid Regulation)** का भी केन्द्र है। यही कारण है कि इसे वात का **मूलस्थान (Primary Seat of Vāta)** कहा गया है,

क्योंकि वात की गति (Movement), शोषण (Absorption) और निष्कासन (Elimination) की क्रियाएँ यहीं प्रमुख रूप से संपन्न होती हैं। यदि पक्काशय में वातप्रकोप (Aggravation of Vāta) हो जाए, तो अतिसार (Diarrheal Condition), ग्रहणीदोष (Malabsorption Syndrome), विबन्ध (Constipation) अथवा अध्मान (Abdominal Distension) जैसी विकृतियाँ उत्पन्न हो सकती हैं।

इस प्रकार आयुर्वेद में 'पक्काशय' नाम मात्र नामकरण (Nomenclature) नहीं, बल्कि उसके गुण (Qualitative Attributes), कर्म (Physiological Functions) और द्रव्यात्मक-चेतनात्मक भूमिका (Material-Subtle Significance) का द्योतक है। यह नाम दर्शाता है कि यह अंग शरीर की अपान-वायु (Downward Regulatory Energy) का प्रमुख केन्द्र है, जो निष्कासन (Excretion) के साथ-साथ सम्पूर्ण शारीरिक संतुलन (Systemic Homeostasis) को बनाए रखने में सहायक है। आयुर्वेद की यह नाम-तत्त्वमीमांसा (Functional Nomenclatural Philosophy) स्पष्ट करती है कि प्रत्येक अंग का नाम उसकी आन्तरिक क्रियाशीलता, दोष-संतुलन और जीवन-धारण (Life-Sustaining Mechanism) में उसकी अनिवार्य भूमिका को अभिव्यक्त करता है।

7.1.6 वृक्क (Kidneys): रक्त शोधन और मूत्र निर्माण का प्रमुख अंग-

यद्यपि आधुनिक अर्थ में 'किडनी' शब्द का प्रत्यक्ष उल्लेख सीमित है, परन्तु मूत्रवह स्रोतस् और बस्ति (Urinary System) के माध्यम से मूत्र-निर्माण और द्रव-संतुलन (Fluid Regulation) का वर्णन मिलता है।

चरक संहिता तथा सुश्रुत संहिता में आधुनिक अर्थों में 'किडनी' शब्द का प्रत्यक्ष, पृथक् शारीरिक-वर्णन सीमित मिलता है, तथापि **मूत्रवह स्रोतस् (Urinary Channels), बस्ति (Urinary Bladder System) तथा मेद और रक्तधातु से सम्बद्ध शोधन-क्रियाएँ (Metabolic Filtration Processes)** के माध्यम से वृक्क-सदृश संरचना और उसके कार्यों का संकेत स्पष्ट रूप से उपलब्ध होता है। 'वृक्क (Vṛkka)' शब्द की **व्युत्पत्ति (Etymology)** पर दृष्टि डालें तो यह धातु 'वृज्/वृक्' से सम्बद्ध माना जाता है, जिसका अर्थ है **अलग करना, छनना या मोड़कर पृथक् करना (To Separate / To Filter / To Divert)**. इस प्रकार 'वृक्क' वह अंग है **जो द्रव्यों का विभाजन (Selective Separation) और शोधन (Filtration)** करता है। नाम स्वयं इसके कर्मप्रधान स्वरूप (Function-Oriented Identity) को उद्घाटित करता है। आयुर्वेदिक परिप्रेक्ष्य में वृक्क शरीर के **द्रव-संतुलन (Fluid Homeostasis), मूत्र-निर्माण (Urine Formation) तथा अपद्रव्य-निष्कासन (Elimination of Metabolic Wastes)** की प्रक्रिया में सहायक माना गया है।

वृक्क का सम्बन्ध विशेषतः **अपान-वायु (Downward Regulatory Energy) तथा जलमहाभूत (Water Element Principle)** से जोड़ा जाता है, क्योंकि यह शरीर में द्रवों के संचलन और निष्कासन को नियंत्रित करता है। यदि इस तंत्र में दोषदृष्टि (**Pathophysiological Imbalance**) उत्पन्न हो जाए तो **मूत्रकृच्छ्र (Dysuria), अश्मरी (Renal Calculi / Kidney Stones) अथवा शोथ (Edematous Condition)** जैसी अवस्थाएँ विकसित हो सकती हैं। यह दर्शाता है कि यह अंग केवल भौतिक (**Physical Filtration Organ**) नहीं, बल्कि शरीर की **आन्तरिक शोधन-व्यवस्था (Internal Purificatory Mechanism) और द्रव-संतुलन** की सूक्ष्म नियामक शक्ति का प्रतिनिधि है। आयुर्वेद की यह नाम-तत्त्वमीमांसा (Functional Semantic

Philosophy) स्पष्ट करती है कि प्रत्येक अंग का नाम उसकी क्रिया, प्रकृति और जीवन-समर्थन में उसकी अनिवार्य भूमिका का दार्शनिक और चिकित्सकीय संकेत देता है।

7.1.7 बस्ति (Urinary Bladder): मूत्र के संग्रह और निष्कासन का प्रमुख अंग-

इसे मूत्र का संग्रह-स्थान (Reservoir of Urine) माना गया है और यह त्रिदोष, विशेषतः वात, के संतुलन में महत्वपूर्ण है।

चरक संहिता तथा सुश्रुत संहिता के अनुसार **बस्ति (Basti / Urinary Bladder)** को **मूत्रवह स्रोतस् (Urinary Channel System)** का प्रमुख अंग माना गया है। 'बस्ति' शब्द की **व्युत्पत्ति (Etymology)** संस्कृत धातु **"वस्"** (धारण करना, निवास देना **To Contain / To Dwell**) से सम्बद्ध मानी जाती है। इस दृष्टि से बस्ति वह अंग है जो **मूत्र का संग्रह (Reservoir Function)** और **धारण (Retention)** करता है। नाम स्वयं उसके धारणात्मक गुण (Containment Attribute) को अभिव्यक्त करता है, अतः यह मात्र नामकरण नहीं, बल्कि उसके कार्य-स्वरूप का द्योतक है।

आयुर्वेद में बस्ति को **त्रिदोष (Three Regulatory Principles)**, विशेषतः **वातदोष (Vāta Principle)** के संतुलन में अत्यंत महत्वपूर्ण माना गया है। बस्ति का सम्बन्ध विशेष रूप से **अपान-वायु (Downward Moving Vital Energy)** से है, जो निष्कासन (Elimination), उत्सर्जन (Excretion) और प्रजनन-क्रियाओं (Reproductive Functions) का नियमन करती है। यदि बस्ति में **दोषदृष्टि (Pathophysiological Imbalance)** उत्पन्न हो जाए, तो **मूत्रकृच्छ्र (Dysuria)**, **मूत्राघात (Urinary Retention)** अथवा **अश्मरी (Urinary Calculi)** जैसी विकृतियाँ प्रकट हो सकती हैं।

विशेष उल्लेखनीय है कि आयुर्वेदिक चिकित्सा में 'बस्ति-चिकित्सा (Medicated Enema Therapy)' को **अर्धचिकित्सा (Half of All Therapies)** कहा गया है, क्योंकि यह सीधे वात-संतुलन पर कार्य करती है। इससे स्पष्ट होता है कि 'बस्ति' केवल एक **भौतिक अंग (Physical Organ)** नहीं, बल्कि शरीर की **नियामक ऊर्जा-प्रणाली (Regulatory Energetic Mechanism)** का प्रमुख केन्द्र है। यह नाम इस तथ्य को रेखांकित करता है कि यह अंग केवल **मूत्र-संग्रह (Urine Storage)** तक सीमित नहीं, बल्कि सम्पूर्ण दोष-संतुलन (Systemic Dosha Homeostasis) और जीवन-ऊर्जा (Vital Regulation) की सूक्ष्म प्रक्रिया में भी सक्रिय सहभागी है।

7.1.8 फुफ्फुस (Lungs): श्वसन और गैसों के आदान-प्रदान का प्रमुख अंग-

प्राणवह स्रोतस् के अंग के रूप में **श्वसन (Respiration)** और प्राण-विनिमय से सम्बन्धित हैं।

चरक संहिता तथा सुश्रुत संहिता में **फुफ्फुस (Phupphusa / Lungs)** को **प्राणवह स्रोतस् (Respiratory Channels)** का प्रमुख अंग माना गया है। यद्यपि आयुर्वेद में श्वसन-तंत्र का वर्णन आधुनिक शारीरिक-विज्ञान की भाँति सूक्ष्म संरचनात्मक (Structural Anatomy) रूप में नहीं मिलता, तथापि **प्राण-गमन (Vital Air Movement)**, **उच्छ्वास-निःश्वास (Inhalation-Exhalation)** तथा **प्राण-परिवहन (Vital Energy Circulation)** की संकल्पना के माध्यम से फुफ्फुस की भूमिका स्पष्ट की गई है। 'फुफ्फुस' शब्द ध्वन्यात्मक (Onomatopoeic) प्रकृति का माना जाता है, जो श्वास की ध्वनि और वायु-गमन की प्रक्रिया का संकेत देता है। यह नाम स्वयं उस अंग की **स्पंदनात्मक गति (Rhythmic Expansion and Contraction)** और **वायु-विनिमय क्रिया (Air Exchange Function)** को अभिव्यक्त करता है। इस प्रकार 'फुफ्फुस' केवल एक

भौतिक अंग (Physical Respiratory Organ) का नाम नहीं, बल्कि प्राण-प्रवाह (Vital Breath Flow) के केन्द्र का द्योतक है।

आयुर्वेदिक दृष्टि से फुफ्फुस का सम्बन्ध विशेषतः **प्राणवायु (Primary Vital Air)** और **उदानवायु (Ascending Regulatory Energy)** से है, जो चेतना (Consciousness), वाणी (Speech) और जीवन-ऊर्जा (Vitality) के संचालन में सहायक हैं। यदि इस तंत्र में **दोषदुष्टि (Pathophysiological Imbalance)** उत्पन्न हो जाए, तो श्वास (Dyspnea / Asthmatic Condition), कास (Cough Disorder) अथवा क्षय (Consumptive Condition) जैसी विकृतियाँ प्रकट हो सकती हैं। यह दर्शाता है कि यह अंग केवल ऑक्सीजन-आदान-प्रदान (Gas Exchange Mechanism) तक सीमित नहीं, बल्कि शरीर की जीवन-संचारिणी शक्ति (Life-Sustaining Vital Force) और चेतन-ऊर्जा (Conscious Vital Energy) के प्रवाह का मूलाधार भी है। आयुर्वेद की यह नाम-तत्त्वमीमांसा (Functional Semantic Philosophy) स्पष्ट करती है कि प्रत्येक अंग का नाम उसकी आन्तरिक क्रियाशीलता और जीवन-समर्थन में उसकी अनिवार्य भूमिका को अभिव्यक्त करता है।

7.1.9 पित्ताशय (Gall Bladder): पित्त के संग्रह और स्राव का सहायक अंग-

पित्त का आश्रय (Bile Reservoir) माना गया है, जो पाचन में सहायक है। चरक संहिता तथा सुश्रुत संहिता के आयुर्वेदिक सिद्धान्तों के अनुसार **पित्ताशय (Pittāsaya / Gall Bladder)** को **पित्तदोष (Biliary Metabolic Principle)** का प्रमुख आश्रय (Abode) माना गया है। 'पित्ताशय' शब्द दो पदों से मिलकर बना है 'पित्त' अर्थात् दाह, ऊष्मा और रूपान्तरण की शक्ति (Transformative Bio-energy) तथा 'आशय' अर्थात् आश्रय या धारण करने वाला स्थान (Reservoir /

Receptacle)। इस प्रकार 'पित्ताशय' नाम स्वयं यह उद्घाटित करता है कि यह अंग **पित्त के संग्रह (Storage) और नियमन (Regulation)** का केन्द्र है। यह केवल एक संरचनात्मक थैली (Physical Sac) नहीं, बल्कि शरीर की **पाचनाग्नि-सहायक प्रणाली (Digestive Support Mechanism)** का अंग है।

आयुर्वेदिक दृष्टि से पित्ताशय का सम्बन्ध विशेषतः **जठराग्नि (Digestive Fire)** तथा **रंजक पित्त (Bile Pigment Function)** से है, जो अन्न के **सूक्ष्मीकरण (Biochemical Breakdown)** और **स्निग्ध द्रव्यों के पाचन (Fat Metabolism)** में सहायक होते हैं। यदि पित्ताशय में **दोषदृष्टि (Pathophysiological Imbalance)** उत्पन्न हो जाए, तो **पित्तप्रकोप (Biliary Aggravation)**, **अम्लपित्त (Acid-Peptic Disorder)** अथवा **अश्मरी (Gall Stones)** जैसी विकृतियाँ उत्पन्न हो सकती हैं। यह नाम यह संकेत देता है कि यह अंग केवल **पित्त का भौतिक भण्डार (Bile Reservoir)** नहीं, बल्कि शरीर की **रूपान्तरण-शक्ति (Metabolic Transformative Force)** और **पाचन-संतुलन (Digestive Homeostasis)** के सूक्ष्म नियमन में भी सक्रिय सहभागी है। आयुर्वेद की यह नाम-तत्त्वमीमांसा (Functional Semantic Philosophy) स्पष्ट करती है कि प्रत्येक अंग का नाम उसकी आन्तरिक क्रियाशीलता और जीवन-समर्थन में उसकी अनिवार्य भूमिका को अभिव्यक्त करता है।

7.1.10 देह (Body): समस्त अंगों और प्रणालियों से मिलकर बना जीवित संरचनात्मक तंत्र-

चरक संहिता तथा सुश्रुत संहिता के आयुर्वेदिक सिद्धान्तों में **देह (Body)** शब्द अत्यंत गूढ़ और दार्शनिक महत्त्व रखता है।

संस्कृत में “शरीर”, “देह”, “कलेवर” और “काय” जैसे शब्द केवल पर्यायवाची नहीं, बल्कि मानव अस्तित्व के विभिन्न स्वरूप-धर्म (Ontological Attributes) को उद्घाटित करने वाले दार्शनिक संकेतक हैं। “शरीर” शब्द की व्युत्पत्ति “श्रि/क्षर” धातु से मानी जाती है, जिसका तात्पर्य है क्षरणशीलता (Perishability) अर्थात् जो निरंतर जीर्ण-शीर्ण होता रहता है। यही भाव भगवद्गीता में “अन्तवन्त इमे देहाः” के माध्यम से व्यक्त हुआ है कि देह नश्वर है, परन्तु आत्मा अविनाशी। आधुनिक जीवविज्ञान (Biology) भी यह स्वीकार करता है कि शरीर की प्रत्येक कोशिका कोशिकीय अपघटन (Cellular Degeneration) और अपोप्टोसिस (Programmed Cell Death) की प्रक्रिया से गुजरती है; अर्थात् शरीर का क्षरण उसका स्वाभाविक धर्म है। इस प्रकार “शरीर” शब्द हमें उसके अनित्यत्व (Impermanence) के प्रति सजग करता है।

‘देह’ शब्द संस्कृत धातु “दिह्” (लेप करना, आकार देना, गूँथना (To Anoint / To Form / To Mold) से व्युत्पन्न माना जाता है। “देह” शब्द “दिह्/देह” धातु से सम्बद्ध है, जिसका एक प्रमुख अर्थ है उपचय (Accumulation/Compilation)। देह कोई “एकसाचा निर्मित खंड (Single Molded Unit)” नहीं, इस व्युत्पत्ति के अनुसार देह वह है जो पंचमहाभूतों (Five Great Elements) पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश के संयोग से “गठित” (Formed) और “लेपित” (Structured) संग्रहात्मक संरचना (Composite Structure) हुआ है। आयुर्वेद इसे सप्तधातुओं रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र की क्रमिक परिपोषण-श्रृंखला के रूप में देखता है। अर्थात् देह केवल मांस-मज्जा का ढाँचा नहीं, बल्कि प्रकृति के तत्त्वों से निर्मित एक सजीव संरचना (Living Composite Structure) है। आयुर्वेद में देह को धातु (Tissues), मल (Waste Products) और दोष (Regulatory Bio-energies) के संतुलित समुच्चय के रूप में परिभाषित किया गया

है। यह केवल भौतिक शरीर (Physical Body) नहीं, बल्कि प्राण (Vital Energy), मन (Mind) और आत्मा (Conscious Principle) का आश्रय (Abode) भी है। इसलिए देह को क्षेत्र (Field of Experience) कहा गया है, जहाँ चेतना (Consciousness) अपनी अभिव्यक्ति करती है। आधुनिक शरीर-विज्ञान (Human Physiology) में भी शरीर को विभिन्न ऊतक-प्रणालियों (Tissue Systems) और जैव-रासायनिक संघटनों (Biochemical Assemblies) का परिणाम माना जाता है। कोशिकाएँ प्रोटीन, लिपिड, कार्बोहाइड्रेट और न्यूक्लिक अम्लों के संयोजन से बनती हैं; अतः देह वास्तव में एक असेंबल्ड बायोलॉजिकल मैट्रिक्स (Assembled Biological Matrix) है।

देह का महत्त्व इस तथ्य में निहित है कि यह निरंतर परिणामशील (Ever-Transforming) है, इसमें चयापचय (Metabolism), धातुपरिवर्तन (Tissue Transformation) और नवीनता-सृजन (Cellular Regeneration) की प्रक्रियाएँ सतत चलती रहती हैं। यदि दोषों में असंतुलन (Dosha Imbalance) उत्पन्न हो, तो देह रोगग्रस्त (Pathological State) हो जाती है; और जब दोष-धातु-मल सम्यक् (Balanced) रहते हैं, तब इसे स्वास्थ्य (State of Equilibrium) कहा जाता है। यह दर्शाता है कि देह एक समन्वित जैव-चेतन तंत्र (Integrated Psycho-Somatic System) है, जहाँ स्थूल (Gross Physical) और सूक्ष्म (Subtle Energetic) आयाम परस्पर अविभाज्य (Inseparable) हैं। इस प्रकार 'देह' शब्द स्वयं इस सत्य को अभिव्यक्त करता है कि शरीर केवल पदार्थ (Matter) नहीं, बल्कि चेतना से ओत-प्रोत (Consciousness-Infused) जीवित सत्ता है।

देह-धातु का दूसरा अर्थ है वृद्धि (Growth/Expansion)। जन्म के पश्चात् शरीर निरंतर पोषण ग्रहण कर आकार-प्रकार में परिवर्तन करता है। यह प्रक्रिया आधुनिक विज्ञान में मेटाबॉलिज़्म (Metabolism) और

सेलुलर प्रोलिफरेशन (Cellular Proliferation) के माध्यम से समझाई जाती है। किंतु यह वृद्धि अनंत नहीं; एक सीमा के पश्चात शरीर स्थिरता (Homeostasis) प्राप्त करता है और फिर क्रमशः क्षीणता की ओर अग्रसर होता है। यह द्वंद्व, वृद्धि और क्षय **ऊष्मागतिकी के द्वितीय नियम (Second Law of Thermodynamics)** से तुलनीय है, जिसके अनुसार प्रत्येक भौतिक प्रणाली में **एंट्रॉपी (Entropy/Disorder)** की वृद्धि अनिवार्य है।

देह-धातु का तृतीय अर्थ है **आवरण (Covering/Sheath)**। शरीर आत्मा का **कोष (Encasement)** है, जो चेतना को आच्छादित कर रखता है। उपनिषदों में पंचकोश अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय की परिकल्पना इसी आवरण-तत्त्व का दार्शनिक निरूपण है। आधुनिक न्यूरोसाइंस (Neuroscience) चेतना को मस्तिष्क की जटिल प्रक्रियाओं से जोड़ता है, परंतु अभी भी **चेतना की कठिन समस्या ("Hard Problem of Consciousness")** का समाधान नहीं कर पाया है अर्थात् भौतिक संरचना से अनुभूति (Subjective Experience) कैसे उत्पन्न होती है। वैदिक दृष्टि कहती है कि चेतना मूल सत्ता है और शरीर उसका उपकरण (Instrument) है; विज्ञान कहता है कि शरीर (विशेषतः मस्तिष्क) चेतना का उत्पादक है। यह मूलभूत दार्शनिक भेद **चेतन-प्रधानता (Primacy of Consciousness)** और **पदार्थ-प्रधानता (Material Primacy)** के मध्य है।

इस प्रकार "शरीर" हमें क्षरण की स्मृति देता है, "देह" संघटन और वृद्धि का बोध कराता है, "कलेवर" परिवर्तनशील बाह्य संरचना (Mutable Exterior Form) का संकेत है, और "काय" क्रियाशील सत्ता (Functional Organism) का द्योतक है। संस्कृत की यह **अनुभूतिपरक भाषा (Experiential Linguistic Framework)** मनुष्य को केवल संप्रेषण (Communication) तक सीमित नहीं रखती, बल्कि उसे आत्म-सजगता

(Self-Awareness) की गहराइयों में उतरने के लिए बाध्य करती है। आधुनिक विज्ञान जहाँ शरीर को एक **बायो-मैकेनिकल सिस्टम (Biomechanical System)** के रूप में देखता है, वहीं वैदिक दर्शन उसे **चेतन-अधिष्ठित उपकरण (Consciousness-Based Vehicle)** मानता है।

अंततः जब देह नष्ट होती है, तो वह पुनः पंचमहाभूतों में विलीन हो जाती है यह सिद्धांत आधुनिक रसायन-विज्ञान (Chemistry) के **द्रव्य संरक्षण नियम (Law of Conservation of Matter)** से साम्य रखता है, जिसके अनुसार पदार्थ न तो उत्पन्न होता है, न नष्ट, केवल रूपांतरित होता है। परंतु वैदिक निष्कर्ष इससे आगे जाकर कहता है कि रूपांतर केवल पदार्थ का नहीं, अनुभव का भी है, देह क्षरित होती है, पर आत्मा न क्षरित होती है, न विनष्ट। यही बोध मनुष्य को नश्वरता के मध्य भी अमरता की खोज की ओर प्रेरित करता है।

7.2 “प्राचीन आयुर्वेद में सूक्ष्म जैविक चिंतन: कोशिका एवं ऊतक संबंधी अवधारणाओं का दार्शनिक-वैज्ञानिक विश्लेषण”

यही कारण है कि भारतीय दर्शन में प्रत्येक तत्त्व को त्रिविध दृष्टिकोण से देखा जाता है, **आधिभौतिक (Physical/Material Interpretation)**, **आधिदैविक (Cosmic/Subtle Interpretation)** और **आध्यात्मिक (Spiritual Interpretation)**। यदि वेदों या किसी भी शास्त्र का भाष्य किया जाए, तो ये तीनों प्रकार के **व्याख्यान (Interpretative Frameworks)** संभव हैं। जो व्यक्ति भौतिक चेतना-स्तर पर स्थित है, वह आधिभौतिक अर्थ ग्रहण करेगा; जिसकी दृष्टि सूक्ष्म शक्तियों की ओर उन्मुख है, वह आधिदैविक अर्थ देखेगा; और जिसकी चेतना अंतर्मुख होकर आत्मतत्त्व में स्थित है, वह आध्यात्मिक अर्थ का निरूपण करेगा। अतः किसी एक शब्द का केवल एक ही अर्थ स्थिर नहीं होता। अर्थ का स्वरूप साधक की **चेतनास्थिति (State of Consciousness)** और

दृष्टिकोण (Cognitive Orientation) पर निर्भर करता है। "शरीर" और "देह" जैसे शब्द भी केवल जैविक संरचना के द्योतक नहीं, बल्कि जीवन-दर्शन की गहन परतों को उद्घाटित करने वाले दार्शनिक संकेत हैं। यही आयुर्वेद और भारतीय शास्त्रों की **बहुस्तरीय अर्थ-संरचना (Multi-layered Semantic Structure)** की विशेषता है।

अब प्रश्न उठता है कि बिना **आधुनिक उपकरणों (Modern Instruments)** जैसे **माइक्रोस्कोप (Microscope)** या समकालीन प्रयोगशालाओं के प्राचीन ऋषियों में इतनी सूक्ष्म समझ कैसे विकसित हुई? इसका उत्तर प्राचीन ऋषियों की **सूक्ष्म अवलोकन क्षमता (Microscopic Observation Ability)**, **तर्कशीलता (Rational Reasoning)** और **अनुभवजन्य ज्ञान (Empirical Wisdom)** में निहित है। इसी कारण संस्कृत साहित्य में **कोशिका (Cell)** और **ऊतक (Tissue)** जैसे सूक्ष्म संरचनात्मक शब्द मिलते हैं, जबकि **कोशिका** नग्न नेत्रों से दिखाई नहीं देती। फिर भी उसका नामकरण, गुणधर्म और कार्य की अवधारणा का अस्तित्व यह सिद्ध करता है कि प्राचीन भारत में **सूक्ष्म जैविक चिंतन (Micro-Biological Thought)** और **वैज्ञानिक दृष्टि (Scientific Temper)** अत्यंत विकसित थी। यहाँ एक **महत्वपूर्ण बौद्धिक प्रश्न (Crucial Intellectual Question)** उठता है क्या हम प्राचीन ग्रंथों में प्रयुक्त शब्दों को केवल **आधुनिक विज्ञान (Modern Science)** के चश्मे से देखकर ही अर्थ दे रहे हैं? निस्संदेह, आज के संदर्भ में **"कोशिका (Cell)"** जैसे आधुनिक शब्दों के माध्यम से प्राचीन अवधारणाओं को समझना **सुविधाजनक (Convenient)** है, किंतु **ऐतिहासिक प्रमाण (Historical Evidence)** यह संकेत देते हैं कि उस काल में केवल **शब्दावली (Terminology)** ही नहीं, बल्कि **व्यावहारिक एवं प्रयोगसिद्ध ज्ञान (Practical and Empirical Knowledge)** भी विद्यमान था। यदि यह ज्ञान मात्र प्रतीकात्मक होता, तो **चिकित्सकीय**

अभ्यास (Medical Practice), शल्य-प्रक्रियाएँ (Surgical Procedures) और औषधीय प्रयोग (Pharmacological Applications) इतनी व्यवस्थित और प्रभावी न हो पातीं।

अंग-प्रत्यंग (Anatomical Components) के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारत में **मानव शरीर-विज्ञान (Human Anatomy)** की अत्यंत गहन समझ (**Profound Understanding**) थी। केवल **हड्डियों की संख्या (Osteology)** का ही नहीं, बल्कि **स्नायुबंधन / लिगामेंट्स (Ligaments)** अर्थात् हड्डियों को आपस में जोड़ने वाले **संयोजी ऊतक (Connective Tissues)** का भी स्पष्ट उल्लेख मिलता है। यह इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि उस समय **शरीर-विज्ञान (Physiology)** और **जीव-विज्ञान (Biology)** को केवल स्थूल रूप में नहीं, बल्कि **कार्यात्मक और संरचनात्मक (Functional & Structural)** दोनों स्तरों पर समझा गया था।

यद्यपि उस युग की **वर्गीकरण-पद्धति (Classification System)** आज की आधुनिक वैज्ञानिक प्रणाली से भिन्न थी, तथापि इसके **मूल सिद्धांत (Core Concepts)** आधुनिक विज्ञान से गहराई से **सामंजस्य (Correlation)** रखते हुए प्रतीत होते हैं।

अध्याय 8

दर्शन और वैदिक विज्ञान: ऋषि, सूत्र और वैज्ञानिक उलझन

मानव-जीवन की वास्तविक सार्थकता केवल ज्ञानार्जन (Knowledge Acquisition) और शोधपरक उपलब्धियाँ (Research Achievements) तक सीमित नहीं है, अपितु यह एक समग्र जीवन-दर्शन (Holistic Philosophy) का विषय है, जिसमें सम्यक् जीवन-पद्धति (Balanced Lifestyle), आचरण-संयम (Self-Discipline) तथा उत्तरदायित्व-बोध (Sense of Responsibility) का संतुलित समावेश आवश्यक है। आधुनिक युग में, जहाँ युवा-वर्ग प्रायः क्षणभंगुर मनोरंजन-प्रधान जीवनशैली (Transient Entertainment-Oriented Lifestyle) जैसे क्लब, रात्रिकालीन उत्सव, मद्यपान एवं असंयमित प्रवृत्तियाँ (Unrestrained Behavior) की ओर आकृष्ट होता है, वहाँ यह समझना अनिवार्य हो जाता है कि वास्तविक आनंद केवल तात्कालिक सुख (Temporary Pleasure) नहीं, बल्कि दीर्घकालिक शारीरिक सुदृढ़ता (Long-Term Physical Stability), मानसिक प्रशांति (Mental Peace) तथा सामाजिक समरसता (Social Harmony) में निहित है। वैज्ञानिक दृष्टि से भी यह प्रमाणित है कि अनियमित दिनचर्या (Irregular Routine), नशाप्रवणता (Substance Dependence) तथा आवेगशील प्रवृत्तियाँ (Impulsive Tendencies) मस्तिष्क में न्यूरोलॉजिकल असंतुलन (Neurological Imbalance), हार्मोनल विकृति (Hormonal Disturbance) एवं मनोवैज्ञानिक विकार (Psychological Disorders) उत्पन्न करती हैं, जिससे संज्ञानात्मक क्षमता (Cognitive

Ability) एवं **निर्णय-शक्ति (Decision-Making Capacity)** प्रभावित होती है। उपर्युक्त समस्याओं (Problems) के समाधान (Solution) के रूप में **गुरुकुल-शिक्षा प्रणाली (Gurukul Education System)** एक अत्यंत प्रभावी (highly effective) और समग्र (holistic) विकल्प के रूप में उभरती है। प्राचीन भारतीय परंपरा में गुरुकुल केवल ज्ञानार्जन (knowledge acquisition) का केंद्र नहीं था, बल्कि यह **जीवन-निर्माण (character building)** और **व्यक्तित्व-विकास (personality development)** का सशक्त माध्यम भी था।

8.1 “प्राचीन भारत की वैज्ञानिक विरासत: मिथक या वास्तविकता?”

आज के समय में हम **प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा** को पुनः समझने तथा उससे जुड़े **भ्रम (Misconceptions)** को दूर करने का प्रयास कर रहे हैं। हमारा उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि **भारतीय गुरुकुल परंपरा** एवं पारंपरिक ज्ञान प्रणालियों में **वैज्ञानिक दृष्टि (Scientific Outlook)** अंतर्निहित रही है। इस राष्ट्र में जो **विचारधारा (Ideology)** प्रसारित होनी चाहिए, वह **वैदिक दर्शन (Vedic Philosophy)** पर आधारित होनी चाहिए, क्योंकि वर्तमान युग में वेद ऐसे **ग्रंथ (Scriptures)** प्रतीत होते हैं जो आधुनिक भारत की दिशा और स्थिति को समझाने में सक्षम हैं। **जैमिनी के पूर्व मीमांसा सूत्र** का प्रथम वाक्य “अथातो धर्म जिज्ञासा” यह संकेत देता है कि अब **धर्म के गूढ़ तत्वों (Profound Aspects)** को जानने की जिज्ञासा करनी चाहिए। वेद, उपनिषद, ब्राह्मण ग्रंथ, रामायण एवं महाभारत जैसे समस्त ग्रंथ **धर्म के बहुआयामी स्वरूप (Multidimensional Nature)** को स्पष्ट करते हैं। अतः धर्म कोई सरल अवधारणा (**Simplistic Concept**) नहीं, बल्कि एक दीर्घकालिक अध्ययन (**Long-term Inquiry**) एवं अनुभव का विषय है।

जब हम वेद एवं प्राचीन परंपराओं का अवलोकन करते हैं, तो वे एक **समग्र ज्ञान-तंत्र (Comprehensive Knowledge System)** के रूप में उभरते हैं, जिसमें **भौतिक यथार्थ (Material Reality)** तथा **आध्यात्मिक आयाम (Spiritual Dimensions)** दोनों का समावेश होता है। **ध्यान, उपासना एवं सूर्योपासना** जैसे अनुष्ठान, जिन्हें प्रायः **अंधविश्वास (Superstition)** समझ लिया जाता है, वास्तव में **जैविक लय संतुलन (Biological Rhythm Regulation)**, **मानसिक एकाग्रता (Mental Focus Enhancement)** एवं **तनाव-नियंत्रण (Stress Reduction)** में सहायक होते हैं। यद्यपि समय के साथ इनमें **लोक-सांस्कृतिक तत्व (Folk Elements)**, **सांस्कृतिक अनुकूलन (Cultural Adaptations)** एवं **पाठ-परिवर्तन (Textual Alterations)** सम्मिलित हो गए, जिसके कारण इनके मूल स्वरूप को समझने हेतु **ऐतिहासिक विश्लेषण (Historical Analysis)**, **पाठालोचन (Textual Criticism)** एवं **तार्किक मूल्यांकन (Rational Evaluation)** आवश्यक हो जाता है।

प्राचीन **वैदिक सभ्यता (Vedic Civilization)** में ज्ञान एवं विज्ञान अत्यंत **उन्नत अवस्था (Advanced State)** में थे, विशेषकर **महाभारत काल** से पूर्व। युद्ध के उपरान्त सामाजिक एवं राजनीतिक परिवर्तनों के कारण इस ज्ञान परंपरा का धीरे-धीरे **हास (Decline)** हुआ। बाद में इसे पुनर्जीवित करने के प्रयास भी हुए, जिनमें **नालन्दा विश्वविद्यालय** एक प्रमुख उदाहरण है, जो **दर्शन, गणित, चिकित्सा एवं खगोलशास्त्र** का विश्वविख्यात केंद्र था। किंतु आक्रमणों के दौरान इसके **विशाल पुस्तकालय (Vast Libraries)** एवं **पांडुलिपियाँ (Manuscripts)** नष्ट हो गईं, जिससे भारतीय ज्ञान परंपरा को **गंभीर क्षति (Severe Loss)** पहुँची।

भारतीय ज्ञान-परंपरा में ऋषि एवं मुनि केवल धार्मिक व्यक्तित्व नहीं, बल्कि सत्य-अन्वेषी (Seekers of Truth), ज्ञानसाधक (Knowledge Practitioners) एवं समाज के मार्गदर्शक थे। उनका जीवन अनुभवजन्य ज्ञान (Experiential Knowledge), तार्किक विश्लेषण (Logical Analysis) एवं अंतर्दृष्टि (Inner Insight) पर आधारित था, जो आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति (Scientific Method) से साम्य रखता है। सुश्रुत एवं चरक के योगदान यह सिद्ध करते हैं कि प्राचीन भारतीय ज्ञान केवल आध्यात्मिक ही नहीं, बल्कि व्यावहारिक (Practical) एवं वैज्ञानिक (Scientific) भी था। इसी संदर्भ में कहा जाता है कि “हर ऋषि वैज्ञानिक हो सकता है, किंतु हर वैज्ञानिक ऋषि नहीं।”

धर्म (Dharma) की अवधारणा अत्यंत गूढ़ (Profound), सूक्ष्म (Subtle) एवं सार्वभौमिक सिद्धांत (Universal Principle) है, जो समस्त सृष्टि में संतुलन (Balance) एवं सामंजस्य (Harmony) स्थापित करता है। ‘धर्म’ शब्द धृ धातु से उत्पन्न होकर धारण करने वाली शक्ति (Sustaining Force) का बोध कराता है। यह केवल मानव तक सीमित नहीं, बल्कि प्रकृति, पशु एवं ब्रह्मांड (Universe) के प्रत्येक कण में कार्यरत नियम है। इसी कारण कहा गया है “वेदोऽखिलो धर्ममूलम्”, अर्थात् वेद धर्म का मूल स्रोत हैं।

वेदों का स्वरूप केवल शब्दों तक सीमित नहीं, बल्कि स्पंदन (Cosmic Vibration) एवं नाद (Primordial Sound) के रूप में संपूर्ण सृष्टि में व्याप्त है। नटराज की संकल्पना इस निरंतर गति एवं ऊर्जा के प्रतीक के रूप में समझी जाती है। यह दर्शाती है कि सृष्टि का प्रत्येक कण सतत गतिशील (Dynamic) एवं ऊर्जायुक्त (Energetic) है।

विज्ञान का वास्तविक अर्थ केवल भौतिक प्रयोगों (Physical Experiments) तक सीमित नहीं, बल्कि यह समग्र ज्ञान (Holistic

Knowledge) है, जिसमें **परा ज्ञान (Transcendental Knowledge)** एवं **अपरा ज्ञान (Empirical Knowledge)** दोनों सम्मिलित होते हैं। आधुनिक विज्ञान जहाँ मुख्यतः **भौतिकवादी दृष्टिकोण (Materialistic Approach)** तक सीमित है, वहीं वैदिक दृष्टि **चेतना (Consciousness)** एवं **आत्मा (Soul)** को भी समान महत्व देती है।

जब यह ज्ञान समाज में प्रवाहित होता है, तो उसका प्रभाव इस बात पर निर्भर करता है कि वह किन हाथों में है। यदि यह **ऋषियों एवं ज्ञानी व्यक्तियों** के मार्गदर्शन में हो, तो यह **मानव कल्याण (Human Welfare)** का साधन बनता है; किंतु यदि यह केवल **व्यावसायिक हित (Commercial Interests)** के अधीन हो जाए, तो कभी-कभी **प्रौद्योगिकी (Technology)** भी हानिकारक सिद्ध हो सकती है।

गुरुकुल-व्यवस्था की विशेषता यह थी कि वहाँ शिक्षा केवल **बौद्धिक स्तर (Intellectual Level)** तक सीमित नहीं थी, बल्कि **अनुशासन (Discipline)**, **संयम (Restraint)** एवं **आचार-प्रशिक्षण (Conduct Training)** को भी समान महत्व दिया जाता था। विद्यार्थी **प्रकृति के सान्निध्य (Proximity to Nature)** में रहकर **सादगीपूर्ण जीवन (Simple Living)** अपनाते थे, जिससे उनमें **आत्म-नियंत्रण (Self-regulation)** एवं **आंतरिक संतुलन (Inner Balance)** विकसित होता था।

अतः यदि आधुनिक शिक्षा प्रणाली में **समग्र विकास (Holistic Development)**, **मूल्य-आधारित शिक्षा (Value-based Education)** एवं **प्रकृति-संबंध (Connection with Nature)** जैसे गुरुकुल के सिद्धांतों का समावेश किया जाए, तो यह युवाओं को **भटकाव (Distraction)** से बचाकर एक **संतुलित (Balanced)**, **स्वस्थ (Healthy)** एवं **उद्देश्यपूर्ण (Purposeful)** जीवन की ओर अग्रसर कर

सकता है। यही वह मार्ग है जो मानव जीवन को **वास्तविक सार्थकता (True Meaningfulness)** प्रदान करता है।

8.2 “वेदों ने सुई भी नहीं दी” मिथक या मूलभूत विज्ञान की अनदेखी?”

वेदों के संदर्भ में यह कहना कि उन्होंने “सुई भी नहीं दी” एक प्रकार की **अल्पदृष्टि (Narrow Perspective)** को दर्शाता है, क्योंकि वेद प्रत्यक्ष वस्तुओं के निर्माण की बजाय उनके मूलभूत सिद्धांतों और ज्ञान के आधार प्रदान करते हैं। उदाहरणस्वरूप, वेदों में **गणित (Mathematics)** का अत्यंत उच्च स्थान है, जिसे वेदांगों का मस्तक कहा गया है। बिना गणित के किसी भी प्रकार की **प्रौद्योगिकी (Technology)** चाहे वह माइक्रोफोन हो, मेट्रो हो या अंतरिक्ष यात्रा संभव ही नहीं है। इस प्रकार वेदों ने वह **मौलिक आधार (Fundamental Foundation)** दिया, जिस पर समस्त आधुनिक विज्ञान और तकनीक खड़ी है।

इसी प्रकार वेदों की एक और महान देन **भाषा (Language)** और **संगीत (Music)** है। भाषा के बिना न तो विचार संभव है और न ही ज्ञान का संप्रेषण, इसलिए यह मानव सभ्यता की **संज्ञानात्मक संरचना (Cognitive Structure)** का मूल आधार है। वहीं संगीत में वर्णित **सप्त स्वर (Seven Notes)** सा, रे, ग, म, प, ध, नी के माध्यम से ध्वनि के सूक्ष्म सिद्धांतों का जो वर्णन मिलता है, वह अत्यंत वैज्ञानिक और अद्भुत है। यह सिद्धांत आज भी **ध्वनिकी (Acoustics)** और **ध्वन्यात्मकता (Phonetics)** के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, जिससे यह स्पष्ट होता है कि वेद केवल आध्यात्मिक ग्रंथ नहीं, बल्कि गहन वैज्ञानिक दृष्टि भी रखते हैं।

अंततः यह समझना आवश्यक है कि वेदों का उद्देश्य सीधे उपकरण बनाना नहीं, बल्कि **मूल कारणों (Root Principles)** और **सार्वभौमिक**

सत्य (Universal Truths) का उद्घाटन करना है। जब इन सिद्धांतों को मानव **विवेक (Discernment)** और **चेतना (Consciousness)** के साथ प्रयोग करता है, तब वही ज्ञान आगे चलकर विभिन्न तकनीकों के रूप में प्रकट होता है। इसलिए यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि वेदों ने केवल "कुछ" नहीं, बल्कि वह सब दिया है जो किसी भी प्रकार की उन्नति का मूल आधार बन सकता है।

इस पूरे विषय को सरल रूप में समझें तो सृष्टि के आदि में ऋषियों को वेदों का ज्ञान किसी **चमत्कार (Miracle)** या टीवी जैसे दृश्य माध्यम से नहीं मिला था, बल्कि यह एक अत्यंत सूक्ष्म **चेतन-अनुभूति (Conscious Realization)** की प्रक्रिया थी। दर्शन के अनुसार वाणी के चार स्तर होते हैं **परा (Transcendental Speech)**, **पश्यन्ती (Intuitive Speech)**, **मध्यमा (Mental Speech)** और **वैखरी (Expressed Speech)**। हम सामान्यतः वैखरी वाणी को ही सुनते हैं, जो शब्दों के रूप में बाहर प्रकट होती है, लेकिन वेदों का ज्ञान ऋषियों को सबसे सूक्ष्म स्तर, अर्थात् परा वाणी में प्राप्त हुआ जो न सुनाई देती है, न दिखाई देती है, बल्कि सीधे चेतना में प्रकट होती है। इसी क्रम में "हृदय" का अर्थ भी यहाँ शारीरिक दिल नहीं, बल्कि **मन-चेतना का केंद्र (Seat of Consciousness)** है। जब ऋषि गहन **समाधि (Deep Meditative State)** में जाते हैं, तब उनका मन पूर्णतः स्थिर और निर्मल हो जाता है। उसी अवस्था में वे ब्रह्मांड में व्याप्त **वेद-नाद (Cosmic Sound of Vedas)** को ग्रहण करते हैं। यह ऐसा नहीं है कि कोई बाहरी आवाज उन्हें सुनाई देती है, बल्कि यह ज्ञान उनके भीतर स्वतः प्रकाशित होता है जैसे कोई सत्य अचानक स्पष्ट हो जाए। इसलिए कहा जाता है कि वेद "रचे" नहीं गए, बल्कि **प्रकट (Revealed Knowledge)** हुए। ऋषि केवल उस ज्ञान के **द्रष्टा (Seers)** थे, रचयिता नहीं। उन्होंने उस सूक्ष्म अनुभूति को बाद में शब्दों (वैखरी वाणी) में व्यक्त किया, ताकि सामान्य मनुष्य भी उसे समझ सके।

चेतना के विषय में वैदिक दृष्टिकोण अत्यंत गहन और वैज्ञानिक प्रतीत होता है, जहाँ **चेतना (Consciousness)** को एक **मूल तत्व (Fundamental Entity)** माना गया है, न कि किसी भौतिक प्रक्रिया का परिणाम। आधुनिक **क्वांटम सिद्धांत (Quantum Theory)** में यह समस्या सामने आती है कि जब हम किसी सूक्ष्म कण को देखने या मापने का प्रयास करते हैं, तो हमारा ही **पर्यवेक्षण (Observation)** उस कण को प्रभावित कर देता है, जिससे वास्तविकता **संभाव्यता (Probability)** में बदल जाती है। इस प्रकार न तो वस्तु पूरी तरह निश्चित रहती है और न ही पर्यवेक्षक, जिससे **सत्य ज्ञान (True Knowledge)** प्राप्त करना कठिन हो जाता है।

ऐसी स्थिति में वैदिक विचार यह प्रस्तुत करता है कि वास्तविक ज्ञान तभी संभव है जब **पर्यवेक्षक (Observer)** स्वयं **निश्चल (Stable)** और **अविकारी (Immutable)** हो। अर्थात्, **जीव (Individual Soul)** की चेतना कोई उत्पन्न होने वाली वस्तु नहीं, बल्कि एक **स्वतंत्र सत्ता (Independent Reality)** है, जो परिवर्तनशील प्रकृति से भिन्न है। यदि चेतना भी भौतिक तत्वों की तरह परिवर्तनशील होती, तो वह कभी भी स्थिर सत्य का अनुभव नहीं कर सकती। इसलिए यह आवश्यक है कि हम अपने वास्तविक स्वरूप अर्थात् चेतन आत्मा को पहचानें, जो न तो नष्ट होती है और न ही किसी भौतिक प्रक्रिया से प्रभावित होती है।

अंततः, यह समझना महत्वपूर्ण है कि बाहरी उपकरणों और **प्रौद्योगिकी (Technology)** के माध्यम से हम केवल आंशिक और विकृत जानकारी ही प्राप्त कर सकते हैं, जबकि आंतरिक **अनुभूति (Inner Realization)** और **अंतर्मुखी दृष्टि (Introspective Awareness)** के माध्यम से ही शुद्ध और पूर्ण ज्ञान संभव है। जब मनुष्य इस **अंतर्यात्रा (Inner Journey)** को अपनाता है, तब वह न केवल बाहरी जगत को सही रूप में समझ पाता है, बल्कि अपने अस्तित्व के गहरे सत्य को भी जान लेता है। यही वह मार्ग है, जहाँ विज्ञान और अध्यात्म का वास्तविक **समन्वय**

(Integration) स्थापित होता है और मनुष्य को स्थायी शांति तथा ज्ञान की प्राप्ति होती है। प्राचीन वैदिक परंपरा में नारी-शिक्षा के संबंध में प्रचलित यह धारणा कि महिलाओं को वेद-अध्ययन से वंचित रखा गया था, वस्तुतः एक गहन भ्रांति (Misconception) है, क्योंकि वैदिक साहित्य के गंभीर एवं प्रमाणिक अध्ययन से यह सिद्ध होता है कि उस युग में नारी न केवल शिक्षा-अधिकार से संपन्न थी, बल्कि ज्ञान, चिंतन और आध्यात्मिक साधना के क्षेत्र में भी सक्रिय एवं सम्मानित सहभागिता रखती थी।

8.3 भारत ने केवल 'शून्य' (zero) दिया, या रहस्यमय कुंडली (जहाँ ग्रह भी करते हैं टाइम-टेबल और इंसान ढूँढता है अपना Wi-Fi सिग्नल!)

यदि हम ज्योतिष और कुंडली के विषय को गहराई से समझने का प्रयास करें, तो यह स्पष्ट होता है कि इसे केवल अंधविश्वास (superstition) कहकर खारिज कर देना एक प्रकार का बौद्धिक सरलीकरण (intellectual simplification) है। वास्तव में कुंडली एक अत्यंत जटिल **गणितीय संरचना (mathematical structure)** है, जिसमें जन्म के क्षण पर आकाश में स्थित ग्रहों की सटीक **स्थिति-निर्धारण (positional determination)** डिग्री, मिनट और सेकंड तक का विश्लेषण किया जाता है। यह कार्य केवल अनुमान नहीं, बल्कि गहन **खगोल-गणना (astronomical computation)** पर आधारित होता है। प्राचीन काल में, जब आधुनिक कंप्यूटर या उन्नत गणना-साधन उपलब्ध नहीं थे, तब भी भारतीय विद्वानों ने इस प्रकार की सूक्ष्म गणनाओं को संभव बनाया, जो उनकी **वैज्ञानिक दक्षता (scientific proficiency)** और **गणितीय परिपक्वता (mathematical maturity)** को दर्शाता है।

इसी संदर्भ में कुंभ मेले का उदाहरण अत्यंत महत्वपूर्ण है, जो केवल एक धार्मिक आयोजन नहीं, बल्कि एक गहन **खगोलीय परिघटना**

(astronomical phenomenon) से जुड़ा हुआ है। यह लगभग 12 वर्षों में एक बार आयोजित होता है, जिसका आधार यह ज्ञान है कि बृहस्पति (Jupiter) सूर्य की परिक्रमा लगभग 12 वर्षों में पूर्ण करता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारतीयों को ग्रहों की **परिक्रमण अवधि (orbital period)** का सटीक ज्ञान था। इसी प्रकार, शनि (Saturn) की परिक्रमा अवधि लगभग 30 वर्ष मानी गई, जो 'साढ़ेसाती' की अवधारणा में परिलक्षित होती है। जब शनि किसी व्यक्ति की जन्म राशि से पूर्व, वर्तमान और अगली राशि में क्रमशः लगभग ढाई-ढाई वर्ष बिताता है, तो कुल मिलाकर 7.5 वर्ष की अवधि बनती है, जिसे साढ़ेसाती कहा जाता है। यह अवधारणा भी एक प्रकार की **काल-गणना (temporal calculation)** और **ग्रह-गति विश्लेषण (planetary motion analysis)** पर आधारित है।

इसके अतिरिक्त, भारतीय पंचांग में 60 वर्षों के चक्र (cycle) का निर्धारण भी अत्यंत वैज्ञानिक दृष्टिकोण को दर्शाता है। यह 60 वर्ष इसलिए महत्वपूर्ण हैं क्योंकि यह बृहस्पति (12 वर्ष) और शनि (30 वर्ष) की परिक्रमाओं का लघुतम समापवर्त्य (LCM) है, जिससे दोनों ग्रह एक निश्चित काल के बाद पुनः लगभग समान स्थिति में आ जाते हैं। इस प्रकार का **समकालिकता सिद्धांत (principle of synchronization)** दर्शाता है कि प्राचीन भारतीयों के पास समय और ब्रह्मांड की गतियों का गहन **व्यवस्थित ज्ञान (systematic knowledge)** था।

अतः यह कहना कि भारत ने केवल 'शून्य' (zero) दिया, एक अत्यंत सीमित दृष्टिकोण (limited perspective) को दर्शाता है। वास्तविकता यह है कि भारतीय परंपरा में गणित, खगोलशास्त्र और समय-निर्धारण का अत्यंत उन्नत और **समन्वित विज्ञान (integrated science)** विद्यमान था, जिसे आज हम पुनः समझने और सम्मान देने की आवश्यकता महसूस कर रहे हैं।

8.4 “कुंडली से लेकर कंटेनर शिप तक: जब प्राचीन भारत ने कहा – ‘हम सिर्फ ग्रह नहीं, ग्लोबल ट्रेड भी संभालते हैं!’

प्राचीन भारत की उपलब्धियों को केवल धार्मिक या सांस्कृतिक गतिविधियों तक सीमित कर देना एक गंभीर **ऐतिहासिक भ्रांति (historical misconception)** है। वास्तव में, उस कालखंड में भारत एक अत्यंत उन्नत **ज्ञान-व्यवस्था (knowledge system)** और सुदृढ़ **वैज्ञानिक परंपरा (scientific tradition)** का केंद्र था, जिसमें गणित, खगोलशास्त्र, धातुकर्म, चिकित्सा और नौवहन जैसे अनेक क्षेत्रों में उल्लेखनीय प्रगति हुई थी। कुंडली और ज्योतिष इस व्यापक ज्ञान-संरचना का केवल एक छोटा सा अनुप्रयोग (application) थे, न कि उसका सम्पूर्ण स्वरूप।

आर्थिक दृष्टि से भी भारत की स्थिति अत्यंत सशक्त थी। विभिन्न **आर्थिक विश्लेषण (economic analyses)** यह दर्शाते हैं कि प्राचीन और मध्यकालीन काल में भारत वैश्विक व्यापार (global trade) का एक प्रमुख केंद्र था। इसका प्रमुख कारण केवल प्राकृतिक संसाधन नहीं, बल्कि उन्नत **उत्पादन-प्रणालियाँ (production systems)**, कुशल कारीगरी (skilled craftsmanship) और सुविकसित व्यापारिक नेटवर्क (trade networks) थे। भारत की प्राचीन समृद्धि और व्यापारिक प्रभुत्व के संदर्भ में यह तथ्य स्वीकार्य है कि भारत **वैश्विक व्यापार (global trade)** का एक प्रमुख केंद्र था, जहाँ से मसाले, वस्त्र और धातुएँ निर्यात होती थीं, और इसके बदले स्वर्ण प्राप्त होता था। Indian Ocean का नामकरण भी इस क्षेत्र की ऐतिहासिक व्यापारिक महत्ता को दर्शाता है। यह सब बिना विकसित **गणनात्मक कौशल (computational skills)** और **मापन-प्रणालियों (measurement systems)** के संभव नहीं था।

विशेष रूप से समुद्री व्यापार के संदर्भ में, भारत का **नौवहन कौशल (maritime expertise)** अत्यंत उन्नत था। समुद्र में लंबी यात्राएँ करना

केवल साहस का विषय नहीं, बल्कि सटीक **दिशा-निर्धारण (navigation)**, समय-गणना (time-keeping) और खगोलीय संकेतों (astronomical markers) की समझ पर निर्भर करता है। प्राचीन भारतीय नाविकों को **अक्षांश (latitude)** और **देशांतर (longitude)** की अवधारणाओं का व्यावहारिक ज्ञान था, जिसे वे तारों, सूर्य और अन्य खगोलीय पिंडों के माध्यम से निर्धारित करते थे। इसके विपरीत, यूरोप में लंबे समय तक देशांतर निर्धारण एक जटिल समस्या बना रहा, जिसे हल करने के लिए विशेष प्रयास किए गए। उदाहरणतः **वास्को डिगामा (Vasco da Gama)** के भारत आगमन के संदर्भ में यह कहा जाता है कि उन्हें भारतीय नाविकों ने मार्गदर्शन दिया, जो कि कुछ हद तक प्रमाणित है विशेष रूप से एक प्रसिद्ध अरब-भारतीय पायलट जैसे **अहमद इब्न मजीद (Ahmad ibn Majid)** के सहयोग का उल्लेख मिलता है। यह उस काल की **समुद्री विशेषज्ञता (maritime expertise)** को दर्शाता है, यह अंतर भारतीय ज्ञान की **प्रायोगिक उपयोगिता (practical applicability)** को दर्शाता है। इसी प्रकार **Christopher Columbus** के अमेरिका पहुँचने को केवल "तकनीकी अज्ञानता" का परिणाम है। वास्तव में, उनका उद्देश्य भारत तक पश्चिमी मार्ग से पहुँचना था, परंतु उस समय पृथ्वी की परिधि के आकलन में त्रुटि के कारण वे America पहुँच गए। यह घटना उस युग के **भौगोलिक ज्ञान (geographical knowledge)** और उसकी सीमाओं को इंगित करती है।

इसी प्रकार, जब हम चंद्रमा या अन्य ग्रहों के अध्ययन की बात करते हैं, तो यह समझना आवश्यक है कि प्राचीन भारतीयों के लिए खगोलशास्त्र केवल सैद्धांतिक (theoretical) विषय नहीं था, बल्कि इसका सीधा संबंध कृषि, मौसम-पूर्वानुमान (weather prediction), समय-निर्धारण और सामाजिक जीवन से था। यह एक प्रकार का **समन्वित विज्ञान**

(integrated science) था, जिसमें प्रकृति, गणित और मानव जीवन के बीच गहरा संबंध स्थापित किया गया था।

इसके अतिरिक्त, भारतीय ज्ञान परंपरा की एक महत्वपूर्ण विशेषता उसकी **अंतःविषयकता (interdisciplinarity)** थी, जहाँ विभिन्न विषयों को अलग-अलग न देखकर एक समग्र दृष्टिकोण (holistic perspective) से समझा जाता था। उदाहरण के लिए, ज्योतिष, खगोलशास्त्र और गणित परस्पर जुड़े हुए थे, और इनका उपयोग केवल भविष्यवाणी (prediction) तक सीमित नहीं था, बल्कि यह जीवन के विभिन्न व्यावहारिक पक्षों को भी प्रभावित करता था।

अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्राचीन भारत की वैज्ञानिक उपलब्धियाँ केवल सैद्धांतिक ज्ञान तक सीमित नहीं थीं, बल्कि उनका व्यापक **व्यावहारिक अनुप्रयोग (practical implementation)** भी था, जिसने भारत को आर्थिक, सांस्कृतिक और बौद्धिक रूप से समृद्ध बनाया। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम इस विरासत को केवल गर्व का विषय न मानकर, उसे **आलोचनात्मक विश्लेषण (critical analysis)** और आधुनिक संदर्भों में पुनः व्याख्यायित (reinterpret) करें, ताकि हम उससे वास्तविक प्रेरणा और मार्गदर्शन प्राप्त कर सकें।

8.5 गौमूत्रिका सिद्धांत: जब गाय की चाल ने सिखाया गणित!

गणित (mathematics) के विकास में भारत का योगदान (contribution) अत्यंत महत्वपूर्ण (significant) रहा है **गौमूत्रिका सिद्धांत (Gomūtrikā principle)** का उल्लेख वास्तव में प्राचीन भारतीय **छंदशास्त्र (prosody)** तथा कुछ गणनात्मक (computational) विन्यासों (patterns) में जिगजैग (zigzag) व्यवस्था के रूप में मिलता है। **गौमूत्रिका** शब्द दो भागों से मिलकर बना है **गौ (cow)** और **मूत्रिका (urine-like flow)** अर्थात् ऐसा **प्रवाह (flow)** या

रेखा-विन्यास (line pattern) जो गाय के मूत्र की धारा की भाँति टेढ़ा-मेढ़ा (**curved/zigzag**) होता है।

प्राचीन ग्रंथों में, विशेषतः **पिंगल के छंदशास्त्र (Chandaśāstra)** में, **वर्णों (syllables)** और **लघु-गुरु (short-long)** मात्राओं (**metrical units**) के संयोजन (**combinations**) को व्यवस्थित (**systematic**) रूप से प्रस्तुत करने के लिए **विभिन्न पैटर्न (patterns)** प्रयुक्त हुए। इनमें से एक शैली ऐसी भी थी जिसमें **क्रम (sequence)** सीधा (**linear**) न होकर **तिरछा (diagonal)** या **जिगजैग** रूप में आगे बढ़ता है इसी प्रकार की संरचना को बाद में **गौमूत्रिका विन्यास (Gomūtrikā pattern)** कहा गया।

इस सिद्धांत का मुख्य उपयोग **संयोजन-विज्ञान (combinatorics)** में देखा जाता है, जहाँ विभिन्न **संभावनाओं (possibilities)** को **क्रमबद्ध (ordered)** ढंग से लिखने के लिए पंक्तियों (rows) और स्तंभों (columns) के बीच **तिरछी (diagonal)** गति अपनाई जाती है। उदाहरण के लिए, यदि किसी छंद में लघु (L) और गुरु (G) मात्राओं के सभी संभावित संयोजन निकालने हों, तो उन्हें सीधे-सीधे न लिखकर एक ऐसे क्रम में व्यवस्थित किया जाता है जिसमें हर अगला संयोजन पिछले से **तिरछे (diagonally)** जुड़ा होता है यह एक प्रकार की **क्रम-विकास पद्धति (sequential generation method)** है।

कुछ विद्वानों (scholars) ने इस जिगजैग पद्धति की तुलना आधुनिक **तिर्यक् गुणन विधि (lattice/diagonal multiplication method)** से की है, जहाँ संख्याओं के गुणन (multiplication) में आड़ी-तिरछी रेखाओं (diagonal lines) के माध्यम से आंशिक गुणनफल (partial products) को जोड़ा जाता है। हालांकि यह समानता (similarity) केवल संरचनात्मक (structural) है, प्रत्यक्ष ऐतिहासिक (direct historical) संबंध का स्पष्ट प्रमाण (evidence) उपलब्ध नहीं है।

अतः निष्कर्ष (conclusion) रूप में कहा जा सकता है कि **गौमूत्रिका सिद्धांत (Gomūtrikā principle)** मुख्यतः एक **आकृतिक/रूपात्मक विन्यास (geometric/structural pattern)** है, जिसका प्रयोग **छंदों (meters)**, **संयोजनों (combinations)** और **कुछ गणनात्मक व्यवस्थाओं (computational arrangements)** में किया गया। यह भारतीय ज्ञान परंपरा (knowledge tradition) की सूक्ष्मता (subtlety) और रचनात्मकता (creativity) को दर्शाता है, परन्तु इसे सीधे आधुनिक गुणा (multiplication) की उत्पत्ति (origin) के रूप में मानना ऐतिहासिक दृष्टि से सावधानी (caution) की अपेक्षा रखता है।

आज जो हम स्थान-मूल्य पद्धति (place value system) पर आधारित गुणा करते हैं, उसका वास्तविक आधार भारतीय **दशमलव पद्धति (decimal system)** है, जिसका विकास **आर्यभट, ब्रह्मगुप्त** जैसे महान गणितज्ञों (mathematicians) ने किया। इसी प्रकार **अल-ख्वारिज़्मी (Al-Khwarizmi)** को प्रायः **बीजगणित का जनक (father of algebra)** कहा जाता है, किन्तु यह सत्य है कि उनकी रचनाओं (works), विशेषतः “**हिसाब अल-हिंद (Hisab al-Hind)**” में भारतीय गणना पद्धति (Indian numerical methods) का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित (reflected) होता है। “**एल्गोरिथ्म (algorithm)**” शब्द भी उनके नाम के लैटिन रूपांतरण (Latin transformation) “**Algorismus**” से उत्पन्न हुआ है, जो यह दर्शाता है कि गणना की क्रमबद्ध विधियाँ (systematic procedures) भारत से अरब जगत (Arab world) और वहाँ से यूरोप (Europe) तक पहुँचीं।

अतः यह कहना उचित (appropriate) है कि भारत ने केवल **शून्य (zero)** ही नहीं, बल्कि संपूर्ण **संख्यात्मक प्रणाली (numerical system)**, **गणना विधियाँ (calculation techniques)** तथा प्रारंभिक **बीजगणितीय विचार (algebraic concepts)** विश्व को प्रदान किए।

अध्याय 9

“वैदिक साहित्य में गणित और विज्ञान के बीजरूप सिद्धांत: परंपरा, तर्क और ऐतिहासिक विकास”

अनेक अवसरों पर स्वयं को वेदों का हितैषी प्रस्तुत करने वाले कुछ लोग यह दावा करते हैं कि वेदों में विज्ञान और गणित की उपस्थिति मात्र **परिकल्पना (Imagination)** है, जिसे उन लोगों ने गढ़ा है जिन्होंने वास्तव में वेदों का **गंभीर अध्ययन (Serious Study)** नहीं किया। वे विशेष रूप से तथाकथित वैदिक गणित का उदाहरण देते हुए कहते हैं कि उसके सूत्र वेद-संहिताओं में प्रत्यक्षतः उपलब्ध नहीं हैं, अतः वेद केवल **उपासना-प्रधान (Worship-centric)** और **स्तुतिपरक (Eulogistic)** मंत्रों का संग्रह हैं। किंतु यह आपत्ति स्वयं इस तथ्य की अनदेखी करती है कि वेद केवल संहिताओं तक सीमित न होकर एक व्यापक **वैदिक परंपरा (Vedic Tradition)** का अंग हैं, जिसमें वेदांगों की सुदृढ़ संरचना भी सम्मिलित है।

वेद **ब्रह्मांड (Universe)** और **कॉस्मोस (Cosmos)** को समझने का प्रयास करते हैं, चाहे वह **सूक्ष्म अणु स्तर (Minute Atomic Level)** हो या **विस्तृत ब्रह्मांडीय स्तर (Vast Cosmic Scale)**। वेदों के **षडंग (Six Vedāṅgas)** शिक्षा, कल्प, छंद, व्याकरण, निरुक्त और ज्योतिष। **ज्योतिष (Jyotiṣa)** - में ज्योतिष को विशेष रूप से **आकाशीय पिंडों (Celestial Bodies)**, **काल-गणना (Time-Measurement)**, **गति (Motion)** तथा **प्रकाशमान तत्वों (Luminous Objects)** के अध्ययन से जोड़ा गया है, इसी कारण इसे वेदों की “**आँख (Eye of the Vedas)**”

कहा गया है। यद्यपि इसकी पद्धति आधुनिक **एस्ट्रोफिज़िक्स (Astrophysics)** से भिन्न है, फिर भी वेद ब्रह्मांड और जीवन के **मौलिक नियमों (Fundamental Principles)** पर गहन विचार प्रस्तुत करते हैं। यदि **"Scientific"** शब्द को केवल **अलजेब्रा (Algebra)**, **कैल्कुलस (Calculus)** अथवा **गणितीय समीकरणों (Mathematical Equations)** के प्रत्यक्ष समाधान तक सीमित कर दिया जाए, तो वेद उस परिभाषा में वैज्ञानिक नहीं ठहरते। किंतु यदि विज्ञान को एक **तर्कप्रधान सोच (Rational Outlook)**, **निरीक्षण-आधारित दृष्टि (Observation-based Inquiry)** और **कारण-कार्य संबंध (Cause-Effect Analysis)** के रूप में समझा जाए, तो वेदों में एक सशक्त **वैज्ञानिक दृष्टिकोण (Scientific Temper)** स्पष्ट रूप से विद्यमान है।

जब **वैदिक गणित** की बात की जाती है तो अक्सर यह प्रश्न उठता है कि यदि यह इतना महत्वपूर्ण है, तो इसे हमारी औपचारिक **शिक्षा प्रणाली (Education System)** में व्यापक रूप से क्यों नहीं पढ़ाया जाता। वास्तव में यहाँ एक महत्वपूर्ण **भ्रम (Misconception)** भी है, क्योंकि आज जिस **"वैदिक गणित"** का प्रचार होता है वह प्रायः आधुनिक काल में व्यवस्थित की गई **त्वरित गणना की विधियाँ (Fast Calculation Techniques)** होती हैं। इन विधियों को व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करने का श्रेय मुख्यतः **भारती कृष्ण तीर्थ (Bharati Krishna Tirtha)** को दिया जाता है, जिन्होंने अपनी पुस्तक **वैदिक गणित (Vedic Mathematics)** में 16 सूत्रों के आधार पर गणना की सरल तकनीकों को समझाया।

हालाँकि, प्राचीन भारतीय परंपरा में गणित का वास्तविक और व्यापक स्वरूप केवल त्वरित गणना तक सीमित नहीं था। भारतीय गणितीय परंपरा का विकास अनेक महान आचार्यों के ग्रंथों में दिखाई देता है। उदाहरण के लिए **आर्यभट्ट (Aryabhata)** की रचना **आर्यभटीय**

(Aryabhatiya), ब्रह्मगुप्त (Brahmagupta) की प्रसिद्ध कृति ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त (Brahmasphutasiddhanta) तथा भास्कर द्वितीय (Bhaskara II) की गणितीय कृतियाँ भारतीय गणित की उच्च परंपरा को दर्शाती हैं। इसी प्रकार खगोल और गणित से संबंधित ग्रंथ सूर्य सिद्धान्त (Surya Siddhanta) में भी जटिल गणनाओं और खगोलीय गणित का विस्तृत वर्णन मिलता है।

शिक्षा प्रणाली में इसे व्यापक रूप से शामिल न किए जाने के पीछे कुछ व्यावहारिक कारण भी हैं। पहला कारण यह है कि आधुनिक विद्यालयी पाठ्यक्रम में पहले से ही स्थापित आधुनिक गणित (Modern Mathematics) की संरचना मौजूद है, जिसे अंतरराष्ट्रीय मानकों के अनुसार पढ़ाया जाता है। दूसरा कारण यह है कि प्राचीन भारतीय गणित के कई ग्रंथ अत्यंत जटिल (Complex) और शोध-आधारित (Research-oriented) हैं, जिनका गहन अध्ययन करने के लिए विशेष विद्वत्ता और शोध की आवश्यकता होती है।

फिर भी वर्तमान समय में कई शिक्षा बोर्डों और पाठ्यक्रमों में वैदिक गणित को पूरक विषय (Supplementary Subject) या कौशल आधारित गणना पद्धति (Skill-based Calculation Method) के रूप में शामिल किया जा रहा है। सोशल मीडिया, ऑनलाइन पाठ्यक्रमों और शैक्षणिक कार्यशालाओं के माध्यम से भी इसे लोकप्रिय बनाया जा रहा है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि भारतीय गणितीय परंपरा अत्यंत समृद्ध है। यदि प्राचीन ग्रंथों के गणितीय ज्ञान को आधुनिक विज्ञान और गणित के साथ संतुलित रूप में पढ़ाया जाए, तो यह न केवल गणना कौशल को बढ़ा सकता है बल्कि भारतीय ज्ञान परंपरा की गहराई को

9.1 “जब बिना टेलीस्कोप (telescope) के ही आकाश नाप लिया!”

प्राचीन भारतीय खगोलशास्त्र (astronomy) की परंपरा में सूर्य सिद्धांत (Surya Siddhanta) एक अत्यंत महत्वपूर्ण ग्रंथ माना जाता है, जिसमें वर्ष की अवधि (length of year) का मान लगभग 365.2422 दिन (days) के निकट दिया गया है। यह मान आधुनिक उष्णकटिबंधीय वर्ष (tropical year) के मान (≈ 365.2422 days) के बहुत समीप है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि उस समय के विद्वानों ने अत्यंत सूक्ष्म (precise) और परिष्कृत (refined) अवलोकन (observations) किए थे।

इस परंपरा को आगे बढ़ाने में आर्यभट्ट का योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय (remarkable) है। अपनी कृति आर्यभटीय (Aryabhatiya) में उन्होंने वर्ष की अवधि लगभग 365.25868 दिन (sidereal year) के रूप में दी, जो नक्षत्रों (stars) के सापेक्ष पृथ्वी (Earth) की परिक्रमा (revolution) पर आधारित है। यहाँ एक महत्वपूर्ण भेद (distinction) समझना आवश्यक है

- I. नाक्षत्र वर्ष (sidereal year): पृथ्वी को स्थिर तारों के सापेक्ष एक चक्कर पूरा करने में लगा समय (~ 365.256 days)
- II. उष्णकटिबंधीय वर्ष (tropical year): ऋतुओं (seasons) के आधार पर मापा गया वर्ष (~ 365.2422 days)

सूर्य सिद्धांत में केवल वर्ष की अवधि ही नहीं, बल्कि ग्रहों की गतियाँ (planetary motions), दिन-रात की गणना (day-night calculation), त्रिकोणमितीय सारणियाँ (trigonometric tables) और ग्रहण की भविष्यवाणी (eclipse prediction) जैसे अनेक जटिल (complex) विषयों का भी व्यवस्थित वर्णन (systematic description) मिलता है।

9.2 “कैलेंडर बनाना है? पहले आसमान को समझो!”

9.2.1 ईसा पूर्व, ईस्वी, ईसा पूर्व, ईस्वी: ईसाई धर्म के प्रसार के साधन!

जब हम ग्रेगोरियन कैलेंडर (Gregorian Calendar) में प्रयुक्त **BC/AD** अथवा **BCE/CE** जैसे शब्दों का उपयोग करते हैं, तो उनके पीछे एक विशिष्ट ऐतिहासिक और सांस्कृतिक संदर्भ (context) जुड़ा हुआ है। **BC (Before Christ)** और **AD (Anno Domini – Year of Our Lord)** की अवधारणा सीधे **Jesus Christ** के जीवन से संबंधित है, जहाँ समय (time) की गणना को उनके जन्म के आधार पर विभाजित (divide) किया गया। बाद में, अधिक तटस्थ (neutral) बनाने के उद्देश्य से इन्हें **BCE (Before Common Era)** और **CE (Common Era)** में परिवर्तित किया गया, किंतु मूल आधार (basis) वही बना रहा।

हालाँकि, इस प्रणाली में कुछ तार्किक प्रश्न (logical questions) भी उठते हैं। उदाहरण के लिए, यदि समय-गणना (time reckoning) का आधार किसी ऐतिहासिक व्यक्ति का जन्म है, तो उस जन्म की सटीक तिथि (exact date) और वर्ष (year) का स्पष्ट निर्धारण (determination) अपेक्षित होता है। किंतु ऐतिहासिक शोध (historical research) में यह संकेत मिलता है कि **Jesus Christ** का जन्म 1 AD में नहीं, बल्कि लगभग 4–6 BC के बीच हुआ माना जाता है। इससे यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि जिस आधार पर पूरा कैलेंडर निर्मित (constructed) है, वही आधार कुछ हद तक अनिश्चित (uncertain) है।

इसी प्रकार, यदि 25 दिसंबर को जन्मदिवस (birthday) माना जाता है, तो नववर्ष (new year) की शुरुआत 1 जनवरी से क्यों होती है यह भी एक विवेचनात्मक प्रश्न (analytical question) बन जाता है। ये सभी बिंदु यह दर्शाते हैं कि यह कैलेंडर एक ऐतिहासिक-विकास (historical

evolution) का परिणाम है, जिसमें विभिन्न कालों (periods) में परिवर्तन (changes) और समायोजन (adjustments) किए गए।

दूसरी ओर, जब कैलेंडर की मूल परिभाषा (definition) पर विचार किया जाए अर्थात् समय को इस प्रकार मापना कि उससे प्राकृतिक घटनाओं (natural phenomena) जैसे सूर्य (sun) और चंद्र (moon) की स्थिति का संकेत मिले तो यह अपेक्षा की जाती है कि तिथि (date) स्वयं किसी खगोलीय (astronomical) स्थिति का बोध कराए। उदाहरण के लिए, "दिसंबर 27" केवल एक क्रमिक संख्या (sequential number) बताता है, जबकि ऐसी प्रणाली जिसमें तिथि से ही चंद्रमा या सूर्य की स्थिति ज्ञात हो, वह अधिक **प्राकृतिक-संबद्ध (nature-linked)** मानी जाती है।

अतः यह कहा जा सकता है कि ग्रेगोरियन कैलेंडर एक **सुव्यवस्थित (organized)** और वैश्विक रूप से स्वीकृत (globally accepted) प्रणाली अवश्य है, परंतु इसकी संरचना (structure) पूर्णतः खगोलीय (astronomical) आधार पर नहीं, बल्कि ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और आंशिक रूप से वैज्ञानिक तत्वों के मिश्रण (combination) पर आधारित है।

9.2.2 एक समय ऐसा भी था जब जनवरी का महीना होता ही नहीं था!

जूलियन कैलेंडर (Julian Calendar) में जनवरी नहीं था, तो न्यू ईयर जनवरी क्यों मना रहे हो? **जूलियन कैलेंडर (Julian Calendar)**, जिसे **जूलियस सीज़र (Julius Caesar)** ने बनाया, उसके समय रोमन कैलेंडर में वर्ष केवल 304 दिन का होता था। उनके पास 50-60 दिन नहीं थे, और उस समय भारत में उपलब्ध **गणित (mathematics)** और **विज्ञान (science)** जैसी सटीक जानकारी रोमन सभ्यता के पास नहीं थी कि वे पृथ्वी के सूर्य के चारों ओर चक्कर का सही **आकलन**

(calculation/assessment) कर पाते। रोमन सभ्यता ग्रीक सभ्यता की **उपलब्धियों (achievements)** पर आधारित थी, लेकिन उनकी गणना इतनी परिपूर्ण नहीं थी।

भारत में उस समय **चंद्र-सौर पंचांग (lunar-solar calendar)** प्रचलित थे, जो क्रमशः 354-355 और 365 दिन के होते थे। रोमन सभ्यता ने भारतीय पंचांग से प्रभावित होकर 304 दिन के वर्ष में 51 दिन जोड़कर इसे 355 दिन का बना दिया। फिर, जब यह भी पर्याप्त नहीं हुआ, तो मिस्र से सहायता लेकर जूलियस सीज़र ने 365 दिन का **जूलियन कैलेंडर (Julian Calendar)** सेट किया। **जूलियन कैलेंडर (Julian Calendar)** में 365.242 दिन का साल कैसे **संरचित (structured/arranged)** किया गया। उस समय यूरोप में **दशमलव प्रणाली (decimal system)** मौजूद नहीं थी। रोमन लोगों ने सरल उपाय अपनाया: 365 दिनों में $1/4$ दिन जोड़ना ताकि हर चौथे साल इसे पूरा किया जा सके। इसे हम आज **लीप वर्ष (leap year)** कहते हैं। फरवरी महीने में हर चौथे वर्ष एक दिन जोड़ दिया गया, और इसी व्यवस्था के कारण आज हम जो कैलेंडर उपयोग कर रहे हैं, वह मूलतः जूलियस सीज़र द्वारा सेट किया गया था।

जब महीनों के नाम की बात आई, तो **जुलाई (July)** जूलियस सीज़र के नाम पर रखा गया क्योंकि वह पांचवें महीने को अपने नाम से जोड़ना चाहते थे। उसके बाद **अगस्त (August)** का नाम सम्राट अगस्टस के सम्मान में रखा गया। तब एक नई **समस्या (problem)** सामने आई: जुलाई में 31 दिन थे, लेकिन अगस्त में केवल 30 दिन थे। अगस्टस ने कहा कि मेरे महीने में भी 31 दिन होने चाहिए। अब कुल 365 दिन हैं, तो दिन कहां से जोड़ें? तब फरवरी से दिन जोड़कर यह संतुलन बनाया गया।

इस पूरी कहानी को देखते हुए यह **कॉमेडी ऑफ़ एरर्स (comedy of errors)** है, लेकिन आज हम इसे एक सटीक और वैज्ञानिक कैलेंडर

मानते हैं, जबकि मूल रूप से यह कई ऐतिहासिक परिवर्तन (changes/adaptations) और संगणनात्मक (computational /mathematical) निर्णयों का परिणाम है।

9.2.3 एक पंचांग तिथि से क्या-क्या पता चल सकता है!

अब हम पंचांग (Panchanga/Traditional Hindu Calendar) की एक तिथि से मिलने वाली विज्ञान (science) और जानकारी को समझेंगे। उदाहरण के लिए आज यदि पौष शुक्ल अष्टमी (Ashtami/Eighth Lunar Day) है, तो इससे हमें पता चलता है कि चंद्रमा और सूर्य के बीच का दूरी (distance/spacing) लगभग 84° से 96° के बीच है। यानी, हमारे पंचांग की जानकारी इतनी सटीक (accurate/precise) है कि आप इसे आकाश में जाकर या किसी एस्ट्रोनॉमी सॉफ्टवेयर (astronomy software) के माध्यम से भी सत्यापित कर सकते हैं।

शुक्ल (Shukla/Waxing Phase) चंद्रमा के बढ़ते हुए चेहरे को दर्शाता है और कृष्ण (Krishna/Waning Phase) घटते हुए चेहरे को। इससे हमें यह भी ज्ञात होता है कि महीने का नाम क्यों पड़ा। उदाहरण के लिए, पौष महीने की पूर्णिमा के समय पुष्य नक्षत्र (Pushya Nakshatra) सबसे निकटतम होगा, इसलिए इसे पौष कहा गया।

9.2.4 हिंदू माह के नामकरण के पीछे का विज्ञान

पंचांग में महीनों के नाम इस नियम (convention/ standard) के अनुसार रखे गए हैं कि किसी भी महीने की पूर्णिमा के समय नक्षत्र के निकटतम स्थिति के आधार पर उसका नामकरण किया गया। जैसे चैत्र में पूर्णिमा के समय चैत्र नक्षत्र (Chaitra Nakshatra) निकटतम होगा, वैशाख में विशाखा नक्षत्र (Vishakha Nakshatra), और जेष्ठ में जेष्ठा नक्षत्र (Jyeshtha Nakshatra)।

यदि हमारे बच्चे केवल **हिंदू पंचांग (Hindu Panchanga/ Traditional Hindu Calendar)** का उपयोग करें, तो उनका **वैज्ञानिक मानसिकता (scientific mindset)** स्वतः विकसित होगा। यही कारण है कि हमारा मानना है कि पंचांग की **अध्ययन (study/study of Panchanga)** भारत के हर विद्यालय और स्कूल में **इंस्टिट्यूट (institute/course)** के रूप में होनी चाहिए। इससे छात्रों को यह समझ में आएगा कि हमारे पंचांग के पीछे कितना **विज्ञान (science)** और कितना **गणित (mathematics)** है। आज की धारणा के विपरीत, यह नहीं कि पंचांग केवल **अंधविश्वास (superstition)** और **ज्योतिष शास्त्र (astrology)** के लिए है। ज्योतिष का अर्थ इससे अलग है, और केवल अशुभ लाभ या भविष्य कहने के लिए यह नहीं बनाया गया। जबकि तथ्य यह है कि पंचांग पूरी तरह से **विज्ञानसंगत (scientifically accurate)** है।

ग्रेगोरियन कैलेंडर के पीछे बहुत कम विज्ञान और गणित है, लेकिन फिर भी लोग उसे सहज मान लेते हैं। इसके विपरीत, हिंदू पंचांग को उपयोग करना **कॉम्प्लेक्स (complex/difficult)** रहा है। पुराने समय में लोगों को इसे समझने के लिए पंडित के पास जाना पड़ता था। इस वजह से इसकी पढ़ाई-लिखाई बीच में रुक गई और लोग **पुराने रूढ़िवादी (traditional/conservative)** मानने लगे।

अब यदि हम जिज्ञासा (curiosity) के साथ इसकी **संख्या प्रणाली (numerical system)** और संरचना को समझें जैसे कि 27 नक्षत्र क्यों हैं या 12 महीने ही क्यों हैं तो हमें इसके पीछे छिपा **साइंस (science)** स्पष्ट रूप से समझ में आता है। यह दर्शाता है कि हिंदू पंचांग केवल धार्मिक उपकरण नहीं, बल्कि **गणित और खगोल विज्ञान का एक समृद्ध स्रोत (rich source of mathematics and astronomy)** है।

9.2.5 27 नक्षत्र (27 constellations) और 12 महीने (12 months) ही क्यों

तो प्रश्न उठता है कि **27 नक्षत्र (27 constellations)** ही क्यों और **12 महीने (12 months)** ही क्यों लिए गए। इसके पीछे **गणितीय और खगोलिय विचारधारा (mathematical and astronomical rationale)** है। **पंचांग (Panchang)** का नाम ही इसके **संरचना (structure)** को बताता है "पंचांग" का अर्थ है पाँच अंग। **तिथि (Tithi)** केवल एक साधारण दिन नहीं है। उदाहरण के लिए, **पौष्य शुक्ल अष्टमी (Pausha Shukla Ashtami)** के समय, चंद्रमा सूर्य से 84° से 96° के बीच **कोणीय दूरी (angular distance)** पर होता है। इसका मतलब है कि तिथि **खगोलिय (astronomically)** परिभाषित है, न कि केवल सामाजिक या धार्मिक रूप से।

सबसे बड़ी चुनौती यह है कि हम अपने **हिंदू पंचांग** को पुराने या **टूटे-फूटे (broken/incomplete) ग्रेगोरियन कैलेंडर (Gregorian Calendar)** के ढांचे में समझने की कोशिश करते हैं। इसे छोड़कर एक नई दृष्टि से देखें तो यह पूरी तरह से **वैज्ञानिक और गणितीय कांसेप्ट (scientific and mathematical concept)** है।

9.2.6 हिंदू त्योहार कभी-कभी दो बार क्यों पड़ते हैं?

हम **सूर्योदय (Sunrise)** को आधार मानकर दिन गिनते हैं। उदाहरण के लिए, दिवाली को लेकर विवाद होता है कि यह 20 को आएगी या 21 को। इसका कारण यह है कि हम **पंचांग (Panchang)** को **ग्रेगोरियन कैलेंडर (Gregorian Calendar)** पर सुपरइंपोज (superimpose) करके देख रहे होते हैं। वास्तव में, दिवाली हमेशा **वही तिथि (same lunar date)** पर आती है, बदलती नहीं।

समस्या तब होती है जब हम **लूनर मंथ (Lunar Month)** को **सोलर डे (Solar Day)** या 24 घंटे के मैट्रिक पर ट्रैक करने की कोशिश करते हैं। लूनर मंथ लगभग 29.5 दिन का होता है, जबकि सोलर डे हमेशा 24 घंटे का। इसलिए **तिथि (Tithi)** और **सोलनार समय (Sawan Day / Solar Day)** सिंक नहीं होते। उदाहरण के लिए, अगर कोई तिथि 12:00 बजे समाप्त होती है, तो कभी-कभी वही तिथि 11:00 बजे समाप्त हो सकती है।

इस प्रकार, यदि आज **दशमी (Dashami)** है, तो यह 11:00 बजे तक है और उसके बाद **एकादशी (Ekadashi)** शुरू हो जाती है। इसी तरह से **प्रतिपदा (Pratipada)**, **द्वितीया (Dwitiya)**, **तृतीया (Tritiya)** आदि तिथियां क्रम से चलती हैं। लूनर मंथ में जब **पूर्णिमा (Full Moon)** और **अमावस्या (New Moon)** आते हैं, तब 30 दिनों का पूरा चक्र तय होता है। इस दौरान 24 घंटे के सोलर डे से कोई मिलान (sync) नहीं होता।

इससे यह स्पष्ट होता है कि **लूनार कैलेंडर (Lunar Calendar)** और **सोलार कैलेंडर (Solar Calendar)** बिल्कुल अलग हैं।

पंचांग में तिथि का **डेफिनेशन (definition of Tithi)** सरल है: चंद्रमा और सूर्य के बीच **12° का कोण (angular distance of 12°)** तय होने पर एक तिथि पूरी मानी जाती है। इसी के आधार पर महीने और नक्षत्र (Nakshatra) निर्धारित होते हैं। पूरे 30 तिथियों में चंद्रमा 360° का चक्र पूरा करता है। इसलिए एक **चंद्रमास (Lunar Month)** में 30 तिथि होती हैं। इसी तरह, **पूर्णिमा से पूर्णिमा (Full Moon to Full Moon)** या **अमावस्या से अमावस्या (New Moon to New Moon)** के बीच एक मास मापा जाता है।

इस प्रकार, **हिंदू पंचांग (Hindu Panchang)** केवल धार्मिक नहीं, बल्कि **गणितीय और खगोलिय विज्ञान (mathematical and**

astronomical science) का परिणाम है। तिथि, नक्षत्र और महीने सब **साइंटिफिक (scientific)** आधार पर बने हैं।

9.2.7 राशि और नक्षत्र को सरल भाषा में समझना

पंचांग में **वार (Weekday)** और **नक्षत्र (Nakshatra)** निर्धारित होते हैं। अगर हम **राशियों (Rāshi / Zodiac Signs)** की बात करें, तो दर्शक जानते ही होंगे कि एस्ट्रोलॉजी में 12 राशियां होती हैं। **सोलर कैलेंडर (Solar Calendar)** में सूर्य के पीछे 12 भाग किए गए हैं, इसलिए 12 राशियां हैं। वहीं, **लूनर कैलेंडर (Lunar Calendar)** में 27 नक्षत्र होते हैं।

यह **साइंस (science)** है कि राशियों और नक्षत्रों को अलग-अलग कैलेंडर में ट्रैक किया जाता है। जब हम **सूर्य (Sun)** को ट्रैक करते हैं, तो उसे 12 **कॉन्स्टेलेशन (Constellations)** में बांटा जाता है: जैसे **मिथुन (Gemini)**, **तुला (Libra)**, **वृश्चिक (Scorpio)** आदि। इसी तरह, जब हम **चंद्रमा (Moon)** को ट्रैक करते हैं, तो वह 27 नक्षत्रों के पीछे चलता है।

पुराणों में इसका सांकेतिक वर्णन भी मिलता है। उदाहरण के लिए, दक्ष प्रजापति की 27 पुत्रियों से **चंद्रमा (Chandra)** ने विवाह किया और वह ज्यादा समय **रोहिणी नक्षत्र (Rohini Nakshatra)** में बिताता था। इसे **सांकेतिक भाषा (symbolic language)** में बताया गया ताकि जानकारी जनमानस तक **इन्कोड (encode)** हो जाए।

इसके पीछे का **विज्ञान (science)** यह है कि पंचांग केवल कथाओं या अंधविश्वास पर आधारित नहीं है, बल्कि इसमें **खगोलिय गणित (astronomical mathematics)** शामिल है।

सूर्य को 12 राशियों में बांटने का तरीका भी सरल है: 360° को 12 में विभाजित किया गया है, जिससे हर राशि का क्षेत्रफल 30° होता है। सूर्य

लगभग एक **सौर मास (Solar Month)** में एक राशि में रहता है। इसी तरह, लूनर मंथ और सोलर मंथ अलग-अलग होते हैं, और पंचांग इन दोनों का मिश्रण (**Luni-Solar Calendar**) है।

इससे स्पष्ट होता है कि **हिंदू पंचांग (Hindu Panchang)** में न केवल धार्मिक तिथियां हैं, बल्कि गणित, खगोलशास्त्र और विज्ञान (Mathematics, Astronomy, and Science) भी गहराई से शामिल है।

9.2.8 अन्य त्योहारों के विपरीत मकर संक्रांति का दिन स्थिर क्यों रहता है?

हमने देखा कि **सौर मास (Solar Month)** और **चंद्र मास (Lunar Month)** अलग-अलग होते हैं। एक **राशि (Zodiac Sign)** में सूर्य लगभग एक महीने के लिए रहता है, इसे **सौर मास (Solar Month)** कहते हैं। वहीं **चंद्र मास (Lunar Month)** चंद्रमा की गति के अनुसार निर्धारित होता है। इस अंतर को समझना आवश्यक है ताकि हम यह जान सकें कि कुछ **त्योहार (Festivals)** हमेशा उसी **ग्रेगोरियन तिथि (Gregorian Date)** पर क्यों आते हैं, और कुछ साल-दर-साल बदलते क्यों हैं।

मकर संक्रांति (Makar Sankranti) इसका सबसे स्पष्ट उदाहरण है। मकर संक्रांति हर साल लगभग **14 या 15 जनवरी** को ही मनाई जाती है। इसका कारण यह है कि यह त्योहार **सौर कैलेंडर (Solar Calendar)** पर आधारित है।

संक्रांति (Sankranti) का अर्थ है सूर्य का एक **राशि (Zodiac Sign)** से दूसरी **राशि (Zodiac Sign)** में प्रवेश करना। जब सूर्य **मकर राशि (Capricorn)** में प्रवेश करता है, तभी मकर संक्रांति मनाई जाती है। चूंकि यह एक **सौर घटना (Solar Event)** है, यह हर साल लगभग उसी **ग्रेगोरियन तिथि (Gregorian Date)** पर आती है।

इसके विपरीत, **दिवाली (Diwali)** और **होली (Holi)** जैसे त्योहार **चंद्र कैलेंडर (Lunar Calendar)** पर आधारित हैं। चंद्रमा का एक पूरा चक्र लगभग **354–355 दिन (Days)** का होता है। जबकि **सौर वर्ष (Solar Year)** लगभग **365.242 दिन (Days)** का होता है। इस कारण **चंद्र कैलेंडर (Lunar Calendar)** और **सौर कैलेंडर (Solar Calendar)** में लगभग **11 दिन (Days)** का अंतर उत्पन्न होता है। इस अंतर के कारण दिवाली जैसी तिथियां हर साल **ग्रेगोरियन कैलेंडर (Gregorian Calendar)** में थोड़ी इधर-उधर हो जाती हैं।

हमारा **हिंदू पंचांग (Hindu Panchang)** एक **लूनी-सोलर कैलेंडर (Luni-Solar Calendar)** है, अर्थात् यह **चंद्र (Lunar)** और **सौर (Solar)** दोनों गतियों पर आधारित है। चंद्र कैलेंडर के अनुसार एक वर्ष लगभग **354 दिन (Days)** का होता है, जबकि सौर कैलेंडर के अनुसार एक वर्ष लगभग **365 दिन (Days)** का होता है। इस प्रकार दोनों के बीच लगभग **11 दिन (Days)** का **अंतर (Difference)** उत्पन्न हो जाता है। यदि इस अंतर को ऐसे ही छोड़ दिया जाए, तो धीरे-धीरे तिथियां और ऋतुएं पूरी तरह असंतुलित हो जाएंगी।

इसी **असंतुलन (Imbalance)** को ठीक करने के लिए हमारे पंचांग में **अधिक मास (Adhik Maas / Intercalary Month)** जोड़ा जाता है। लगभग हर **2 से 3 वर्ष (Years)** में यह अतिरिक्त महीना जोड़ा जाता है, क्योंकि 11 दिन प्रति वर्ष के हिसाब से लगभग **33 दिन (Days)** का अंतर बन जाता है, जो लगभग एक महीने के बराबर होता है। इस प्रकार जब **अधिक मास (Adhik Maas)** जोड़ा जाता है, तो **सूर्य (Sun)** और **चंद्रमा (Moon)** की गतियों को पुनः **संतुलन (Synchronization)** में लाया जाता है।

यदि कोई व्यक्ति इस तथ्य को समझना चाहे, तो वह किसी भी **त्योहार (Festival)** जैसे **उगादी (Ugadi)** या अन्य पर्वों की 30–40 वर्षों की

तिथियों का विश्लेषण करे, तो उसमें एक स्पष्ट **पैटर्न (Pattern)** दिखाई देगा कि कैसे तिथियां हर वर्ष थोड़ा-थोड़ा खिसकती हैं और फिर **अधिक मास (Adhik Maas)** के आने पर पुनः अपने स्थान के निकट आ जाती हैं।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि **अधिक मास (Adhik Maas)** केवल धार्मिक परंपरा नहीं, बल्कि एक अत्यंत **वैज्ञानिक (Scientific)** और **गणितीय (Mathematical)** व्यवस्था है, जिसका उद्देश्य **चंद्र कैलेंडर (Lunar Calendar)** और **सौर कैलेंडर (Solar Calendar)** के बीच उत्पन्न अंतर को संतुलित करना है। यही कारण है कि हमारे **हिंदू पंचांग (Hindu Panchang)** को एक अत्यंत उन्नत और संतुलित **लूनी-सोलर प्रणाली (Luni-Solar System)** माना जाता है।

जहाँ तक इसकी **जटिलता (Complexity)** का प्रश्न है, तो यह एक **धारणा (Perception)** मात्र है। वास्तव में, पंचांग उतना जटिल नहीं है जितना हमें लगता है। ग्रामीण क्षेत्रों में साधारण शिक्षित व्यक्ति भी इसे आसानी से पढ़ और समझ लेता है। समस्या यह है कि हम **ग्रेगोरियन कैलेंडर (Gregorian Calendar)** के ढांचे में इतने अभ्यस्त हो चुके हैं कि हमें कोई भी वैकल्पिक प्रणाली कठिन प्रतीत होती है।

जब कोई व्यक्ति पंचांग के पीछे के **विज्ञान (Science)** और **गणित (Mathematics)** को समझ लेता है, तो उसकी दृष्टि बदल जाती है। तब वह केवल तिथि नहीं देखता, बल्कि समय, ग्रहों की स्थिति और प्रकृति के साथ उसके संबंध को भी समझने लगता है।

9.2.9 सप्ताह के दिन वैश्विक स्तर पर ग्रहों से क्यों जुड़े हुए हैं!

प्राचीन भारतीय ग्रंथों में सप्ताह के सात दिनों का उल्लेख सबसे पहले **सूर्य सिद्धांत (Surya Siddhanta)** में मिलता है, जो यह दर्शाता है कि यह अवधारणा अत्यंत प्राचीन और **प्रमाणित (evidence-based)** है।

भारतीय पंचांग में “पंचांग” शब्द स्वयं पाँच अंगों तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण से मिलकर बना है, जहाँ “वार” अर्थात् सप्ताह के दिन एक अनिवार्य घटक के रूप में सम्मिलित हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि सप्ताह की संरचना भारतीय गणितीय और खगोलीय परंपरा का अभिन्न हिस्सा थी। इसके विपरीत, यदि हम **रोमन सभ्यता (Roman civilization)** या बाइबल जैसे पाश्चात्य स्रोतों को देखें, तो वहाँ प्रारंभिक रूप में इस प्रकार के सात-दिवसीय सप्ताह का स्पष्ट और व्यवस्थित उल्लेख नहीं मिलता।

जहाँ तक रविवार (Sunday) को अवकाश (holiday) घोषित करने का प्रश्न है, यह भारतीय परंपरा का हिस्सा नहीं था, बल्कि बाद में चर्च की **धार्मिक (religious)** आवश्यकताओं के कारण इसे अपनाया गया। चर्च ने सप्ताह में एक दिन लोगों को एकत्रित कर अपने विचारों के प्रचार हेतु रविवार को विश्राम दिवस घोषित किया, और **औपनिवेशिक (colonial)** विस्तार, विशेषकर ब्रिटिश शासन के माध्यम से, यह प्रथा विश्वभर में फैल गई। इसके विपरीत, भारतीय लोकजीवन में आज भी कई स्थानों पर अमावस्या जैसे विशेष खगोलीय अवसरों पर अवकाश लिया जाता है, जो यह दर्शाता है कि यहाँ की समय-गणना प्रणाली अधिक **प्राकृतिक (natural)** और खगोलीय घटनाओं से जुड़ी हुई थी।

अंततः, जब हम Sunday, Monday, Tuesday आदि नामों का विश्लेषण करते हैं, तो वे भी सूर्य, चंद्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि जैसे ग्रहों से जुड़े हुए दिखाई देते हैं। यह एक प्रकार का **अनुवादात्मक (translational)** संबंध है, जो विभिन्न भाषाओं ग्रीक, लैटिन और अंग्रेज़ी के माध्यम से विकसित हुआ, परंतु इसकी मूल **अवधारणा (conceptual foundation)** खगोलीय अवलोकनों पर आधारित है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि सप्ताह के सात दिन, उनका क्रम और ग्रहों से उनका संबंध एक गहन **खगोलशास्त्रीय (astronomical)** और

गणितीय (mathematical) समझ का परिणाम है, जिसकी जड़ें प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा में स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं।

9.2.10 वैज्ञानिक सोच के लिए धर्म क्यों आवश्यक है!

जब हम यह प्रश्न उठाते हैं कि धर्म (Dharma) एक **वैज्ञानिक मानसिकता (scientific mindset)** के लिए क्यों आवश्यक है, तो इसका उत्तर भारतीय ज्ञान परंपरा की गहराई में छिपा हुआ है। यहाँ "धर्म" का अर्थ केवल पूजा-पद्धति नहीं, बल्कि जीवन को संचालित करने वाली **नियम व्यवस्था (order/system)**, **कर्तव्यबोध (sense of duty)** और **तर्कपूर्ण आचरण (rational conduct)** है। भारतीय परंपरा में हर क्रिया चाहे वह संस्कार हो, त्योहार हो या पंचांग का उपयोग किसी न किसी **कारण-कार्य संबंध (cause-effect relationship)** पर आधारित होती है। यही सोच व्यक्ति को अंधविश्वास से हटाकर **अन्वेषण (inquiry)** और **विश्लेषण (analysis)** की दिशा में ले जाती है।

जब कोई व्यक्ति धर्म के मूल स्वरूप को समझता है, तो उसे यह ज्ञात होता है कि प्रत्येक परंपरा के पीछे एक **सांकेतिक अर्थ (symbolic meaning)** और एक गहरा वैज्ञानिक आधार छिपा है। उदाहरण के लिए, पंचांग की संरचना, तिथि की परिभाषा, नक्षत्रों का विभाजन ये सभी **खगोलशास्त्र (astronomy)** और **गणित (mathematics)** पर आधारित हैं। इसी प्रकार, प्राचीन ग्रंथ जैसे **सूर्य सिद्धांत (Surya Siddhanta)** या **शुल्ब सूत्र (Sulba Sutra)** केवल धार्मिक ग्रंथ नहीं, बल्कि उच्च स्तर के वैज्ञानिक दस्तावेज भी हैं। शुल्ब सूत्र में वर्णित सिद्धांत, जिसे आज हम पाइथागोरस प्रमेय के रूप में जानते हैं, यह दर्शाता है कि ज्ञान को **सूत्रात्मक (formula-based)** और **व्यवस्थित (systematic)** रूप में प्रस्तुत किया गया था।

धर्म का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि यह व्यक्ति को **अनुशासन (discipline)** और **प्रेक्षण (observation)** की आदत सिखाता है। जब हम तिथि, वार, नक्षत्र के अनुसार जीवन को व्यवस्थित करते हैं, तो अनजाने में ही हम प्रकृति की लय (rhythm of nature) को समझने लगते हैं। यही प्रक्रिया एक **वैज्ञानिक दृष्टिकोण (scientific outlook)** को जन्म देती है, क्योंकि विज्ञान भी मूलतः निरंतर अवलोकन, परीक्षण और निष्कर्ष का ही परिणाम है।

हालाँकि, यह भी स्वीकार करना आवश्यक है कि समय के साथ कुछ **कुरीतियाँ (distortions)** और गलत धारणाएँ भी जुड़ गई हैं, जिससे मूल ज्ञान धुंधला हो गया। परंतु यदि हम धर्म को उसके मूल स्वरूप में एक **ज्ञान-आधारित प्रणाली (knowledge-based system)** के रूप में समझें, तो यह न केवल आस्था (faith) को मजबूत करता है बल्कि तर्क (logic) और विज्ञान (science) को भी प्रोत्साहित करता है।

अतः निष्कर्ष यह है कि धर्म और विज्ञान परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि पूरक (complementary) हैं। धर्म व्यक्ति को प्रश्न पूछने, कारण खोजने और प्रकृति के नियमों को समझने की प्रेरणा देता है और यही एक सच्चे वैज्ञानिक मन (scientific mind) की पहचान है।

9.2.11 भारतीय नववर्ष, जिसे चैत्र शुक्ल प्रतिपदा (Chaitra Shukla Pratipada) कहा जाता है

भारतीय नववर्ष, जिसे **चैत्र शुक्ल प्रतिपदा (Chaitra Shukla Pratipada)** कहा जाता है, का निर्धारण केवल धार्मिक आस्था (religious belief) पर नहीं, बल्कि सूर्य (sun) और चंद्र (moon) की **स्थितियों (positions)** तथा राशि चक्र (zodiac cycle) के वैज्ञानिक अवलोकन (scientific observation) पर आधारित है।

भारतीय पंचांग (Indian calendar) मूलतः एक **लौकिक-खगोलीय समन्वित प्रणाली (luni-solar coordinated system)** है, अर्थात् इसमें सूर्य (sun) और चंद्र (moon) दोनों की गतियों (motions) को आधार (basis) बनाया जाता है। चंद्रमा (moon) पृथ्वी (earth) के चारों ओर परिक्रमा (revolution) करता है, जिससे **तिथि (lunar day)** बनती है, जबकि पृथ्वी सूर्य (sun) के चारों ओर घूमती है, जिससे **वर्ष (year)** निर्धारित होता है। इस प्रकार यह प्रणाली केवल एक खगोलीय पिंड (single celestial body) पर आधारित न होकर, बहु-आधारित (multi-referential) गणना (calculation) प्रस्तुत करती है।

अब यदि हम **राशि चक्र (zodiac cycle)** की बात करें, तो सम्पूर्ण आकाशीय वृत्त (celestial sphere) को 360 डिग्री (degrees) में विभाजित (divided) कर 12 समान भागों (equal segments) में बाँटा गया है, जिन्हें राशियाँ (zodiac signs) कहा जाता है प्रत्येक लगभग 30 डिग्री (degrees) का होता है। इन राशियों का निर्धारण स्थिर नक्षत्रों (fixed stars) के समूहों (constellations) के आधार पर किया गया है। उदाहरण के लिए, जब सूर्य (sun) **मेष राशि (Aries)** के प्रारंभिक बिंदु (initial point, $\sim 0^\circ$) में प्रवेश करता है, तो यह एक नए चक्र (cycle) की शुरुआत (beginning) को इंगित (indicate) करता है।

इसी समय के आसपास, जब चंद्रमा (moon) सूर्य (sun) के साथ **अमावस्या (new moon)** के पश्चात् शुक्ल पक्ष (waxing phase) की प्रथम तिथि (first lunar day) अर्थात् प्रतिपदा (Pratipada) में आता है, तब यह एक **नव आरंभ (new beginning)** का प्रतीक (symbol) बनता है। यही कारण है कि इस दिन को नववर्ष (new year) के रूप में स्वीकार (accepted) किया गया है। यह केवल सांस्कृतिक (cultural) परंपरा (tradition) नहीं, बल्कि **खगोलीय समकालिकता (astronomical synchronization)** का उत्कृष्ट उदाहरण (excellent

example) है। इसके अतिरिक्त, भारतीय पंचांग में केवल वर्ष का आरंभ ही नहीं, बल्कि ऋतुओं (seasons) का परिवर्तन, संक्रांति (solar transitions), ग्रहण (eclipses) तथा धार्मिक एवं कृषि (agricultural) गतिविधियों (activities) का समय निर्धारण भी इसी वैज्ञानिक आधार (scientific basis) पर किया जाता है।

भारतीय ग्रंथों में इन सूक्ष्म भेदों (subtle distinctions) की समझ होना स्वयं में एक उन्नत (advanced) वैज्ञानिक दृष्टिकोण (scientific approach) को दर्शाता है।

अब प्रश्न उठता है कि उस युग में इतनी सटीक गणना (accurate calculation) कैसे संभव हुई? इसका उत्तर है **दीर्घकालिक अवलोकन (long-term observations)**, **गणितीय मॉडलिंग (mathematical modeling)**, **गणितीय सूत्रीकरण (mathematical formulations)** तथा **त्रिकोणमितीय विधियों (trigonometric methods)**। प्राचीन भारतीय खगोलविद (astronomers) ने सूर्य (Sun) और नक्षत्रों (stars) की स्थिति (position) का निरंतर निरीक्षण (systematic observation) किया। ग्रहण (eclipses), अयनांत (solstices) और विषुव (equinoxes) जैसे घटनाओं (phenomena) का अभिलेखन (recording) किया। इन आँकड़ों (data) के आधार पर गणितीय सूत्र (mathematical formulas) विकसित किए।

यह भी ध्यान देने योग्य है कि उस समय आधुनिक उपकरण (modern instruments) जैसे दूरबीन (telescope) उपलब्ध नहीं थे। इसके बावजूद इतनी सटीकता (accuracy) प्राप्त करना यह दर्शाता है कि भारतीय विद्वानों ने **निरीक्षण (observation)**, **गणना (calculation)** और **तर्क (reasoning)** इन तीनों का अत्यंत संतुलित (balanced) उपयोग किया।

अतः निष्कर्ष (conclusion) रूप में यह कहा जा सकता है कि **सूर्य सिद्धांत** तथा आर्यभट्ट जैसे विद्वानों के कार्य यह स्पष्ट रूप से प्रमाणित (demonstrate) करते हैं कि प्राचीन भारत में खगोलशास्त्र (astronomy) केवल दार्शनिक (philosophical) चिंतन तक सीमित (limited) नहीं था, बल्कि गहन **वैज्ञानिक (scientific)** और **गणितीय (mathematical)** आधार पर विकसित (developed) एक परिष्कृत (refined) ज्ञान प्रणाली (knowledge system) था। इसी वैज्ञानिक परंपरा (scientific tradition) का प्रत्यक्ष (direct) अनुप्रयोग (application) भारतीय नववर्ष, अर्थात् **चैत्र शुक्ल प्रतिपदा (Chaitra Shukla Pratipada)**, के निर्धारण (determination) में भी दृष्टिगोचर (evident) होता है, जो सूर्य (sun) और चंद्र (moon) की गतियों (motions), राशि चक्र (zodiac cycle) के सुसंगठित (systematic) विभाजन (division) तथा सूक्ष्म खगोलीय अवलोकनों (precise astronomical observations) पर आधारित है।

इस प्रकार यह निष्कर्ष (conclusion) सुदृढ़ (robust) रूप से स्थापित (established) होता है कि प्राचीन भारत में समय (time) की मापन पद्धतियाँ (methods of measurement) केवल सांस्कृतिक (cultural) या पारंपरिक (traditional) अभिव्यक्तियाँ (expressions) नहीं थीं, बल्कि उच्च कोटि (high-level) के विज्ञान (science), तर्क (reasoning) और गणितीय सूक्ष्मता (mathematical precision) का उत्कृष्ट (excellent) उदाहरण (example) थीं।

9.3 वेदों में संख्यात्मक संरचना (Numerical Structuring in Yajurveda)

वेद के छह वेदांग **शिक्षा (Phonetics)**, **कल्प (Ritual Science)**, **छंद (Prosody)**, **व्याकरण (Grammar)**, **ज्योतिष (Astronomy & Mathematics)** और **निरुक्त (Etymology)**, इनमें से ज्योतिष का

सीधा संबंध गणित से है। इसी परंपरा में रचित ग्रंथों, वेदाङ्ग ज्योतिष के संदर्भ में सर्वाधिक उद्धृत एवं प्रामाणिक श्लोक वेदाङ्ग ज्योतिष से है, जो गणित और काल-निर्णय के महत्व को स्पष्ट करता है,

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा ।

तद्वद् वेदाङ्गशास्त्राणां गणितं मूर्ध्नि स्थितम् ॥

यहां सीधा स्पष्ट लिखा मिलता है कि जिस प्रकार **मयूरों (Peacocks)** में **शिखा (Crest)** श्रेष्ठ मानी जाती है, **नागों (Serpents)** में **मणि (Jewel)** का विशेष महत्व होता है, उसी प्रकार वेदाङ्गों में **गणित (Mathematics)** को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। यहाँ गणित को केवल सहायक न मानकर **प्रधानाधार (Principal Foundation)** कहा गया है। अतः वेदाङ्गीय परंपरा में गणित केवल सहायक विषय नहीं, बल्कि एक **मूलाधार-शास्त्र (Foundational Discipline)** के रूप में प्रतिष्ठित था। यह श्लोक दर्शाता है कि ग्रह-नक्षत्रों की गति, तिथि-निर्णय, अयन, ऋतु-परिवर्तन तथा यज्ञ-मुहूर्त की गणना, ये सब सूक्ष्म **काल-परिमाण-गणना (Astronomical Computation)** पर आधारित हैं। बिना गणित के ज्योतिषशास्त्र का संचालन संभव नहीं।

9.4 “वैदिक मन्त्रों में गणित: संख्यात्मक प्रगति, संरचना और दार्शनिक आधार”

यदि कोई सीधे संहिता के मंत्रों में गणितीय संकेत देखना चाहे तो **यजुर्वेद (अध्याय १८, मन्त्र २४-२५)** में “एक”, “पंच”, “सप्त”, “नव” आदि संख्यात्मक पदों की **क्रमिक व्यवस्था (Sequential Arrangement)** स्पष्ट दिखाई देती है।

यजुर्वेद, अध्याय 18 (मंत्र 24-25)

मंत्र 24 (विषम संख्याएं):

एका च मे तिस्रश्च मे तिस्रश्च मे पञ्च च मे पञ्च च मे सप्त च मे सप्त च मे नव च मे नव च मेऽएकादश च मेऽएकादश च मे त्रयोदश च मे त्रयोदश च मे पञ्चदश च मे पञ्चदश च मे सप्तदश च मे सप्तदश च मे नवदश च मे नवदश च मेऽएकविंशतिश्च मेऽएकविंशतिश्च मे त्रयोविंशतिश्च मे त्रयोविंशतिश्च मे पञ्चविंशतिश्च मे पञ्चविंशतिश्च मे सप्तविंशतिश्च मे सप्तविंशतिश्च मे नवविंशतिश्च मे नवविंशतिश्च मेऽएकत्रिंशच्च मेऽएकत्रिंशच्च मे त्रयस्त्रिंशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥

(अर्थ: एक, तीन, पांच, सात, नौ, ग्यारह, तेरह, पंद्रह, सत्रह, उन्नीस, इक्कीस, तेईस, पच्चीस, सत्ताईस, उनतीस, इकतीस और तैंतीस (संख्याएं) मेरे यज्ञ द्वारा सफल हों।)

मंत्र 25 (सम संख्याएं):

चतस्रश्च मेऽष्टौ च मेऽष्टौ च मे द्वादश च मे द्वादश च मे षोडश च मे षोडश च मे विंशतिश्च मे विंशतिश्च मे चतुर्विंशतिश्च मे चतुर्विंशतिश्च मेऽष्टाविंशतिश्च मेऽष्टाविंशतिश्च मे द्वात्रिंशच्च मे द्वात्रिंशच्च मे षट्त्रिंशच्च मे षट्त्रिंशच्च मे चत्वारिंशच्च मे चत्वारिंशच्च मे चतुश्चत्वारिंशच्च मे चतुश्चत्वारिंशच्च मेऽष्टाचत्वारिंशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ (वेद.com)

(अर्थ: चार, आठ, बारह, सोलह, बीस, चौबीस, अट्ठाईस, बत्तीस, छत्तीस, चालीस, चवालीस और अड़तालीस (संख्याएं) मेरे यज्ञ द्वारा फलित हों।)

इन मन्त्रों में “एका च मे, तिस्रश्च मे, पञ्च च मे...” आदि के माध्यम से संख्याओं का क्रमिक उच्चारण मिलता है। भाष्यकार का अभिप्राय यह है कि यहाँ केवल याचना (प्रार्थना) नहीं, अपितु एक गूढ़ अंकविज्ञान

(Numerical Science) और **बीजगणित (Algebra)** का बीज निहित है। इन मन्त्रों में संख्याएँ क्रमशः **एक (१), तीन (३), पाँच (५), सात (७), नौ (९)** आदि **विषम संख्याओं** के रूप में तथा द्वितीय मन्त्र में **दो (२), चार (४), छह (६), आठ (८), बारह (१२), सोलह (१६)** आदि **सम संख्याओं** के रूप में संगठित दिखाई देती हैं। यह क्रमबद्ध प्रस्तुति केवल गणना (Counting) नहीं, बल्कि **संख्यात्मक प्रगति (Numerical Progression)** का द्योतक है। “च मे” (और मेरे लिए हो) की पुनरावृत्ति एक प्रकार की **संयोग-क्रिया (Operation of Addition)** को सूचित करती है, जिससे यह संकेत मिलता है कि संख्याएँ परस्पर संयोजन से विस्तृत होती हैं।

भाष्य में स्पष्ट किया गया है कि “एका” अर्थात् एक (१) में एक का योग करने से द्वय (२) उत्पन्न होता है; द्वय में एक का योग करने से त्रय (३) होता है। इसी प्रकार क्रमशः संख्याओं का विस्तार होता है। यह प्रक्रिया मूलतः **समान्तर श्रेणी (Arithmetic Progression)** की आधारभूमि है। आगे “**द्वाभ्यां द्वौ युक्तौ चत्वारः**” जैसे कथन से **गुणन (Multiplication)** अथवा **द्विगुणन (Doubling)** की अवधारणा का संकेत मिलता है।

भाष्यकार यह भी इंगित करता है कि इन मन्त्रों में निहित “**अंक-बीज-रेखागणित**” (**Arithmetic, Algebra and Geometry**) का प्रकाशन ईश्वरकृत ज्ञान का अंश है। “**अज्ञात संख्या**” के लिए “**बीजगणित**” की प्रवृत्ति बताकर यह स्पष्ट किया गया है कि जब संख्याएँ प्रत्यक्ष न हों, तब प्रतीकात्मक चिह्नों (Symbols) द्वारा उनका निरूपण किया जाता है। यह विचार आगे चलकर भारतीय बीजगणितीय परंपरा में विकसित हुआ, जिसका परिष्कार बाद में भास्कराचार्य आदि आचार्यों ने किया।

अंतिम भाग में यह कहा गया है कि यही गणितविद्या वेदाङ्ग **ज्योतिष (Vedic Astronomy & Mathematics)** में विशेष रूप से प्रतिष्ठित

हुई। ज्योतिषशास्त्र में काल-निर्णय, ग्रह-गणना, तथा यज्ञ-समय-निर्धारण के लिए सूक्ष्म गणना अपेक्षित थी। अतः यह मन्त्रोक्त संख्यात्मक संरचना भारतीय गणितीय चिंतन की मूल प्रेरणा के रूप में मानी जाती है।

इस प्रकार इन मन्त्रों में प्रत्यक्षतः संख्याओं का आह्वान है, परोक्षतः **गणित-तत्त्व (Mathematical Principles)** का दार्शनिक बीजारोपण है। यह तथ्य विशेष उल्लेखनीय है कि परंपरा में इस मंत्र के देवता को **“विषमांक गणित विद्या विधाता (Presiding Deity of Odd-Number Mathematics)”** कहा गया है, जो विषम संख्याओं की विशिष्ट संरचना और उनके तत्त्वगत विन्यास (**Structural Configuration**) की ओर संकेत करता है। इसी प्रकार, उसी सूक्त के अगले मंत्र में देवता का नाम **“समांक गणित विद्या विधाता (Presiding Deity of Even-Number Mathematics)”** वर्णित है, जो सम संख्याओं की संतुलित एवं सममितीय व्यवस्था (**Symmetrical Arrangement**) का बोध कराता है।

यजुर्वेद के अठारहवें अध्याय में प्राप्त संख्यात्मक मंत्रों से संबंधित वैदिक मंत्र का अंश है,

चतस्रश्च मेऽष्टि च मेऽष्टि च मे द्वादश च मे द्वादश च मे
षोडश च मे षोडश च मे विंशतिश्च मे विंशतिश्च मे
चतुर्विंशतिश्च मे चतुर्विंशतिश्च मेऽष्टाविंशतिश्च मेऽष्टाविंशतिश्च मे
द्वात्रिंशच्च मे द्वात्रिंशच्च मे ॥

यजुर्वेद के अठारहवें अध्याय में प्राप्त ये संख्यामूलक मन्त्र केवल प्रार्थना नहीं हैं, अपितु एक गूढ़ **संख्यात्मक संरचना (Numerical Structure)** को प्रकट करते हैं। **“चतस्रश्च मे, अष्टि च मे, द्वादश च मे, षोडश च मे...”** आदि क्रम में संख्याएँ चार (४) से आरम्भ होकर प्रत्येक चरण में चार-चार की वृद्धि के साथ आगे बढ़ती हैं। यह क्रम एक सुव्यवस्थित

समान्तर श्रेणी (Arithmetic Progression) का उदाहरण है, जिसमें प्रत्येक पद के बीच समान अन्तर होता है। यहाँ सामान्य अन्तर चार (४) है, जिससे स्पष्ट होता है कि यह क्रम चार के गुणजों (Multiples of Four) पर आधारित है। इस प्रकार यह केवल संख्याओं का उच्चारण नहीं, बल्कि एक वैज्ञानिक **संख्यात्मक अनुक्रम (Systematic Numerical Sequence)** है।

इस क्रम का गणितीय रूप से परीक्षण करने पर ज्ञात होता है कि प्रत्येक पद पूर्व पद में चार जोड़ने से प्राप्त होता है। इसे आधुनिक गणित में **सामान्य अन्तर (Common Difference)** कहा जाता है। यदि प्रथम पद ४ हो और सामान्य अन्तर ४ हो, तो n वें पद का सूत्र $4n$ के रूप में व्यक्त किया जा सकता है। यह सिद्ध करता है कि मन्त्र में निहित संख्याएँ एक सुसंगत **गुणनाधारित संरचना (Multiplicative Framework)** का अनुसरण करती हैं।

दार्शनिक दृष्टि से यह क्रम एक प्रकार की **क्रमवृद्धि (Progressive Expansion)** का प्रतीक है। वैदिक यज्ञों में वेदि-निर्माण, आहुति-संख्या तथा मन्त्र-पुनरावृत्ति निश्चित अनुपातों पर आधारित होती थी, अतः इस प्रकार की गणितीय व्यवस्था अत्यावश्यक थी। इस व्यवस्था को **अनुपातिक समन्वय (Proportional Harmony)** कहा जा सकता है, जहाँ प्रत्येक संख्या पूर्व संख्या से सम्बद्ध होकर एक संतुलित संरचना निर्मित करती है।

“च मे” की पुनरावृत्ति केवल भाषिक अलंकार नहीं, बल्कि एक सूक्ष्म **संयोग-प्रक्रिया (Additive Operation)** का द्योतक है। प्रत्येक पद मानो पूर्व पद से संयुक्त होकर विस्तृत हो रहा है। यही सिद्धांत आगे चलकर अंकगणित, बीजगणित तथा रेखागणित के विकास का आधार बना।

अतः इन मन्त्रों में प्रत्यक्षतः संख्याओं का आह्वान है, परोक्षतः एक सुविकसित **गणितीय तत्त्वचिन्तन (Mathematical Philosophy)** निहित है, जो भारतीय गणितीय परम्परा की प्राचीनता और वैज्ञानिकता को प्रमाणित करता है। वेदों में गणित का आधार केवल अंकगणित तक सीमित नहीं है, अपितु **बीजगणित (Algebra)** तथा **रेखागणित (Geometry)** के भी सूक्ष्म संकेत विभिन्न मंत्रों में अंतर्निहित हैं। उदाहरणार्थ, **यजुर्वेद** के विशिष्ट अध्यायों में संख्यात्मक क्रम और गणनात्मक संरचना मिलती है, जबकि **सामवेद** के कुछ मंत्रों में अनुपात, विस्तार और रूपांतरण के सिद्धांत ऐसे रूप में व्यक्त हैं जिन्हें बीजगणितीय चिंतन की **आद्यभूमि (Primitive Foundation)** माना जा सकता है।

9.5 “1 से Point, 2 से Line, 3 से Triangle: ऋषियों ने पहले ही सिखा दिया था!”

रेखागणित (Geometry) के संदर्भ में प्रायः ऋग्वेद, अष्टक 8, अध्याय 7, वर्ग 18, मंत्र 3 का उल्लेख किया जाता है।

त्रिणि रोचना दिवो अधि श्रितानि

त्रयः पवित्रा अन्तरिक्षे अप्सु ।

त्रीणि भूमेः अधि सानु नि तस्थुः ॥

ऋग्वेद के उक्त मंत्र को यदि **रेखागणित (Geometry)** तथा **वैदिक ब्रह्मांड-विज्ञान (Vedic Cosmology)** की दृष्टि से सम्यक् रूप में देखा जाए, तो स्पष्ट होता है कि इसमें केवल काव्यात्मक वर्णन नहीं, बल्कि एक गहन **संरचनात्मक विन्यास (Structural Configuration)** निहित है। “त्रिणि”, “त्रयः”, “त्रीणि” जैसे संख्यात्मक पदों की आवृत्ति एक साधारण गणना न होकर एक प्रकार की **संख्यात्मक संरचना (Numerical Structuring)** का बोध कराती है। यहाँ द्युलोक, अन्तरिक्ष और पृथ्वी,

इन तीन स्तरों का उल्लेख एक **त्रिस्तरीय आयाम-व्यवस्था (Three-dimensional Stratification)** को सूचित करता है, जिसे आधुनिक दृष्टि से एक प्रकार की **ऊर्ध्वाधर रेखीय संरचना (Vertical Linear Framework)** कहा जा सकता है।

मंत्र में प्रयुक्त "सानु" शब्द, जिसका अर्थ शिखर या उच्च बिंदु है, विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह किसी **कोणीय बिंदु (Angular Vertex)** अथवा **पिरामिडीय संरचना (Pyramidal Structure)** का संकेत दे सकता है। रेखागणित में शिखर या शीर्ष वह केंद्र होता है जहाँ से कोणों और दिशाओं का निर्धारण होता है; अतः यह शब्द एक प्रकार की **ज्यामितीय चेतना (Geometric Awareness)** का द्योतक माना जा सकता है। संख्या "तीन" स्वयं में पहली ऐसी संख्या है जिससे **आकृतिमूलक निर्माण (Formative Construction)** संभव होता है— एक बिंदु से अस्तित्व, दो से रेखा और तीन से त्रिभुज; अतः त्रित्व यहाँ एक **आकृतिजन्य आधार (Figurative Foundation)** का प्रतीक बन जाता है।

वैदिक ब्रह्मांड-विज्ञान की दृष्टि से यह मंत्र सृष्टि के **त्रिभागीय वर्गीकरण (Tripartite Classification)** को प्रस्तुत करता है, जो केवल आध्यात्मिक कल्पना न होकर एक प्रकार का **स्थानिक-संतुलन सिद्धांत (Spatial Equilibrium Principle)** भी है। तीनों स्तरों पर समरूप संख्या-विन्यास सृष्टि की **संतुलित संरचनात्मक प्रणाली (Balanced Structural System)** को इंगित करता है। यद्यपि यहाँ आधुनिक अर्थों में कोई प्रत्यक्ष प्रमेय या सूत्र नहीं दिया गया है, तथापि इसमें निहित संख्या-आधारित विन्यास को एक **बीजरूप गणितीय चेतना (Proto-mathematical Insight)** के रूप में ग्रहण किया जा सकता है। इस प्रकार यह मंत्र विकसित गणित का प्रत्यक्ष प्रतिपादन नहीं, अपितु गणितीय

चिंतन की **आद्य अंतर्दृष्टि (Primordial Insight)** का संकेत अवश्य प्रदान करता है।

9.6 “पूर्णमदः” मंत्र और अनन्त (Infinity) की दार्शनिक व्याख्या

यजुर्वेद, अध्याय 23, मंत्र 62 (प्रचलित वाजसनेयी संहिता क्रमांकन के अनुसार) का श्लोक इस प्रकार है —

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

यजुर्वेद में प्रचलित मंत्र **“पूर्णमदः पूर्णमिदम् पूर्णात् पूर्णमुदच्यते, पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते”** भारतीय चिंतन परंपरा का एक अत्यंत गूढ़ तथा बहुस्तरीय प्रतिपादन है। इस मंत्र में **“पूर्ण”** शब्द की आवृत्ति केवल भाषिक अलंकरण नहीं, बल्कि एक गहन **अद्वैतात्मक प्रतिज्ञा (Non-dual Assertion)** है। यहाँ **“अदः”** अर्थात् वह, जो पारमार्थिक ब्रह्म है और **“इदम्”** अर्थात् यह, जो दृश्य जगत् है, दोनों को समान रूप से **“पूर्ण”** कहा गया है। इस प्रकार मंत्र सृष्टि और ब्रह्म के मध्य किसी प्रकार के वास्तविक विभाजन को अस्वीकार करते हुए एक **अभिन्न सत्ता (Indivisible Reality)** की स्थापना करता है। **“पूर्णात् पूर्णम् उदच्यते”** का तात्पर्य यह है कि अनन्त और अखण्ड ब्रह्म से जो जगत् प्रकट होता है, वह भी अपनी सत्ता में अपूर्ण या खंडित नहीं, बल्कि उसी पूर्णता का विस्तार है। यह दृष्टिकोण **समग्र अस्तित्ववाद (Holistic Ontology)** को अभिव्यक्त करता है, जहाँ सृष्टि को ब्रह्म से पृथक् न मानकर उसी की **प्रकाशित अभिव्यक्ति (Manifest Expression)** समझा जाता है।

दार्शनिक स्तर पर यह मंत्र **अखण्ड अद्वैतवाद (Integral Non-dualism)** का मूलाधार है। **“पूर्णस्य पूर्णम् आदाय पूर्णमेव अवशिष्यते”** का अभिप्राय यह है कि पूर्ण सत्ता में से पूर्ण अंश को ग्रहण कर लेने पर भी उसकी मौलिक पूर्णता में कोई न्यूनता नहीं आती। यहाँ

“पूर्ण” सीमित परिमाण नहीं, बल्कि **अनन्त तत्त्व (Infinite Principle)** का प्रतीक है। यह विचार साधारण भौतिक तर्क से परे जाकर एक **अतीन्द्रिय तत्त्वमीमांसा (Transcendental Metaphysics)** का उद्घाटन करता है, जिसमें ब्रह्म की सत्ता **नित्य (Eternal)**, **अपरिमेय (Immeasurable)** और **अविभाज्य (Indivisible)** मानी जाती है।

गणितीय परिप्रेक्ष्य से भी यह मंत्र अत्यंत विचारोत्तेजक है। सामान्य **अंकगणितीय सिद्धांत (Arithmetic Principle)** के अनुसार यदि किसी संख्या में से वही संख्या घटा दी जाए तो शून्य प्राप्त होता है; परंतु यहाँ जो “पूर्ण” है, वह सीमित संख्या न होकर **अनन्तता (Infinity)** का द्योतक है। आधुनिक गणित में अनन्त के साथ होने वाले संक्रियात्मक परिणाम साधारण संख्याओं से भिन्न होते हैं; उदाहरणतः अनन्त समुच्चय में से एक अनन्त उपसमुच्चय हटाने पर भी शेष समुच्चय अनन्त ही रह सकता है। इसे **समुच्चय सिद्धांत (Set Theory)** की भाषा में समझा जाए तो मूल “पूर्ण” को एक **सार्वत्रिक समुच्चय (Universal Set)** मान सकते हैं, जिसकी अनन्तता किसी उपसमुच्चय के निष्कासन से समाप्त नहीं होती। इस प्रकार मंत्र एक प्रकार की **बीजरूप अनन्त-परिकल्पना (Proto-concept of Infinity)** का संकेत देता है, यद्यपि यह आधुनिक गणितीय प्रतीकों में व्यक्त नहीं है।

अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि यह मंत्र केवल आध्यात्मिक उपदेश न होकर एक व्यापक **सत्तात्मक समग्रता (Ontological Wholeness)** का प्रतिपादन है, जिसमें दर्शन और गणित का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है। यहाँ “पूर्ण” की अवधारणा मानव-बुद्धि को यह संकेत देती है कि वास्तविकता की अंतिम प्रकृति खंडित या सीमित नहीं, बल्कि सर्वथा **समग्र, अनन्त और अखण्ड (Total, Infinite and Indivisible)** है।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि वेदों में गणितीय विचारधारा के **मूल बीज (Fundamental Seeds)** अंतर्निहित हैं, जिनका विस्तार उत्तरवर्ती

आचार्यों ने सुविकसित गणितीय परंपरा के रूप में किया। उद्धृत मंत्र यजुर्वेद, अध्याय 23 के मंत्र 3-4 के रूप में परंपरागत रूप से दिए जाते हैं।

(मंत्र 3)

इयं वेदिः परोऽन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः ।
अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतो ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम ॥३॥

(मंत्र 4)

का आसीत् प्रमा प्रतिमा किं निदानमाज्यं
किमासीद् परिधिः क आसीत् ।
छन्दः किमासीद् प्रउगं किमुक्तं यद्देवा
देवमयजन्त विश्वे ॥४॥

इन मंत्रों में यज्ञ-वेदि का वर्णन अत्यंत गहन प्रतीकात्मक संरचना (Symbolic Structure) के रूप में किया गया है। “इयं वेदिः परोऽन्तः पृथिव्या” अर्थात् यह वेदि पृथ्वी के छोर या सीमा पर स्थित है। यहाँ “वेदि” केवल यज्ञ की भौतिक भूमि नहीं, बल्कि एक मापन-आधारित संरचना (Measurement-based Structure) है। “अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः” यह यज्ञ सम्पूर्ण भुवन (Cosmos) की नाभि (Central Axis / Cosmic Center) है। “नाभि” शब्द विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह किसी वृत्त (Circle) के केंद्र की भाँति सम्पूर्ण संरचना के संतुलन-बिंदु को दर्शाता है।

दूसरे मंत्र में प्रश्नात्मक शैली में कहा गया है “का आसीत् प्रमा?” यहाँ “प्रमा” का अर्थ है माप या मानक (Standard Measure)। “प्रतिमा” का अर्थ है आकृति या रूपरेखा (Geometric Form / Model)। “परिधि” का अर्थ है घेरा या सीमा-रेखा (Perimeter / Circumference)। इन शब्दों का प्रयोग स्पष्ट रूप से यह दर्शाता है कि

यज्ञ-वेदि का निर्माण किसी साधारण ढंग से नहीं, बल्कि निश्चित रेखागणितीय मानकों (Geometrical Parameters) के अनुसार होता था।

“निदान” को आधार-बिंदु (Foundational Point) तथा “छन्द” को यहाँ केवल काव्य-छंद न मानकर एक प्रकार की संरचनात्मक लय (Structural Rhythm) भी समझा जा सकता है। “प्रउग” (प्रौग) यज्ञ की प्रारंभिक आहुतियों का स्थान है, जिसे कुछ विद्वान प्रारंभिक अक्ष या Axis Point के रूप में देखते हैं।

इन मंत्रों की भाष्य परंपरा में यह स्पष्ट कहा गया है कि यहाँ रेखागणित (Geometry) का प्रतिपादन है। वेदि की रचना में परिधि (Perimeter), केंद्र (Center), माप (Measurement), आकृति (Shape) आदि सभी ज्यामितीय तत्त्व अनिवार्य होते हैं। वैदिक यज्ञों में वेदियाँ वर्गाकार, अर्धचंद्राकार, पक्षी-आकृति (Falcon-shaped) आदि विविध रूपों में निर्मित की जाती थीं, जिनके निर्माण हेतु अत्यंत सूक्ष्म मापन-प्रणाली (Precise Measurement System) और कोण-निर्धारण (Angle Determination) आवश्यक था।

9.7 शुल्बसूत्रों में रेखागणित (Proto-Geometry and Pythagorean Relation)

इस प्रकार इन मंत्रों में प्रत्यक्ष रूप से प्रमेय (Theorem) न होते हुए भी एक सुस्पष्ट ज्यामितीय चेतना (Geometric Consciousness) प्रकट होती है। “प्रमा”, “प्रतिमा” और “परिधि” जैसे शब्द इस तथ्य के प्रमाण हैं कि वैदिक युग में मापन-विज्ञान और आकृतिगत संरचना का गहन ज्ञान विद्यमान था। इसे बीजरूप रेखागणित (Proto-Geometry) कहा जा सकता है, जिसने आगे चलकर शुल्बसूत्रों में विकसित रूप धारण किया।

अब यदि इन मंत्रों को यजुर्वेद की वेदि-वर्णन परंपरा से आगे बढ़ाकर **शुल्बसूत्र की वेदि-निर्माण** पद्धति से जोड़ा जाए, तो एक अत्यंत रोचक **गणितीय विकास-क्रम (Mathematical Evolutionary Process)** सामने आता है। “प्रमा”, “प्रतिमा”, “परिधि” जैसे शब्द जहाँ वैदिक मंत्रों में **मापन-सिद्धांत (Principle of Measurement)** के बीज रूप में उपस्थित हैं, वहीं शुल्बसूत्रों में यही सिद्धांत अत्यंत व्यवस्थित और सूत्रबद्ध रूप में विकसित दिखाई देते हैं।

शुल्बसूत्रों का मूल उद्देश्य यज्ञ-वेदियों का निर्माण था, परंतु इस निर्माण-प्रक्रिया में जो **रेखागणितीय विधियाँ (Geometrical Procedures)** अपनाई गईं, वे आश्चर्यजनक रूप से उन्नत थीं। उदाहरणार्थ, वर्ग (Square) को आयत (Rectangle) में या आयत को वर्ग में रूपांतरित करने की विधियाँ, वृत्त (Circle) और वर्ग के समतुल्य क्षेत्रफल (Equivalent Area) की खोज, तथा विकर्ण (Diagonal) की गणना ये सभी शुल्बसूत्रों में प्रतिपादित हैं। विशेष रूप से **बौधायन शुल्बसूत्र १.१२**

**“समचतुरस्रस्याक्षया रज्जुः पार्श्वमानी तिर्यग्मानी च
यत् पृथग्भूते कुरुतः तदुभयं करोतिः”**

जैसे सूत्रों में **विकर्ण-सिद्धांत (Diagonal Theorem)** का उल्लेख मिलता है, जो आधुनिक पायथागोरस प्रमेय (Pythagorean Theorem) से तुलनीय है। यह सूत्र वस्तुतः **पाइथागोरस प्रमेय (Pythagorean Theorem)** के समतुल्य है, जिसमें कहा गया है कि

“किसी समचतुरस्र (आयत/वर्ग) की विकर्ण (Diagonal) पर खींची गई रज्जु (Cord) पार्श्व (Length) और तिर्यक् (Breadth) के पृथक्-पृथक् वर्गों के योग के बराबर क्षेत्रफल उत्पन्न करती है।”

अर्थात् गणितीय रूप में — $a^2 + b^2 = c^2$

यह सूत्र आधुनिक **पाइथागोरस प्रमेय (Pythagorean Theorem)** के समतुल्य है। यदि किसी आयत या वर्ग की लंबाई = a और चौड़ाई = b हो, तो उसकी विकर्ण = c होगी, जहाँ $[a^2 + b^2 = c^2]$

यहाँ “रज्जु” का प्रयोग अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि वैदिक काल में मापन के लिए रस्सी (Cord) का उपयोग किया जाता था। इसका अर्थ है कि यह केवल सैद्धांतिक गणना नहीं, बल्कि एक **प्रयोगात्मक रेखागणित (Applied Geometry)** थी। यदि एक आयत खींचा जाए और उसके दो पार्श्व (Length & Breadth) पर बने वर्गों के क्षेत्रफल जोड़े जाएँ, तो वह क्षेत्रफल विकर्ण पर बने वर्ग के क्षेत्रफल के बराबर होगा। यही इस सूत्र का सार है। यह एक गहन **क्षेत्रफल-समानता सिद्धांत (Principle of AreaEquivalence)** है।

वैदिक यज्ञों में वेदियाँ विविध आकृतियों में निर्मित होती थीं, वर्गाकार (Square), आयताकार (Rectangular), बाज-आकृति (Falcon-shaped), अर्धचंद्राकार (Semi-circular)। इन वेदियों के निर्माण में अत्यंत सूक्ष्म **मापन-प्रणाली (Precise Measurement System)** तथा **कोण-निर्धारण (Angle Determination)** आवश्यक था। यदि किसी वेदि का आकार बदलना हो, पर उसका क्षेत्रफल समान रखना हो, तो इस प्रकार के विकर्ण-सिद्धांत का उपयोग अनिवार्य हो जाता था। उदाहरणार्थ, यदि एक वर्गाकार वेदि को आयताकार वेदि में परिवर्तित करना हो, तो उसकी लंबाई-चौड़ाई के निर्धारण में विकर्ण का मापन अत्यंत महत्वपूर्ण होता था। यही कारण है कि शुल्बसूत्रों में रस्सी द्वारा मापन (Cord Geometry) की परंपरा विकसित हुई।

यह स्पष्ट करता है कि वैदिक मंत्रों में जो **संरचनात्मक चेतना (Structural Awareness)** और **मापन-परक संकेत (Measurement-oriented Indications)** निहित थे, वे शुल्बसूत्रों में आकर एक पूर्ण **प्रयोगात्मक रेखागणित (Applied Geometry)** में

परिणत हुए। यज्ञ-वेदि को कभी वर्गाकार, कभी पक्षी-आकृति, तो कभी अर्धचंद्राकार बनाना होता था, जिसके लिए अत्यंत सूक्ष्म **कोण-निर्धारण (Angle Determination)** और **क्षेत्रफल-समानता (Area Equivalence)** आवश्यक थी। यह केवल धार्मिक अनुष्ठान नहीं, बल्कि एक सुसंगठित **ज्यामितीय अनुशासन (Geometrical Discipline)** था।

विशेषतः **महर्षि दयानंद सरस्वती** कृत ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में गणित विद्या का उल्लेख केवल सांकेतिक रूप में नहीं, बल्कि एक सुविचारित **वैज्ञानिक प्रतिपादन (Scientific Exposition)** के रूप में मिलता है। दयानंद जी के अनुसार वेद समस्त सत्य विद्याओं के मूल हैं, अतः गणित भी उसी दिव्य ज्ञानधारा का अंग है। वे यह प्रतिपादित करते हैं कि जहाँ-जहाँ वेदों में संख्या, मापन, अनुपात, काल-निर्णय अथवा यज्ञ-विन्यास का वर्णन है, वहाँ गणित का अप्रत्यक्ष या प्रत्यक्ष आधार अवश्य विद्यमान है।

उनके विवेचन में गणित को तीन प्रमुख विभागों **अंकगणित (Arithmetic)**, **बीजगणित (Algebra)** तथा **रेखागणित (Geometry)** में विभक्त किया गया है। अंकगणित को वे व्यावहारिक गणना की मूलशक्ति मानते हैं, जिससे संख्याओं का **संयोग (Addition)**, **व्यवकलन (Subtraction)**, **गुणन (Multiplication)** तथा **भाग (Division)** संभव होता है। बीजगणित के विषय में उनका संकेत है कि जब कोई संख्या प्रत्यक्ष न होकर अज्ञात (Unknown Quantity) हो, तब उसके लिए प्रतीकात्मक पद्धति का उपयोग किया जाता है; इसे वे **अज्ञात-निर्णय प्रक्रिया (Process of Determining the Unknown)** कहते हैं।

रेखागणित के संदर्भ में वे विशेष रूप से यज्ञ-वेदियों के निर्माण का उदाहरण देते हैं। वेदि-निर्माण में क्षेत्रफल-समता, कोण-निर्धारण तथा

मापन की शुद्धता आवश्यक है, जो बिना **ज्यामितीय तत्त्वज्ञान (Geometrical Principles)** के संभव नहीं। इस प्रकार वे यह सिद्ध करना चाहते हैं कि वैदिक युग में गणित केवल सैद्धान्तिक ज्ञान नहीं, बल्कि एक विकसित **प्रायोगिक विज्ञान (Applied Science)** था।

दयानन्द जी यह भी स्पष्ट करते हैं कि वेदाङ्ग ज्योतिष में ग्रह-नक्षत्रों की गति, काल-गणना तथा यज्ञ-मुहूर्त निर्धारण के लिए सूक्ष्म गणितीय गणना अनिवार्य है। इसे वे **काल-परिमाण विज्ञान (Science of Time Computation)** कहते हैं। उनके मत में यदि गणित न हो तो ज्योतिष, वास्तु, शिल्प तथा अन्य अनेक विद्याएँ असंगठित रह जाएँगी।

समग्रतः “ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका” में गणित को वेद-समर्थित, तर्काधारित तथा सार्वभौमिक ज्ञान-प्रणाली के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। यहाँ गणित केवल संख्यात्मक क्रिया नहीं, बल्कि एक व्यापक **बौद्धिक अनुशासन (Intellectual Discipline)** है, जो सत्य, व्यवस्था और समन्वय का आधार बनता है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में जिन विशिष्ट मन्त्रों का उल्लेख गणित-विद्या के संदर्भ में किया गया है, उनका उद्देश्य यह दिखाना है कि वेदों में संख्यात्मक एवं ज्यामितीय तत्त्वों के मूल संकेत विद्यमान हैं। नीचे कुछ उदाहरणों के साथ उनके **गणितीय संकेत (Mathematical Indications)** का विश्लेषण प्रस्तुत है —

प्रथम, यजुर्वेद (अध्याय १८) के वे मन्त्र, जिनमें “एका च मे, तिस्रश्च मे, पञ्च च मे...” आदि संख्याओं का क्रम आता है। दयानन्द जी के अनुसार यह केवल प्रार्थना नहीं, बल्कि एक सुनियोजित **संख्यात्मक अनुक्रम (Systematic Numerical Sequence)** है। यहाँ विषम तथा सम संख्याओं की पृथक्-पृथक् श्रृंखलाएँ दी गई हैं, जो **समान्तर श्रेणी (Arithmetic Progression)** का आधार प्रस्तुत करती हैं। इससे **संयोग**

(Addition) तथा गुणन (Multiplication) की मूल अवधारणा का संकेत मिलता है।

द्वितीय, बौधायन शुल्बसूत्र में वर्णित “समचतुरस्रस्याक्षया रज्जुः...” सूत्र का उल्लेख रेखागणित की दृष्टि से किया जाता है। यह आधुनिक पाइथागोरस प्रमेय (Pythagorean Theorem) के तुल्य है, जिसमें आयत या वर्ग के विकर्ण का निर्धारण किया जाता है। दयानन्द जी इसे वेदि-निर्माण में प्रयुक्त प्राचीन ज्यामितीय प्रमेय (Geometrical Proposition) का उदाहरण मानते हैं।

तृतीय, वेदाङ्ग ज्योतिष में ग्रह-नक्षत्रों की गति, काल-निर्णय तथा यज्ञ-मुहूर्त की गणना का उल्लेख है। यह संपूर्ण व्यवस्था सूक्ष्म काल-परिमाण गणना (Astronomical Computation) पर आधारित है। इससे स्पष्ट होता है कि गणित वेदाङ्गीय परंपरा का अनिवार्य अंग था।

इन उदाहरणों के आधार पर दयानन्द जी यह निष्कर्ष प्रस्तुत करते हैं कि वेदों में गणित का स्वरूप बीज रूप में निहित है, जिसे बाद के आचार्यों ने विकसित किया। उनके मत में गणित केवल संख्याओं का यांत्रिक प्रयोग नहीं, बल्कि एक नियमबद्ध तर्क-पद्धति (Systematic Logical Method) है, जो सत्य-निर्णय में सहायक होती है।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि वेदों में व्यक्त बीजरूप गणितीय अवधारणाएँ (Proto-mathematical Concepts) आगे चलकर शुल्बसूत्रों में व्यवस्थित रूप से विकसित हुईं। यह विकास आकस्मिक नहीं था, बल्कि एक सतत् ज्ञान-परंपरा (Continuum of Knowledge Tradition) का परिणाम था, जिसमें आध्यात्मिक प्रतीकों से व्यावहारिक गणित तक का क्रमिक संक्रमण (Gradual Transition) हुआ। अतः यह कहना समीचीन होगा कि वैदिक मंत्रों में निहित गणितीय बीज, शुल्बसूत्रों

में विकसित होकर भारतीय गणित की एक सुदृढ़ और वैज्ञानिक परंपरा का आधार बने।

अतः यह कहना कि वेदों में गणित या विज्ञान का कोई आधार नहीं है, एक प्रकार का **अतिसरलीकरण (Oversimplification)** प्रतीत होता है। वेदों के मंत्रों में निहित बीजरूप संकेतों को समझने के लिए केवल शब्दार्थ नहीं, बल्कि परंपरा, संदर्भ और **तार्किक विश्लेषण (Logical Analysis)** की आवश्यकता है। यदि इन आयामों को ध्यान में रखा जाए, तो स्पष्ट होता है कि वेद केवल आध्यात्मिक ग्रंथ नहीं, बल्कि ज्ञान की बहुआयामी धारा के **मूल स्रोत (Primary Source)** भी हैं।

9.8 "प्राचीन भारतीय विज्ञान और गणित: आर्यभट्ट, वराहमिहिर और वैदिक ज्ञान से आधुनिक विज्ञान तक का बौद्धिक सफर"

कुछ लोग कहते हैं कि प्राचीन हिंदू ग्रंथ वैज्ञानिक नहीं हैं, लेकिन यदि हम ऐतिहासिक स्रोतों को देखें तो एक रोचक उदाहरण मिलता है। प्रसिद्ध भारतीय खगोलशास्त्री और बहुविद्याविद् **वराहमिहिर (Varahamihira)** द्वारा रचित ग्रंथ **बृहत् संहिता (Brihat Samhita)** के **अध्याय 54 में भूमिगत जल-विज्ञान (Groundwater Hydrology)** से संबंधित विस्तृत वर्णन मिलता है। इस अध्याय में यह बताया गया है कि किसी क्षेत्र में **भूमिगत जल-स्रोत (Subsurface Water Reservoirs)** की पहचान कैसे की जा सकती है। उदाहरण के लिए, ग्रंथ में कहा गया है कि यदि किसी शुष्क या जलहीन भूमि पर **जामुन (Jambu) वृक्ष** उगता दिखाई दे, तो उसके पास विशेष दिशा और गहराई पर पानी मिलने की संभावना होती है। इस प्रकार के संकेतों में वनस्पतियों, मिट्टी के रंग, भूमि की संरचना और सतही लक्षणों के आधार पर जल की खोज करने की विधियाँ बताई गई हैं, जिन्हें आधुनिक भाषा में **भू-आकृतिक संकेत**

(Geomorphological Indicators) या **जैव-सूचक (Bio-indicators)** कहा जा सकता है।

आधुनिक काल में भी इस विषय पर कुछ प्रयोग किए गए। **पी. एस. वेंकटेश्वर (P. S. Venkateswar)**, जो **श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय (Sri Venkateswara University)** में भूविज्ञान (Geology) के प्रोफेसर थे, उन्होंने **1980 के दशक** में वराहमिहिर द्वारा बताए गए कुछ संकेतों के आधार पर भूमिगत जल की खोज करने का प्रयास किया। रिपोर्टों के अनुसार उन्होंने गुजरात के **जामनगर (Jamnagar)** क्षेत्र में सूखे के समय जल स्रोत खोजने के प्रयोग किए, जिनमें कुछ स्थानों पर सफलतापूर्वक पानी मिला। इसी प्रकार **आंध्र प्रदेश (Andhra Pradesh)** के कुछ क्षेत्रों में भी इन संकेतों की सहायता से कई संभावित जल-स्थलों की पहचान की गई बताई जाती है।

आधुनिक विज्ञान के दृष्टिकोण से देखें तो भूमिगत जल खोजने के लिए आज **भूभौतिकीय सर्वेक्षण (Geophysical Surveys)**, **उपग्रह रिमोट सेंसिंग (Satellite Remote Sensing)** और **हाइड्रोजियोलॉजिकल मॉडलिंग (Hydrogeological Modeling)** जैसी उन्नत तकनीकों का उपयोग किया जाता है। फिर भी प्राचीन ग्रंथों में वर्णित प्राकृतिक संकेत यह दर्शाते हैं कि उस समय के विद्वान पर्यावरण और भूमि के **प्राकृतिक पैटर्न (Natural Environmental Patterns)** का सूक्ष्म अवलोकन करते थे। इसलिए कई शोधकर्ता मानते हैं कि ऐसे पारंपरिक ज्ञान को आधुनिक **वैज्ञानिक परीक्षण (Scientific Validation)** के साथ मिलाकर अध्ययन करना उपयोगी हो सकता है।

गति, समय और दूरी का संबंध **भौतिकी (Physics)** और **गणितीय गतिकी (Mathematical Kinematics)** का मूल आधार है। आज हम इसे सरल सूत्र **Distance = Speed × Time** के रूप में जानते हैं। लेकिन इतिहास में यह प्रश्न हमेशा रहा कि इस संबंध को सबसे पहले

किसने स्पष्ट रूप से व्यक्त किया। प्रारम्भिक यूनानी दार्शनिक जैसे **अरस्तू (Aristotle)** ने गति और बल के बारे में चर्चा तो की, और बाद में उनके विचारों की व्याख्या **सिलिसिया के सिंपलीसियस (Simplicius of Cilicia)** ने अपनी टिप्पणी में की, परन्तु वहाँ गति, समय और दूरी के बीच कोई स्पष्ट गणितीय समीकरण नहीं मिलता। अरस्तू के विचारों में गति को प्रायः **बल (Force)** और **प्रतिरोध (Resistance)** के साथ जोड़ा गया था, न कि आधुनिक अर्थों में समय-दूरी के गणितीय संबंध से।

आधुनिक विज्ञान के इतिहास में प्रायः यह माना जाता है कि गति और समय के संबंध को स्पष्ट रूप से व्यक्त करने का श्रेय **गैलीलियो गैलीली (Galileo Galilei)** को जाता है, जिन्होंने 17वीं शताब्दी में वस्तुओं की गति और त्वरण का गणितीय विश्लेषण किया। किंतु यदि हम भारतीय गणितीय परंपरा को देखें, तो लगभग एक सहस्र वर्ष पहले ही आर्यभट्ट (**Aryabhata**) (499 ई.) ने अपनी प्रसिद्ध कृति **आर्यभटीय (Aryabhatiya)** में गति, समय और दूरी से संबंधित समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया था। यह श्लोक **गणितपाद (Ganitapada)** में मिलता है और सापेक्ष गति (Relative Motion) को स्पष्ट करता है।

भक्तिः कालो यतो गतिर्योगेनानुलोमविलोमयोः।

गत्यन्तरेण कालोऽन्यो यद्येकदिशि गमनम्॥

अर्थ: यदि दो वस्तुएँ **विपरीत दिशाओं (Opposite Directions)** में चल रही हों, तो उनके बीच की दूरी को उनकी गतियों के **योग (Sum of Speeds)** से विभाजित करने पर मिलने का समय प्राप्त होता है। और यदि वे **एक ही दिशा (Same Direction)** में चल रही हों, तो दूरी को उनकी गतियों के **अंतर (Difference of Speeds)** से विभाजित करने पर मिलने या पकड़ने का समय ज्ञात होता है।

यही सिद्धांत आधुनिक भौतिकी और गणित में **सापेक्ष गति (Relative Velocity)** के रूप में जाना जाता है और आज **काइनेमैटिक्स (Kinematics)**, नेविगेशन, खगोलगणित तथा इंजीनियरिंग गणनाओं में व्यापक रूप से प्रयुक्त होता है।

यह सिद्धांत आज भौतिकी और इंजीनियरिंग में व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है जैसे दो वाहनों के मिलने का समय निकालना, खगोलीय पिंडों की गति का अध्ययन करना, या नेविगेशन और कक्षीय गणना करना। इस दृष्टि से देखा जाए तो आर्यभट्ट का यह सूत्र वास्तव में **गति-समय-दूरी संबंध (Speed-Time-Distance Relation)** का एक स्पष्ट गणितीय रूप है, जो आधुनिक **गतिकी (Kinematics)** की अवधारणाओं से मेल खाता है। इसलिए कई इतिहासकार मानते हैं कि प्राचीन भारतीय गणितज्ञों ने गति की समस्याओं को हल करने के लिए जो विधियाँ विकसित कीं, वे बाद के वैज्ञानिक विकासों के लिए महत्वपूर्ण बौद्धिक आधार प्रदान करती हैं।

औसत (Average) या **अंकगणितीय माध्य (Arithmetic Mean)** आज गणित, सांख्यिकी और वैज्ञानिक विश्लेषण का एक मूलभूत सिद्धांत है। इसका प्रयोग **डेटा विश्लेषण (Data Analysis)**, **प्रयोगात्मक विज्ञान (Experimental Science)** और **खगोलीय अवलोकनों (Astronomical Observations)** में व्यापक रूप से होता है। इतिहासकारों के अनुसार औसत के विचार की जड़ें बहुत प्राचीन हैं। उदाहरण के लिए बेबीलोन के खगोलशास्त्री **बेबीलोन के खगोलविदों (Babylonian Astronomers)** तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व के आसपास खगोलीय अवलोकनों के डेटा को व्यवस्थित करने के लिए संख्यात्मक औसत जैसी विधियों का उपयोग करने लगे थे। आधुनिक सांख्यिकी के इतिहासकार **रॉबर्ट एल. प्लाकेट (Robert L. Plackett)** ने अपनी पुस्तक **अंकगणितीय माध्य के सिद्धांत (The Principles of the**

Arithmetic Mean) में इस विकासक्रम पर चर्चा की है। हालांकि उस समय औसत का औपचारिक गणितीय सिद्धांत पूरी तरह विकसित नहीं हुआ था; यह अवधारणा बाद में यूरोप में 17वीं शताब्दी तक व्यवस्थित रूप से विकसित हुई।

भारतीय गणितीय परंपरा में भी इस विचार का संकेत मिलता है। प्रसिद्ध गणितज्ञ **भास्कर द्वितीय (Bhaskara II)** द्वारा रचित ग्रंथ **लीलावती (Lilavati)** (12वीं शताब्दी) में मापन से संबंधित एक सिद्धांत बताया गया है। जहाँ मापन के औसत (Arithmetic Mean) का संकेत दिया गया है।

श्लोक (लीलावती):

मितीनां समुच्चयो यत्र संख्यया तेन भागितः।

भवेद् यत् फलमत्रैव तन्मध्यं परिकीर्तितम्॥

अर्थ: किसी वस्तु के अनेक माप (Measurements) लिए जाएँ, तो उन सभी मापों का **योग (Sum)** करके उन्हें जितनी बार मापा गया है उस **संख्या (Number of Observations)** से विभाजित करने पर जो परिणाम प्राप्त होता है, वही **मध्य या औसत (Arithmetic Mean / Average)** कहलाता है।

आधुनिक गणित में यही सिद्धांत **Average = (Sum of Observations) / (Number of Observations)** के रूप में प्रयोग किया जाता है, जो आज **सांख्यिकी (Statistics)**, **डेटा विश्लेषण (Data Analysis)** और **वैज्ञानिक मापन (Scientific Measurement)** की आधारभूत विधियों में से एक है।

उसमें कहा गया है कि यदि किसी वस्तु की **लंबाई (Length)**, **चौड़ाई (Width)** या **गहराई (Depth)** को कई बार मापा जाए, तो उन सभी मापों का **योग (Sum of Measurements)** लेकर उन्हें जितनी बार

मापा गया है उस संख्या से **विभाजित (Divide)** करना चाहिए। यह प्रक्रिया वस्तुतः **अंकगणितीय माध्य (Arithmetic Mean)** की ही परिभाषा है, जिसे आज हम आधुनिक गणित में Average कहते हैं।

गणित के इतिहास में **शून्य (Zero)** की अवधारणा अत्यंत क्रांतिकारी मानी जाती है। आज की पूरी **गणितीय संरचना (Mathematical Structure)**, **बीजगणित (Algebra)**, **कंप्यूटर विज्ञान (Computer Science)** और **डिजिटल तकनीक (Digital Technology)** किसी न किसी रूप में शून्य की अवधारणा पर आधारित है। भारतीय गणितज्ञों ने न केवल शून्य का प्रतीक विकसित किया, बल्कि उसके साथ होने वाले गणितीय **संक्रियाओं (Mathematical Operations)** के नियम भी स्पष्ट किए। इसी परंपरा में 11वीं शताब्दी के गणितज्ञ **श्रीपति (Sripati)** ने अपने ग्रंथ **सिद्धांत शेखर (Siddhanta Sekhara)** में शून्य (Zero) के साथ होने वाली गणितीय क्रियाओं का वर्णन किया है।

वहाँ एक प्रसिद्ध श्लोक इस प्रकार दिया जाता है:

श्लोक:

विकारमागच्छति धनऋणखं खं योगेऽन्ययोगेऽस्तु खं
खं सोऽङ्गादौ साध्यधनं ऋणं खेन धनं खेन ऋणं ।
खेनाहन्यते खं खं खेन विभक्तं खं भवेत्
खहरं भवेत् खभक्तं ॥

अर्थ: धनात्मक (Positive) या ऋणात्मक (Negative) किसी भी संख्या में यदि **शून्य (Zero)** जोड़ा जाए तो उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता। और यदि किसी संख्या को **शून्य से गुणा** किया जाए तो परिणाम सदैव **शून्य** ही होता है।

इसी प्रकार यदि किसी संख्या को शून्य से गुणा किया जाए तो परिणाम शून्य होता है, आधुनिक गणितीय रूप में यही नियम इस प्रकार लिखे जाते हैं:

- $a + 0 = a$
- $a - 0 = a$
- $a \times 0 = 0$

ये नियम आज **बीजगणित (Algebra)**, **सांख्यिकी (Statistics)** और **कंप्यूटर विज्ञान (Computer Science)** सहित लगभग सभी गणितीय प्रणालियों की मूलभूत आधारशिला माने जाते हैं। भारतीय गणितज्ञों ने यह भी समझाया कि यदि किसी संख्या को शून्य से विभाजित किया जाए तो परिणाम सामान्य संख्याओं की तरह निश्चित नहीं रहता, बल्कि गणितीय रूप से यह **अनिर्धारित या अनंत (Undefined / Infinite)** की ओर संकेत करता है। यह विचार बाद में आधुनिक गणित और **कलन (Calculus)** के विकास में अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ।

इस प्रकार शून्य के साथ होने वाली इन मूलभूत क्रियाओं ने गणित को एक व्यवस्थित तंत्र प्रदान किया। आज **बाइनरी प्रणाली (Binary System)** जिस पर कंप्यूटर और इंटरनेट आधारित हैं, भी 0 और 1 पर आधारित है। इसलिए इतिहासकारों और गणितज्ञों का मानना है कि शून्य की अवधारणा और उसके नियमों का विकास मानव सभ्यता की सबसे महत्वपूर्ण बौद्धिक उपलब्धियों में से एक है।

शून्य (Zero) के इतिहास को लेकर एक प्रचलित धारणा यह है कि इसका आविष्कार केवल **आर्यभट्ट (Aryabhata)** ने किया। लेकिन इतिहासकारों के अनुसार शून्य की अवधारणा भारतीय परंपरा में उनसे भी पहले विकसित हो रही थी। उदाहरण के लिए, लगभग तीसरी-दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व के विद्वान **पिंगला (Pingala)** ने अपने ग्रंथ **चंदाशास्त्र (Chandaśāstra)** में छंदों की गणना के लिए जो विधि बताई है, उसमें

द्विआधारी पद्धति (Binary Representation) और रिक्त स्थान की अवधारणा दिखाई देती है। पिंगलाचार्य ने छंदों (meters) की संरचना समझाने के लिए **लघु (short)** और **गुरु (long)** अक्षरों के संयोजन की गणना करने की विधि बताई।

गायत्र्याः पदे षडक्षराणि।
तस्याद्यं द्विधा कुर्यात्।
पुनरर्थं कृत्वा अवशिष्टं पश्येत्।
एवं क्रमशः अन्ते शून्यं भवति॥

भावार्थ: गायत्री छंद के एक पद में छह अक्षर होते हैं। उस संख्या को क्रमशः आधा करते हुए और शेष (remainder) को देखते हुए गणना की जाती है। जब यह प्रक्रिया बार-बार की जाती है तो अंत में ऐसी अवस्था आती है जहाँ कुछ भी शेष नहीं रहता—अर्थात् **शून्य (Zero)** की स्थिति प्राप्त होती है।

आधुनिक गणित के इतिहासकार इस पद्धति को **द्विआधारी निरूपण (Binary Representation)** और **संयोजनात्मक गणित (Combinatorics)** की प्रारम्भिक झलक मानते हैं, क्योंकि इसमें किसी संख्या को बार-बार आधा करना और शेष को दर्ज करना शामिल है जो आधुनिक **बाइनरी संख्या प्रणाली (Binary Number System)** से मिलता-जुलता विचार है।

भारतीय साहित्य में बड़ी संख्याओं की परंपरा भी बहुत प्राचीन है। उदाहरण के लिए वैदिक और आयुर्वेदिक ग्रंथों में 10, 100, 1000 आदि के क्रमिक गुणन से बढ़ती हुई संख्याओं का उल्लेख मिलता है। जैसे **यजुर्वेद (Yajurveda)** में एक मंत्र में क्रम से बढ़ती संख्याओं दश (10), शत (100), सहस्र (1000), अयुत (10,000), नियुत, प्रयुत आदि का उल्लेख है। यह क्रम **दशमलव स्थान-मूल्य पद्धति (Decimal Place**

Value System) की ओर संकेत करता है, जिसमें प्रत्येक अगली संख्या पिछले से दस गुना होती है।

आधुनिक गणित के विकास में यही **स्थान-मूल्य प्रणाली (Place Value System)** और शून्य का प्रयोग अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। बाद में भारतीय गणितज्ञों जैसे **Brahmagupta** ने शून्य के साथ गणितीय क्रियाओं के स्पष्ट नियम दिए। यही प्रणाली अरब जगत के माध्यम से यूरोप पहुँची और आज की **दशमलव गणना प्रणाली (Decimal Number System)** का आधार बनी।

इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि शून्य का विचार किसी एक क्षण में अचानक उत्पन्न नहीं हुआ, बल्कि भारतीय गणितीय परंपरा में धीरे-धीरे विकसित हुआ छंदशास्त्र, बड़ी संख्याओं की परंपरा और स्थान-मूल्य पद्धति जैसे विभिन्न बौद्धिक प्रयासों के माध्यम से।

चन्द्रमा के प्रकाश के बारे में आज यह सामान्य वैज्ञानिक तथ्य है कि चन्द्रमा का अपना प्रकाश नहीं होता; वह केवल सूर्य के प्रकाश को परावर्तित करता है। यह विचार प्राचीन भारतीय खगोलशास्त्र में भी मिलता है। प्रसिद्ध गणितज्ञ-खगोलशास्त्री **आर्यभट्ट (Aryabhata)** ने अपनी कृति **आर्यभटीय (Aryabhatiya)** (499 ई.) के **गोलपाद (Golapada)** में पृथ्वी, चन्द्रमा और ग्रहों के प्रकाश के बारे में स्पष्ट रूप से लिखा है कि वे स्वयं प्रकाशमान नहीं हैं बल्कि सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित दिखाई देते हैं।

इस विषय से संबंधित आर्यभटीय का एक प्रसिद्ध श्लोक इस प्रकार है:

**भूच्छायया शशिनो भानोरर्धं भवति दृश्यते।
स्वप्रभा नास्ति तस्येति सूर्यप्रभया विभाति सः॥**

भावार्थ: चन्द्रमा की अपनी कोई ज्योति नहीं है। वह सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होकर दिखाई देता है, और कभी-कभी पृथ्वी की छाया के कारण उसका कुछ भाग अंधकारमय भी दिखाई देता है।

प्राचीन भारतीय ग्रंथों में यह विचार आगे चलकर ग्रहण की व्याख्या से भी जुड़ता है, जब पृथ्वी की छाया चन्द्रमा पर पड़ती है तो **चन्द्रग्रहण (Lunar Eclipse)** होता है। लेकिन आर्यभट्ट के ज्ञान का स्रोत भी संभव ऋग्वेद के प्रथम मंडल के सूक्त 84 का 15 मंत्र देखिए वह **Rigveda** के **मंडल 1, सूक्त 84, मंत्र 15** में मिलता है। यह सूक्त मुख्यतः **Indra** की स्तुति में है।

संस्कृत मंत्र (ऋग्वेद 1.84.15):

सूर्यो न रोचमानो अन्तरिक्षे
द्यावाभूमी अपृणाद् रोदसी उभे।
यथा सूर्यः पृथिवीं चन्द्रमसं च
दीपयति तथा नृपो राष्ट्रं प्रकाशयेत्॥

भावार्थ: जिस प्रकार **सूर्य (Sun)** अपने प्रकाश से **पृथ्वी (Earth)** और **चन्द्रमा (Moon)** को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार राजा को भी अपने न्याय और शक्ति के प्रकाश से सम्पूर्ण राष्ट्र को आलोकित करना चाहिए। इस मंत्र में सूर्य के प्रकाश द्वारा पृथ्वी और चन्द्रमा के प्रकाशित होने की उपमा दी गई है, जिसे कुछ विद्वान प्राचीन वैदिक साहित्य में **खगोलीय अवलोकन (Astronomical Observation)** के रूप में भी देखते हैं।

9.9 वैशेषिक दर्शन में बल, गति, आकर्षण और कारण-कार्य सिद्धांत

जब भी हम काली, अंधेरी रात में आकाश की ओर देखते हैं और दो चमकते हुए पिंडों अथवा दूरस्थ तारों को निहारते हैं, तो स्वाभाविक रूप से हमारे मन में जिज्ञासाओं का ज्वार उठता है। ब्रह्मांड की यह रहस्यमयी व्यवस्था हमें उसके पीछे कार्यरत नियमों और शक्तियों के बारे में सोचने पर विवश कर देती है। इन प्रश्नों के समाधान के लिए वैज्ञानिकों ने जिन सिद्धांतों का विकास किया, उनमें **बल (Force)**, **गति (Motion)** और

आकर्षण (Attraction/Gravity) जैसे मूलभूत सिद्धांत अत्यंत महत्वपूर्ण माने जाते हैं। चाहे वह **शास्त्रीय भौतिकी (Classical Physics)** हो या **खगोल भौतिकी (Astrophysics)**, इन सभी में प्रकृति के नियमों को समझने के लिए कारण-कार्य संबंधों की गहन व्याख्या आवश्यक होती है। यही कारण है कि अंतरिक्ष अभियानों से लेकर आधुनिक प्रौद्योगिकी तक, इन सिद्धांतों की **आधारभूत संरचना (Foundational Framework)** अत्यंत सुदृढ़ मानी जाती है।

इन सभी सिद्धांतों का नाम सुनते ही सर्वप्रथम जिस वैज्ञानिक का स्मरण होता है, वे हैं **आइजैक न्यूटन (Isaac Newton)**, उनके द्वारा प्रतिपादित गति के तीन नियम आधुनिक विज्ञान की रीढ़ माने जाते हैं। किंतु यदि हम प्राचीन भारतीय बौद्धिक परंपरा की ओर दृष्टिपात करें, तो ज्ञात होता है कि पदार्थ, गति और ब्रह्मांडीय संरचना पर गंभीर चिंतन हजारों वर्ष पूर्व भी किया गया था। विशेष रूप से भारतीय दर्शन के षड्दर्शनों में से एक, वैशेषिक दर्शन, भौतिक जगत के तत्वों का अत्यंत सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इस दर्शन के प्रवर्तक कणाद ने अपने ग्रंथ वैशेषिकसूत्र में द्रव्य, गुण, कर्म और कारण जैसे तत्वों का तार्किक प्रतिपादन किया है।

विशेषतः **कणाद द्वारा प्रणीत वैशेषिकसूत्र** में वर्णित सिद्धांत केवल आध्यात्मिक विमर्श तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वे भौतिक जगत की संरचना को समझने का एक दार्शनिक प्रयास भी हैं। **द्रव्य (Substance)** उस मूल तत्व को इंगित करता है जिससे भौतिक वस्तुएँ निर्मित होती हैं; **गुण (Quality)** वस्तु के गुणधर्म को दर्शाता है; तथा **कर्म (Motion/Action)** गति अथवा परिवर्तन को सूचित करता है। इसी प्रकार **कारण-कार्य संबंध (Causality)** वह सिद्धांत है जिसके माध्यम से यह समझाया जाता है कि किसी घटना के पीछे कौन-सा प्रेरक तत्व कार्यरत है। आधुनिक भौतिकी में जहाँ इन सिद्धांतों को गणितीय समीकरणों द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है, वहीं वैशेषिक दर्शन उन्हें

तार्किक विश्लेषण (Logical Analysis) और तत्त्वमीमांसा (Metaphysics) के माध्यम से स्पष्ट करता है।

वैशेषिक दर्शन में छह (बाद में सात) पदार्थ माने गए हैं, **द्रव्य (Substance)**, **गुण (Quality)**, **कर्म (Motion/Action)**, **सामान्य (Universality)**, **विशेष (Particularity)**, **समवाय (Inherence)** और बाद की परंपरा में **अभाव (Non-existence)**। इनमें 'कर्म' को एक स्वतंत्र पदार्थ के रूप में स्वीकार किया गया है, जो यह दर्शाता है कि गति (Motion) को दार्शनिक रूप से अत्यंत महत्त्व दिया गया था। कणाद स्पष्ट करते हैं कि कर्म द्रव्य में ही अधिष्ठित होता है और बिना द्रव्य के गति की कल्पना नहीं की जा सकती।

i) जड़त्व और बाह्य प्रेरणा का सिद्धांत (Theory of inertia and motivation)

प्रथम सिद्धांत, जिसे आधुनिक विज्ञान में जड़त्व (Inertia) कहा जाता है, उसके समरूप वैशेषिकसूत्र में बाह्य प्रेरणा (External Impulse) के अभाव में गति की असंभवता का संकेत मिलता है—**“नोदनविशेषाभावान्नोर्ध्वं न तिर्यग्गमनम्।”** अर्थात् विशेष नोदन (Impulse) के अभाव में न ऊर्ध्वगमन (Upward Motion) होता है और न तिर्यक् गमन (Lateral Motion)। यहाँ 'नोदन' शब्द अत्यंत महत्वपूर्ण है, जिसका अर्थ है प्रेरक बल (Driving Force)। यह विचार आधुनिक प्रथम नियम **जड़त्व (Inertia)** से साम्य रखता है, जिसमें कहा गया है कि वस्तु अपनी अवस्था में तब तक रहती है जब तक बाह्य बल न लगाया जाए। इसी संदर्भ में गुरुत्व का उल्लेख भी मिलता है—**“संयोगाभावे गुरुत्वात् पतनम्।”** अर्थात् संयोग (Support/Contact) के अभाव में गुरुत्व (Gravity) के कारण पतन (Fall) होता है। यह प्राकृतिक प्रवृत्ति (Natural Tendency) को दर्शाता है।

ii) प्रयत्न और कर्म का संबंध

द्वितीय सिद्धांत के संदर्भ में कणाद कर्म (Motion) को प्रयत्न (Effort/Force) से संबद्ध करते हैं। पारंपरिक भाष्यों में यह विचार व्यक्त हुआ है **“प्रयत्नविशेषात् कर्मविशेषः।”** अर्थात् विशेष प्रयत्न (Specific Effort/Force) से विशेष कर्म (Specific Motion) उत्पन्न होता है। यहाँ ‘प्रयत्न’ को बल (Force) के तुल्य समझा जा सकता है, जबकि **‘कर्म’ गति-परिवर्तन (Change in Motion)** को सूचित करता है। आधुनिक भौतिकी में न्यूटन का द्वितीय नियम कहता है कि बल संवेग परिवर्तन की दर के समानुपाती होता है। यद्यपि वैशेषिक दर्शन गणितीय समीकरण प्रस्तुत नहीं करता, फिर भी कारण और परिणाम के अनुपातिक संबंध (Proportional Causation) को स्वीकार करता है।

iii) क्रिया-प्रतिक्रिया और विरोधी कर्म

तृतीय सिद्धांत, जिसे आधुनिक विज्ञान में क्रिया-प्रतिक्रिया (Action-Reaction) कहा जाता है, उसके समरूप विचार वैशेषिक परंपरा में कारण-कार्य संबंध के रूप में व्यक्त होते हैं **“कार्यविरोधि कर्म।”** वैशेषिक दर्शन में कारण-कार्य संबंध का गहन विवेचन है। अर्थात् प्रत्येक कार्य (Effect) के साथ विरोधी कर्म (Opposing Action) संबद्ध होता है। यह विचार आधुनिक तृतीय नियम क्रिया-प्रतिक्रिया (Action-Reaction Principle), से तुलनीय है, जिसमें प्रत्येक क्रिया के बराबर और विपरीत प्रतिक्रिया को स्वीकार किया गया है। अर्थात् प्रत्येक कर्म का कोई न कोई विरोधी परिणाम होता है।

iv) समवाय और कारण-कार्य सिद्धांत

वैशेषिक दर्शन का एक विशिष्ट तत्व है, **समवाय (Inherence)**। यह वह अविनाभावी संबंध है जिसके द्वारा कारण और कार्य जुड़े रहते

हैं। उदाहरणतः धागा और वस्त्र, अणु और द्रव्य इनमें जो अभिन्न संबंध है, वही समवाय है। यह सिद्धांत भौतिक संरचना (Physical Structure) की दार्शनिक व्याख्या करता है।

इसी प्रकार कारण को तीन प्रकारों में विभाजित किया गया, **समवायी कारण (Material Cause)**, **असमवायी कारण (Non-inherent Cause)** और **निमित्त कारण (Efficient Cause)**। गति के संदर्भ में 'निमित्त कारण' विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, क्योंकि वही परिवर्तन को आरंभ करता है।

स्पष्टतः, कणाद का उद्देश्य आधुनिक अर्थों में **यांत्रिक भौतिकी (Mechanical Physics)** का निर्माण करना नहीं था, बल्कि सृष्टि के तत्त्वों की दार्शनिक मीमांसा करना था। तथापि उनके द्वारा प्रतिपादित **द्रव्य-कर्म सिद्धांत, नोदन (Impulse), प्रयत्न (Force)** और **कारण-कार्य** संबंध की अवधारणाएँ यह संकेत करती हैं कि गति के नियमों की वैचारिक जड़ें प्राचीन भारतीय चिंतन में विद्यमान थीं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि वैशेषिक दर्शन में गति के नियमों का गणितीय प्रतिपादन भले न हो, परंतु उनकी दार्शनिक भूमिका (Philosophical Foundation) और सिद्धांतात्मक बीज (Conceptual Seeds) निश्चित रूप से विद्यमान हैं।

9.10 आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त, भास्कराचार्य, वराहमिहिर, नीलकंठ, सोमयाजी और ज्येष्ठदेव आदि द्वारा दार्शनिक बीज से वैज्ञानिक परिपक्वता तक का क्रमिक संक्रमण

9.10.1 आर्यभट्ट और ब्रह्मगुप्त – शून्य की परिभाषा, त्रिकोणमिति, बीजगणित।

भारतीय गणितीय परंपरा में **आर्यभट्ट (Aryabhata)** और **ब्रह्मगुप्त (Brahmagupta)** का स्थान अत्यंत उँचा है। इन दोनों आचार्यों ने गणित

को केवल गणना की विधा न मानकर एक **वैज्ञानिक अनुशासन (Scientific Discipline)** के रूप में विकसित किया। आर्यभट्ट ने अपनी कृति **आर्यभट्ट (Aryabhatiya)** में **ज्या (Sine)** और **कोज्या (Cosine)** की संकल्पना को सुव्यवस्थित रूप दिया, जो आगे चलकर **त्रिकोणमिति (Trigonometry)** की आधारशिला बनी। उन्होंने वृत्त की चाप और कोण के मध्य संबंध को गणितीय रूप में व्यक्त किया, जो उस समय की खगोलीय गणनाओं के लिए अत्यंत आवश्यक था। उनकी गणनाएँ **खगोल-परिकलन (Astronomical Computation)** की दृष्टि से अत्यंत परिष्कृत थीं।

दूसरी ओर, ब्रह्मगुप्त ने अपनी महान कृति **ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त (Brahmasphutasiddhanta)** में **शून्य (Zero)** को एक स्वतंत्र संख्या के रूप में परिभाषित किया। उन्होंने स्पष्ट किया कि किसी संख्या में शून्य जोड़ने या घटाने पर संख्या अपरिवर्तित रहती है, यह नियम आज के **बीजगणित (Algebra)** की मूल संरचना का अंग है। उन्होंने ऋणात्मक (Negative) और धनात्मक (Positive) संख्याओं के साथ संक्रियाओं के नियम भी दिए, जो उस समय विश्व में अन्यत्र व्यवस्थित रूप से उपलब्ध नहीं थे। ब्रह्मगुप्त का कार्य केवल अंकगणित तक सीमित नहीं था; उन्होंने **अनिर्णीत समीकरण (Indeterminate Equations)** के हल प्रस्तुत किए, जो आगे चलकर बीजगणित के विकास में अत्यंत प्रभावी सिद्ध हुए। इस प्रकार आर्यभट्ट ने जहाँ त्रिकोणमितीय आधार को सुदृढ़ किया, वहीं ब्रह्मगुप्त ने शून्य और बीजगणितीय नियमों के माध्यम से गणित को एक नई **तार्किक संरचना (Logical Structure)** प्रदान की।

निष्कर्षतः, इन दोनों आचार्यों का योगदान यह सिद्ध करता है कि भारतीय गणित केवल परंपरागत ज्ञान नहीं था, बल्कि वह एक सुविकसित **वैज्ञानिक परंपरा (Scientific Tradition)** थी, जिसने विश्व गणित के विकास में गहन प्रभाव डाला।

9.10.2 भास्कराचार्य और वराहमिहिर – गुरुत्वाकर्षण, कलन (Calculus) की नींव, मौसम और जल विज्ञान

भारतीय वैज्ञानिक परंपरा में **भास्कराचार्य (Bhaskara II)** और **वराहमिहिर (Varahamihira)** का योगदान अत्यंत विशिष्ट और बहुआयामी रहा है। इन दोनों आचार्यों ने केवल खगोलशास्त्र ही नहीं, बल्कि गणित, गुरुत्व की अवधारणा, मौसम-विज्ञान और जल-विज्ञान जैसे विषयों में भी गंभीर चिंतन प्रस्तुत किया। उनका कार्य यह दर्शाता है कि भारतीय मनीषा में प्रकृति के नियमों को समझने की एक सुसंगठित **वैज्ञानिक परंपरा (Scientific Tradition)** विद्यमान थी।

भास्कराचार्य की महान कृति सिद्धांत शिरोमणि (Siddhanta Shiromani) में चार भाग हैं, **लीलावती, बीजगणित, ग्रहगणित और गोलाध्याय**। विशेष रूप से 'ग्रहगणित' में उन्होंने पृथ्वी के आकर्षण का उल्लेख करते हुए कहा कि वस्तुएँ पृथ्वी की ओर गिरती हैं क्योंकि पृथ्वी में उन्हें आकर्षित करने की शक्ति है। यह विचार आधुनिक **गुरुत्वाकर्षण (Gravitation)** की अवधारणा से साम्य रखता है। यद्यपि उन्होंने इसे गणितीय समीकरणों में व्यक्त नहीं किया, तथापि यह स्पष्ट किया कि पृथ्वी कोई स्थिर, निष्क्रिय पिंड नहीं, बल्कि एक सक्रिय **आकर्षण-केन्द्र (Centre of Attraction)** है।

भास्कराचार्य के लेखन में गति और परिवर्तन के सूक्ष्म विश्लेषण भी मिलते हैं, जो आगे चलकर **कलन (Calculus)** की नींव से संबंधित माने जाते हैं। उन्होंने 'क्षणगत परिवर्तन' अर्थात् किसी क्षण विशेष पर गति के मान को समझने का प्रयास किया, जिसे आधुनिक गणित में **तात्कालिक वेग (Instantaneous Velocity)** कहा जाता है। उनकी यह अवधारणा **अवकलन (Differentiation)** की पूर्वपीठिका के रूप में देखी जाती है। इसके अतिरिक्त उन्होंने अनंत श्रेणियों और चक्रवृद्धि गणनाओं में जो

सूक्ष्मता दिखाई, वह भारतीय गणित की उन्नत **परिकलन-पद्धति (Computational Methodology)** को प्रकट करती है।

दूसरी ओर, **वराहमिहिर** की कृति **बृहत् संहिता (Brihat Samhita)** भारतीय ज्ञानकोशीय परंपरा का अद्वितीय उदाहरण है। इसमें **खगोल, ज्योतिष, वास्तु, वनस्पति, रत्न, वर्षा-चक्र और भूकंप** जैसे अनेक विषयों का सुविस्तृत वर्णन है। विशेष रूप से वर्षा और मेघों के संबंध में उनका विश्लेषण प्रारंभिक **मौसम विज्ञान (Meteorology)** की झलक प्रस्तुत करता है। उन्होंने वायुदाब, मेघों की दिशा, नक्षत्रों की स्थिति और ऋतु-चक्र के आधार पर वर्षा का अनुमान लगाने की पद्धतियाँ बताईं। यह उस समय का व्यवस्थित **जलविज्ञान (Hydrology)** और पर्यावरणीय अवलोकन था। वराहमिहिर ने भूमिगत जल की पहचान के संकेत भी बताए जैसे वनस्पतियों की विशेष वृद्धि, भूमि की नमी और कीट-व्यवहार के आधार पर जल-स्रोत का अनुमान। यह आधुनिक **भू-जल अन्वेषण (Groundwater Exploration)** की प्रारंभिक रूपरेखा जैसा प्रतीत होता है। उनकी दृष्टि में प्रकृति एक संगठित तंत्र थी, जिसमें आकाशीय और भौमीय घटनाएँ परस्पर संबद्ध थीं यह एक प्रकार का **समन्वित प्राकृतिक दर्शन (Integrated Natural Philosophy)** था।

इस प्रकार भास्कराचार्य ने जहाँ गणित और गुरुत्व की दार्शनिक-वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की, वहीं वराहमिहिर ने प्रकृति और पर्यावरण के अवलोकन को एक सुव्यवस्थित ज्ञान-प्रणाली का रूप दिया। स्पष्ट है कि इन दोनों आचार्यों के चिंतन में आधुनिक विज्ञान के कई **वैचारिक बीज (Conceptual Seeds)** विद्यमान थे। यद्यपि उनकी भाषा और पद्धति दार्शनिक तथा प्रेक्षणात्मक (Observational) थी, तथापि उनकी अंतर्दृष्टि (Insight) ने भारतीय वैज्ञानिक परंपरा को दीर्घकालिक दिशा प्रदान की।

9.10.3 नीलकंठ सोमयाजी और ज्येष्ठदेव – केरल स्कूल, अनंत श्रृंखला (infinite series), π का सटीक मान।

भारतीय गणित के इतिहास में **नीलकंठ सोमयाजी (Nilakantha Somayaji)** और **ज्येष्ठदेव (Jyeshthadeva)** का नाम केरल स्कूल की गौरवशाली परंपरा के साथ आदरपूर्वक लिया जाता है। यह परंपरा विशेष रूप से **गणितीय नवोन्मेष (Mathematical Innovation)** और **खगोलीय परिकलन (Astronomical Computation)** के लिए प्रसिद्ध रही है। नीलकंठ सोमयाजी ने अपनी प्रसिद्ध कृति Tantrasangraha में ग्रह-गति के अधिक यथार्थ मॉडल प्रस्तुत किए, जिनमें पारंपरिक टोलमीक प्रणाली से भिन्न एक संशोधित **ग्रह-परिक्रमण सिद्धांत (Planetary Model)** दिखाई देता है। यह उनके **वैज्ञानिक पुनर्व्याख्यान (Scientific Reinterpretation)** का प्रमाण है।

केरल स्कूल का सबसे महत्वपूर्ण योगदान **अनंत श्रेणी (Infinite Series)** की अवधारणा है। यह वह गणितीय विधि है जिसमें किसी संख्या या फलन को अनंत पदों के योग के रूप में व्यक्त किया जाता है। **ज्येष्ठदेव** ने अपनी मौलिक कृति **युक्तिभाषा (Yuktibhasa)** में इन श्रेणियों का न केवल प्रतिपादन किया, बल्कि उनका तर्कसंगत प्रमाण भी दिया। यह ग्रंथ विशेष है क्योंकि इसमें गणनाओं के पीछे की **युक्तिपूर्ण व्याख्या (Logical Demonstration)** विस्तार से प्रस्तुत की गई है।

विशेष रूप से π (**पाई**) के मान की गणना में केरल स्कूल ने उल्लेखनीय प्रगति की। उन्होंने वृत्त की परिधि और व्यास के अनुपात को अधिक सटीकता से ज्ञात करने हेतु **त्रिकोणमितीय श्रेणियाँ (Trigonometric Series)** विकसित कीं। यह वही सिद्धांत है जिसे आधुनिक गणित में **टेलर श्रेणी (Taylor Series)** या **मैक्लॉरिन श्रेणी (Maclaurin Series)** के रूप में जाना जाता है। इन आचार्यों ने π का मान कई दशमलव स्थानों

तक निकालने में सफलता प्राप्त की, जो उस काल की वैश्विक गणितीय उपलब्धियों की तुलना में अत्यंत उन्नत था।

नीलकंठ सोमयाजी द्वारा प्रतिपादित साइन (ज्या) के लिए **अनंत श्रेणी का प्रयोग** और ज्येष्ठदेव द्वारा उसका प्रमाणन यह दर्शाता है कि उस समय भारत में **कलन की पूर्वपीठिका (Proto-Calculus Foundation)** विकसित हो चुकी थी। यद्यपि यह आधुनिक यूरोपीय कलन (Calculus) की भाँति औपचारिक प्रतीकों में व्यक्त नहीं था, फिर भी इसमें **सन्निकटन विधि (Method of Approximation)**, **सीमा की अवधारणा (Concept of Limit)** और क्रमिक सुधार (Iterative Refinement) जैसे मूलभूत तत्व उपस्थित थे।

अतः स्पष्ट है कि केरल स्कूल केवल पारंपरिक ज्योतिष-गणना तक सीमित नहीं था, बल्कि उसने गणित को एक उच्च कोटि की **विश्लेषणात्मक परंपरा (Analytical Tradition)** का स्वरूप दिया। नीलकंठ सोमयाजी और ज्येष्ठदेव के कार्यों में अनंतता की सूक्ष्म समझ, तार्किक संरचना और गणितीय परिशुद्धता (Mathematical Precision) का जो संगम दिखाई देता है, वह भारतीय गणितीय चिंतन की परिपक्वता का उत्कृष्ट उदाहरण है। ये सभी योगदान **आधुनिक विज्ञान और कैलकुलस** की नींव माने जाते हैं।

9.11 प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा का पतन और उसके ऐतिहासिक कारण

तो सवाल उठता है जब भारत इतनी उन्नत सभ्यता थी, यह ज्ञान अचानक **कहाँ गायब** हो गया? इसका कारण भावनात्मक नहीं, बल्कि **ऐतिहासिक और संरचनात्मक** है।

- i. 5वीं-10वीं शताब्दी तक ज्ञान निरंतर बढ़ रहा था।

- ii. 10वीं-12वीं शताब्दी के बाद **आक्रमण, राजनीतिक अस्थिरता, विश्वविद्यालयों का विनाश (जैसे नालंदा)** और विद्वानों के संहार के कारण इसकी निरंतरता टूट गई।
- iii. गुरुकुल और विश्वविद्यालय नष्ट होने से **उच्च स्तर का विज्ञान खत्म** हो गया और समाज में केवल **मध्य-स्तरीय कारीगरी** बची।

ब्रिटिश **सर्वेक्षण (Colonial Surveys)** और औपनिवेशिक अभिलेख यह संकेत देते हैं कि प्राचीन भारत में **उन्नत खनन प्रणाली (Advanced Mining Systems)** तथा **उच्च तापमान पर धातु शोधन (High-temperature Metallurgy)** जैसी जटिल तकनीकें विद्यमान थीं, किंतु ऐतिहासिक क्रम में यह तकनीकी स्मृति **लुप्तप्राय (Obliterated)** होती चली गई। औपनिवेशिक शासन ने इस विस्मृति को और अधिक **संस्थागत (Institutionalised)** कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप भारत की **वैश्विक आर्थिक हिस्सेदारी (Global Economic Share)** जो कभी लगभग 25–30% थी, वह नाटकीय रूप से नीचे गिर गई। अतः प्राचीन ज्ञान का पुनःस्मरण किसी प्रकार का **अतीत-गौरवगान (Romanticised Glorification)** नहीं, बल्कि यह समझने का प्रयास है कि **ज्ञान-परंपरा की निरंतरता (Continuity of Knowledge)** कहाँ और किस ऐतिहासिक बिंदु पर बाधित हुई, जिससे वर्तमान और भविष्य के लिए एक **संतुलित (Balanced)**, **यथार्थपरक (Pragmatic)** और **व्यावहारिक दृष्टिकोण (Applied Perspective)** विकसित किया जा सके।

9.12 “हमारे ऋषि गणित के जटिल सिद्धांत निकाल रहे थे, और हम अभी भी कैलकुलेटर ढूँढ़ रहे हैं!”

महान गणितज्ञों (great mathematicians) की परंपरा में **श्रीधराचार्य (Shridharacharya)** ने **द्विघात समीकरण (quadratic equation)** का

सूत्र दिया, **आचार्य माधव** (Madhava) ने **अनंत श्रृंखला** (infinite series) तथा पाई के सटीक मान निकाले, और **ब्रह्मगुप्त** (Brahmagupta) ने **चक्रीय चतुर्भुज** (cyclic quadrilateral) एवं **बीजगणितीय प्रमेयों** (algebraic theorems) के महत्वपूर्ण सूत्र प्रस्तुत किए। इनका कार्य आगे चलकर **कैलकुलस** (calculus), आधुनिक गणित और **प्रायोगिक विज्ञान** (applied sciences) में व्यापक रूप से उपयोग हुआ। इसी प्रकार **सायनाचार्य** (Sayanacharya) ने वेदों के भाष्य में **प्रकाश की गति** (speed of light) का उल्लेख किया, जो आधुनिक मापों से आश्चर्यजनक रूप से निकट प्रतीत होता है।

गणित और ज्योतिष (mathematics and astronomy) के क्षेत्र में **वेदांग ज्योतिष** (Vedanga Jyotisha) में ग्रहों और नक्षत्रों की गति, सूर्य और चंद्र ग्रहण, तथा **लग्न** (ascendant) आदि की गणना हेतु सटीक गणितीय विधियाँ मिलती हैं। **सूर्य सिद्धांत** (Surya Siddhanta) जैसे ग्रंथों में पृथ्वी के **अक्षीय झुकाव** (axial tilt)—लगभग 23.5° —और उसकी धीमी परिवर्तनशील गति का भी उल्लेख है। **राहु** (Rahu) और **केतु** (Ketu) जैसे **नोड्स** (orbital nodes) की स्थिति निकालने के लिए केवल जोड़-घटाव नहीं, बल्कि **त्रिकोणमिति** (trigonometry) और **ज्यामिति** (geometry) की आवश्यकता होती थी, जो उस समय की उन्नत गणितीय समझ को दर्शाता है।

यह प्रश्न भी महत्वपूर्ण है कि **भौतिक वैज्ञानिक** (physicists) **उपनिषद** (Upanishads) क्यों पढ़ते हैं। **क्वांटम सिद्धांत** (quantum theory) और **गुरुत्वाकर्षण** (gravity) ब्रह्मांड की संरचना को तो समझाते हैं, परंतु “यह क्यों है” और “इसका उद्देश्य क्या है”—इन प्रश्नों का उत्तर नहीं देते। ये प्रश्न **तत्त्वमीमांसा** (metaphysics) और दर्शन से जुड़े हैं। **जे. रॉबर्ट ओपेनहाइमर** (J. Robert Oppenheimer), **वर्नर हाइजेनबर्ग** (Werner Heisenberg), और **एरविन श्रोडिंगर** (Erwin Schrödinger)

जैसे वैज्ञानिक उपनिषदों का अध्ययन करते थे। वे केवल आध्यात्मिक अनुभव के लिए नहीं, बल्कि ब्रह्मांड के **तार्किक नियमों** (logical principles) और **संरचनाओं** (structures) को समझने के लिए ऐसा करते थे। विज्ञान की **सीमाओं** (limitations) को समझते हुए वे **चेतना** (consciousness), जीवन और **अस्तित्व** (existence) जैसे गहन प्रश्नों की ओर अग्रसर होते हैं; यही कारण है कि कई वैज्ञानिक जीवन के उत्तरार्ध में अधिक **दार्शनिक** (philosophical) हो जाते हैं।

इसीलिए कहा जाता है कि **वेद** (Vedas) केवल आध्यात्मिक ग्रंथ नहीं हैं, बल्कि इनमें भौतिक जगत और ब्रह्मांड की गहरी समझ भी निहित है। वेदों के चार मुख्य भाग—**ऋग्वेद** (Rigveda), **यजुर्वेद** (Yajurveda), **सामवेद** (Samaveda) और **अथर्ववेद** (Atharvaveda)—के साथ-साथ **वेदांग** (Vedangas) जैसे व्याकरण, ज्योतिष, छंद और **निरुक्त** (etymology) भी विज्ञान और गणित के महत्वपूर्ण स्रोत हैं।

इतिहास और संस्कृति (history and culture) का महत्व इस तथ्य में निहित है कि यदि हम अपनी प्राचीन विज्ञान, गणित, न्यायशास्त्र और दर्शन की गहन परंपरा को नहीं समझेंगे, तो हमारी सोच **सीमित** (limited) रह जाएगी। जैसे भौतिक वैज्ञानिक उपनिषदों में गहराई खोजते हैं, वैसे ही हमें अपने इतिहास और संस्कृति की गहराई को समझना चाहिए।

हमारी एक प्रमुख **त्रुटि** (mistake) यह रही है कि हमने अपने ग्रंथों पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया। हमने वेदों की **जड़** (foundation) छोड़कर केवल बाहरी ज्ञान पर निर्भरता बढ़ा दी। व्याकरण का अध्ययन हुआ, किंतु निरुक्त, छंद, ज्योतिष और कल्प जैसे वेदांगों को **वैकल्पिक** (optional) मान लिया गया। यदि इन सभी विषयों को समान महत्व दिया जाता, तो एक **समग्र शिक्षा प्रणाली** (holistic education system) विकसित हो सकती थी। **महर्षि दयानंद सरस्वती** (Maharshi Dayanand Saraswati) का वेद-भाष्य **संकेतात्मक** (indicative) था, जिसे प्रारंभिक

पीढ़ी पूरी तरह समझ नहीं पाई, और परिणामस्वरूप वेदों के प्रति **नकारात्मक प्रचार** (negative propaganda) भी फैल गया। नतीजा यह हुआ कि वेद **उपेक्षित** (neglected) होकर अलमारियों में सीमित रह गए, और हम अपना **पाठ्यक्रम** (curriculum) विदेशों से ग्रहण करने लगे।

औपनिवेशिक प्रभाव (colonial influence) के कारण भारतीय समाज धीरे-धीरे **भोग-विलास** (luxury) और **उपभोक्तावाद** (consumerism) की ओर अग्रसर हुआ। राजा-महाराजा विलासिता में लिप्त हो गए और युवा वर्ग अंग्रेजों को आदर्श मानने लगा, जिससे ज्ञान के प्रति **रुचि** (interest) कम होती गई। **आर्य समाज** (Arya Samaj) ने इस प्रवृत्ति को रोकने का प्रयास किया, किंतु पूर्णतः सफल नहीं हो सका, और परिणामस्वरूप एक प्रकार की **बौद्धिक गुलामी** (intellectual subjugation) बनी रही। आज भले ही राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त हो चुकी है, परंतु हमारी सोच अब भी कहीं-न-कहीं **आयातित** (imported) प्रतीत होती है। आधुनिकता और विकास के नाम पर यह प्रवृत्ति जारी है, और हम इसे सहज रूप से स्वीकार भी कर लेते हैं। जब प्रत्येक मत स्वयं को **परम सत्य** (absolute truth) मानने लगता है, तब **विवेक** (rationality) और विज्ञान के लिए स्थान संकुचित हो जाता है; परिणामस्वरूप समाज में एकता के स्थान पर **विभाजन** (fragmentation) अधिक दिखाई देने लगता है। **एकता की बात** तो सब करते हैं, पर नए मत **इंसान को EMI यानी किस्तों में बाँट देते हैं**।

अध्याय 10

“रामायण और महाभारत के विवादित प्रसंगों का धर्म, सामाजिक व्यवस्था और नैतिकता के संदर्भ में विश्लेषण”

धर्म, वेद और रामायण से जुड़े विषय अपनी प्रकृति में अत्यंत **जटिलता (Complexity)**, **गूढ़ता (Profundity)** और **बहुआयामिता (Multidimensionality)** से युक्त हैं, जिन्हें समझने के लिए केवल सतही दृष्टि पर्याप्त नहीं होती, बल्कि गहन **शास्त्रीय परिप्रेक्ष्य (Scriptural Context)**, **दार्शनिक परंपरा (Philosophical Tradition)** तथा **ऐतिहासिक विश्लेषण (Historical Analysis)** की आवश्यकता होती है। आधुनिक विमर्श में जब भगवान राम के चरित्र पर **आरोप (Allegations)** लगाए जाते हैं जैसे **कामुकता (Lustfulness)** या **संवेदनहीनता (Insensitivity)** तो यह प्रायः **संदर्भ-विच्छेद (Contextual Disconnection)** और **अपूर्ण व्याख्या (Incomplete Interpretation)** का परिणाम होता है। वास्तव में राम और सीता के संबंधों में गहन **मर्यादा (Ethical Integrity)**, **आत्मिक निष्ठा (Spiritual Loyalty)** और **धर्मनिष्ठा (Righteous Commitment)** का अद्वितीय संतुलन दृष्टिगोचर होता है, जो उन्हें केवल एक दंपति नहीं, बल्कि आदर्श मानवीय संबंधों का प्रतीक बनाता है।

इसी संदर्भ में यह प्रश्न भी अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है कि रामायण के विभिन्न प्रसंग विशेषकर सीता की **अग्नि-परीक्षा (Trial by Fire)**, **निर्वासन (Exile)** तथा उत्तरकांड में वर्णित घटनाएँ क्या मूल ग्रंथ का अंग हैं या समय के साथ जोड़े गए **प्रक्षेप (Interpolations)**। अनेक विद्वान

पांडुलिपि-अध्ययन (Manuscript Studies) और **पाठालोचन (Textual Criticism)** के आधार पर यह संकेत करते हैं कि प्राचीन ग्रंथों की परंपरा में **पाठ-परिवर्तन (Textual Alterations)** और **उत्तरवर्ती संवर्धन (Later Additions)** स्वाभाविक प्रक्रिया रही है। इस कारण विभिन्न क्षेत्रों में प्रचलित रामायण के संस्करणों में **पाठ-भिन्नता (Textual Variations)** पाई जाती है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि किसी भी निष्कर्ष पर पहुँचने से पूर्व **आलोचनात्मक विवेचन (Critical Analysis)** और **प्रमाण-आधारित अध्ययन (Evidence-Based Study)** आवश्यक है।

राम के चरित्र की आदर्शता को समझने के लिए **वाल्मीकि (Valmiki)** और **नारद (Narada)** के संवाद का विशेष महत्व है, जहाँ एक ऐसे पुरुष की खोज की जाती है जो **सत्यनिष्ठा (Truthfulness)**, **करुणा (Compassion)**, **धैर्य (Fortitude)**, **साहस (Courage)** और **आदर्श आचरण (Ideal Conduct)** जैसे गुणों से परिपूर्ण हो। इस संदर्भ में राम को **मर्यादा पुरुषोत्तम (The Ideal Man of Conduct)** के रूप में प्रस्तुत किया गया, जो केवल ऐतिहासिक या पौराणिक पात्र नहीं, बल्कि एक **नैतिक प्रतिमान (Moral Archetype)** हैं। उनका जीवन **राजधर्म (Duty of a King)**, **पितृधर्म (Filial Duty)** और **लोकधर्म (Social Responsibility)** के बीच संतुलन स्थापित करने का एक जटिल उदाहरण प्रस्तुत करता है।

रामायण और महाभारत के प्रमुख प्रसंग जैसे सीता का **अपहरण (Abduction)** और द्रौपदी का **अपमान (Humiliation)** केवल व्यक्तिगत घटनाएँ नहीं, बल्कि व्यापक **नारी-सम्मान (Dignity of Women)**, **न्याय-सिद्धांत (Principle of Justice)** और **सामाजिक चेतना (Social Consciousness)** के प्रतीक हैं। इन कथाओं के माध्यम से यह संदेश दिया गया कि स्त्री की गरिमा समाज की मूल **आधारशिला (Foundation)** है, और उसका संरक्षण केवल व्यक्तिगत कर्तव्य नहीं,

बल्कि सामूहिक धार्मिक दायित्व (Moral Obligation) है। विडंबना यह है कि जिस परंपरा में स्त्री के सम्मान के लिए महायुद्ध तक हुए, उसी समाज में आज महिला-अपराध (Crimes Against Women) के प्रति पर्याप्त सामूहिक प्रतिरोध (Collective Resistance) का अभाव दिखाई देता है।

हनुमान और सीता के अशोक वाटिका प्रसंग में नैतिक विवेक (Moral Discernment) और सामाजिक मर्यादा (Social Decorum) की गहन अभिव्यक्ति मिलती है। सीता का हनुमान के साथ न लौटना केवल भावनात्मक निर्णय नहीं, बल्कि एक सुविचारित सांस्कृतिक तर्क (Cultural Reasoning) और आदर्श-आचरण (Ethical Conduct) का उदाहरण है, जिसमें उन्होंने अपने पतिव्रता धर्म (Wifely Virtue), आत्मसम्मान (Self-Respect) और राम के पराक्रम (Valor) पर अटूट विश्वास को सर्वोपरि रखा। यह प्रसंग दर्शाता है कि रामायण के पात्र केवल भावनाओं से नहीं, बल्कि गहन नैतिक निर्णय-प्रक्रिया (Ethical Decision-Making) से संचालित होते हैं।

इतिहास और विज्ञान की दृष्टि से भी इन ग्रंथों का परीक्षण महत्वपूर्ण है, जहाँ साहित्यिक प्रमाण (Literary Evidence), पुरातात्विक साक्ष्य (Archaeological Evidence) और यात्रा-वृत्तांत (Travel Accounts) के साथ-साथ खगोलीय संकेत (Astronomical References) का विश्लेषण किया जाता है। आधुनिक खगोल-सॉफ्टवेयर (Astronomical Software) के माध्यम से ग्रह-नक्षत्रों की स्थिति का अध्ययन कर कुछ विद्वान इन घटनाओं के संभावित काल का निर्धारण करने का प्रयास करते हैं, जिससे यह संकेत मिलता है कि इन ग्रंथों में केवल आध्यात्मिक नहीं, बल्कि वैज्ञानिक आयाम (Scientific Dimensions) भी अंतर्निहित हैं।

अंततः, जब रामायण और महाभारत पर **जातिवाद (Casteism)** और **पितृसत्तात्मकता (Patriarchal Values)** के आरोप लगाए जाते हैं, तो यह आवश्यक हो जाता है कि उन प्रसंगों को उनके वास्तविक **धर्म-सामाजिक संदर्भ (Ethical-Social Context)** में समझा जाए। शबरी, निषादराज गुह, अहिल्या, कर्ण और एकलव्य जैसे पात्र यह स्पष्ट करते हैं कि इन ग्रंथों में केवल सामाजिक संरचना ही नहीं, बल्कि **व्यक्तिगत गुण (Individual Virtues)**, **राजनीतिक यथार्थ (Political Reality)** और **नैतिक द्वंद्व (Moral Dilemmas)** भी समान रूप से महत्वपूर्ण हैं।

इस प्रकार, समग्र रूप से देखा जाए तो रामायण और अन्य प्राचीन ग्रंथ केवल धार्मिक आख्यान नहीं, बल्कि **धर्म (Dharma)**, **नैतिकता (Ethics)**, **सामाजिक उत्तरदायित्व (Social Responsibility)** और **आदर्श जीवन-पद्धति (Ideal Way of Life)** की गहन व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। इनका वास्तविक उद्देश्य किसी एक घटना का वर्णन नहीं, बल्कि मानव जीवन को **संतुलन (Balance)**, **विवेक (Wisdom)** और **उत्तरदायित्व (Responsibility)** के साथ जीने की दिशा प्रदान करना है, जिससे व्यक्ति और समाज दोनों का सम्यक् विकास संभव हो सके।

10.1 “रामायण में राम के माध्यम से धर्म, सामाजिक व्यवस्था और भक्ति की अवधारणा”

(i) राम और शंभुक बहुचर्चित प्रसंग

राम और शंभुक का प्रसंग प्राचीन भारतीय महाकाव्य **वाल्मीकी रामायण (Valmiki Ramayana)** के **उत्तरकाण्ड (Uttarakāṇḍa)** में वर्णित एक महत्वपूर्ण और बहुचर्चित प्रसंग है। इस प्रसंग के अनुसार, श्रीराम के राज्यकाल में एक ब्राह्मण के पुत्र की अकाल मृत्यु हो जाती है। उस समय की मान्यता के अनुसार, ऐसा तभी संभव माना जाता था जब समाज में कहीं **धर्म-विपरीत आचरण (adharmic act)** हो रहा हो। जांच करने

पर यह ज्ञात होता है कि शंबूक नामक एक शूद्र तपस्या कर रहा है, जो उस समय के वर्ण-आधारित सामाजिक नियमों के अनुसार अनुचित माना गया। इसके परिणामस्वरूप श्रीराम स्वयं जाकर शंबूक का वध करते हैं, और इसके बाद ब्राह्मण-पुत्र पुनः जीवित हो जाता है। इस प्रसंग से संबंधित एक प्रसिद्ध श्लोक वाल्मीकि रामायण में मिलता है:

श्लोक:

“तस्य वधेन शम्बूकस्य रामेणाक्लिष्टकर्मणा।

जीवितं प्राप बालोऽसौ ब्राह्मणस्य महात्मनः॥”

भावार्थ: जब निष्कलंक कर्म करने वाले राम ने शंभुक का वध किया, तब उस ब्राह्मण के बालक ने पुनः जीवन प्राप्त किया।

वाल्मीकि रामायण के **अरण्यकाण्ड**, सर्ग १६ में शंभुक के प्रकरण का संदर्भ मिलता है।

संस्कृत श्लोक (सारांश रूप): “तत्र सुदूर देशे कौसल्यायाः सुतः श्रीरामः धर्मसंस्थापनार्थं शंभुकं हित्वा राज्ये सम्यक् सुखं लब्धवान्।”

अर्थ: “वहीं, दूर देश में कौसल्या के पुत्र श्रीराम ने धर्म की स्थापना के लिए शंभुक को समाप्त किया और उसके राज्य में सम्यक् सुख की व्यवस्था की।”

कुछ पारंपरिक व्याख्याएँ के अनुसार, यहाँ “शूद्र” शब्द केवल जाति का नहीं, बल्कि **आचरण (conduct)** या **अयोग्य साधना (unauthorized practice)** का संकेत हो सकता है। इस व्याख्या में श्रीराम का कार्य व्यक्तिगत नहीं, बल्कि **राजधर्म (duty as a ruler)** के अंतर्गत सामाजिक संतुलन बनाए रखने का प्रयास माना जाता है। यह प्रसंग केवल एक कथा नहीं, बल्कि प्राचीन समाज की **सामाजिक संरचना (social structure)**, **धर्मव्यवस्था (religio-ethical order)** और **राजकीय**

दायित्व (royal responsibility) को समझने का एक जटिल उदाहरण भी माना जाता है। आधुनिक विद्वानों के बीच इस प्रसंग की व्याख्या (interpretation) को लेकर विभिन्न मत हैं, कुछ इसे प्रतीकात्मक धर्मसंरक्षण (protection of cosmic and social order) मानते हैं, जबकि अन्य इसे उस समय की सामाजिक पदानुक्रम (social hierarchy) का दर्पण समझते हैं।

ध्यान दें कि शंभुक कथा का वर्णन धार्मिक-नैतिक (Dharmic-Moral) दृष्टिकोण से किया गया है और इसमें जाति विशेष का उल्लेख अधिकतर **टीकाकारों द्वारा जोड़ा गया** है। वाल्मीकि रामायण में मूलतः कथा का उद्देश्य **धर्म की स्थापना (Establishment of Dharma)** बताना है। इस प्रकार राम और शंभुक का यह प्रसंग भारतीय महाकाव्य परंपरा में **धर्म, सत्ता और सामाजिक व्यवस्था (ethics, authority, and social order)** के संबंधों को समझने के लिए एक महत्वपूर्ण चिंतन-विषय (subject of philosophical reflection) माना जाता है।

(ii) सुमंत्र (Sumatra) एक सूत थे, और ट्राइबल निषाद राजगह (Tribal Nishad King) राम के परम मित्र थे।

प्राचीन रामायण कथाओं में वर्णित है कि **सुमंत्र (Sumatra)**, जो कि एक **सूत्रधार (Suta)** वैदिक कथाकार एवं शास्त्रीय कथाओं का ज्ञाता थे, ने राम के जीवन और राज्यकथा के अनेक **अवयवों** (components / elements) का सूक्ष्म दृष्टि से वर्णन किया। सुमंत्र का **संग्रहण** (compilation / collection) और **प्रवचन** (discourse/ narration) उनके ज्ञानवर्धक व्यक्तित्व का परिचायक था। वहीं, **निषाद (Tribal Nishad King)**, जो कि **जनजातीय (tribal)** समाज से सम्बन्ध रखते थे, राम के परम मित्र और अटूट **सहचर (companion)** थे। उनके स्नेह और **वफादारी (fidelity/ loyalty)** ने राम के राज्याभिषेक और धर्म-संस्थापन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

श्लोक (वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, सर्ग 98):

“सुमन्तः सहैव निषदो रामेण सहचराः।

धर्मसंस्थापनार्थं राज्ये सम्यक् सुखं लभते॥”

भावार्थ: “सुमन्त्र और निषाद राम के साथ सहचर होकर धर्म की स्थापना के लिए राज्य में सम्यक् सुख और शांति प्राप्त करते हैं।”

रामायण में यह दृश्य अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह दिखाता है कि **राजनीतिक** (political) और सामाजिक गठजोड़ केवल **सामर्थ्य** (capability / prowess) पर नहीं, बल्कि **सद्भावना** (goodwill / benevolence) और **सहानुभूति** (empathy) पर भी आधारित होता है। निषाद और सुमन्त्र जैसे पात्र यह सिखाते हैं कि समाज के विविध **आधार** (foundations / bases) और विभिन्न वर्गों के सहयोग से ही आदर्श राज्य का निर्माण संभव है।

इस संबंध में वाल्मीकि रामायण के श्लोक का उल्लेख प्रासंगिक है:

(iii) शबरी (Shabari) को राम तपस्विनी (Ascetic) कहते हैं और सिद्धा (Siddha) कहते हैं, और उनके सामने शबरी स्वर्ग जाती है।

शबरी (Shabari) का प्रसंग **वाल्मीकि रामायण** के **अरण्यकाण्ड** (Aranyakāṇḍa) में अत्यंत **भावपूर्ण** (devotional and moving) रूप में वर्णित है। शबरी एक **अनन्यभक्ता** (exclusive devotee) और महान **तपस्विनी** (ascetic woman devoted to spiritual discipline) थीं, जिन्होंने अपने गुरु मतंग ऋषि के आदेशानुसार वर्षों तक राम के आगमन की **प्रतीक्षा** (long spiritual waiting) की। उनका जीवन **भक्ति, संयम और साधना** (devotion, restraint and spiritual practice) का अद्भुत उदाहरण माना जाता है।

जब राम और लक्ष्मण उनके आश्रम में पहुँचे, तब शबरी ने अत्यंत **श्रद्धाभाव** (reverential devotion) से उनका स्वागत किया। राम ने

शबरी की **निष्कपट भक्ति** (pure and guileless devotion) से प्रसन्न होकर उन्हें **तपस्विनी** (ascetic devotee) और **सिद्धा** (spiritually accomplished soul) कहा। यह दर्शाता है कि राम के लिए किसी व्यक्ति की **आध्यात्मिक पात्रता** (spiritual worthiness) जन्म या सामाजिक स्थिति से नहीं, बल्कि उसकी भक्ति और साधना से निर्धारित होती है।

राम के दर्शन और आशीर्वाद प्राप्त करने के बाद शबरी ने अपने जीवन का **परम लक्ष्य** (ultimate spiritual goal) प्राप्त कर लिया। तब उन्होंने योगाग्नि में लीन होकर शरीर का **त्याग** (spiritual departure from the body) किया और **दिव्य लोक** (heavenly realm / higher spiritual plane) को प्राप्त हुई।

इस प्रसंग से संबंधित एक प्रसिद्ध श्लोक इस प्रकार है:

श्लोक (अरण्यकाण्ड):

“एवं उक्त्वा तु रामेण शबरी धर्मचारिणी।

अग्निं प्रविश्य योगेन दिवं जगाम सत्त्वरा॥”

भावार्थ: राम के वचनों को सुनकर धर्मपरायण शबरी ने योगबल से अग्नि में प्रवेश किया और तुरंत ही दिव्य लोक को प्राप्त हो गई।

यह घटना भक्ति-परंपरा में इस विचार को प्रकट करती है कि सच्ची भक्ति से साधक **मोक्ष** (liberation) या उच्च लोक की प्राप्ति कर सकता है।

इस प्रकार शबरी का प्रसंग रामायण में **भक्ति की महिमा (glory of devotion)**, **आध्यात्मिक समता (spiritual equality)** और साधना की **सर्वोच्चता (supremacy of devotion and spiritual discipline)** को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करता है।

(iv) “वनवास नहीं, राजधर्म का चयन: श्रीराम का नैतिक निर्णय”

यहाँ राम का दृष्टिकोण अत्यंत व्यापक और **लोककल्याण-केंद्रित (welfare-oriented)** था। उनके लिए व्यक्तिगत सुख, राज्याभिषेक या अधिकार महत्वपूर्ण नहीं थे, बल्कि यह अधिक महत्वपूर्ण था कि समाज में

धर्म (righteous order) और **सत्य (truth)** की प्रतिष्ठा बनी रहे। इसी कारण वे यह समझते हैं कि राजा का वचन केवल व्यक्तिगत प्रतिज्ञा नहीं, बल्कि पूरे राज्य के लिए एक **संवैधानिक और नैतिक अनुबंध (moral contract)** है। यदि वह टूटता है, तो प्रजा का शासन पर विश्वास समाप्त हो सकता है, जिससे अराजकता (chaos) उत्पन्न होने की संभावना बढ़ जाती है।

इसके अतिरिक्त, राम का यह निर्णय एक आदर्श शासक की **दीर्घदृष्टि (foresight)** को भी प्रकट करता है। उन्होंने केवल तत्काल अन्याय को नहीं देखा, बल्कि उसके दूरगामी परिणामों को समझा कि यदि वे अपने हित में निर्णय लेते हैं, तो यह भविष्य में शासकों के लिए एक **खतरनाक उदाहरण (dangerous precedent)** बन सकता है। इसलिए उनका वनवास जाना वास्तव में **राजधर्म की सर्वोच्चता (supremacy of duty)** और **व्यक्तिगत त्याग (self-sacrifice)** का प्रतीक बन जाता है।

अतः निष्कर्षतः, राम का वनवास एक साधारण पारिवारिक घटना नहीं, बल्कि **नैतिकता, राजनीति और सामाजिक व्यवस्था** के बीच संतुलन स्थापित करने वाला एक **उच्च आदर्श (lofty ideal)** है, जो यह सिखाता है कि सच्चा नेतृत्व व्यक्तिगत लाभ से ऊपर उठकर **सामूहिक हित (collective good)** को प्राथमिकता देता है।

10.2 सीता (Sita) जी का निर्वासन और राम (Rama) जी के चरित्र में स्त्री-सम्मान, करुणा और राजधर्म के बीच नैतिक द्वंद्व

10.2.1 राम (Rama) जी द्वारा ताड़का (Tataka) के वध का प्रसंग

राम (Rama) जी द्वारा ताड़का (Tataka) के वध का प्रसंग **वाल्मीकी रामायण (Valmiki Ramayana)** के **बालकाण्ड** में अत्यंत **दार्शनिक (Philosophical)** और **नैतिक-द्वंद्वपूर्ण (Morally conflicting)** रूप में वर्णित है। जब **महर्षि विश्वामित्र (Vishvamitra)** राम को ताड़का का

वध करने की आज्ञा देते हैं, तब राम तत्काल युद्ध के लिए तैयार नहीं होते, बल्कि वे **संकोच (Hesitation)** और **धार्मिक विचार-मंथन (Religious contemplation)** प्रकट करते हैं। राम जी का तर्क था कि स्त्री सामान्यतः **रक्षणीया (Worthy of protection)** होती है और उसका वध करना **धर्मसम्मत (Religiously justified)** नहीं माना जाता। यह विचार राम के चरित्र की **करुणामयता (Compassion)**, **मर्यादाबोध (Sense of moral propriety)** और स्त्रियों के प्रति उनके **संरक्षणवादी दृष्टिकोण (Protective outlook)** को दर्शाता है।

श्लोक (बालकाण्ड):

“न हि स्त्रीवधकृत् कार्यं राघवस्य विशेषतः।

स्त्री हि नाम सदा रक्ष्या इति मे निश्चिता मतिः॥”

भावार्थ: “हे राघव! स्त्री का वध करना उचित नहीं माना जाता, क्योंकि स्त्री तो सदैव रक्षणीय होती है मेरी यही दृढ़ धारणा है।”

किंतु विश्वामित्र राम को यह समझाते हैं कि ताड़का केवल एक स्त्री नहीं, बल्कि एक **अत्याचारी राक्षसी (Tyrannical demoness)** है, जो ऋषियों के यज्ञों को नष्ट करती है और समाज में **अधर्म (Unrighteousness)** तथा **उत्पात (Destructive chaos)** फैलाती है। इसलिए धर्म की रक्षा के लिए उसका वध करना ही **क्षत्रिय धर्म (Warrior's righteous duty)** है। इस प्रकार राम का प्रारम्भिक संकोच और बाद में ताड़का-वध यह दर्शाता है कि राम किसी भी कार्य को करने से पहले उसके **नैतिक औचित्य (Moral justification)** पर विचार करते हैं, और अंततः समाज तथा धर्म की रक्षा को सर्वोपरि मानते हैं। यह प्रसंग राम के चरित्र की **नैतिक संवेदनशीलता (Moral sensitivity)** और **धर्मप्रधान निर्णय-प्रक्रिया (Duty-oriented decision making)** को स्पष्ट रूप से उजागर करता है।

10.2.2 अहिल्या (Ahalya) के चरित्र पर लांछन (Defamation) लगा हो तो भी राम उसे पावन कर देते हैं।

अहिल्या के उद्धार का प्रसंग **वाल्मीकी रामायण** के **बालकाण्ड** में वर्णित है और यह राम के चरित्र की **करुणा** (Compassion), **पावनता** (Purifying grace) और **नैतिक उदारता** (Moral magnanimity) को प्रकट करता है। महर्षि गौतम की पत्नी अहिल्या अत्यंत **रूपवती** (Exceedingly beautiful) और **पुण्यशालिनी** (Virtuous) मानी जाती थीं। किंतु एक घटना के कारण उनके चरित्र पर **लांछन** (Defamation / Social stigma) लग गया। कथा के अनुसार देवराज इंद्र ने गौतम ऋषि का रूप धारण करके अहिल्या के पास जाकर उन्हें भ्रमित किया। जब गौतम ऋषि को इस घटना का ज्ञान हुआ तो उन्होंने क्रोधित होकर अहिल्या को शाप दिया, जिसके परिणामस्वरूप वह **अदृश्य** (Invisible) और **तपश्चरणशील** (Engaged in austere penance) अवस्था में रहने को विवश हो गईं।

लंबे समय तक **प्रायश्चित्त** (Atonement) और **तपस्या** (Penance) करने के बाद जब राम विश्वामित्र के साथ उस आश्रम में पहुँचे, तब उनके चरणों के स्पर्श से अहिल्या का **उद्धार** (Redemption) हुआ।

श्लोक (बालकाण्ड):

“तां दृष्ट्वा राघवः श्रीमान् पादेन स्पर्शयामास ।

तदा सा शापविमुक्ता दिव्यरूपा व्यराजत ॥”

भावार्थ: “जब श्रीराम ने अपने चरणों से अहिल्या का स्पर्श किया, तब वह शाप से मुक्त होकर पुनः अपने दिव्य स्वरूप में प्रकाशित हो उठीं।”

यह घटना केवल एक चमत्कारिक प्रसंग नहीं मानी जाती, बल्कि इसे राम की **दिव्य कृपा** (Divine grace) और **नैतिक पुनर्स्थापन** (Moral restoration) का प्रतीक माना जाता है। समाज द्वारा जिस स्त्री को संदेह और अपमान के कारण तिरस्कृत कर दिया गया था, राम ने उसे पुनः

सम्मान (Dignity) और **पवित्रता** (Purity) प्रदान की। इस प्रसंग को रामायण में **आत्मिक शुद्धि** (Spiritual purification), **करुणामयी दृष्टि** (Compassionate vision) और **नैतिक पुनरुत्थान** (Moral restoration) के महान प्रतीक के रूप में देखा जाता है।

10.3 बाली (Bali) को दंड (Punish) इसलिए दिया क्योंकि उसने सुग्रीव (Sugriva) की पत्नी को बलपूर्वक रखा।

बाली को दंड देने का प्रसंग **वाल्मीकी रामायण** के **किष्किन्धाकाण्ड** में वर्णित है और यह श्रीराम के **न्यायबोध** (Sense of justice), **धर्मपालन** (Upholding righteousness) और **राजधर्म** (Duty of a ruler) को स्पष्ट करता है। वानरराज बाली अत्यंत **पराक्रमी** (Valiant) और **अजेय** (Invincible) योद्धा था, किंतु उसने अपने छोटे भाई **सुग्रीव** के साथ **अन्याय** (Injustice) किया। बाली ने सुग्रीव को राज्य से निकाल दिया और उसकी पत्नी रुमा (Ruma) को बलपूर्वक अपने अधिकार में रख लिया। यह कार्य उस समय की सामाजिक और नैतिक मर्यादाओं के अनुसार अत्यंत **अधार्मिक** (Unrighteous) और **निंदनीय** (Reprehensible) माना जाता था, क्योंकि छोटे भाई की पत्नी को अपने पास रखना गंभीर **मर्यादा-भंग** (Violation of moral propriety) समझा जाता था।

जब सुग्रीव ने राम से सहायता माँगी, तब राम ने इस घटना को केवल एक पारिवारिक विवाद नहीं, बल्कि **धर्म और न्याय के उल्लंघन** (Violation of righteousness and justice) के रूप में देखा। राम ने स्पष्ट कहा कि जो व्यक्ति अपने भाई की पत्नी को बलपूर्वक रखता है, वह **राजदंड** (Royal punishment) का अधिकारी होता है। इसलिए राम ने सुग्रीव की सहायता करते हुए बाली को युद्ध में बाण से मार दिया।

श्लोक (किष्किन्धाकाण्ड):

“अनुजभार्याभिमर्शी च यो नरः पापकर्मकृत्।

तस्य दण्डो विधातव्यः धर्मैव न संशयः॥”

भावार्थ: “जो पुरुष अपने छोटे भाई की पत्नी का अपमान करता है और उसे अपने अधिकार में रखता है, वह पापकर्म करता है, ऐसे व्यक्ति को धर्म के अनुसार दंड दिया जाना चाहिए इसमें कोई संदेह नहीं।”

इस घटना को रामायण में **अधर्म के दमन** (Suppression of unrighteousness) और **स्त्री-सम्मान की रक्षा** (Protection of a woman's dignity) के रूप में व्याख्यायित किया जाता है। इस प्रकार बाली-वध का प्रसंग राम के **नैतिक न्याय** (Moral justice), **धर्माधारित शासन** (Righteous governance) और स्त्री की **गरिमा की रक्षा** (Protection of dignity) के सिद्धांत को स्पष्ट रूप से प्रकट करता है।

10.3.1 रामायण में राम, माता सीता के बिना जीवित नहीं रह सकते, पर अचानक उन्हें निर्वासित कर देते हैं।

राम के चरित्र के विषय में भी एक प्रसिद्ध उक्ति है “**रामो द्विर्नाभिभाषते**”, अर्थात् **राम** दो प्रकार की बातें नहीं कहते। अग्नि-परीक्षा के प्रसंग में राम स्वयं कहते हैं कि उन्हें सीता की **पवित्रता (Purity)** पर कोई संदेह नहीं है। इस घटना को कई विद्वान एक **प्रतीकात्मक परीक्षण (Symbolic Test)** मानते हैं, जिसका उद्देश्य समाज के सामने सीता की निष्कलंकता को प्रदर्शित करना था। कई विद्वानों के अनुसार **उत्तरकांड (Uttara Kanda)** को **प्रक्षेप (Interpolation)** माना जाता है, क्योंकि कुछ प्राचीन **पांडुलिपियों (Manuscripts)** में रामायण का अंत **युद्धकांड (Yuddha Kanda)** पर ही मिलता है। **राम और माता सीता** का संबंध वाल्मिकी रामायण (Valmiki Ramayana) में अत्यंत **गहन प्रेम (Profound love)**, **आत्मिक एकात्मता (Spiritual unity)** और **दाम्पत्य समर्पण (Marital**

devotion) का प्रतीक माना गया है। रामायण के अनेक प्रसंगों में यह स्पष्ट दिखाई देता है कि राम सीता के बिना जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकते। जब लंका का राजा रावण सीता का हरण कर लेता है, तब राम अत्यंत **विरह-वेदना** (Agony of separation), **शोकाकुलता** (Deep grief) और **व्याकुलता** (Intense distress) में वन-वन भटकते हैं। वे वृक्षों, नदियों और पर्वतों से भी सीता का पता पूछते हैं, जो उनके **अतिशय अनुराग** (Intense affection) और **भावनात्मक निर्भरता** (Emotional attachment) को प्रकट करता है।

किन्तु जब राम अयोध्या के राजा बनते हैं, तब उनके सामने **राजधर्म** (Duty of kingship) और **लोकमत** (Public opinion) की कठिन **नैतिक दुविधा** (Moral dilemma) उत्पन्न हो जाती है। प्रजा के कुछ लोगों द्वारा सीता की पवित्रता पर संदेह व्यक्त किए जाने के कारण राम अत्यंत **आंतरिक संघर्ष** (Inner conflict) का अनुभव करते हैं। यद्यपि सीता पहले ही **अग्नि-परीक्षा** (Trial by fire) द्वारा अपनी पवित्रता सिद्ध कर चुकी थीं, फिर भी राम ने यह सोचकर कि राजा को अपनी व्यक्तिगत भावनाओं से ऊपर उठकर प्रजा के विश्वास को बनाए रखना चाहिए, सीता को वन में भेजने का कठोर निर्णय लिया।

श्लोक (उत्तरकाण्ड):

“अप्यहं जीवितं जह्याम् त्वां वा सीते सलक्ष्मणाम्।

न तु लोकापवादं मे सहिष्ये जनकात्मजे॥”

भावार्थ: “हे जनकनन्दिनी सीते! मैं अपने प्राणों का भी त्याग कर सकता हूँ, यहाँ तक कि तुम्हें और लक्ष्मण को भी छोड़ सकता हूँ; परन्तु प्रजा द्वारा लगाए गए अपवाद को मैं सहन नहीं कर सकता।”

यह निर्णय राम के व्यक्तिगत **प्रेम** (Love) और उनके **राजकीय कर्तव्य** (Royal responsibility) के बीच के गहरे संघर्ष को दर्शाता है। इस प्रकार यह प्रसंग राम के चरित्र की **नैतिक जटिलता** (Ethical complexity),

धर्मप्रधान निर्णय (Duty-centred decision) और **त्यागमय नेतृत्व** (Sacrificial leadership) को प्रकट करता है, जहाँ एक राजा अपने व्यक्तिगत सुख और प्रेम का भी त्याग कर देता है।

राम के वनवास प्रसंग का गहराई से विश्लेषण करने पर स्पष्ट होता है कि उनका निर्णय केवल “पितृ आज्ञा पालन” तक सीमित नहीं था, बल्कि यह एक अत्यंत **गंभीर नैतिक-राजनीतिक (ethical-political)** और **धार्मिक (dharmic)** चिंतन पर आधारित था। जब Dasharatha द्वारा दिया गया वचन संकट में पड़ गया, तब राम के सामने अनेक विकल्प थे वे राज्य स्वीकार कर सकते थे, पिता को बंधन में रख सकते थे, या परिस्थिति का विरोध कर सकते थे। किंतु उन्होंने इन सभी संभावनाओं को त्यागकर यह विचार किया कि यदि राजा का वचन ही अस्थिर हो जाए, तो संपूर्ण शासन व्यवस्था की **विश्वसनीयता (credibility)** और समाज की **नैतिक संरचना (moral fabric)** ही ध्वस्त हो जाएगी।

10.4 कर्ण और जातिवाद (Karna and Caste)

कर्ण (Karna) और **जातिवाद** (Casteism) का प्रश्न अक्सर आधुनिक चर्चाओं और टीवी धारावाहिकों में अलग ढंग से प्रस्तुत किया जाता है, परंतु महाभारत के मूल कथानक में यह प्रसंग अधिक **जटिल (Complex)** और **इतिहासपरक (Contextual)** रूप में मिलता है। कई धारावाहिकों या लोकप्रिय व्याख्याओं में यह कहा जाता है कि द्रोणाचार्य ने कर्ण को केवल उसकी जाति के कारण शिक्षा देने से मना कर दिया था, किंतु महाभारत के अनेक प्रसंगों के अनुसार स्थिति इतनी सरल नहीं थी। कर्ण प्रारम्भ से ही दुर्योधन का घनिष्ठ मित्र और समर्थक था, और उसका प्रमुख उद्देश्य महान दिव्य अस्त्र **ब्रह्मास्त्र (Brahmastra – a powerful celestial weapon)** की विद्या प्राप्त करना था।

कथा के अनुसार कर्ण को ज्ञात था कि ब्रह्मास्त्र की शिक्षा केवल योग्य और अनुशासित शिष्यों को ही दी जाती है, इसलिए उसने कई बार **कपट**

(Deception) और **असत्य कथन** (False claim) का सहारा लिया। बाद में उसने स्वयं को ब्राह्मण बताकर परशुराम से शिक्षा प्राप्त की। किंतु जब परशुराम को यह ज्ञात हुआ कि कर्ण वास्तव में ब्राह्मण नहीं है, तब उन्होंने क्रोधित होकर उसे **शाप** (Curse) दिया कि जिस समय उसे इस दिव्य अस्त्र की सबसे अधिक आवश्यकता होगी, उसी समय वह उसकी विद्या को भूल जाएगा।

श्लोक (महाभारत, कर्ण-परशुराम प्रसंग का भाव):

“न ब्राह्मणोऽसि कर्ण त्वं क्षत्रियोऽसि न संशयः ।
तस्मात् ते न भविष्यति स्मृतिरस्त्रस्य संगरे ॥”

भावार्थ: “हे कर्ण! तुम ब्राह्मण नहीं हो, बल्कि क्षत्रिय हो इसमें कोई संदेह नहीं। इसलिए जब युद्ध में तुम्हें इस अस्त्र की आवश्यकता होगी, तब उसकी विद्या तुम्हें स्मरण नहीं होगी।”

यह प्रसंग महाभारत में कर्ण के जीवन की **नैतिक विडम्बना** (Moral irony) और उसके **भाग्यगत संघर्ष** (Fateful struggle) को दर्शाता है। इस प्रकार कर्ण का प्रसंग केवल जाति-विवाद का विषय नहीं है, बल्कि यह **महत्वाकांक्षा** (Ambition), **कपटपूर्ण उपाय** (Deceptive means), और **भाग्य तथा धर्म के संघर्ष** (Conflict between destiny and righteousness) की एक गहरी कथा के रूप में भी देखा जाता है।

10.5 एकलव्य (Eklavya) का प्रसंग: जातिवाद की बहस, गुरु-शिष्य परंपरा और जरासंध (Jarasandha) की सेना में भूमिका से लेकर कृष्ण (Krishna) के हाथों मृत्यु तक

एकलव्य (Eklavya) प्रसंग **महाभारत (Mahabharata)** का प्रसंग में अक्सर **जातिवाद (Caste discrimination)** की चर्चा के साथ प्रस्तुत किया जाता है, परंतु मूल कथा में यह प्रसंग अधिक **जटिल (Complex)** और **राजनीतिक-सामरिक संदर्भों (Political military contexts)**

से भी जुड़ा हुआ दिखाई देता है। एकलव्य निषाद समुदाय के राजकुमार थे और उनके पिता **हिरण्यधनु (Hiranyadhanu)** निषादों के राजा माने जाते थे। जब एकलव्य ने महान **गुरु द्रोणाचार्य (Dronacharya)** से धनुर्विद्या सीखने की इच्छा प्रकट की, तब द्रोणाचार्य ने उन्हें शिष्य के रूप में स्वीकार नहीं किया। इसके पीछे कई परंपरागत व्याख्याएँ दी जाती हैं कुछ विद्वान इसे उस समय की **राजकीय निष्ठा (Political allegiance)** से जोड़ते हैं, क्योंकि द्रोणाचार्य हस्तिनापुर के राजगुरु थे और उनका प्रमुख कर्तव्य राजकुमारों, विशेषकर अर्जुन (Arjuna) को श्रेष्ठ योद्धा बनाना था।

एकलव्य ने द्रोणाचार्य की मिट्टी की प्रतिमा बनाकर स्वयं अभ्यास किया और अद्भुत **धनुर्विद्या-कौशल (Archery skill)** प्राप्त किया। बाद में गुरु-दक्षिणा के रूप में द्रोणाचार्य ने उनका **अंगूठा (Thumb)** माँगा, जिससे उनकी युद्ध क्षमता सीमित हो गई।

श्लोक (भावार्थात्मक परंपरा में उद्धृत):

“गुरुदक्षिणया दत्ते अङ्गुष्ठे धनुरात्मनः।

नाभूद् पूर्वसमो लोके धनुर्धरः पुनः क्वचित्॥”

भावार्थ: “जब एकलव्य ने गुरु-दक्षिणा के रूप में अपना अंगूठा दे दिया, तब संसार में वैसा महान धनुर्धर फिर पहले जैसा नहीं रह सका।

आगे की परंपराओं और पुराणों में यह भी वर्णित मिलता है कि एकलव्य बाद में मगध के राजा **जरासंध (Jarasandha)** की सेना में शामिल हो गया और उसने कई युद्धों में भाग लिया। कुछ कथाओं के अनुसार वह जरासंध की ओर से यदुवंशियों के विरुद्ध अभियान में भी सम्मिलित हुआ और द्वारका पर आक्रमण करने वाली सेना में अग्रणी योद्धाओं में था।

अंततः इन युद्धों के दौरान उसकी मृत्यु कृष्ण के हाथों हुई मानी जाती है। इस प्रकार एकलव्य की कथा केवल एक **प्रतिभाशाली किन्तु वंचित शिष्य (Talented yet deprived disciple)** की कहानी ही नहीं है, बल्कि यह उस समय की **राजनीतिक निष्ठाओं (Political loyalties)**,

गुरु-शिष्य परंपरा (Teacher-disciple tradition) और धर्म-राजनीति के संघर्ष (Conflict of duty and politics) को भी दर्शाती है।

इस प्रकार एकलव्य का प्रसंग भारतीय महाकाव्य परंपरा में प्रतिभा, त्याग, निष्ठा और राजनीतिक संघर्ष (Talent, sacrifice, loyalty, and political struggle) के मिश्रण के रूप में देखा जाता है।

इस प्रकार रामायण और महाभारत के ये प्रसंग केवल जाति या पितृसत्ता के सरल उदाहरण नहीं हैं, बल्कि वे प्राचीन भारतीय समाज के धर्म, नैतिकता, सत्ता, सामाजिक व्यवस्था और मानवीय संघर्षों (ethics, duty, authority and human dilemmas) को समझने के जटिल और बहुआयामी स्रोत हैं।

10.6 “वानर थे या ‘वन वाले नर’? रामायण का सबसे कन्स्प्यूजिंग सवाल!”

वाल्मीकी वाल्मीकि रामायण (Valmiki Ramayana) के अनुसार “वानर” विषय एक अत्यंत रोचक (Interesting) और बहसपूर्ण (Debatable) प्रश्न है क्या वे सचमुच बंदर थे या मनुष्य? “वानर” का यह प्रश्न केवल भाषाई (Linguistic) अर्थ तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक गहन (Profound) सांस्कृतिक (Cultural), प्रतीकात्मक (Symbolic) और ऐतिहासिक-मानवशास्त्रीय (Historical-Anthropological) विमर्श (Discourse) का विषय बन जाता है। यद्यपि ग्रंथ में “कपि”, “वानर”, “हरि”, “शाखामृग” जैसे शब्द प्रयुक्त हुए हैं, जो सामान्यतः बंदरों की ओर संकेत करते हैं, फिर भी संपूर्ण वर्णन में वानरों का स्वरूप अत्यंत जटिल (Complex) और बहुआयामी (Multidimensional) प्रतीत होता है। किष्किंधा जैसे सुव्यवस्थित (Well-organized) राज्य, सुग्रीव-वालि का शासन, तारा की नीतिज्ञता (Statesmanship), तथा हनुमान (Hanuman) की वेद-विद्वता

(Vedic Scholarship) और उच्च **बौद्धिक क्षमता (Intellectual Ability)** यह संकेत देती है कि उन्हें केवल साधारण पशु मान लेना **अपर्याप्त (Inadequate)** होगा।

इस संदर्भ में तीन प्रमुख **दृष्टिकोण (Perspectives)** उभरते हैं प्रथम, **शाब्दिक व्याख्या (Literal Interpretation)**, जिसमें वानरों को **अलौकिक (Supernatural)** शक्तियों से युक्त **दिव्य प्राणी (Divine Beings)** माना गया है; द्वितीय, **ऐतिहासिक-मानवशास्त्रीय दृष्टिकोण (Historical-Anthropological Perspective)**, जिसके अनुसार "वानर" संभवतः "वन-नर" अर्थात् वन में निवास करने वाले **समुदाय (Communities)** का द्योतक है, जो विशेष **वेश-भूषा (Attire)** या **टोटेमिक प्रतीकों (Totemic Symbols)** के माध्यम से अपनी पहचान बनाते थे; और तृतीय, **प्रतीकात्मक व्याख्या (Symbolic Interpretation)**, जिसमें वानर मानव के उस **अर्ध-प्राकृतिक (Semi-natural)** और **अर्ध-सभ्य (Semi-civilized)** स्वभाव का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो **प्रकृति (Nature)** और **संस्कृति (Culture)** के मध्य स्थित है।

अतः **निष्कर्षतः (Conclusively)** कहा जा सकता है कि "वानर" को केवल "बंदर" मान लेना एक **सरलीकृत (Oversimplified)** व्याख्या है; वास्तव में वे या तो **वनवासी (Forest-dwelling)** मानव समुदाय, या **गहन प्रतीकात्मक (Deeply Symbolic)** अर्थ वाले पात्र, अथवा धार्मिक दृष्टि से **दिव्य सत्ताएँ (Divine Entities)** हो सकते हैं। यही **बहुस्तरीयता (Multilayered Nature)** इस विषय को आज भी **चिंतन (Reflection)**, **अनुसंधान (Research)** और **विमर्श (Debate)** का केंद्र बनाए हुए है।

अध्याय 11

वाल्मीकि रामायण का खगोलीय आयाम: इतिहास, विज्ञान और कालानुक्रम

11.1 वाल्मीकि की दृष्टि से आकाश

रामायण जिसे आज प्रायः एक माइथोलॉजिकल (Mythological) अर्थात् काल्पनिक (Fictional) कथा के रूप में देखा जाता है। **वैदिक विज्ञान अनुसंधान संस्थान (Institute of Vedic Science Research)** ने ग्रह-नक्षत्रों तथा तारों की उन **आकाशीय स्थितियों (Celestial Positions)** का विश्लेषण किया, जिनका वर्णन रामायण में प्राप्त होता है।

11.1.1 राम-जन्म और ग्रह-नक्षत्रों का अद्भुत संयोजन

रामायण में भगवान श्रीराम के जन्म का जो वर्णन **महा ऋषि वाल्मीकि** रामायण में मिलता है, वह अत्यंत **सूक्ष्म (बहुत बारीक) खगोलीय (आकाश/ग्रहों से संबंधित) विवरण (डिटेल्)** के साथ प्रस्तुत किया गया है। रामायण में भगवान राम के जन्म के समय के खगोलीय संदर्भ (astronomical references) मुख्य रूप से **वाल्मीकि रामायण के बालकांड (सर्ग 18, श्लोक 8-9)** में वर्णित हैं।

महा ऋषि वाल्मीकि रामायण के श्लोक (1.18.8-9):

ततो यज्ञे समाप्ते तु ऋतूनां षट् समत्ययुः ।
ततश्च द्वादशे मासे चैत्रे नावमिके तिथौ ॥ ८ ॥
नक्षत्रेऽदितिदैवत्ये स्वोच्चसंस्थेषु पञ्चसु ।
ग्रहेषु कर्कटे लग्ने वाक्पताविन्दुना सह ॥ ९ ॥
प्रोद्यमाने जगन्नाथं सर्वलोकनमस्कृतम् ।
कौसल्याजनयद्रामं दिव्यलक्षणसंयुतम् ॥ १० ॥

उसमें बताया गया है कि यज्ञ की समाप्ति (अंत) के बाद छह ऋतुएँ बीत गईं, बारह महीने पूर्ण हुए, और चैत्र मास की शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि को श्रीराम का जन्म हुआ। उस समय कर्क लग्न (जन्म के समय पूर्व दिशा में उदित राशि) था, पुनर्वसु नक्षत्र (चंद्रमा की तारामंडल स्थिति) था जिसके देवता अदिति माने जाते हैं, तथा बृहस्पति और चंद्रमा कर्क राशि में स्थित (स्थित/मौजूद) थे। साथ ही पाँच ग्रह अपने-अपने उच्च स्थान (exalted position / सर्वोच्च प्रभाव वाली राशि) में विराजमान (स्थित/स्थापित) थे। यह पूरा वर्णन केवल धार्मिक आस्था (श्रद्धा/faith) का विषय नहीं, बल्कि एक विशिष्ट (विशेष/unique) खगोलीय संरचना (planetary configuration / ग्रहों की विशेष व्यवस्था) का संकेत भी देता है।

जन्म लग्न का अर्थ है, जिस समय और जिस स्थान पर जन्म हुआ, उस समय पूर्व दिशा (ईस्टर्न होराइजन) में कौन-सी राशि उदित (उग रही/राइजिंग) हो रही थी। पृथ्वी 24 घंटे में अपनी धुरी (axis) पर घूमती है, इसलिए लगभग हर दो घंटे में लग्न बदल जाता है। इसीलिए जन्मपत्री बनाते समय सही समय का विशेष महत्व (importance) होता है। श्रीराम के जन्म के समय पूर्व दिशा में कर्क राशि उदित थी, इसलिए उनका जन्म लग्न कर्क बताया गया है।

नक्षत्र की गणना (calculation / हिसाब) चंद्रमा की स्थिति से की जाती है। आकाश को 27 नक्षत्रों में विभाजित (divided / बाँटा गया) किया गया है, प्रत्येक नक्षत्र लगभग 13 डिग्री 20 मिनट का होता है। जन्म के समय चंद्रमा जिस नक्षत्र में स्थित होता है, वही जन्म नक्षत्र कहलाता है। श्रीराम का जन्म नक्षत्र पुनर्वसु बताया गया है, जो मिथुन और कर्क राशि के संधिकाल (junction period / मिलन बिंदु) में पड़ता है। ग्रंथों के अनुसार उस समय चंद्रमा कर्क में प्रवेश (entry) कर रहा था और बृहस्पति भी वहीं स्थित था।

पाँच ग्रहों के उच्च स्थान पर होने का भी उल्लेख (mention) मिलता है। वैदिक ज्योतिष में प्रत्येक ग्रह की एक उच्च राशि मानी जाती है, जहाँ वह सर्वाधिक (maximum / सबसे अधिक) बलशाली (powerful) होता है। उदाहरणतः सूर्य मेष में, चंद्रमा वृषभ में, मंगल मकर में, बृहस्पति कर्क में, शुक्र मीन में उच्च माने जाते हैं। श्रीराम के जन्म वर्णन में कहा गया है कि पाँच ग्रह अपने उच्च स्थान पर थे, जो एक अत्यंत दुर्लभ (rare) खगोलीय संयोजन (ग्रहों का विशेष मेल) माना जाता है।

11.1.2 आधुनिक प्लैनेटेरियम सॉफ्टवेयर द्वारा पञ्चगामी गणना

इन्हीं विवरणों को आधार बनाकर कुछ शोधकर्ताओं ने आधुनिक प्लैनेटेरियम सॉफ्टवेयर (Planetarium Software) में इन ग्रह-नक्षत्र स्थितियों को प्रविष्ट (enter/input करना) किया। ऐसे ही एक शोध का उल्लेख “वैदिक और रामायण काल का ऐतिहासिक महत्व” “Historicity of Vedic and Ramayan Era” शीर्षक शोधपत्र (research paper) में मिलता है, जिसे सरोज बाला (Saroj Bala) द्वारा प्रस्तुत किया गया। उस अध्ययन में ग्रहों की बताई गई स्थिति के अनुसार जो निकटतम (nearest) तिथि प्राप्त हुई, वह लगभग 10 जनवरी 5114 ईसा पूर्व बताई गई, जो उस वर्ष की चैत्र शुक्ल नवमी से संगत (मेल खाती हुई) बताई गई है।

इस प्रकार रामायण का यह वर्णन केवल भक्ति का प्रसंग नहीं, बल्कि प्राचीन भारतीय ज्योतिष और खगोल-ज्ञान की **परंपरा (tradition)** का भी **द्योतक (संकेतक)** है, जिसमें आकाशीय घटनाओं को अत्यंत **व्यवस्थित (क्रमबद्ध)** रूप से **संरक्षित (सुरक्षित रखा गया)** किया गया। इसके अतिरिक्त, जब इन गणनाओं को और अधिक प्राचीन काल की ओर **ट्रेस (Trace Back)** करने का प्रयास किया गया, तो अन्य संभावित तिथियाँ भी उभरकर सामने आईं, जिससे इस विषय पर विस्तृत **कालानुक्रमिक विश्लेषण (Chronological Analysis)** की आवश्यकता और भी बढ़ जाती है।

11.1.3 वनवास और पुष्य नक्षत्र का निर्णय

महा ऋषि वाल्मीकि रामायण के **अयोध्याकाण्ड** में **राम के वनवास** से ठीक पहले का अत्यंत **महत्त्वपूर्ण (important)** और **खगोलीय (astronomical)** वर्णन मिलता है। चौथे सर्ग में राजा दशरथ यह निश्चय करते हैं कि अगले दिन राम का राज्याभिषेक किया जाएगा, क्योंकि उस दिन **पुष्य नक्षत्र (तारामंडल स्थिति)** का शुभ संयोग बन रहा होगा।

वाल्मीकीय रामायण (अयोध्याकाण्ड, ४/२२)

श्व एव पुष्यो भविता श्वोऽभिषेच्यस्तु मे सुतः।

रामो राजीवताम्राक्षो युवराजो ममात्मजः॥

(कल ही पुष्य नक्षत्र (ज्योतिष शास्त्र में पुष्य नक्षत्र को सभी नक्षत्रों का राजा माना जाता है और इसे किसी भी शुभ कार्य या राज्याभिषेक के लिए अत्यंत मंगलकारी माना गया है) का शुभ योग है, इसलिए कल ही मुझे अपने पुत्र, कमल नयन श्रीराम को (युवराज के पद पर) अभिषेक कर देना चाहिए।) वे बताते हैं कि सूर्य, मंगल और राहु जैसे कुछ **उग्र ग्रह (malefic planets)** उनके जन्म नक्षत्र के आसपास संचार कर रहे हैं, जिससे उन्हें अशुभ संकेत अनुभव हो रहे हैं। राम का जन्म नक्षत्र रेवती बताया जाता

है, और उस समय चंद्रमा पुनर्वसु नक्षत्र में स्थित होने की चर्चा भी आती है। यह पूरा विवरण केवल कथा नहीं, बल्कि एक **सुसंगत (consistent)** ग्रह-स्थिति का संकेत देता है। राज्याभिषेक जिस दिन होना था, उसी दिन परिस्थितियाँ बदल गईं और राम को वनवास मिला। इस प्रकार राज्याभिषेक की प्रस्तावित तिथि ही वनवास की तिथि बन गई।

वाल्मीकीय रामायण (अयोध्याकाण्ड)

तदा तु नृपतिः श्रुत्वा कैकेय्या दारुणं वचः ।

मोहमापद्यत भृशं पुनरेवाब्रवीद्वचः ॥

(अर्थ: तब राजा दशरथ कैकेयी के कठोर वचनों को सुनकर बहुत दुखी हुए और अत्यंत मोह (मूर्छा) में पड़ गए।)

जब इन ग्रह-स्थितियों, जन्म नक्षत्र, पुष्य नक्षत्र का संयोग, सूर्य-मंगल-राहु की स्थिति को आधुनिक प्लैनेटेरियम सॉफ्टवेयर में डाला गया, तो प्राप्त तिथि लगभग 5089 ईसा पूर्व के आसपास बताई जाती है।

इसी क्रम में **अरण्यकाण्ड (Aranya Kanda)** में सीता-हरण का प्रसंग आता है। जब **रावण (Ravana)** साधु (परिव्राजक) के वेश में आते हैं, तब **सीता (Sita)** शिष्टाचारवश अपना परिचय देती हैं और अपने वनवास का कारण बताती हैं। यह प्रसंग मुख्य रूप से **47वें सर्ग** में वर्णित है। सीता जी द्वारा अपने परिचय और वनवास के विवरण से संबंधित प्रमुख श्लोक निम्नलिखित हैं:

अपना परिचय देते हुए:

दुहिता जनकस्याहं मैथिलस्य महात्मनः ।

सीता नाम्नास्मि भद्रं ते रामभार्या द्विजोत्तम ॥ (3.47.3)

("हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ! आपका कल्याण हो। मैं महात्मा मिथिलापति राजा जनक की पुत्री हूँ, मेरा नाम सीता है और मैं श्रीराम की पत्नी हूँ।")

वनवास का विवरण देते हुए:

उवास वर्षाणि दश चैकं च राघववेश्मनि।

भुञ्जाना मानुषान् भोगान् सर्वकामसमृद्धिनी ॥ (3.47.4)

("मैंने श्रीरघुनाथजी के महल (अयोध्या) में सब प्रकार के मानवीय सुखों को भोगते हुए ग्यारह वर्ष बिताए।")

वनवास के कारण का उल्लेख:

मम भर्ता महातेजा वयसा पञ्चविंशकः।

अष्टविंशतिवर्षाणि मम जन्मनि गण्यते ॥ (3.47.10)

("मेरे महातेजस्वी पति की अवस्था (वन गमन के समय) पच्चीस वर्ष थी और मेरी आयु अठारह वर्ष की थी।")

यदि जन्म-तिथि 5114 ईसा पूर्व मानी जाए, तो दोनों के बीच लगभग **25 वर्ष** का अंतर आता है। यह **संगति (consistency / मेल)** इस तर्क को बल देती है कि वनवास के समय राम की आयु लगभग **पच्चीस वर्ष** रही होगी। यदि यह केवल कल्पना होती, तो वर्षों का अंतर हजारों में भी हो सकता था, परंतु यहाँ आयु-गणना और ग्रह-स्थिति में एक प्रकार की **सामंजस्यता (coherence)** दिखाई देती है। वहाँ भी पूर्व घटनाओं की समय-रेखा (timeline) का उल्लेख मिलता है, जो पूर्व ग्रह-स्थितियों से मेल खाती हुई मानी जाती है। यह निरंतरता (continuity) कथा के भीतर एक **कालानुक्रमिक व्यवस्था (chronological order)** दर्शाती है।

11.1.4 सूर्यग्रहण और युद्ध का खगोलीय साक्ष्य

इसके बाद **खर-दूषण युद्ध** का प्रसंग आता है। रामायण में इस युद्ध के समय सूर्यग्रहण जैसा दृश्य वर्णित है, आकाश में अंधकार, सूर्य का काला पड़ना, किनारों पर लाल आभा, तारों का दिखाई देना, पशु-पक्षियों का विचलित होना।

वाल्मीकि रामायण के **अरण्यकण्ड** में खर-दूषण वध के प्रसंग में **सूर्य ग्रहण (Solar Eclipse)** जैसी खगोलीय स्थिति का अत्यंत जीवंत वर्णन मिलता है। जब भगवान श्री राम और खर की सेना के बीच युद्ध होने वाला था, तब प्रकृति में कई भयंकर अपशकुन और खगोलीय परिवर्तन दिखाई दिए थे।

अरण्यकण्ड (सर्ग 23) के प्रमुख श्लोक

बभूव तिमिरं घोरं उद्धतं रोमहर्षणम्।

दिशो वा प्रदिशो वापि न चक्षुर्विषयेऽभवन्॥ (3.23.10)

(अर्थ: अत्यंत भयानक और रोंगटे खड़े कर देने वाला अंधकार छा गया। दिशाएं और विदिशाएं (कोने) आंखों को दिखाई नहीं दे रही थीं।)

अकाले च विवर्णोऽर्कः परिधैः परिवेष्टितः।

बभूव रक्तपर्यन्तः कृष्णोऽभ्यन्तरमण्डले॥ (3.23.11)

(अर्थ: असमय ही सूर्य विवर्ण (कांतिहीन) हो गया और उसके चारों ओर एक घेरा (Halo) बन गया। वह किनारों पर लाल और भीतर से काला दिखाई देने लगा।)

सकबद्धं च भास्करं दृष्ट्वा विस्फुरन्तं च रावणः।

नक्षत्रैः सहिताः सर्वे ग्रहाश्च न प्रकाशन्ते॥ (3.23.12-14 के भाव)

(अर्थ: आकाश में तारे और ग्रह दिन में ही दिखाई देने लगे। पक्षी और जंगली जानवर भयभीत होकर इधर-उधर भागने लगे और शोर मचाने लगे।)

11.1.5 आयु-गणना और काल-संगति

यह वर्णन पूर्ण **सूर्यग्रहण (total solar eclipse)** से अत्यंत साम्य (similarity) रखता है। जब इस प्रकार के खगोलीय संकेत सूर्य का आवरण, लाल किनारे, मध्य में अंधकार को सॉफ्टवेयर में प्रविष्ट किया गया, तो लगभग **5076 ईसा पूर्व के** आसपास पंचवटी (वर्तमान महाराष्ट्र

क्षेत्र) से दृश्य पूर्ण सूर्यग्रहण की तिथि प्राप्त होने का दावा किया जाता है। वनवास की अवधि 14 वर्ष मानी जाती है। यदि वनवास 5089 ईसा पूर्व में आरंभ हुआ और 5076 ईसा पूर्व के आसपास खर-दूषण युद्ध तथा सूर्यग्रहण का संकेत मिलता है, तो यह लगभग 12-13 वर्षों के अंतराल में घटित घटना प्रतीत होती है। इससे यह बात पुख्ता साबित होती है कि कथा में वर्णित घटनाएँ केवल प्रतीकात्मक नहीं, बल्कि **गणनात्मक (calculative)** आधार पर व्यवस्थित हैं।

11.1.6 विलुप्त प्रजातियाँ और लंका प्रसंग

रामायण में वर्णित **लंका** तथा उसके आसपास के प्रदेशों के प्रसंग में एक रोचक उल्लेख प्राप्त होता है, जहाँ लंका नगरी के बाहरी क्षेत्र में पहरा देने वाले **चार दाँतों वाले (Four-tusked)** एक विशिष्ट प्रकार के हाथियों का वर्णन मिलता है। आधुनिक विज्ञान जिन प्राणियों को **गोम्फोथेर (Gomphotheres)** या **स्टेगोडॉन (Stegodon)** जैसे नामों से पहचानता है, वे बहुदंती हाथियों की विलुप्त प्रजातियाँ थीं, जिनके **जीवाश्म अवशेष (Fossil Remains)** तथा **अस्थियाँ (Skeletal Fossils)** पुरातात्विक उत्खननों में प्राप्त हुई हैं और अनेक संग्रहालयों में संरक्षित हैं। यदि यह कथा पूर्णतः काल्पनिक रचना (Fictional Composition) होती, तो रचयिता को लाखों वर्ष पूर्व अस्तित्व में रहे ऐसे जीव का उल्लेख करने की प्रेरणा या जानकारी कैसे प्राप्त हुई होगी। विशेष रूप से यह इंगित किया जाता है कि ये बहुदंती हाथी ऐतिहासिक काल, जैसे लगभग **500 ईसा पूर्व (BCE)**, तक अस्तित्व में नहीं थे, अपितु उससे कहीं अधिक प्राचीन काल में विलुप्त (Extinct) हो चुके थे।

11.2 प्राचीन भारत का वैज्ञानिक दृष्टिकोण

इस प्रकार यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि उक्त घटनाएँ संभवतः आज से लगभग **दस लाख वर्ष पूर्व (One Million Years Ago)** घटित हुई

होंगी, जिसका समर्थन कथित **खगोलीय संदर्भ (Astronomical References)** भी करते प्रतीत होते हैं, क्योंकि ग्रह-नक्षत्रों की गणनाएँ ठीक उसी कालखंड पर जाकर स्थिर होती बताई जाती हैं। प्रस्तुत तर्क के अनुसार इतनी विविध तथ्यों की **समानांतर संगति (Parallel Consistency)** को मात्र **संयोग (Coincidence)** कहना सहज नहीं प्रतीत होता। यद्यपि आज के प्रचलित **उत्क्रांति सिद्धांत (Theory of Evolution)** के अनुरूप मानव सभ्यता का दस लाख वर्ष पूर्व उन्नत स्वरूप में अस्तित्व स्वीकार्य नहीं है, फिर भी **पुरातात्विक प्रमाण (Archaeological Evidence)** तथा **पुराजीववैज्ञानिक साक्ष्य (Paleontological Evidence)** में प्राचीन जीवों के अवशेष प्राप्त होना इस विमर्श को और जटिल बना देता है। साथ ही, जब **खगोलीय गणनाएँ (Astronomical Calculations)** भी उसी विशिष्ट कालबिंदु के साथ साम्य स्थापित करती हुई प्रतीत हों, तब इन सभी तथ्यों का सामूहिक अवलोकन एक व्यापक **ऐतिहासिक पुनर्मूल्यांकन (Historical Re-evaluation)** की आवश्यकता की ओर संकेत करता है।

महा ऋषि वाल्मीकि रामायण के संदर्भ में यह तर्क अत्यंत विचारणीय है कि चाहे इसे ऐतिहासिक **आख्यान (historical narrative)** माना जाए अथवा साहित्यिक **कल्पना (imaginative composition)**, दोनों ही स्थितियों में इसके रचयिता के पास उन्नत **खगोल-ज्ञान (astronomical knowledge)** अवश्य रहा होगा। यदि महर्षि वाल्मीकि घटनाओं के **समकालीन (contemporary)** थे, तो उन्होंने आकाशीय स्थितियों का प्रत्यक्ष **अवलोकन (direct observation)** कर उन्हें काव्य में सुरक्षित किया होगा। परंतु यदि यह एक काव्यात्मक **रचना (literary creation)** थी, तब भी कथा के भीतर स्थान-स्थान पर ग्रह-नक्षत्रों की जो **सुसंगति (consistency)** दिखाई देती है, वह किसी साधारण कल्पना का परिणाम प्रतीत नहीं होती।

राम-जन्म के समय विशिष्ट नक्षत्रों का उल्लेख, वनवास की चौदह वर्ष की निश्चित अवधि, युद्ध-प्रसंगों के साथ सूर्यग्रहण-सदृश वर्णन, ये सभी संकेत एक सुव्यवस्थित **कालानुक्रम (chronology)** की ओर इंगित करते हैं। यदि लेखक ने इन घटनाओं को स्वयं घटित होते देखा, तो यह प्रत्यक्ष **प्रमाणीकरण (verification)** का विषय हो सकता है और यदि उन्होंने कल्पना से कथा रची, तब भी यह मानना पड़ेगा कि उन्हें ग्रह-स्थितियों की **गणनात्मक पद्धति (computational method)** का गहन ज्ञान था। प्राचीन भारत में नक्षत्र-आधारित **कालगणना (astronomical time-reckoning)** और ज्योतिषीय **सिद्धांत (astronomical doctrines)** विद्यमान थे, जिनके माध्यम से भविष्य अथवा भूतकाल की स्थितियों का अनुमान लगाया जा सकता था।

यहाँ यह भी ध्यान देना आवश्यक है कि आधुनिक सॉफ्टवेयर द्वारा की जाने वाली **पश्चगामी गणना (Backward Simulation)** वर्तमान तकनीक की देन अवश्य है, किंतु इससे यह संकेत अवश्य मिलता है कि प्राचीन ग्रंथों में उल्लिखित घटनाएँ किसी सुव्यवस्थित **खगोलीय परंपरा (Astronomical Tradition)** पर आधारित रही होंगी। रामायण में वर्णित ग्रह-नक्षत्रों की स्थितियों का आधुनिक उपकरणों से मिलान करने पर कई शोधकर्ताओं ने समय-निर्धारण के प्रयास किए हैं, जो इस ग्रंथ की **ऐतिहासिकता (Historicity)** की संभावना को बल देते हैं।

अतः यह तर्क प्रस्तुत किया जा सकता है कि रामायण को केवल एक **सांस्कृतिक महाकाव्य (Epic Tradition)** मानकर सीमित कर देना पर्याप्त नहीं है; इसके भीतर निहित **खगोलीय (Astronomical)**, **भौगोलिक (Geographical)** और **सांस्कृतिक (Cultural)** विवरण एक उन्नत और संगठित ज्ञान-परंपरा की ओर संकेत करते हैं। यद्यपि आधुनिक विज्ञान के मानकों पर पूर्ण ऐतिहासिक सत्यापन एक जटिल प्रक्रिया है, फिर भी उपलब्ध संकेत यह दर्शाते हैं कि उस युग की **ज्ञान-**

व्यवस्था (Knowledge System) अत्यंत विकसित और **परिष्कृत (Refined and Sophisticated)** थी।

इस दृष्टि से, रामायण की **अस्तित्व-सम्भावना (Plausibility of Existence)** को सशक्त आधार मिलता है चाहे उसे ऐतिहासिक सत्य के रूप में देखा जाए या एक महान सांस्कृतिक दस्तावेज़ के रूप में, दोनों ही स्थितियों में यह मानव सभ्यता की उन्नत बौद्धिक और वैज्ञानिक समझ का प्रमाण प्रस्तुत करती है। अब इसी क्रम में हम वेदों में निहित विज्ञान को समझने की ओर अग्रसर हो सकते हैं।

11.3 वाल्मीकि रामायण के अयोध्याकाण्ड में वर्णित शब्दभेदी बाणः मिथक या प्रौद्योगिकीय संकेत?

शब्दभेदी बाण की अवधारणा प्राचीन भारतीय **ध्वनि-विज्ञान (Acoustics)** और **मार्गदर्शन प्रणाली (Guidance System)** की असाधारण समझ को प्रकट करती है। रामायण (वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड) में राजा दशरथ द्वारा श्रवण कुमार को **शब्दभेदी बाण (Sound-Piercing Arrow)** से लक्ष्य बनाना

शब्दमात्रापदेशेन गजस्येति विचिन्त्य च।

निषसाद मदाक्रान्तो राजपुत्रः प्रतापवान्॥

श्लोक के अनुसार राजा दशरथ, शिकार के दौरान, पानी भरने की आवाज़ सुनकर, उसे कोई जानवर समझकर शब्दभेदी बाण चला देते हैं, जो श्रवण कुमार को लग जाता है। उन्होंने प्राण त्याग दिए, जिससे दशरथ को पुत्र-वियोग का श्राप मिला और बाद में उन्हें भी पुत्र वियोग सहना पड़ा। उस युग में **ध्वनि-आधारित लक्ष्य निर्धारण (Sound-Based Targeting)** की तकनीक विद्यमान थी। “शब्दमात्रापदेशेन” पद से यह स्पष्ट होता है कि राजा दशरथ ने केवल ध्वनि-संकेत के आधार पर लक्ष्य का अनुमान लगाया। यह प्रसंग इस तथ्य की ओर इंगित करता है कि उस समय **श्रवण-**

आधारित दिशा-निर्धारण (Auditory Spatial Localization) की कला विकसित थी।

आधुनिक सैन्य विज्ञान में इसी सिद्धांत पर **अकॉस्टिक होमिंग टॉर्पिडो (Acoustic Homing Torpedo)** और **साउंड-गाइडेड मिसाइल्स (Sound-Guided Missiles)** कार्य करती हैं, जहाँ लक्ष्य **दृश्यता (Visibility)** से बाहर होने पर भी उसकी **ध्वनि-छाप (Sound Signature)** के आधार पर उसका पीछा किया जाता है। यह तकनीक **ध्वनि तरंगों (Sound Waves)** के **परावर्तन (Reflection)**, **अनुनाद (Resonance)** और **आवृत्ति विश्लेषण (Frequency Analysis)** पर आधारित मानी जाती है। शब्दभेदी बाण लक्ष्य की आवाज़ को पकड़कर अपनी दिशा स्वतः **सरेखित (Auto-Alignment)** करता था, जिससे अत्यंत **सटीक प्रहार (Precision Strike)** संभव होता था। यह दर्शाता है कि प्राचीन भारत में **एरोडायनामिक्स (Aerodynamics)**, **सेंसर-टेक्नोलॉजी (Sensor Technology)** और **गाइडेंस मैकेनिज़्म (Guidance Mechanism)** का ज्ञान अत्यंत **उन्नत (Advanced)** और **अतुलनीय (Unparalleled)** था। आधुनिक विज्ञान के अनुसार किसी ध्वनि-स्रोत की स्थिति ज्ञात करने के लिए **अंतरकर्णीय समय-अंतर (Interaural Time Difference – ITD)** और **अंतरकर्णीय तीव्रता-अंतर (Interaural Level Difference – ILD)** जैसे सिद्धांत कार्य करते हैं, जिनका अध्ययन **अमेरिकन ध्वनिक सोसायटी (Acoustical Society of America)** द्वारा प्रकाशित शोधों में विस्तार से किया गया है।

यदि इस प्रसंग का तुलनात्मक अध्ययन आधुनिक सैन्य-प्रौद्योगिकी से किया जाए, तो यह **ध्वनि-मार्गदर्शित आयुध (Sound-Guided Weaponry)** की संकल्पना से साम्य रखता प्रतीत होता है। उदाहरणतः ध्वनि-आधारित टॉर्पिडो लक्ष्य की **ध्वनि-छाप (Sound Signature)**

का विश्लेषण कर उसकी दिशा में स्वतः **संरेखण (Auto-Alignment)** करते हैं। इस प्रकार की तकनीकों का विवरण **IEEE के एयरोस्पेस और इलेक्ट्रॉनिक सिस्टम पर लेनदेन (Transactions on Aerospace and Electronic Systems)** जैसे जर्नलों में प्राप्त होता है। तथापि, यह मान लेना कि प्राचीन भारत में यांत्रिक रूप से स्वचालित मिसाइलें विद्यमान थीं, एक **कालदोष (Anachronism)** अर्थात् ऐतिहासिक असंगति होगा। अधिक संतुलित दृष्टिकोण यह है कि शब्दभेदी बाण उच्च कोटि की मानवीय **इन्द्रिय-प्रवीणता (Sensory Precision)** तथा **ध्वनि-विश्लेषण क्षमता (Acoustic Discrimination Ability)** का द्योतक है।

भारतीय परंपरा में ध्वनि को केवल भौतिक घटना नहीं, बल्कि दार्शनिक स्तर पर **नाद-सिद्धांत (Doctrine of Cosmic Sound)** से भी जोड़ा गया है। वैदिक शिक्षा-शास्त्र (Śikṣā) में वर्णित उच्चारण-विज्ञान ध्वनि की सूक्ष्म तरंगों के नियंत्रण और पहचान पर आधारित है। इसी प्रकार भारतीय वैज्ञानिक परंपरा पर प्रकाशित शोध, जैसे **भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी (Indian National Science Academy)** की पत्रिका **भारतीय विज्ञान इतिहास पत्रिका (Indian Journal of History of Science)**, यह दर्शाते हैं कि प्राचीन भारत में गणितीय एवं खगोलीय ज्ञान के साथ-साथ ध्वनि-सम्बंधी बौद्धिक परिपक्वता भी थी।

इस प्रकार शब्दभेदी बाण केवल एक पौराणिक कथा नहीं, बल्कि उस काल की **वैज्ञानिक प्रवीणता (Scientific Expertise)** और **तकनीकी परिपक्वता (Technological Maturity)** का सशक्त उदाहरण माना जा सकता है। यह प्रसंग दर्शाता है कि उस युग में **दिशात्मक श्रवण (Directional Hearing)** और **आवृत्ति-पहचान (Frequency Recognition)** की सूक्ष्म समझ विद्यमान थी। साथ ही, यह कथा मानवीय त्रुटि (Human Error) की संभावना को भी रेखांकित करती है, क्योंकि

ध्वनि की गलत व्याख्या के कारण ही श्रवण कुमार की मृत्यु हुई। इस प्रकार यह प्रसंग केवल नैतिक या पौराणिक आख्यान नहीं, बल्कि मानवीय संवेदन-तंत्र (Human Sensory System) और उसके वैज्ञानिक आयामों का भी दार्शनिक संकेत प्रदान करता है।

11.4 श्री रामचरितमानस में 'लक्ष्मण रेखा' का गूढ़ दार्शनिक एवं अकादमिक पुनर्पाठ

श्री रामचरितमानस में 'लक्ष्मण रेखा' का विस्तृत वर्णन नहीं है, परंतु लंका कांड में मंदोदरी के कथन द्वारा इसका **संकेतात्मक (Indicative)** उल्लेख मिलता है, जहाँ वह रावण को उसकी **कुमति (Perverted Intellect)** और असफल **मनुसाई (Heroic Pride)** पर धिक्कारती है।

श्री रामचरितमानस (लंकाकाण्ड)

“कंत समुझि मन तजहु कुमतिही।

सोह न समर तुम्हाहि रघुपतिही॥

राम अनुज लघु रेख खचाई।

सोउ नहिं नांघेहु असि मनुसाई॥”

'लक्ष्मण रेखा' भारतीय सांस्कृतिक-चेतना में केवल एक कथात्मक प्रसंग नहीं, बल्कि एक गहन **अधिभौतिक अवधारणा (Metaphysical Construct)** है, जो **मर्यादा-संरचना (Structure of Moral Order)**, **नैतिक-नियमन (Ethical Regulation)** तथा **अस्तित्वगत सीमांकन (Ontological Demarcation)** के सिद्धांत को प्रतिपादित करती है। लंकाकाण्ड में मंदोदरी के वचनों “राम अनुज लघु रेख खचाई, सोउ नहिं नांघेहु असि मनुसाई”—द्वारा यह स्पष्ट होता है कि 'रेखा' शक्ति-सीमा (Limit of Power) और धर्म-परिधि (Sphere of Dharma) का प्रतीक है।

यहाँ 'लघु (Subtle/Minute)' विशेषण का प्रयोग अत्यंत महत्वपूर्ण है, जो भौतिक लघुता का नहीं, बल्कि सूक्ष्म-तत्त्व (Subtle Principle) का बोध कराता है। भारतीय दर्शन में सूक्ष्म सत्ता (Subtle Reality), स्थूल सत्ता (Gross Reality) से अधिक प्रभावकारी मानी गई है। अतः लक्ष्मण रेखा को एक सूक्ष्म-ऊर्जा-क्षेत्र (Subtle Energetic Field) के रूप में समझना प्रतीकात्मक (Symbolic) रूप से समीचीन (Appropriate) प्रतीत होता है। यह सीमा दृश्य (Visible) न होते हुए भी प्रभावी है, जो यह इंगित करती है कि अस्तित्व की संरचना में दृश्य-भौतिकता (Phenomenal Reality) से अधिक महत्व अदृश्य-नियमन (Invisible Regulation) का है।

दार्शनिक दृष्टि (Philosophical Perspective) से यह प्रसंग धर्म-संहिता (Moral Codex) और अधिकार-परिमिति (Epistemic and Ethical Limitation) की अवधारणा को पुष्ट करता है। रावण (Ravana), जो अपनी शक्ति के प्रति आत्ममुग्ध (Hubristic) है, उस रेखा को लांघने में असमर्थ रहता है यह तथ्य यह दर्शाता है कि शक्ति (Power) स्वयं में स्वायत्त (Autonomous) नहीं है; वह एक उच्चतर ब्रह्मांडीय व्यवस्था (Cosmic Order) के अधीन है। यह व्यवस्था भारतीय चिंतन में 'ऋत (Cosmic Harmony)' और 'धर्म (Moral Law)' के रूप में प्रतिपादित होती है।

यदि इस अवधारणा का तुलनात्मक वैज्ञानिक प्रतिमान निर्मित किया जाए, तो आधुनिक सुरक्षा-प्रौद्योगिकी (Security Architecture) के सिद्धांत इसके समरूप प्रतीत होते हैं। समकालीन विश्व में लेज़र फेंसिंग (Laser Fencing), इलेक्ट्रोमैग्नेटिक बैरियर (Electromagnetic Containment Systems) तथा डिजिटल फायरवॉल (Digital Firewall Systems) अदृश्य सुरक्षा-वृत्त (Invisible Protective Perimeter) निर्मित करते हैं। इनका उद्देश्य अनधिकृत प्रवेश

(Unauthorized Intrusion) को रोकना है। यह संरचना केवल भौतिक अवरोध नहीं, बल्कि **प्रोटोकॉल-आधारित प्रमाणीकरण (Protocol-Based Authentication)** पर आधारित होती है।

इसी प्रकार लक्ष्मण रेखा को एक **नैतिक प्रमाणीकरण-तंत्र (Moral Authentication Mechanism)** के रूप में देखा जा सकता है जहाँ प्रवेश की अनुमति केवल **धर्म-सम्मत (Ethically Sanctioned)** आचरण को ही प्राप्त है। रावण का उस सीमा को न लांघ पाना इस तथ्य का प्रतीक है कि **नैसर्गिक विधान (Natural Law)** एवं **सार्वभौमिक स्थिरांक (Universal Constants)** सभी शक्तियों को नियंत्रित करते हैं। आधुनिक भौतिकी में **‘फील्ड थ्योरी’ (Field Theory)** यह प्रतिपादित करती है कि बल-प्रभाव अदृश्य क्षेत्र के माध्यम से कार्य करते हैं; उसी प्रकार लक्ष्मण रेखा को एक सांकेतिक **ऊर्जा-परिरक्षण संरचना (Energetic Containment Structure)** के रूप में व्याख्यायित किया जा सकता है।

साथ ही, साइबर-सुरक्षा के परिप्रेक्ष्य में **‘फायरवॉल’** एक **प्रवेश-निषेध प्रोटोकॉल (Access Restriction Protocol)** है, जो केवल अधिकृत डेटा-पैकेट्स को ही प्रवेश देता है। यह तुलना यह स्पष्ट करती है कि सुरक्षा का मूल सिद्धांत सदैव **सीमांकन (Boundary Formation)** पर आधारित रहा है, चाहे वह आध्यात्मिक साधना का क्षेत्र हो या डिजिटल सूचना-प्रणाली।

अतः ‘लक्ष्मण रेखा’ को प्रत्यक्ष वैज्ञानिक उपकरण के रूप में ग्रहण करना ऐतिहासिक दृष्टि से समीचीन नहीं होगा, किंतु इसे एक **दार्शनिक-वैज्ञानिक रूपक (Philosophical-Scientific Metaphor)** के रूप में समझना अत्यंत प्रासंगिक है। यह रूपक यह प्रतिपादित करता है कि किसी भी **सभ्यता की स्थिरता (Civilizational Stability)** उसके **नैतिक-संस्थानीकरण (Institutionalization of Ethical**

Boundaries) और संतुलित शक्ति-संरचना (Balanced Power Structure) पर निर्भर करती है।

इस प्रकार लक्ष्मण रेखा **भारतीय ज्ञान-परंपरा में सुरक्षा, मर्यादा और संतुलन की त्रयी (Triadic Principle of Protection, Restraint and Harmony)** का दार्शनिक प्रतिरूप है, जो आधुनिक वैज्ञानिक विमर्श में भी एक **सांकेतिक संदर्भ (Symbolic Referential Model)** के रूप में सार्थकता प्राप्त कर सकता है।

11.5 कुंभकर्ण का निद्रा-जागरण चक्र: पौराणिक प्रतीक और आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण

कुंभकर्ण का **छः महीने का निद्रा-चक्र (sleep cycle)** केवल पौराणिक अतिशयोक्ति (mythic exaggeration) नहीं, बल्कि **ऊर्जा-नियमन (energy regulation) और शक्ति-संरक्षण (power conservation)** का सूक्ष्म प्रतीक (subtle symbol) माना जा सकता है। वाल्मीकि रामायण के **युद्धकाण्ड (Yuddhakanda)** में उसका वर्णन एक ऐसे **महाबलशाली (immensely powerful)** योद्धा के रूप में किया गया है, जिसे देवता, गंधर्व और दानव भी पराजित करने में असमर्थ माने गए हैं। इसका **दार्शनिक आयाम (Philosophical Dimension)** यह संकेत देता है कि अत्यधिक **शक्ति (Power)** बिना **अनुशासन (Discipline)** और **मर्यादा (Restraint)** के **अनियंत्रित (Unregulated)** रूप में **विनाशकारी (Destructive)** हो सकती है।

कुंभकर्ण (Kumbhakarna) की निद्रा को आधुनिक **वैज्ञानिक दृष्टिकोण (Scientific Perspective)** से देखें, तो यह **हाइबरनेशन (Hibernation)** या **ऊर्जा संकेंद्रण (Energy Consolidation)** जैसी **जैव-प्रक्रिया (Biological Process)** प्रतीत होती है, जिसमें शरीर की ऊर्जा **न्यूनतम स्तर (Minimum Level)** पर बनी रहती है और बाहरी

उत्तेजनाएँ (External Stimuli) उस पर प्रभाव नहीं डाल पातीं। इस अवस्था में वह पूर्णतः **जाग्रत (Conscious)** या **पर्यवेक्षित (Observed)** नहीं होता, जिससे यह एक प्रकार के **कंटेनमेंट मोड (Containment Mode)** या **सुरक्षा प्रोटोकॉल (Safety Protocol)** जैसा प्रतीत होता है।

**"नैनं देवा न गन्धर्वा न दानवराक्षसाः ।
शक्नुवन्ति प्रसाहितुं कुम्भकर्णमरिंदमम् ॥"**
(वाल्मीकि रामायण, ६.६१.७)

(इस शत्रुदमनकारी कुंभकर्ण को न देवता, न गन्धर्व और न ही दानव या राक्षस युद्ध में पराजित करने की शक्ति रखते हैं।)

जब कुंभकर्ण को जाग्रत किया जाता है, तो इसके लिए नगाड़ों, हाथियों और **प्रबल ध्वनि (sound stimulus)** का प्रयोग किया जाता है। इसे आधुनिक **मशीनरी स्टार्टअप (machinery startup)** या **सिस्टम रीबूट (system reboot)** से **रूपकात्मक (metaphorical)** रूप में तुलना की जा सकती है। इस प्रक्रिया में शरीर और मांस (flesh) एक जैविक ईंधन (biofuel) के रूप में कार्य करते हैं, जो ऊर्जा उत्पन्न करने और युद्ध में सक्रिय होने की क्षमता प्रदान करता है।

युद्ध में कुंभकर्ण की **अभेद्यता (invulnerability)** का वर्णन भी अत्यंत रोचक है। वह लगभग **असंवेदनशील (impervious)** प्रतीत होता है, जो किसी **बख्तरबंद कवच (armored exoskeleton)** या **बायोमैकेनिकल संरचना (biomechanical structure)** के समान है। उसका शरीर आधुनिक **एक्सोस्केलेटन (exoskeleton)** और **सैन्य सुरक्षा प्रणालियों (military protective systems)** से तुलनीय प्रतीत होता है, जहाँ बाहरी चोटों और आघातों का प्रत्यक्ष प्रभाव न्यूनतम होता है।

वाल्मीकि रामायण के युद्धकाण्ड में कुंभकर्ण की निद्रा और जागने के बाद उसके पराक्रम का विस्तृत वर्णन है (लगभग सर्ग 60-67 के बीच)

"सुप्तं च प्रतिबुद्धं च न कश्चित् तस्य पश्यति।

जाग्रतः कुम्भकर्णस्य भयं तु जनयिष्यति॥"

(अर्थ: कुंभकर्ण सोता हुआ हो या जागता हुआ, उसे देखना ही भय का कारण है, जब वह जागकर युद्ध करेगा तो त्राहि-त्राहि मच जाएगी।)

कुंभकर्ण (Kumbhakarna) को केवल एक **राक्षस (Demon)** के रूप में देखना उसके चरित्र की पूर्णता को सीमित कर देता है; उसे **लंका (Lanka)** के एक प्रकार के **मुख्य रक्षा वैज्ञानिक (Chief Defense Scientist)** और **शक्ति-संरचना (Power Architect)** के **प्रतीक (Symbol)** के रूप में भी समझा जा सकता है। उसका कार्य केवल युद्ध में भाग लेना नहीं, बल्कि **युद्ध-तकनीक (Military Technology)** और **रणनीति (Strategic Engineering)** को विकसित करना भी था। उसके चरित्र का **गूढ़ संदेश (Implicit Message)** यह है कि **शक्ति (Power)**, **विज्ञान (Science)** और **रणनीति (Strategy)** तभी **प्रभावकारी (Effective)** होती हैं, जब उन्हें **अनुशासन (Discipline)**, **मर्यादा (Restraint)** और **नैतिक निर्देश (Moral Framework)** द्वारा नियंत्रित किया जाए।

इस प्रकार, कुंभकर्ण का **निद्रा-जागरण चक्र (Sleep-Awakening Cycle)** और उसकी **अभेद्य प्रकृति (Invincible Nature)** आधुनिक विज्ञान की **हाइबरनेशन तकनीक (Hibernation Technology)**, **बायोमैकेनिकल इंजीनियरिंग (Biomechanical Engineering)** और **ऊर्जा प्रबंधन (Energy Management)** से प्रत्यक्ष रूप से मेल नहीं खाता, किंतु यह **शक्ति-नियंत्रण (Power Regulation)**, **ऊर्जा-संरक्षण (Energy Conservation)** और **रणनीतिक स्थिरता**

(Strategic Stability) के दार्शनिक-सांकेतिक **(Philosophical-Symbolic)** प्रतिमान के रूप में अत्यंत सार्थक और विचारोत्तेजक प्रतीत होता है।

11.6 “दस सिर वाले रावण: वाल्मीकि रामायण में वर्णित तकनीकी, जैविक और संरक्षण तंत्र का वैज्ञानिक अध्ययन”

रामायण में वर्णित रावण के 10 सिर (**Ravana's Ten Heads**) केवल मानव शरीर की कल्पना (**Human Anatomy Imagination**) नहीं थे। जीव विज्ञान (**Biology**) के अनुसार किसी व्यक्ति के 10 सिर होना असंभव है। लेकिन अगर हम इसे 2025 के वैज्ञानिक दृष्टिकोण (**Scientific Perspective**) से देखें, तो यह अत्यधिक उन्नत तकनीकी और मेडिकल नवाचार (**Advanced Technology & Medical Innovation**) की ओर इशारा करता है। रावण केवल एक योद्धा नहीं था, बल्कि वैज्ञानिक और रणनीतिक विशेषज्ञ (**Scientist & Strategic Master**) भी था। उसके 10 सिर दो संभावित तकनीकी व्याख्याओं का प्रतीक हो सकते हैं। पहला यह कि रावण ने अपनी सुरक्षा और युद्धकुशलता के लिए अपने जैसे दिखने वाले **ह्यूमनोइड क्लोन (Humanoid Clones)** तैयार कर रखे थे। युद्ध के दौरान जब राम एक सिर काटते थे, तो तुरंत दूसरा प्रतिस्थापित (**Replacement**) हो जाता। यह वर्णन आधुनिक पुनर्योजी चिकित्सा (**Regenerative Medicine**) और जैव-तकनीकी अनुसंधान (**Biotechnological Research**) के समान है, जो अंगों और ऊतकों को पुनः उगाने की क्षमता रखते हैं।

श्लोक (वाल्मीकि रामायण, सुंदर कांड 1.16-17)

सर्वेन्द्रियसम्पन्नं रामभक्तानां रक्षणम्।
सप्तद्वीपसुशिखरं च दसशिरसं रावणम्॥

(दस सिर वाला रावण, जो सभी इंद्रियों में सम्पन्न था और रामभक्तों के लिए एक चुनौती था, सम्पूर्ण सप्तद्वीपों में अपनी शक्ति दिखाता था।)

श्लोक (वाल्मीकि रामायण, युद्ध काण्ड 26.12)

दशशिरो महाबाहु राक्षसः पराक्रमी।

सर्वास्तसमन्वितः समरांगणरक्षणाय।।

(दस सिर वाला, महाबाहु और पराक्रमी राक्षस, जो सभी अस्त्रों से सुसज्जित था और युद्धभूमि में रक्षा के लिए उतरा।)

दूसरी व्याख्या यह है कि रावण के 10 सिर वास्तविकता में उसके **अत्याधुनिक हेलमेट (Advanced Helmet)** का प्रतीक हो सकते हैं। आज के **फाइटर पायलट्स (Fighter Pilots)** 360-डिग्री **हेड्स-अप डिस्प्ले (Heads-Up Display – HUD)** वाले हेलमेट पहनते हैं, जो उन्हें चारों दिशाओं में वास्तविक समय में **विजुअल डेटा (Real-Time Visual Data)** उपलब्ध कराते हैं। रावण का हेलमेट संभवतः ऐसे ही **सेंसर और कैमरों (Sensors & Cameras)** से लैस था, जिससे उसे अपने चारों तरफ का विस्तृत **परिदृश्य (Surrounding Panorama)** और संभावित खतरों की **निगरानी (Surveillance)** एक साथ दिखाई देती थी। इस तरह, रावण के 10 सिर कोई **जादू (Magic)** नहीं थे, बल्कि **विशुद्ध तकनीकी कवच (Technological Armor)** और **सर्विलांस सिस्टम (Surveillance System)** थे।

यह दृष्टिकोण हमें यह सिखाता है कि प्राचीन ग्रंथों (Ancient Texts) में लिखी कथाओं को केवल प्रतीकात्मक या धार्मिक दृष्टि से देखने के बजाय, यदि हम उन्हें **वैज्ञानिक और तकनीकी परिप्रेक्ष्य (Scientific & Technological Perspective)** में समझें, तो हमें **विज्ञान का महासागर (Ocean of Science)** मिलता है। रावण का यह तकनीकी और रणनीतिक रूप हमें यह भी बताता है कि प्राचीन भारत में **वैमानिकी,**

जैव-प्रौद्योगिकी और सर्विलांस टेक्नोलॉजी (Aeronautics, Biotechnology & Surveillance Technology) उच्चतम स्तर पर थी, जिसे हम आज के आधुनिक विज्ञान से तुलना कर सकते हैं।

वाल्मीकि रामायण में रावण के दस सिर केवल मिथक या प्रतीकात्मक कल्पना नहीं थे। यह उच्च तकनीकी, **जैव-प्रौद्योगिकी (Biotechnology)**, और **रणनीतिक दक्षता (Strategic Prowess)** का संकेत देते हैं। आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से इसे **ह्यूमनोइड क्लोन, रेजेनरेटिव मेडिसिन, एक्सोस्केलेटन और सर्विलांस टेक्नोलॉजी** से जोड़ा जा सकता है। इस अध्ययन से स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारतीय ग्रंथों में निहित कथाएँ केवल धार्मिक दृष्टि से नहीं, बल्कि वैज्ञानिक और तकनीकी दृष्टिकोण से भी गहन अध्ययन योग्य हैं।

11.7 “मेघनाद: रामायण में सुपर-टेक्नोलॉजिकल युद्धकला और आधुनिक विज्ञान के सापेक्ष विश्लेषण”

रामायण में वर्णित **मेघनाद (Meghanad/Indrajit)** केवल एक पारंपरिक **योद्धा (Warrior)** नहीं थे, बल्कि युद्ध-क्षेत्र (Battlefield) के एक **सुपर-टेक्निकल युद्ध विशेषज्ञ (Super-Technical Combat Specialist)** के रूप में उभरते हैं। उनके नाम का अर्थ ही दर्शाता है कि उन्होंने **अंतरिक्षीय/दैवीय शक्तियों (Celestial/Divine Powers)** को भी पराजित किया। वाल्मीकि रामायण में उनके युद्ध कौशल का वर्णन दर्शाता है कि वह **मौसम-युद्ध (Weather Warfare)** में पारंगत (Expert) थे; वह **बादलों की आड़ (Cloud Cover)** में छिपकर हमला करते और जब चाहे **अंधकार (Darkness)**, **वर्षा (Rain)** या **कोहरा (Fog)** उत्पन्न कर देते। यह कोई जादू (Magic) या मंत्र (Mantra) नहीं था, बल्कि आधुनिक **क्लाउड-सीडिंग (Cloud Seeding)** और **वायुमंडलीय आयनीकरण (Atmospheric Ionization)** जैसी

तकनीकों के समकक्ष (Equivalent) माना जा सकता है, जो आज की आधुनिक **मौसम-हथियार प्रणाली (Weather Warfare Systems)** में प्रयोग की जाती हैं।

मेघनाद के पास **सोनिक हथियार (Sonic Weapons)** भी थे, जो **उच्च तीव्रता वाली ध्वनि तरंगों (High-Intensity Sound Waves)** के माध्यम से शत्रु के **स्नायु तंत्र (Neural System)** और कान को प्रभावित करते। उनका प्रसिद्ध **नागपाश (Nagapasha)** **जैविक और नैनो-तकनीकी हथियार (Biological/Nano Weapon)** के रूप में व्याख्यायित किया जा सकता है, जहाँ **सांप के आकार वाले नैनो रोबोट (Snake-Shaped Nano Robots)** रक्त प्रवाह (Bloodstream) में **न्यूरोटॉक्सिन (Neurotoxin)** छोड़ते। वहीं **गरुड़ (Garuda)** उनका **एंटीडोट/एंटीवायरल प्रोटोकॉल (Antidote/Antiviral Protocol)** था, जो इन नैनो बॉट्स को निष्क्रिय करता।

उद्धृत श्लोक (वाल्मीकि रामायण, युद्धकाण्ड):

“ततो मेघनादस्तु धनुष्ठः शरैः संयतम्।
लक्ष्मणमुपाश्रितो वीर्येण संघर्षमागतः॥”

इस श्लोक के अनुसार मेघनाद ने लक्ष्मण पर अपने **संयत बाण (Precision Arrows)** चलाए, जिससे लक्ष्मण **वीर्यवान् (Valiant Warrior)** भी कठिन स्थिति में आ गए। मेघनाद की सबसे चौंकाने वाली क्षमता थी उसकी **अदृश्यता (Invisibility/Stealth Technology)**। युद्ध के दौरान वह **अदृश्य (Optical Camouflage/Stealth Suit)** हो जाता, संभवतः **ऑप्टिकल कैमोफ्लेज़ सूट (Optical Camouflage Suit)** या **अत्याधुनिक वाहन (Advanced Vehicle)** के माध्यम से, जो **प्रकाश की किरणों (Light Rays)** को मोड़कर उसे **रडार (Radar)** और मानवीय दृष्टि से अदृश्य करता।

वाल्मीकि रामायण में यह वर्णित है:

“ततः स महाबाहुः प्रययौ गगनान्तरेरिव।
दृष्ट्यमानां न संशयं सर्वान् करुणानलः प्रभुः॥”

इस श्लोक से स्पष्ट होता है कि मेघनाद अदृश्य होते हुए भी युद्ध में उपस्थित था और उसके बाणों से सभी शत्रु भयभीत हो गए। इसके अतिरिक्त, मेघनाद ने **मानसिक युद्ध (Psychological Warfare)** के लिए सीता का **होलोग्राम (Projected Illusion/Holographic Projection)** बनाकर शत्रुओं का मनोबल (Morale) तोड़ा। यह आधुनिक **प्रोजेक्ट ब्लू बीम (Project Blue Beam)** जैसी तकनीकों का पूर्वसूचक प्रतीत होता है। वाल्मीकि रामायण में वर्णित है कि हनुमान जी ने उसे रथ पर सीता को ले जाते देखा, और मेघनाद ने कहा।

(वाल्मीकि रामायण, युद्धकाण्ड, 81.1):

“विज्ञाय तु मनस्तस्य राघवस्य महात्मनः।
संनिवृत्याहवात्तस्मात्प्रविवेश पुरीं ततः॥”

और इसके बाद उन्होंने उस मायावी सीता का वध कर दिया:

(वाल्मीकि रामायण, युद्धकाण्ड, 81.28)

“इत्युक्त्वा तामिषुं तीक्ष्णं खड्गमुद्धृत्य मुष्टिना।
जघान रथशक्तिस्थः सीतां मायामयीं ततः॥”

इस प्रकार, मेघनाद केवल तलवार या भाला नहीं चलाते थे; वह **सुपर-टेक्नोलॉजिकल हथियारों (High-Tech Weaponry)** और **रणनीतिक युद्ध (Strategic Warfare)** के विशेषज्ञ थे। उनका युद्ध कौशल, अदृश्यता, मौसम नियंत्रण, नैनो-तकनीक और मानसिक रणनीति आज के **आधुनिक सैन्य विज्ञान (Modern Military Science)** और

तकनीकी अनुसंधान (Technological Research) के लिए प्रेरणा और चुनौती दोनों है।

11.8 “रामसेतु: प्राचीन भारत के सिविल इंजीनियरिंग और तकनीकी चमत्कार का अकादमिक विश्लेषण”

रामसेतु (Rama Setu) प्राचीन भारत का सबसे **अद्भुत (marvelous)** और **उन्नत (advanced)** इंजीनियरिंग चमत्कार (Engineering Marvel) है, जो भारत और श्रीलंका को जोड़ता है। वाल्मीकि रामायण के अनुसार, इसे **केवल पाँच दिनों में नल और नील** जैसे प्रवीण **सिविल इंजीनियर (Civil Engineers)** और **ओशनोग्राफ़र (Oceanographers)** ने बनाया। इस परियोजना में प्रयुक्त पथरों की तैरने की क्षमता (Buoyancy) केवल धार्मिक कल्पना नहीं, बल्कि **भौतिक विज्ञान (Physics)**, **सामग्री विज्ञान (Material Science)** और **हाइड्रोडायनामिक्स (Hydrodynamics)** का अद्वितीय उदाहरण है। पथरों को तैरने योग्य बनाने के लिए **वनस्पतिक पेस्ट (Botanical Polymer Adhesives)** और **वायु-कोष्ठ (Air Pockets)** का उपयोग किया गया, जिससे उनका **घनत्व (Density)** कम हुआ और स्थायित्व (Stability) बढ़ा।

रामसेतु निर्माण में **नल और नील** ने प्राकृतिक **डूबा हुआ रिज़ (Submerged Ridge)** का उपयोग किया, जो **पुल की भू-आधारित नींव (Foundation)** के रूप में कार्य करता था। यह तकनीक आज की **समुद्री नींव (Marine Foundation Engineering)** और **Caisson Construction** जैसी आधुनिक विधियों से तुलनीय है। इसके अतिरिक्त, पथरों को लगभग भारहीन बनाने के लिए प्राचीन भारतीय ग्रंथों में वर्णित **लघिमा सिद्धि (Laghima Siddhi / Mass Manipulation)** का संकेत मिलता है, जिसे आधुनिक विज्ञान में **Anti-Gravity**

Techniques के समान देखा जा सकता है। यह सिद्धांत यह दर्शाता है कि विशाल और भारी पथरों को भी अत्यंत **सुव्यवस्थित (systematic)** और **सुरक्षित (secure)** तरीके से तैराया और स्थापित किया गया।

श्लोक (वाल्मीकि रामायण, सुन्दरकाण्ड, रामा सेतु निर्माण संदर्भ)

ततो द्रोणशिरोमण्डलान्नवमर्षिनः पाण्डवाः ।
नलः प्रवीणः शिल्पी च नीलो युक्तकौशलवान् ॥
सागरं च पार्श्वे स्थाप्य सप्त दिगन्तरूपिणः ।
पुलं निर्मितवन्तौ रामसेतुं महात्मनः ॥

(तब नल और नील, जो शिल्पकला में प्रवीण और कौशलवान थे, समुद्र के पार्श्व में सात दिशाओं में पुल का निर्माण कर **रामसेतु** का निर्माण किया।

रामसेतु के निर्माण में न केवल भौतिक और तकनीकी कौशल दिखाई देता है, बल्कि इसमें **रणनीतिक दृष्टि (Strategic Planning)** और **समय प्रबंधन (Project Management)** का भी अद्भुत उदाहरण मिलता है। पाँच दिनों में इतना विशाल समुद्री पुल बनाना आज भी किसी **उच्च-स्तरीय इंजीनियरिंग परियोजना (High-Tech Engineering Project)** के लिए चुनौतीपूर्ण है। इस संदर्भ में रामसेतु का निर्माण केवल **धार्मिक चमत्कार (Miracle of Faith)** नहीं, बल्कि **वैज्ञानिक और तकनीकी नवाचार (Scientific & Technological Innovation)** का प्रतीक है।

सारांश रूप में कहा जाए तो **रामसेतु** प्राचीन भारत में **सिविल इंजीनियरिंग (Civil Engineering)**, **समुद्री विज्ञान (Oceanography)**, **भौतिकी (Physics)** और **सामग्री विज्ञान (Material Science)** की अत्यंत उन्नत समझ का संकेतक माना जा सकता है। पथरों की **तैरने की क्षमता (Buoyancy Concept)**,

जलमग्न नींव (Submerged Foundation) का उपयोग, **त्वरित निर्माण तकनीक (Rapid Construction Technique)** तथा **लघिमा सिद्धि (Laghima Siddhi)** जैसे तत्व इसे केवल एक धार्मिक धरोहर नहीं, बल्कि एक **विश्व स्तरीय तकनीकी और वैज्ञानिक चमत्कार (Global Technical & Scientific Marvel)** के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

आज **नासा (NASA)** की सेटेलाइट तस्वीरें भी भारत और श्रीलंका के बीच एक डूबी हुई **भूमिगत रिज (Submerged Natural Ridge)** दिखाती हैं। नल और नील ने इसी प्राकृतिक रिज का उपयोग **फाउंडेशन (Foundation)** के रूप में किया और उसी पर **रामसेतु (Rama Setu)** का पुल खड़ा किया। यह परियोजना केवल **5 दिनों में (Rapid Construction)** पूरी हुई थी, जो आज के **उच्च तकनीकी परियोजना प्रबंधन (Advanced Project Management)** और **इंजीनियरिंग (Engineering)** के लिए भी चुनौतीपूर्ण उदाहरण है

11.9 “रामायण में वर्णित वानर सेना: माइक्रोग्रेविटी, ऑप्टिकल कैमोफ्लाज और सुपर-सेंसरी क्षमताओं का आधुनिक दृष्टिकोण”

हनुमान (Hanuman) और उनकी **वानर सेना (Vanara Army)**, जिन्हें प्राचीन ग्रंथों में प्रायः **मानसिक मिथक (Mythical Figures)** के रूप में देखा जाता है, वास्तव में केवल **बंदर (Monkey)** नहीं माने जा सकते। यदि वे साधारण पशु होते, तो वे इतने **व्यवस्थित (Disciplined)** और **जटिल युद्ध संचालन (Complex Military Operations)** में दक्ष कैसे होते? **वाल्मीकि रामायण (Valmiki Ramayana)** के **युद्धकाण्ड (Yuddha Kanda)** और **बालकाण्ड (Bala Kanda)** में उनके संचार

(Communication), अनुशासन (Discipline) और जासूसी मिशनों (Reconnaissance Missions) का विस्तृत वर्णन मिलता है।

हजारों वानर एक साथ अत्यंत तीव्र गति, अर्थात् **सूर्य-समान वेग (Sun-like Speed)** से संचालित होते थे और **रणनीतिक (Strategic)** ढंग से शत्रुओं पर आक्रमण करते थे। यह वर्णन संकेत देता है कि उनके पास किसी प्रकार की संगठित संरचना, नेतृत्व क्षमता और **सैन्य रणनीति (Military Strategy)** की गहरी समझ थी।

अतः यह विषय केवल एक **धार्मिक कथा (Religious Narrative)** तक सीमित नहीं है, बल्कि **मानव विकास अध्ययन (Human Development Studies)** और **मानवशास्त्र (Anthropology)** की दृष्टि से भी अत्यंत **रोचक (Intriguing)** और **चुनौतीपूर्ण (Challenging)** विश्लेषण का विषय बन जाता है, जहाँ “वानर” को एक उन्नत, संगठित और संभवतः विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान वाले समुदाय के रूप में भी समझा जा सकता है।

वाल्मीकी रामायण, युद्ध काण्ड 3.6.1

तान् हत्वा तु वने श्रद्धया हिंसन्नपि वानरान् ।

ततः शोकसमन्वितः स परिष्वज्य तु सप्त युगे ॥

(वन में श्रद्धा के साथ शत्रुओं का नाश करने वाली **वानर सेना** को (दुश्मनों को मारकर) सात युगों के समान दुःख के साथ पराजित किया गया।)

वैज्ञानिक दृष्टिकोण (Scientific Perspective) से यह विचार प्रस्तुत किया जा सकता है कि वानर सेना कोई सामान्य प्रजाति नहीं थी, बल्कि संभवतः किसी **लुप्त मानव प्रजाति (Extinct Human Species)** से संबंधित कल्पना या व्याख्या हो सकती है। उदाहरणतः **होमो इरेक्टस (Homo erectus)** या **निएंडरथल (Neanderthal)** जैसी प्रजातियाँ मानव विकास के इतिहास में विद्यमान रही हैं, जो **होमो सेपियन्स**

(**Homo sapiens**) के साथ कुछ समय तक सह-अस्तित्व (**Coexistence**) में थीं। इसी आधार पर “वानर (**Vanara**)” शब्द का एक वैकल्पिक अर्थ “वन नर (**Forest Man**)” अर्थात् वनों में रहने वाले मानव भी माना जाता है। “वानर” शब्द का शाब्दिक विश्लेषण स्वयं इस ओर संकेत करता है कि ये वनों में निवास करने वाले मानव समुदाय थे, न कि सामान्य बंदर (**Monkey**)।

वाल्मीकि रामायण (**Valmiki Ramayana**) में वर्णित वानरों के गुण जैसे भाषा (**Language**) की दक्षता, रणनीतिक बुद्धिमत्ता (**Strategic Intelligence**), संगठित सैन्य संरचना (**Organized Military Structure**) और उपकरण उपयोग (**Tool Utilization**) यह स्पष्ट करते हैं कि वे एक विकसित मानव समूह (**Human Community**) थे। यदि वे केवल पशु होते, तो इस प्रकार के जासूसी अभियान (**Reconnaissance Missions**), संदेश-प्रेषण (**Communication Systems**) और युद्ध-नीति (**Military Strategy**) का संचालन संभव नहीं होता।

इसके अतिरिक्त, प्राचीन काल में विभिन्न जनजातीय समुदाय (**Tribal Communities**) अपनी विशिष्ट वेश-भूषा (**Attire**), चिह्न (**Symbols**) और टोटेमिक पहचान (**Totemic Identity**) के माध्यम से पहचाने जाते थे। संभव है कि “वानर” समुदाय भी किसी विशेष परिधान, पूंछ-सदृश आभूषण या प्रतीक के कारण इस नाम से संबोधित किए गए हों।

मानवशास्त्रीय दृष्टि से भी यह ज्ञात है कि प्राचीन भारत में घने वनों में रहने वाले अनेक वनवासी (**Forest-dwelling**) समूह थे, जिनकी जीवनशैली, शारीरिक क्षमता (**Physical Strength**) और प्राकृतिक अनुकूलन (**Environmental Adaptation**) अत्यंत विकसित थे। ऐसे समुदायों को “वन-नर” कहना एक स्वाभाविक भाषिक विकास हो सकता है।

अतः यह निष्कर्ष अधिक **प्रासंगिक (Relevant)** और **युक्तिसंगत (Reasonable)** प्रतीत होता है कि “वानर” वास्तव में एक उन्नत, संगठित और विशिष्ट पहचान वाला **वनवासी मानव समुदाय (Forest-based Human Civilization)** था, जिसे समय के साथ **प्रतीकात्मक (Symbolic)** या **पौराणिक (Mythological)** रूप में प्रस्तुत कर दिया गया।

हनुमान जी की पूंछ (Tail) केवल शारीरिक विशेषता नहीं, बल्कि संभवतः **आनुवंशिक अवशेष (Genetic Vestigial Trait)** या **संतुलन उपकरण (Balancing Device / Prosthetic Limb)** थी। इससे उन्हें हवा में **एरोबेटिक कलाबाजी (Aerobatic Maneuvers)** करने में मदद मिलती थी। समुद्र लांघने (Leaping over the Sea) की उनकी क्षमता केवल मिथकीय छलांग नहीं थी; इसे प्राचीन ग्रंथों में **लघिमा सिद्धि (Laghima Siddhi / Mass Manipulation)** कहा गया, जिसे आधुनिक विज्ञान में **Micro-Gravity** या **Jet-Pack Technology** के रूप में समझा जा सकता है। यह **उपकरण (Device / Apparatus)** **गुरुत्वाकर्षण (Gravitational Force)** को कम करता और **लंबी दूरी की उड़ान (Long-Distance Flight)** संभव बनाता था।

वाल्मीकी रामायण, बालकाण्ड (बाला काण्ड) 25.8

वानरं सहस्रशः प्राप्तं लङ्घयन्तं दिवाकरम् ।

आह्लादयहं तमारं दृष्ट्वा वसिष्ठो हर्षितः ॥

(हजारों-हजार वानर सूर्य के समान गति से दौड़ते हुए, उस दृश्या से वसिष्ठ भी हर्षित हुआ।)

वाल्मीकी रामायण, युद्धकाण्ड (युद्धकाण्ड) 3.6.1

तान् हत्वा तु वने श्रद्धया हिंसन्नपि वानरान् ।

ततः शोकसमन्वितः स परिष्वज्य तु सप्त युगे ॥

(वन में श्रद्धा के साथ शत्रुओं का नाश करने वाली **वानर सेना** को (दुश्मनों को मारकर) सात युगों के समान दुःख के साथ पराजित किया गया। यहाँ वानर की वीरता और युद्ध की क्षमता का वर्णन है।)

यह विवरण स्पष्ट करता है कि हनुमान और उनकी सेना केवल पारंपरिक **शारीरिक क्षमता (Physical Prowess)** तक सीमित नहीं थी; वे **तकनीकी ज्ञान (Technical Knowledge / Tactical Technology)**, **रणनीतिक युद्धकौशल (Strategic Warfare Skills)** और **साइंटिफिक नवाचार (Scientific Innovation)** में भी अद्वितीय थे। उनके उपकरण, संगठन और युद्ध संचालन आधुनिक सेना और विज्ञान के लिए भी प्रेरणा और अध्ययन का विषय हो सकते हैं।

रामायण से संबंधित प्रासंगिक श्लोक (सुंदरकांड ४-६७-२७):

मारुतस्य समो वेगे गरुडस्य समो जवे ।

अयुतम् योजनानाम् तु गमिष्यामि इति मे मतिः ॥

("वेग में वायु के समान और गति में गरुड़ के समान, मैं दसों हजार योजन की दूरी लांघने में समर्थ हूँ, ऐसा मेरा निश्चय है।")

वैज्ञानिक भाषा (Scientific Language) में इसे **माइक्रो-ग्रेविटी (Micro-Gravity)** या **जेट पैक तकनीक (Jet-Pack Technology)** के रूप में **व्याख्यायित (Interpreted)** किया जा सकता है। यह एक ऐसा **उपकरण (Device/Apparatus)** था जो **गुरुत्वाकर्षण बल (Gravitational Force)** के प्रभाव से **मुक्ति (Liberation)** प्रदान करता और **लंबी दूरी की उड़ान (Long-Distance Flight)** को सक्षम बनाता था।

हनुमान (Hanuman) और उनकी **वानर सेना (Vanara Army)** का **लुप्त हो जाना (Extinction/Assimilation)** भी अत्यंत **रहस्यमय (Enigmatic/Mysterious)** है। संभव है कि **महायुद्ध (Great War)**

के पश्चात वे धीरे-धीरे मानव आबादी में **विलीन (Assimilated)** हो गए हों या किसी **प्राकृतिक प्रलय (Catastrophic Event/Deluge)** में समाप्त हो गए हों। इस दृष्टिकोण से **रामायण (Ramayana)** केवल एक **धार्मिक कथा (Religious Narrative)** नहीं, बल्कि उस समय की **उन्नत जैविक, भौतिक और तकनीकी समझ (Advanced Biological, Physical & Technological Knowledge)** का **प्रतीक (Indicative of Advanced Science & Engineering)** भी प्रतीत होती है।

हनुमान (Hanuman) और उनकी **वानर सेना (Vanara Army)** का वर्णन केवल **पौराणिक (Mythological)** रूप से नहीं, बल्कि **वैज्ञानिक (Scientific)** और **तकनीकी (Technological)** दृष्टि से भी समझा जा सकता है। उनकी **शारीरिक क्षमता (Physical Capability)**, **तकनीकी उपकरण (Technological Devices)**, **रणनीतिक कौशल (Strategic Skills)** और **संगठनात्मक क्षमता (Organizational Ability)** आज के **आधुनिक सैन्य विज्ञान (Modern Military Science)**, **एयरोस्पेस इंजीनियरिंग (Aerospace Engineering)** और **मानव जैव-यांत्रिकी (Human Biomechanics)** के लिए भी **प्रेरणा (Inspiration)** और **अध्ययन का विषय (Subject of Study)** हैं। **रामायण (Ramayana)** में उनका विवरण यह संकेत देता है कि प्राचीन भारत में **जैविक (Biological)**, **भौतिक (Physical)** और **तकनीकी (Technological)** ज्ञान अत्यंत **उन्नत (Highly Advanced)** और **रणनीतिक रूप से समृद्ध (Strategically Enriched)** था।

11.10 निज प्रतिबिंब से ऊर्जा-स्थानांतरण तक: प्रतीकात्मक भाषा और वैज्ञानिक व्याख्या

यह सम्पूर्ण प्रसंग रामचरितमानस में वर्णित एक अत्यंत रहस्यात्मक (Mystical) और अध्यात्म-प्रधान (Spiritually Oriented) लीला के रूप में प्रतिष्ठित है, किंतु यदि इसे इतिहास-ए-विज्ञान (History of Science) और विज्ञान-दर्शन (Philosophy of Science) की दृष्टि से पुनर्पाठित किया जाए, तो यह केवल आस्था का आख्यान न रहकर एक जटिल Conceptual Analogy (अवधारणात्मक समानता) का उदाहरण बन जाता है। यहाँ उद्देश्य यह प्रतिपादित करना नहीं है कि ग्रंथ में प्रत्यक्ष रूप से आधुनिक वैज्ञानिक सिद्धांतों का पूर्वाभास निहित है, बल्कि यह दिखाना है कि कथा-रूप में व्यक्त तत्त्वमीमांसीय संकेत आधुनिक विज्ञान की कुछ संकल्पनाओं से वैचारिक साम्य स्थापित कर सकते हैं।

राम जी द्वारा सीता जी को अग्नि में सुरक्षित रखने के लिए अनुरोध करना (चौपाई):

सुनहु प्रिया ब्रत रुचिर सुसीला ।
मैं कछु करबि ललित नरलीला ॥
तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा ।
जौ लगि करौं निसाचर नासा ॥

(अर्थ: हे प्रिये! हे सुंदर पतिव्रत धर्म का पालन करने वाली! सुनो, मैं अब कुछ मनोहर मनुष्य लीला करता हूँ, इसलिए जब तक मैं राक्षसों का नाश करूँ, तब तक तुम अग्नि में निवास करो।)

तो इसे पारंपरिक अर्थ में एक दैवी लीला के रूप में देखा जाता है। परंतु आधुनिक वैज्ञानिक झुकाव (Modern Scientific Inclination) के साथ इसे पढ़ें, तो 'पावक में निवास' एक प्रकार की ऊर्जा-स्थिति-परिवर्तन

(Energy State Transition) या **फेज़-शिफ्ट (Phase Shift)** का रूपक प्रतीत होता है। भौतिकी में किसी पदार्थ का एक अवस्था से दूसरी अवस्था में रूपांतरण उसके मूल तत्व को नष्ट नहीं करता, बल्कि उसे भिन्न **ऊर्जा-स्तर (Energy Level)** पर स्थापित करता है। इसी प्रकार 'अग्नि में निवास' को एक **उच्च-ऊर्जा-आवृत्ति (High Energy Frequency Domain)** में सुरक्षित स्थिति के रूप में समझा जा सकता है।

सीता जी का अग्नि प्रवेश (चौपाई):

जबहिं राम सब कहा बखानी।
 प्रभु पद धरि हियँ अनल समानी॥
 निज प्रतिबिंब राखि तहँ सीता।
 तैसइ सील रूप सुबिनीता॥

(अर्थ: जब रामजी ने सब बखाना, तब सीताजी प्रभु के चरणों को हृदय में धारण करके अग्नि में समा गईं। परछाई के रूप में सीताजी को (वैसा ही शील और रूप) वहाँ रखकर, अग्नि में प्रवेश कर गईं।)

यहाँ 'निज प्रतिबिंब' शब्द विशेष रूप से दार्शनिक-वैज्ञानिक विश्लेषण की मांग करता है। आधुनिक भौतिकी और **सूचना-विज्ञान (Information Science)** में **होलोग्राफिक सिद्धांत (Holographic Principle)** यह बताता है कि किसी **त्रि-आयामी (Three-Dimensional)** संरचना की संपूर्ण सूचना द्वि-आयामी सतह पर संचित की जा सकती है। इसी प्रकार **क्लोनिंग सिद्धांत (Cloning Theory)** जैविक स्तर पर किसी मूल जीव का **आनुवंशिक प्रतिरूप (Genetic Replica)** निर्मित करने की संभावना दर्शाता है। यहाँ यह दावा नहीं किया जा रहा कि ग्रंथ में प्रत्यक्ष **जैव-प्रौद्योगिकी (Biotechnology)** का वर्णन है, बल्कि **Conceptual Analogy (अवधारणात्मक समानता)** के स्तर पर यह कहा जा सकता

है कि 'मूल सत्ता' और 'प्रक्षेपित प्रतिबिंब' (**Projected Representation**) के बीच भेद की चेतना इस कथा में स्पष्ट है।

अग्नि देव द्वारा वापसी (दोहा):

अग्नि देव ने माता सीता को वापस लौटाया (कथा अनुसार):
सत्य की विजय हुई, अग्नि ने सीता जी को पवित्र घोषित किया।

इस प्रसंग के माध्यम से सीताजी ने अपनी पवित्रता का प्रमाण दिया।

यदि इस प्रसंग को **क्वांटम भौतिकी (Quantum Physics)** के आलोक में देखें, तो 'अग्नि में निवास' को एक प्रकार की **डायमेंशनल शिफ्ट (Dimensional Shift)** या **क्वांटम सुपरपोज़िशन (Quantum Superposition)** के रूपक के रूप में भी समझा जा सकता है। क्वांटम स्तर पर कण एक साथ अनेक संभावित अवस्थाओं में विद्यमान रह सकते हैं, जब तक उनका अवलोकन (Observation) न हो। कथा में 'मूल सीता' और 'प्रतिबिंब सीता' की द्वैत उपस्थिति एक दार्शनिक संकेत देती है कि **दृश्य वास्तविकता (Observable Reality)** और **तात्त्विक वास्तविकता (Ontological Reality)** में भेद संभव है। यह विचार आधुनिक विज्ञान में **प्रेक्षक-प्रभाव (Observer Effect)** के साथ भी वैचारिक साम्य रखता है।

अग्नि-परीक्षा को यदि तकनीकी रूपक में रूपांतरित करें, तो यह एक प्रकार का **प्रमाणीकरण तंत्र (Authentication Mechanism)** प्रतीत होता है। आज के डिजिटल युग में **बायोमेट्रिक वेरिफिकेशन (Biometric Verification)** या **क्रिप्टोग्राफिक प्रमाणीकरण (Cryptographic Authentication)** द्वारा किसी व्यक्ति की पहचान सत्यापित की जाती है। अग्नि यहाँ एक **ऊर्जा-आधारित सत्यापन प्रणाली (Energy-Based Validation System)** के रूप में कार्य करती है, जो 'शुद्ध' और 'अशुद्ध' के बीच भेद स्थापित करती है। यह प्रतीकात्मक

अवश्य है, किंतु आधुनिक विज्ञान के संदर्भ में यह **सत्यापन (Verification) और प्रमाणीकरण (Validation)** की अवधारणा से तुलनीय है।

ऊर्जा-संरक्षण के सिद्धांत (Law of Conservation of Energy) के अनुसार ऊर्जा नष्ट नहीं होती, केवल रूपांतरित होती है। इसी आधार पर 'अग्नि से पुनरागमन' को **ऊर्जा-संरक्षण (Energy Conservation)** और **अविनाशिता (Indestructibility)** के रूपक के रूप में भी पढ़ा जा सकता है। यहाँ सत्य का प्रतीक 'सीता' है, जो किसी भी ऊर्जा-परिवर्तन के पश्चात भी **अक्षुण्ण (Intact)** रहती हैं। यह विचार आधुनिक भौतिकी के उस सिद्धांत से मेल खाता है कि मूलभूत ऊर्जा-तत्त्व अविनाशी है।

अग्नि-परीक्षा प्रसंग को और व्यापक वैज्ञानिक संदर्भ में देखें तो यह हमें आधुनिक ब्रह्मांड विज्ञान के कुछ अत्यंत गहन सिद्धांतों तक ले जाता है। उदाहरणार्थ, जब 1970 के दशक में **जैकब बेकेनस्टीन (Jacob Bekenstein)** और **स्टीफन हॉकिंग (Stephen Hawking)** ने यह प्रतिपादित किया कि ब्लैक होल की **एंट्रॉपी (Entropy)** उसके **वॉल्यूम (Volume)** पर नहीं बल्कि उसके **सरफेस एरिया (Surface Area)**, विशेषकर **इवेंट होराइजन (Event Horizon)** पर निर्भर करती है, तब यह खोज पारंपरिक **शास्त्रीय भौतिकी (Classical Physics)** की सीमाओं को तोड़ देने वाली सिद्ध हुई। यह विचार कि किसी **त्रि-आयामी (3D)** पिंड की समस्त **सूचना (Information)** उसकी **द्वि-आयामी (2D)** सीमा पर **संहिताबद्ध (Encoded)** हो सकती है, भौतिकी की समझ को मूल से परिवर्तित कर देता है।

इसी से उत्पन्न हुआ **होलोग्राफिक सिद्धांत (Holographic Principle)**, जिसे 1993 में **जेरार्ड 'टी हूफ्ट (Gerard 't Hooft)** ने व्यापक ब्रह्मांड पर लागू करने का प्रस्ताव दिया और **लियोनार्ड सस्किंड (Leonard Susskind)** ने उसे गणितीय आधार प्रदान किया। इस

सिद्धांत के अनुसार, हमारी प्रतीत होने वाली त्रि-आयामी वास्तविकता वास्तव में किसी दूरस्थ द्वि-आयामी सीमा पर अंकित **सूचनात्मक संरचना (Informational Structure)** का **प्रक्षेपण (Projection)** हो सकती है। यह विचार केवल भौतिकी का गणितीय अनुमान नहीं, बल्कि अस्तित्व की प्रकृति पर गहन **दार्शनिक (Philosophical)** प्रश्न भी खड़ा करता है।

इसी संदर्भ में **जॉन आर्चीबाल्ड व्हीलर (John Archibald Wheeler)** का प्रसिद्ध सिद्धांत "It from Bit" उल्लेखनीय है। इसके अनुसार ब्रह्मांड का मूल आधार पदार्थ या ऊर्जा नहीं, बल्कि सूचना है। यह दृष्टिकोण आधुनिक भौतिकी को एक नए **सूचनात्मक प्रतिमान (Informational Paradigm)** की ओर ले जाता है, जहाँ वास्तविकता को ऊर्जा और पदार्थ से अधिक सूचनात्मक संरचना के रूप में समझा जाने लगा है।

1974 में **स्टीफन हॉकिंग (Stephen Hawking)** द्वारा खोजा गया **हॉकिंग विकिरण (Hawking Radiation)** इस विमर्श का केंद्रबिंदु बना। **क्वांटम क्षेत्र सिद्धांत (Quantum Field Theory)** के अनुसार, शून्य वास्तव में पूर्ण रिक्त नहीं, बल्कि **क्वांटम उतार-चढ़ाव (Quantum Fluctuations)** से परिपूर्ण होता है, जहाँ **आभासी कण-प्रतिपण (Virtual Particle-Antiparticle Pairs)** निरंतर उत्पन्न और विलीन होते रहते हैं। यदि ऐसा युग्म ब्लैक होल के **इवेंट होराइजन (Event Horizon)** के समीप उत्पन्न हो और एक कण भीतर गिर जाए जबकि दूसरा बाहर निकल आए, तो ब्लैक होल धीरे-धीरे अपनी ऊर्जा खोकर **वाष्पित (Evaporate)** हो सकता है।

यहीं से जन्म लेता है प्रसिद्ध **सूचना विरोधाभास (Information Paradox)** यदि क्वांटम सिद्धांत कहता है कि सूचना नष्ट नहीं होती, तो ब्लैक होल में समाहित सूचना का क्या होता है?

इस प्रश्न ने आधुनिक भौतिकी के दो प्रमुख स्तंभ सामान्य सापेक्षता (**General Relativity**) और क्वांटम यांत्रिकी (**Quantum Mechanics**) को आमने-सामने ला खड़ा किया। समाधान के रूप में यह विचार उभरा कि ब्लैक होल के भीतर की समस्त त्रि-आयामी सूचना उसकी द्वि-आयामी सतह पर संरक्षित रहती है। यही वह बिंदु है जहाँ आधुनिक विज्ञान अस्तित्व को मूलतः सूचनात्मक (**Informational**) मानने लगा, और इस पूरी अवधारणा को पुनः **जॉन आर्चीबाल्ड व्हीलर (John Archibald Wheeler)** के “**It from Bit**” सिद्धांत से गहराई मिलती है।

अतः यह प्रसंग केवल धार्मिक आस्था का विषय नहीं, बल्कि एक बहुस्तरीय तत्त्वमीमांसीय (**Metaphysical**) विमर्श है, जिसमें ऊर्जा, आयाम, प्रतिरूप, सत्यापन और संरक्षित सत्ता (**Preserved Entity**) जैसे विचार अंतर्निहित हैं। आधुनिक विज्ञान की ओर उन्मुख (**Science-Oriented**) व्याख्या यह दर्शाती है कि कथा-रूप में व्यक्त यह लीला मानव चेतना की उस जिज्ञासा को प्रकट करती है, जो वास्तविकता (**Reality**), सत्य (**Truth**) और अस्तित्व (**Existence**) के गहनतम आयामों को समझने का प्रयास करती रही है।

11.11 पुष्पक विमान और आधुनिक एयरोस्पेस अभियांत्रिकी: एक वैज्ञानिक पुनर्मूल्यांकन

रावण द्वारा माता सीता के अपहरण के लिए प्रयुक्त पुष्पक विमान का उल्लेख वाल्मीकि रामायण तथा अन्य रामकथाओं में मिलता है। कथा के अनुसार यह दिव्य विमान विश्वकर्मा द्वारा निर्मित था और मूलतः ब्रह्मा से प्राप्त होकर बाद में रावण के अधिकार में आया। वनवास (लंका विजय) के बाद भगवान श्री राम, माता सीता और लक्ष्मण जी के अयोध्या लौटने के लिए उन्होंने पुष्पक विमान (**Pushpak Viman**) का उपयोग किया

था। लंका से अयोध्या की यात्रा आकाश मार्ग से, दक्षिण से उत्तर दिशा में की गई थी। इसे **मोराकार (Peacock-Shaped)** कहा गया है तथा यह अग्नि और वायु तत्त्वों से संचालित होने वाला एक **स्वचालित (Self-Propelled)** और **आकाशगामी (Aerial)** यान माना गया है, जो अपनी आकृति को इच्छानुसार परिवर्तित कर सकता था, अर्थात् **आकार-परिवर्तनशील (Shape-Transforming)** तकनीक से युक्त।

रामायण के उत्तरकाण्ड में वर्णित पुष्पक विमान की कथा भारतीय सांस्कृतिक कल्पना की अद्भुत अभिव्यक्ति है, किंतु यदि इसे आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाए तो यह प्रत्यक्ष तकनीकी तथ्य की अपेक्षा एक **रूपकात्मक (Metaphorical)** और **वैचारिक (Conceptual)** संरचना अधिक प्रतीत होती है। ग्रंथों में वर्णित है कि यह **मन की गति से (Mind-Controlled Propulsion)** चलता था।

(उत्तर काण्ड 10.21-22)

चलं मनसा विमानं तस्य पुष्पकम्।

(रावण का पुष्पक विमान मन की गति से चलता था और वह जहां चाहे, आकाश में या पृथ्वी पर जा सकता था।)

“चलं मनसा विमानम्” जैसे श्लोक को आज के संदर्भ में **तंत्रिका-संकेत नियंत्रण (Neural Signal Control)** अथवा **मस्तिष्क-कंप्यूटर अंतःसंपर्क (Brain-Computer Interface)** की संकल्पना से जोड़ा जा सकता है, आधुनिक विज्ञान में इसे **ब्रेन-कंप्यूटर इंटरफेस (Brain-Computer Interface – BCI)** कहा जाता है, जिस पर **एलॉन मस्क (Elon Musk)** और **न्यूरालिंक** जैसी कंपनियां 2025 में काम कर रही हैं। पुष्पक विमान का **कंट्रोल सिस्टम** सीधे **पायलट के न्यूरोनल सिग्नल (Neuronal Signals)** से जुड़ा था।

आकार-परिवर्तनशील विमान की अवधारणा को आधुनिक रूपपरिवर्तनशील वैमानिकी (**Morphing Aeronautics**) तथा नैनो-संरचनात्मक अभियांत्रिकी (**Nano-Structural Engineering**) से जोड़ा जा सकता है, जहाँ पंखों या संरचना का आकार उड़ान-स्थितियों के अनुसार परिवर्तित किया जाता है। परंतु यह परिवर्तन **यांत्रिक (Mechanical)** और **वायुगतिकीय (Aerodynamic)** सिद्धांतों पर आधारित होता है, न कि इच्छाशक्ति-नियंत्रित चमत्कारी प्रणाली पर। इसी प्रकार अग्नि और वायु तत्वों से संचालन की कल्पना आधुनिक **दहन-आधारित प्रणोदन (Combustion-Based Propulsion)** तथा **जेट प्रणोदन (Jet Propulsion)** से तुलनीय अवश्य है, किंतु उसका विकास ऐतिहासिक रूप से 1903 में Wright brothers की नियंत्रित शक्ति-संचालित उड़ान के पश्चात क्रमिक रूप से हुआ।

इंजन की बात करें तो प्राचीन ग्रंथों में इसका वर्णन **पारा-आधारित वर्टेक्स इंजन (Mercury Vortex Engine)** के रूप में मिलता है। **पारे (Mercury – Hg)** को उच्च ताप और विद्युत आवेश (**High Temperature & Electric Charge**) से सक्रिय करने पर अत्यधिक **थ्रस्ट (Thrust)** उत्पन्न होता था। यह तकनीक आज की **नासा की डीप-स्पेस आयरन प्रोपल्शन प्रणाली (Iron Propulsion System)** के समान है।

पुष्पक विमान न केवल **एयरक्राफ्ट मोड (Aircraft Mode)** में उड़ सकता था, बल्कि **एम्फीबियस मोड (Amphibious Mode)** में पानी के भीतर और **स्पेस मोड (Space Mode)** में अंतरिक्ष में भी संचालित हो सकता था। इसकी **अदृश्यता तकनीक (Stealth Technology)** और उन्नत **रडार प्रणाली (Radar System)** इसे आधुनिक **F-22 रैप्टर** या **B-2 बॉम्बर** से कई गुना अधिक सक्षम बनाती थी। यह विमान प्राचीन भारत की वैज्ञानिक और तकनीकी विरासत (**Technological**

Heritage) का अद्वितीय उदाहरण है, जो आज भी **एयरोस्पेस और रॉकेट विज्ञान (Aerospace & Rocket Science)** के क्षेत्र में शोधकर्ताओं को प्रेरित करता है।

अतः आधुनिक विज्ञान की कसौटी पर पुष्पक विमान को प्रत्यक्ष ऐतिहासिक यंत्र न मानकर एक **वैज्ञानिक-संभाव्यता का सांस्कृतिक रूपक (Cultural Metaphor of Scientific Possibility)** समझना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। यह कथा प्राचीन भारतीय मनीषा की **दूरदर्शी कल्पनाशीलता (Futuristic Imagination)** को दर्शाती है, किंतु समकालीन विज्ञान के लिए आवश्यक **प्रमाणाधारित सत्यापन (Evidence-Based Verification)** और **पुनरुत्पादकता (Reproducibility)** के मानकों से भिन्न है। इस प्रकार पुष्पक विमान की अवधारणा आधुनिक एयरोस्पेस विमर्श को प्रेरणा अवश्य देती है, परंतु उसे प्रत्यक्ष तकनीकी उपलब्धि के रूप में स्वीकार करना वैज्ञानिक दृष्टि से अभी संभव नहीं है।

इसके अतिरिक्त, पुष्पक का 'इच्छानुसार संचालित' होना आज के **आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (Artificial Intelligence)** आधारित **ऑटोनॉमस फ्लाइट सिस्टम (Autonomous Flight System)** की याद दिलाता है, जहाँ यान बिना मानवीय हस्तक्षेप के दिशा, गति और संतुलन नियंत्रित कर सकता है। इस प्रकार पुष्पक विमान की पौराणिक अवधारणा एक अत्यंत उन्नत **वैमानिक प्रौद्योगिकी (Advanced Aeronautical Technology)** का रूपक प्रतीत होती है, जो प्राचीन भारतीय कल्पना में वैज्ञानिक संभावनाओं की **दूरदर्शिता (Futuristic Vision)** को दर्शाती है।

11.12 “प्राचीन भारतीय चिकित्सा-चिन्तन और आधुनिक ट्रॉमा केयर: सुषेण की औषधियों का तुलनात्मक अध्ययन”

वाल्मीकि रामायण के युद्धकाण्ड में लक्ष्मणजी पर मेघनाद द्वारा शक्तिबाण के प्रयोग का वर्णन है। यह भयंकर अस्त्र वज्र के समान था, जो लक्ष्मण की छाती में लगा और वे मूर्छित हो गए।

इसका वर्णन करने वाला मुख्य श्लोक (**युद्धकाण्ड 101.23-24**) है:

सा क्षिप्ता भीमवेगेन शक्राशनिसमास्वना ।

शक्तिरभ्यपतद्वेगाल्लक्ष्मणं रणमूर्धनि ॥

न्यपतत् सा महावेगा लक्ष्मणस्य महारसि ।

शक्त्या निर्भिन्नहृदयः पपात भुवि लक्ष्मणः ॥

शक्ति बाण का प्रसंग वाल्मीकि रामायण में वर्णित एक अत्यंत **घातक (Lethal)** और **दिव्यास्त्र (Divine Weapon System)** से जुड़ा है, जिसका प्रयोग मेघनाद (इंद्रजीत) ने लक्ष्मण पर किया था। इस अस्त्र के प्रहार से लक्ष्मण मूर्छित होकर लगभग **जीवहीन अवस्था (Near-Clinical Death State)** में पहुँच गए थे। यह अस्त्र केवल भौतिक आघात नहीं, बल्कि एक प्रकार की **ऊर्जा-आधारित प्रहार प्रणाली (Energy-Based Strike Mechanism)** के रूप में वर्णित है, जो लक्ष्य की जीवन-शक्ति को निष्क्रिय कर देती थी। यदि इसकी तुलना आधुनिक विज्ञान से करें, तो यह किसी **मिसाइल प्रणाली (Guided Missile System)** या **डायरेक्टेड एनर्जी वेपन (Directed Energy Weapon)** जैसा प्रतीत होता है, जो **लक्ष्य को सटीकता (Precision Targeting)** के साथ भेदकर उसके **जैविक तंत्र (Biological System)** को निष्क्रिय कर सकता है।

इस प्रसंग में वर्णित घटनाएँ यदि आधुनिक वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में **पुनर्पाठ (Reinterpretation)** की जाएँ, तो यह स्पष्ट होता है कि यहाँ एक अत्यंत

जटिल ऊर्जा-आधारित आघात (Energy-Induced Trauma), तीव्र स्नायविक अवरोध (Neurogenic Shock) तथा जीवन-रक्षक पुनर्योजी उपचार (Regenerative Intervention) का संकेत मिलता है। शक्तिबाण का प्रभाव मात्र भौतिक आघात नहीं था, बल्कि वह एक प्रकार की उच्च-ऊर्जा विकिरणात्मक या स्पंदनात्मक शक्ति का प्रतीक प्रतीत होता है, जो शरीर की प्राणवायु-प्रणाली (Respiratory System), हृदय-क्रिया (Cardiac Function) तथा चेतना-तंत्र (Consciousness Mechanism) को बाधित कर देता है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में ऐसी अवस्था को कोमा (Coma) अथवा बहु-अंग विकार (Multi-Organ Dysfunction) की श्रेणी में रखा जा सकता है।

वाल्मीकि रामायण के युद्धकांड (अध्याय 74, श्लोक 29-34) के अनुसार, सुषेण ने लक्ष्मण की प्राण रक्षा हेतु द्रोणगिरि से चार औषधियाँ विशल्यकरणी (शरीर में धँसे बाण को निकालने व घाव भरने के लिए), सावर्ण्यकरणी (त्वचा के रंग को पुनः सामान्य करने के लिए), सन्धानकरणी (टूटी हड्डियों और जोड़ों को जोड़ने के लिए) और मृतसंजीवनी (मृतप्राय व्यक्ति में प्राण फूंकने के लिए) लाने का निर्देश दिया था।

संदर्भित श्लोक (वाल्मीकि रामायण, युद्धकांड 74.31-33):

सौम्य शीघ्रमितो गत्वा शैलमोषधिपर्वतम् ।
तत्र ते ओषधयः तत्र मृतसंजीवनी च या ॥
विशल्यकरणी चैव तथा सन्धानकरणी ।
सावर्ण्यकरणी चैव संजीवकरणी च या ॥

सुषेण द्वारा निर्देशित औषधियाँ विशल्यकरणी, संधानकरणी, सौवर्ण्यकरणी और मृतसंजीवनी यदि प्रतीकात्मक न होकर वैज्ञानिक संकेत मानी जाएँ, तो वे क्रमशः शल्य-निष्कर्षण (Surgical

Extraction), ऊतक-संधान (Tissue Regeneration), त्वचा-पुनर्निर्माण (Dermal Restoration) तथा जीवन-पुनर्संचालन (Cellular Revival) की उन्नत चिकित्सा प्रक्रियाओं की ओर इंगित करती हैं। विशल्यकरणी को आधुनिक परिभाषा में एक प्रकार की एंटी-इन्फ्लेमेटरी (Anti-Inflammatory) या न्यूरो-प्रोटेक्टिव औषधि (Neuroprotective Agent) के रूप में समझा जा सकता है, जो आघात के पश्चात उत्पन्न सूजन और विषाक्त प्रभाव को कम करती है। संधानकरणी संभवतः स्टेम-सेल सक्रियण (Stem Cell Activation) अथवा बायो-रीजेनेरेटिव थेरेपी (Bio-Regenerative Therapy) जैसी प्रक्रिया का संकेत देती है, जहाँ क्षतिग्रस्त ऊतकों का पुनर्निर्माण तीव्र गति से संभव होता है। सौवर्णकरणी को यदि आधुनिक दृष्टि से देखा जाए, तो यह एंटीऑक्सीडेंट-आधारित पुनरुद्धार (Antioxidant-Based Recovery) अथवा त्वचा की कोलेजन-संश्लेषण (Collagen Synthesis) प्रक्रिया से सम्बद्ध हो सकती है। मृतसंजीवनी, जो सर्वाधिक रहस्यमयी औषधि मानी जाती है, आधुनिक परिप्रेक्ष्य में कार्डियो-पल्मोनरी रेससिटेशन (Cardio-Pulmonary Resuscitation), एडवांस्ड लाइफ सपोर्ट (Advanced Life Support) अथवा सेलुलर रिएक्टिवेशन (Cellular Reactivation) जैसी उन्नत जीवन-रक्षक तकनीकों के समतुल्य समझी जा सकती है।

विशल्यकरणी का अर्थ है शरीर में धंसे शल्य (Foreign Object) को निकालकर घाव को भरना; यह आज की माइक्रोसर्जरी (Microsurgery) और ट्रॉमा केयर सिस्टम (Advanced Trauma Care) से तुलनीय है, जहाँ सर्जिकल उपकरणों द्वारा सूक्ष्म स्तर पर ऑपरेशन कर ऊतकों (Tissues) को पुनर्स्थापित किया जाता है। सावर्णकरणी, जो त्वचा के वर्ण और रूप को पुनः पूर्ववत करती है, आधुनिक डर्मेटोलॉजिकल रीजेनेरेशन (Dermatological

Regeneration), स्टेम-सेल थेरेपी (Stem Cell Therapy) तथा टिशू इंजीनियरिंग (Tissue Engineering) की अवधारणाओं से मेल खाती है, जिनका उद्देश्य क्षतिग्रस्त त्वचा को पुनर्जीवित करना है।

इसी प्रकार **सन्धानकरणी**, जो टूटी हुई अस्थियों को जोड़ती है, वर्तमान की **ऑर्थोपेडिक सर्जरी (Orthopedic Surgery)**, **बायो-कम्पैटिबल इम्प्लांट्स (Bio-Compatible Implants)** और **3D बायो-प्रिंटिंग (3D Bio-Printing)** जैसी उन्नत प्रक्रियाओं से तुलनीय प्रतीत होती है। अंततः **संजीवनी**, जो मूर्छित या मृतप्राय अवस्था में प्राण-संचार करती है, आधुनिक **रीससिटेशन टेक्नोलॉजी (Resuscitation Technology)**, **कार्डियक डिफिब्रिलेशन (Cardiac Defibrillation)** तथा **रिजेनेरेटिव मेडिसिन (Regenerative Medicine)** की परिकल्पनाओं का प्रतीक लगती है, जहाँ निष्क्रिय जैव-तंत्र (Biological System) को पुनः सक्रिय किया जाता है।

इस प्रसंग का एक अन्य महत्वपूर्ण आयाम है समय-सीमा की अनिवार्यता। सुषेण द्वारा यह निर्देश कि औषधि सूर्योदय से पूर्व लाई जाए, आधुनिक चिकित्सा में **गोल्डन आवर सिद्धांत (Golden Hour Principle)** की स्मृति कराता है, जिसके अनुसार गंभीर आघात के पश्चात प्रारंभिक एक घंटे में उपचार आरम्भ होना अत्यंत आवश्यक है। यह संकेत करता है कि प्राचीन भारतीय ज्ञान-परंपरा में **आघात-प्रबंधन (Trauma Management)** के समयबद्ध आयाम का बोध विद्यमान था। साथ ही, हिमालय से औषधि लाने का निर्देश इस बात की ओर संकेत करता है कि विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्रों में विशेष **जैव-सक्रिय यौगिक (Bioactive Compounds)** उपलब्ध थे, जिन्हें आज हम औषधीय वनस्पतियों की **फाइटोकेमिस्ट्री (Phytochemistry)** के अंतर्गत अध्ययन करते हैं।

संजीवनी बूटी की पहचान आधुनिक वनस्पति-विज्ञान में प्रायः **सेलाजिनेला ब्रायोप्टेरिस (Selaginella bryopteris)** से की जाती है,

जिसे "रिज़रवेशन प्लांट" भी कहा जाता है। इस वनस्पति की विशेषता है **निष्क्रिय-जीवन अवस्था (Dormant Viability State)** अर्थात् पूर्णतः शुष्क हो जाने पर भी जल-संपर्क से पुनः सक्रिय हो जाना। यह गुण आधुनिक **कोशिकीय पुनर्जीवन (Cellular Regeneration)** और **क्रायो-संरक्षण (Cryopreservation Science)** की अवधारणाओं से तुलनीय है।

यदि मेघनाद के अस्त्र शक्तिबाण को रूपकात्मक दृष्टि से देखें, तो वह किसी प्रकार की **ऊर्जा-आधारित विकिरण क्षति (Radiation-Induced Cellular Damage)** उत्पन्न करने वाला शस्त्र हो सकता है, जिसने लक्ष्मण की कोशिकाओं में **ऑक्सीडेटिव स्ट्रेस (Oxidative Stress)** तथा **डीएनए विखंडन (DNA Fragmentation)** जैसी स्थिति उत्पन्न की। ऐसी अवस्था में संजीवनी को एक शक्तिशाली **प्रतिऑक्सीडेंट संयुग्म (Potent Antioxidant Compound)** तथा **जीनोमिक मरम्मत कारक (Genomic Repair Agent)** के रूप में समझा जा सकता है, जो क्षतिग्रस्त कोशिकाओं के **माइटोकॉन्ड्रियल पुनर्सक्रियन (Mitochondrial Reactivation)** और **ऊतक पुनर्निर्माण (Tissue Regeneration)** को प्रोत्साहित करती है।

सुशेण की निदान-पद्धति यह दर्शाती है कि उन्हें **नाड़ी-तंत्र विश्लेषण (Neurophysiological Assessment)**, **जीवन-संकेत स्थिरीकरण (Vital Parameter Stabilization)** तथा **औषधीय जैव-रसायन (Medicinal Biochemistry)** का गहन ज्ञान था। यह परिकल्पना प्रस्तुत की जा सकती है कि उस काल की आयुर्वेद प्रणाली में **समेकित चिकित्सा विज्ञान (Integrated Medical Sciences)** का एक उन्नत स्वरूप विद्यमान था, जहाँ **शल्य-चिकित्सा (Surgical Intervention)**, **औषध-निर्माण (Pharmacological Formulation)** और **पुनर्वास (Rehabilitative Therapy)** एक समन्वित ढाँचे में कार्य करते थे।

इस प्रकार यह सम्पूर्ण प्रसंग केवल आध्यात्मिक चमत्कार नहीं, बल्कि प्राचीन भारतीय चिकित्सा-दृष्टि की **समेकित वैज्ञानिक चेतना (Integrated Scientific Consciousness)** का प्रतीक प्रतीत होता है। यहाँ **युद्ध-प्रौद्योगिकी (Military Technology)** और **चिकित्सा-विज्ञान (Medical Science)** का अंतर्संबंध स्पष्ट होता है। यदि इसे आधुनिक **अंतरविषयी अध्ययन (Interdisciplinary Research)** के परिप्रेक्ष्य में देखा जाए, तो यह **आघात-विज्ञान (Traumatology)**, **पुनर्योजी जीवविज्ञान (Regenerative Biology)**, **न्यूरो-विज्ञान (Neuroscience)** तथा **जैव-रसायन (Biochemistry)** के बीच एक सेतु का कार्य करता है। अतः लक्ष्मण पुनर्जीवन प्रसंग को केवल मिथकीय आख्यान न मानकर, एक संभावित **आदिम आपातकालीन चिकित्सा मॉडल (Proto-Emergency Medical Model)** के रूप में अध्ययन करना अधिक वैज्ञानिक और समीचीन प्रतीत होता है। यह प्रसंग दर्शाता है कि प्राचीन भारतीय कथाओं में चिकित्सा-विज्ञान की एक सूक्ष्म **वैज्ञानिक-दूरदर्शिता (Scientific Foresight)** निहित थी, जो आज की अत्याधुनिक **जैव-प्रौद्योगिकी (Biotechnology)** से आश्चर्यजनक साम्य स्थापित करती है।

11.13 'तैलद्रोणी' और प्राचीन शव-संरक्षण विज्ञान का आधुनिक वैज्ञानिक पुनर्पाठ

वाल्मीकि रामायण के अयोध्याकांड में वर्णित 'तैलद्रोणी' प्रसंग प्राचीन भारतीय **शव-संरक्षण विज्ञान (Ancient Mortuary Preservation Science)** की एक अत्यंत रोचक झलक प्रस्तुत करता है। राजा दशरथ के देहावसान के पश्चात, पुत्रों की अनुपस्थिति में उनके शरीर को तेल से भरी द्रोणी में सुरक्षित रखना केवल धार्मिक विधि नहीं, बल्कि एक सुविचारित **संरक्षण-प्रक्रिया (Preservation Technique)** प्रतीत होती है।

श्लोक—

तैलद्रोण्यां च भरत तैलपूर्णेऽपि वासयन्।
तस्मिन्नेव शवागारं राजा तत्र शयिष्यते।।

(अर्थ: भरत, राजा के शरीर को तेल से भरी द्रोणी में रखा गया है और वे वहीं शयन कर रहे हैं - यह वर्णन वशिष्ठ द्वारा राजा के शरीर की रक्षा के संदर्भ में आता है)

तैलद्रोण्यां च भरत तं देहं स्थापयत् तदा।
तैलद्रोण्यां च तं देहं तदा तैलप्रधर्षितम्।

(अर्थ: तब (दशरथ के निधन पर) शरीर को तेल की द्रोणी (तेल के कड़ाह) में रखा गया। शरीर को तेल से उपचारित करके सुरक्षित किया गया, राजा दशरथ का अंतिम संस्कार भरत ने किया था।)

वाल्मीकि रामायण के अयोध्याकाण्ड में वर्णित 'तैलद्रोणी' प्रसंग प्राचीन भारतीय **शव-संरक्षण विज्ञान (Mortuary Preservation Science)** की एक अत्यंत विकसित और व्यावहारिक समझ को उद्घाटित करता है। राजा दशरथ के देहावसान के पश्चात् उनके शरीर को तेल से परिपूर्ण पात्र में सुरक्षित रखना केवल एक धार्मिक अनुष्ठान नहीं, बल्कि एक सुनियोजित **जैव-अपघटन-निरोधक प्रक्रिया (Bio-Decomposition Inhibition Process)** के रूप में देखा जा सकता है। यहाँ 'तैलद्रोणी' वस्तुतः एक **नियंत्रित संरक्षण-कक्ष (Controlled Preservation Chamber)** का कार्य करती प्रतीत होती है, जहाँ शरीर को बाह्य **ऑक्सीकरणीय संपर्क (Oxidative Exposure)**, **सूक्ष्मजीवीय आक्रमण (Microbial Invasion)** तथा **पर्यावरणीय आर्द्रता (Ambient Humidity)** से पृथक् रखा गया। तेल, विशेषतः तिल अथवा सरसों जैसे वनस्पति-आधारित तेल, प्राकृतिक **प्रतिजैविक गुणधर्म (Antimicrobial Properties)** रखते हैं, जो जीवाणुओं और फफूँद के

विकास को धीमा कर सकते हैं। इस प्रकार तेल माध्यम में शरीर का अवगाहन एक प्रकार का **अवायवीय संरक्षण (Anaerobic Preservation Environment)** निर्मित करता है, जिसमें विघटन की दर न्यूनतम हो जाती है।

आधुनिक **जैव-रसायन (Biochemistry)** की दृष्टि से देखें तो मृत शरीर में अपघटन मुख्यतः **एंजाइमीय आत्म-पाचन (Autolysis)** तथा **पुट्रीफैक्शन (Putrefaction)** के कारण होता है। तेल में शरीर रखने से कोशिकाओं में उपस्थित एंजाइमों की क्रियाशीलता पर अप्रत्यक्ष नियंत्रण संभव होता है, क्योंकि तेल जल-आधारित रासायनिक प्रतिक्रियाओं को सीमित करता है। इसे एक प्रकार का **हाइड्रो-फोबिक अवरोध (Hydrophobic Barrier Mechanism)** कहा जा सकता है, जो जल-अणुओं की उपलब्धता को कम कर विघटनकारी रासायनिक प्रक्रियाओं को मंद करता है। यही सिद्धांत आधुनिक **एम्बामिंग (Embalming)** में प्रयुक्त रासायनिक द्रवों के पीछे भी कार्य करता है, जहाँ फॉर्माल्डिहाइड जैसे यौगिक **प्रोटीन-क्रॉस-लिंगिंग (Protein Cross-Linking)** द्वारा ऊतकों को **स्थिर (Stabilize)** कर देते हैं। यद्यपि तैलद्रोणी में प्रयुक्त माध्यम प्राकृतिक था, तथापि उसका मूल उद्देश्य **ऊतक-स्थिरीकरण (Tissue Stabilization)** आधुनिक संरक्षण-विज्ञान के सिद्धांतों से साम्य रखता है।

यदि इस प्रक्रिया की तुलना **क्रायो-संरक्षण (Cryo-Preservation)** से की जाए, तो वहाँ **तापमान-नियंत्रण (Temperature Regulation)** द्वारा जैव-क्रियाएँ मंद की जाती हैं, जबकि तैलद्रोणी में **रासायनिक एवं भौतिक अवरोध (Chemical and Physical Barriers)** द्वारा विघटन रोका जाता है। दोनों ही पद्धतियों का लक्ष्य **कोशिकीय संरचना-संरक्षण (Cellular Structural Integrity Preservation)** है। इसी प्रकार आधुनिक को अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है ये तीनों तत्त्व तैलद्रोणी पद्धति

में अंतर्निहित दिखाई देते हैं। तेल का परतदार आवरण शरीर को बाह्य वायुमंडलीय ऑक्सीजन से पृथक कर एक प्रकार की **ऑक्सीजन-न्यून सूक्ष्म-पर्यावरण (Hypoxic Micro-Environment)** निर्मित करता है, जो सूक्ष्मजीवों की वृद्धि को बाधित करता है।

पुरातात्विक दृष्टि से भी भारतीय उपमहाद्वीप में शव-संरक्षण की अवधारणा पूर्णतः अपरिचित नहीं रही। यद्यपि मिस्र की **ममीकरण-पद्धति (Mummification)** विश्वविख्यात है, भारतीय परंपरा में तैल, घृत अथवा औषधीय द्रव्यों द्वारा संरक्षण का उल्लेख दर्शाता है कि यहाँ भी **संरक्षण-प्रौद्योगिकी (Preservation Technology)** का एक स्वदेशी रूप विकसित था। इसे एक प्रकार का **आदिम जैव-रासायनिक स्थिरीकरण तंत्र (Proto-Biochemical Stabilization System)** कहा जा सकता है, जहाँ प्राकृतिक संसाधनों के माध्यम से ऊतक-विघटन की गति को नियंत्रित किया जाता था। यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि राजा दशरथ के अंतिम संस्कार की प्रतीक्षा में शरीर को सुरक्षित रखना **सामाजिक-प्रशासनिक व्यवस्था (Socio-Administrative Protocol)** से भी जुड़ा था अर्थात् संरक्षण केवल धार्मिक कारणों से नहीं, बल्कि **समय-प्रबंधन (Temporal Management)** और **राजकीय औपचारिकताओं** के कारण भी आवश्यक था।

वैज्ञानिक विश्लेषण की दृष्टि से 'तैलद्रोणी' को एक प्रारंभिक **बायो-प्रिज़र्वेशन मॉडल (Bio-Preservation Model)** के रूप में देखा जा सकता है, जिसमें **रासायनिक निष्क्रियता (Chemical Inactivation)**, **सूक्ष्मजीव-निरोध (Microbial Suppression)** तथा **भौतिक पृथक्करण (Physical Isolation)** तीनों सिद्धांत एक साथ कार्यरत थे। यह मॉडल आधुनिक **जैव-प्रौद्योगिकी (Biotechnology)** और **संरक्षण-रसायन (Conservation Chemistry)** के मूल सिद्धांतों विशेषतः **ऊतक-संरक्षण (Tissue Conservation)** और **अपघटन-**

नियंत्रण (Decomposition Regulation) के साथ तुलनात्मक अध्ययन के योग्य है। अतः तैलद्रोणी प्रसंग को केवल पौराणिक आख्यान के रूप में न देखकर, एक सुविकसित **प्राचीन शव-संरक्षण तंत्र (Ancient Mortuary Preservation System)** के रूप में पुनर्मूल्यांकित करना अधिक समीचीन प्रतीत होता है, जो दर्शाता है कि भारतीय ज्ञान-परंपरा में जैव-विघटन की प्रक्रियाओं के प्रति एक व्यावहारिक और वैज्ञानिक संवेदनशीलता विद्यमान थी।

11.14 अत्यंत सूक्ष्म छल-प्रपंच का वैज्ञानिक पुनर्पाठः कालनेमि प्रसंग और आधुनिक सूचना-विज्ञान

जब रावण ने हनुमान जी को रोकने के लिए कालनेमि को भेजा, तो उसने कपट से एक आश्रम बनाया और साधु का रूप धारण कर लिया:

**"लाखि सुभेष जग बंचक जेऊ। वेष प्रताप पूजिअहिं तेऊ॥
उघरहिं अंत न होइ निभाहू। कालनेमि जिमि रावन राहू॥"**

(अर्थ: संसार में जो ठग अच्छे वेश धारण करते हैं, वे अपने वेश के प्रताप से पूजे भी जाते हैं। परंतु अंत में उनका भेद खुल ही जाता है और वे टिक नहीं पाते, जैसे कालनेमि, रावण और राहु का भेद खुल गया था)

चौपाई "लाखि सुभेष जग बंचक जेऊ..." यह स्पष्ट करती है कि संसार में अनेक **वंचक (Fraudulent Entities)** आकर्षक रूप और बाह्य आडंबर के माध्यम से सम्मान भी प्राप्त कर लेते हैं, परंतु उनका **आंतरिक कपट (Intrinsic Deception)** अंततः उजागर हो ही जाता है।

रामचरितमानस में वर्णित कालनेमि प्रसंग भारतीय सांस्कृतिक आख्यानों में निहित गहन बौद्धिक संकेतों का एक विशिष्ट उदाहरण है। जब रावण ने हनुमान को उनके जीवनरक्षक मिशन से विचलित करने हेतु कालनेमि को भेजा, तब यह केवल पौराणिक संघर्ष नहीं था, बल्कि **रणनीतिक**

सूचना-हस्तक्षेप (Strategic Information Interference) का एक प्रारूप था। कालनेमि द्वारा साधु-वेश धारण कर मायावी आश्रम की रचना करना वस्तुतः एक सुविचारित **संज्ञानात्मक प्रपंच (Cognitive Manipulation Framework)** था, जिसमें बाह्य पवित्रता के माध्यम से आंतरिक दुराशय को छिपाया गया।

यह प्रसंग इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि किसी भी युग में युद्ध केवल भौतिक अस्त्र-शस्त्रों से नहीं, बल्कि **मनोवैज्ञानिक संरचना-नियंत्रण (Psychological Structuring of Perception)** से भी लड़ा जाता है। कालनेमि का साधु-वेश एक प्रकार का **विश्वसनीयता-आवरण (Credibility Masking Mechanism)** था। आधुनिक सामाजिक-मनोविज्ञान में इसे **प्राधिकार-पक्षपात (Authority Bias Exploitation)** कहा जाता है, जहाँ व्यक्ति बाह्य वेश या प्रतीकात्मक प्रतिष्ठा के आधार पर स्वतः विश्वास कर लेता है। यह वही सिद्धांत है जिस पर आज के **डिजिटल प्रतिरूपण (Cyber Impersonation Systems)** कार्य करते हैं नकली ईमेल, जाली वेबसाइट, या कृत्रिम पहचान का निर्माण कर लक्ष्य को भ्रमित किया जाता है।

कालनेमि द्वारा निर्मित आश्रम को केवल एक मायावी संरचना कहना पर्याप्त नहीं होगा; यह वस्तुतः एक **पर्यावरणीय अनुकरण-तंत्र (Environmental Simulation Architecture)** था। आधुनिक विज्ञान में इस प्रकार की संरचना को **आभासी वास्तविकता-निर्माण (Virtual Reality Construction)** या **सिमुलेटेड परिवेश (Simulated Environment Modeling)** कहा जाता है। जब कोई कृत्रिम परिवेश इतना यथार्थ प्रतीत हो कि व्यक्ति उसके भीतर सत्य और असत्य का भेद न कर सके, तब वह स्थिति **अतियथार्थता (Hyperreality Condition)** का रूप ले लेती है। कालनेमि का आश्रम इसी प्रकार की अतियथार्थ संरचना का सांस्कृतिक उदाहरण है।

आधुनिक कृत्रिम बुद्धिमत्ता-आधारित प्रतिकरूपण (**Artificial Intelligence Driven Replication Systems**), विशेषकर डीपफेक एल्गोरिद्मिक संरचनाएँ (**Deepfake Algorithmic Architectures**), इसी सिद्धांत पर कार्य करती हैं। इनमें वास्तविक व्यक्ति की छवि और स्वर का कृत्रिम निर्माण कर ऐसी डिजिटल सामग्री तैयार की जाती है जो वास्तविक प्रतीत होती है। यह प्रक्रिया **संज्ञानात्मक प्रमाणीकरण-विघटन (Cognitive Authentication Disruption)** उत्पन्न करती है अर्थात् मनुष्य की सत्य-पहचान क्षमता को बाधित कर देती है। कालनेमि ने भी साधु-वेश के माध्यम से हनुमान जी के निर्णय-तंत्र को अस्थायी रूप से भ्रमित करने का प्रयास किया, जो आधुनिक साइबर-प्रपंचों से तुलनीय है।

यह प्रसंग **सूचना-युद्ध (Information Warfare)** की अवधारणा को भी स्पष्ट करता है। सूचना-युद्ध का मूल उद्देश्य विरोधी की **निर्णय-प्रक्रिया-प्रणाली (Decision-Making Architecture)** को प्रभावित करना होता है। कालनेमि का लक्ष्य प्रत्यक्ष आक्रमण नहीं था, बल्कि **काल-विलंबन-रणनीति (Temporal Disruption Strategy)** के माध्यम से मिशन को बाधित करना था। आधुनिक साइबर आक्रमणों में भी अक्सर लक्ष्य प्रत्यक्ष विनाश नहीं, बल्कि प्रणाली को विलंबित करना, संसाधनों को विचलित करना या निर्णय को भ्रमित करना होता है।

यदि इस घटना को वैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाए, तो यह स्पष्ट होता है कि कालनेमि ने तीन स्तरों पर कार्य किया—पहला, **दृश्य-प्रमाण-निर्माण (Visual Evidence Fabrication)**; दूसरा, **विश्वास-संरचना-स्थापन (Trust Architecture Establishment)**; और तीसरा, **संज्ञानात्मक विचलन (Cognitive Diversion Mechanism)**। आधुनिक साइबर-सुरक्षा विज्ञान में इन तीनों को क्रमशः **स्पूफिंग सोशल इंजीनियरिंग**

(spoofing, social engineering) और भ्रामक रणनीति (misdirection tactics) के रूप में जाना जाता है।

परंतु इस प्रसंग का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष है छल का अनावरण। अंततः कालनेमि का भेद उद्घाटित होता है। यह उद्घाटन केवल शारीरिक शक्ति से नहीं, बल्कि **विवेकाधारित सत्यापन-प्रक्रिया (Rational Verification Process)** से संभव होता है। आधुनिक युग में इसे **डिजिटल फॉरेंसिक विश्लेषण (Digital Forensic Analytics)**, **बहु-स्तरीय प्रमाणीकरण-तंत्र (Multi-layered Authentication Systems)** तथा **ब्लॉकचेन-आधारित सत्यापन-प्रोटोकॉल (Blockchain Verification Protocols)** के माध्यम से समझा जा सकता है। अर्थात् प्रत्येक छल के साथ उसके उद्घाटन का तंत्र भी विकसित होता है।

दार्शनिक स्तर पर यह प्रसंग **आभास और तत्त्व (Appearance versus Ontological Reality)** के द्वंद्व को उद्घाटित करता है। बाह्य आडंबर और आंतरिक सत्य के बीच यह संघर्ष आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना प्राचीन काल में था। आधुनिक समाज में सोशल मीडिया, कृत्रिम छवि-निर्माण, और डिजिटल प्रभाव-रणनीतियाँ (Influence Engineering Mechanisms) इसी प्रकार के **संरचित मिथ्याकरण (Structured Misinformation Frameworks)** का निर्माण करती हैं।

इस प्रकार कालनेमि का प्रसंग केवल नैतिक शिक्षा नहीं, बल्कि यह संकेत देता है कि प्रत्येक युग में **भ्रम-निर्माण तंत्र (Systematic Illusion Engineering Systems)** सक्रिय रहते हैं। इनके प्रतिकार हेतु केवल आस्था पर्याप्त नहीं, बल्कि **आलोचनात्मक विवेक (Critical Analytical Cognition)** और **प्रमाण-आधारित परीक्षण-प्रक्रिया (Evidence-based Verification Mechanism)** अनिवार्य है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि कालनेमि की कथा आधुनिक विज्ञान के आलोक में एक सांस्कृतिक रूपक (Cultural Metaphor) के रूप में उभरती है, जो हमें यह सिखाती है कि आकर्षक आवरणों के पीछे छिपी वास्तविकता को पहचानने हेतु **संज्ञानात्मक सजगता (Cognitive Vigilance)** और **प्रमाणीकरण-आधारित बौद्धिक अनुशासन (Authentication-driven Intellectual Discipline)** आवश्यक है। सत्य का मार्ग केवल विश्वास से नहीं, बल्कि विवेकपूर्ण परीक्षण से सुरक्षित होता है।

11.15 “प्राचीन मिथक और आधुनिक तकनीक: मारीच का स्वर्ण-मृग और होलोग्राफिक/डीपफेक प्रोजेक्शन”

वाल्मीकि रामायण में मारीच के मायावी रूप का वर्णन इस प्रकार है:
(अरण्यकाण्ड 43.18-19)

काञ्चनपृष्ठो मणिमुक्ताभिरञ्जितः ।
विचित्ररूपः स मृगो नानारत्नविभूषितः ॥
दृष्ट्वा तं राघवः श्रीमान् सीतया सह विस्मितः ।
लक्ष्मणं चाब्रवीद्रामो मृगोऽयं नात्र संशयः ॥

(वह मृग स्वर्णिम पीठ वाला, मणि-मुक्ताओं से अलंकृत और अत्यंत विचित्र रूपधारी था। उसे देखकर श्रीराम और सीता दोनों आश्चर्यचकित हो गए।)

बाद में, जब राम ने बाण मारा, तब —

(अरण्यकाण्ड 44.30)

हा सीते लक्ष्मणेत्येवमुक्त्वा मारीचो रराव ह ।

(मारीच ने मरते समय “हा सीते! हा लक्ष्मण!” इस प्रकार पुकारा।)

वाल्मीकि रामायण में मारीच का मायावी रूप: एक आधुनिक वैज्ञानिक पुनर्पाठ

वाल्मीकि रामायण के अरण्यकाण्ड में वर्णित मारीच का स्वर्ण-मृग रूप भारतीय महाकाव्य परंपरा में केवल एक पौराणिक प्रसंग नहीं है, बल्कि यह धारणा-प्रबंधन (**Perception Management**), दृश्य-भ्रम अभियांत्रिकी (**Optical Illusion Engineering**) तथा संज्ञानात्मक प्रलोभन-तंत्र (**Cognitive Manipulation Mechanism**) का एक अत्यंत परिष्कृत उदाहरण प्रतीत होता है। जब श्लोक में “काञ्चनपृष्ठो मणिमुक्ताभिरञ्जितः” कहा जाता है, तो यह केवल सौंदर्य-वर्णन नहीं, बल्कि एक योजनाबद्ध दृश्य-प्रभाव संरचना (**Visual Impact Architecture**) का संकेत देता है। स्वर्णिम आभा, बहुरत्नाभूषण, और विचित्र रूपात्मक संरचना मिलकर एक ऐसा संवेदी-अधिभार (**Sensory Overload**) उत्पन्न करते हैं, जो मानव मस्तिष्क की त्वरित प्रतिक्रिया प्रणाली को सक्रिय कर देता है। आधुनिक तंत्रिका-विज्ञान (**Neuroscience**) के अनुसार जब कोई वस्तु अत्यधिक चमक, असामान्य रंग-संयोजन और गतिशीलता प्रदर्शित करती है, तो मस्तिष्क का डोपामिनिक रिवार्ड-सर्किट (**Dopaminergic Reward Circuit**) सक्रिय हो जाता है, जिससे आकर्षण-प्रवृत्ति (**Attraction Bias**) उत्पन्न होती है। यही कारण है कि सीता का उस मृग की ओर आकृष्ट होना एक स्वाभाविक संवेदी-प्रतिक्रिया (**Sensory Response**) के रूप में देखा जा सकता है।

यदि इस प्रसंग का पुनर्पाठ आधुनिक डिजिटल सिमुलेशन प्रौद्योगिकी (**Digital Simulation Technology**) के आलोक में किया जाए, तो मारीच का रूपांतरण एक प्रकार की होलोग्राफिक प्रक्षेपण प्रणाली (**Holographic Projection System**) अथवा रियल-टाइम मॉर्फिंग एल्गोरिद्म (**Real-Time Morphing Algorithm**) के समान प्रतीत

होता है। आज की **डीपफेक प्रौद्योगिकी (Deepfake Technology)** कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित **जनरेटिव एडवर्सरियल नेटवर्क (Generative Adversarial Networks – GANs)** के माध्यम से ऐसे **कृत्रिम प्रतिरूप (Artificial Replicas)** निर्मित करती है, जो वास्तविकता से लगभग अभेद्य होते हैं। मारीच का तत्काल रूप-परिवर्तन उसी प्रकार की **क्षणिक दृश्य-पुनर्संरचना (Instantaneous Visual Reconfiguration)** का संकेत देता है, जहाँ वास्तविक पहचान को छिपाकर एक आभासी आवरण प्रस्तुत किया जाता है। यह प्रक्रिया आधुनिक **ऑगमेंटेड रियलिटी (Augmented Reality)** और **वर्चुअल रियलिटी इंटरफेस (Virtual Reality Interface)** की अवधारणा से तुलनीय है, जहाँ वास्तविक और कृत्रिम तत्वों का सम्मिलन मानव धारणा को भ्रमित कर देता है।

मारीच के मरणोपरांत “हा सीते! हा लक्ष्मण!” की ध्वनि-उच्चारण को यदि वैज्ञानिक दृष्टि से विश्लेषित करें, तो यह **ध्वनि-संश्लेषण प्रौद्योगिकी (Voice Synthesis Technology)** तथा **ऑडियो मॉड्यूलेशन प्रणाली (Audio Modulation System)** की स्मृति कराता है। आज कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित **वॉयस क्लोनिंग (AI Voice Cloning)** किसी भी व्यक्ति की ध्वनि का अत्यंत सटीक अनुकरण कर सकती है। यह एक प्रकार का **ध्वनिक-भ्रम तंत्र (Acoustic Deception Mechanism)** है, जिसका उद्देश्य श्रोता की संचार-धारणा को बाधित करना है। राम की वाणी में लक्ष्मण को पुकारना एक सुनियोजित **संचार-विघटन रणनीति (Communication Disruption Strategy)** प्रतीत होती है, जिसका लक्ष्य सीता और लक्ष्मण के मध्य विश्वास-संरचना (Trust Structure) को विचलित करना था। आधुनिक सैन्य विज्ञान में इसे **मनोवैज्ञानिक युद्धनीति (Psychological Warfare Strategy)** के अंतर्गत रखा जाता है।

यह प्रसंग आधुनिक **इलेक्ट्रॉनिक युद्ध प्रणाली (Electronic Warfare Systems)** और **डिकॉय तंत्र (Decoy Systems)** से भी तुलनीय है। समकालीन सैन्य अभियानों में शत्रु को भ्रमित करने हेतु **कृत्रिम लक्ष्यों (Decoy Targets)** का उपयोग किया जाता है, ताकि वास्तविक आक्रमण किसी अन्य दिशा से संपन्न हो सके। मारीच का स्वर्ण-मृग रूप उसी प्रकार की एक **रणनीतिक ध्यान-भंग प्रणाली (Strategic Distraction Mechanism)** के रूप में देखा जा सकता है। यहाँ उद्देश्य प्रत्यक्ष युद्ध नहीं, बल्कि **निर्णय-क्षमता का विचलन (Decision Disorientation)** था। इस दृष्टि से यह घटना मानव **निर्णय-तंत्र (Decision-Making System)** पर बाह्य संवेदी प्रभावों के परिणामों का उत्कृष्ट उदाहरण है।

आधुनिक **संज्ञानात्मक मनोविज्ञान (Cognitive Psychology)** यह प्रतिपादित करता है कि जब मनुष्य अत्यधिक आकर्षक या असामान्य दृश्य के संपर्क में आता है, तो उसका **प्रीफ्रंटल कॉर्टेक्स (Prefrontal Cortex)** क्षणिक रूप से **भावनात्मक केंद्र (Amygdala)** के प्रभाव में आ जाता है। परिणामस्वरूप विवेकशील निर्णय-प्रक्रिया बाधित हो सकती है। मारीच का मायावी रूप इसी **संज्ञानात्मक विचलन (Cognitive Distortion)** को उत्पन्न करता है। यह केवल एक कथा नहीं, बल्कि एक गहन **मनोवैज्ञानिक-वैज्ञानिक रूपक (Psycho-Scientific Metaphor)** है, जो चेतावनी देता है कि बाह्य आभा के पीछे छिपी वास्तविकता का परीक्षण आवश्यक है।

डिजिटल युग में **क्लिकबेट एल्गोरिद्म (Clickbait Algorithms)**, **डिजिटल मैनिपुलेशन (Digital Manipulation)** और **एआई-जनित अवतार (AI-Generated Avatars)** मानव की संवेदी-प्रतिक्रिया प्रणाली को लक्षित करते हैं। सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म पर प्रदर्शित अत्यधिक चमकदार सामग्री उपयोगकर्ता के डोपामिन-चक्र को सक्रिय कर निर्णय-प्रवृत्ति को प्रभावित करती है। मारीच का स्वर्ण-मृग इसी प्रकार

के आभासी यथार्थ (**Simulated Reality**) का एक प्राचीन उदाहरण माना जा सकता है। यह हमें सावधान करता है कि तकनीकी रूप से निर्मित आकर्षण सदैव सत्य का प्रतिनिधित्व नहीं करता।

अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मारीच का मायावी रूप केवल पौराणिक कल्पना नहीं, बल्कि **धारणा-प्रबंधन (Perception Engineering)**, **संज्ञानात्मक प्रभाव-नियंत्रण (Cognitive Influence Control)** और **रणनीतिक मनोवैज्ञानिक अभियंत्रण (Strategic Psychological Engineering)** का एक आद्यरूप (Proto-Model) है। यह प्रसंग आधुनिक विज्ञान से संवाद स्थापित करता हुआ हमें यह सिखाता है कि सत्य की पहचान हेतु **आलोचनात्मक परीक्षण (Critical Examination)** और **वैज्ञानिक विवेक (Scientific Rationality)** अनिवार्य हैं।

स्वर्णिम आभा से युक्त प्रत्येक दृश्य वास्तविकता का द्योतक नहीं होता; कभी-कभी वह केवल एक सुनियोजित **मायावी सिमुलेशन (Engineered Simulation)** भी हो सकता है।

अध्याय 12

“महाभारत: प्राचीन विज्ञान और ऊर्जा प्रौद्योगिकी का महासागर”

12.1 महाभारत के खगोलीय संदर्भों का आधुनिक सॉफ्टवेयर द्वारा परीक्षण

इस अध्याय में हम श्री कृष्ण के वैज्ञानिक प्रमाणों (Scientific Evidences) तथा महाभारत की खगोलीय काल-निर्धारण प्रक्रिया (Astronomical Dating) पर विचार करेंगे। वर्तमान समय में एक विचित्र स्थिति दिखाई देती है कि केवल नास्तिक ही नहीं, बल्कि अनेक बार धर्म के समर्थक भी अपर्याप्त ज्ञान (Lack of Knowledge) के कारण भ्रांतिपूर्ण व्याख्याएँ (Misinterpretations) प्रस्तुत कर देते हैं। बाद में यही अपूर्ण या विकृत तर्क कुछ तथाकथित बौद्धिक (So-called Intellectuals) व्यक्तियों द्वारा व्यापक रूप से प्रचारित किए जाने लगते हैं। किंतु अब आवश्यकता इस बात की है कि वास्तविक शोधकर्ताओं (Real Researchers) और प्रामाणिक विद्वानों (Authentic Scholars) द्वारा किए गए अनुसंधान (Research) को अधिकाधिक लोगों तक पहुँचाया जाए। जब सामान्य लोगों से रामायण और महाभारत के विषय में पूछा जाता है, तो प्रायः उनके कालक्रम (Chronology) को लेकर संशय (Doubt) दिखाई देता है कि ये घटनाएँ वास्तव में कब घटित हुई थीं। यद्यपि अनेक विद्वानों ने इन ग्रंथों की तिथि-निर्धारण प्रक्रिया (Dating Process) पर कार्य किया है, परंतु इसमें अपेक्षित वैज्ञानिक दृष्टिकोण (Scientific Temperament) का अभाव अक्सर दिखाई देता है। इसका एक प्रमुख कारण यह है कि कई शोधकर्ताओं को संस्कृत भाषा (Sanskrit Language) का पर्याप्त ज्ञान नहीं होता, जबकि अन्य

लोगों को **ज्योतिष की तकनीकी शब्दावली (Technical Terminology)** और **गणनात्मक पद्धति (Computational Method)** का समुचित बोध नहीं होता। **रामायण** और **महाभारत** जैसे ग्रंथों में अनेक **खगोलीय घटनाओं (Astronomical Events)** का उल्लेख मिलता है जैसे **तिथि (Lunar Date)**, **मास (Month)**, **नक्षत्र (Lunar Constellation)** तथा **ग्रहों की स्थिति (Planetary Positions)**। इन संकेतों को समझने के लिए **संस्कृत (Sanskrit)** और **ज्योतिष (Jyotisha)** दोनों का **गहन अध्ययन (In-depth Study)** आवश्यक है। दुर्भाग्यवश आज **“ज्योतिष” (Astrology/Astronomical Tradition)** शब्द सुनते ही अनेक लोग उसे **अंधविश्वास (Superstition)** से जोड़ देते हैं, जिसके कारण इस विषय की **वैज्ञानिक संभावनाओं (Scientific Possibilities)** पर गंभीर अध्ययन कम हो जाता है। परिणामस्वरूप एक विचित्र स्थिति उत्पन्न हो जाती है जिन लोगों के पास **वैज्ञानिक दृष्टि (Scientific Perspective)** होती है, उन्हें संस्कृत और ज्योतिष का ज्ञान नहीं होता; और जिनके पास इनका ज्ञान होता है, वे **आधुनिक वैज्ञानिक उपकरणों (Modern Scientific Tools)** का उपयोग कम करते हैं। इसी दिशा में कुछ विद्वानों ने उल्लेखनीय प्रयास भी किए हैं।

अनुसंधानकर्ताओं ने प्राचीन **खगोलीय गणनाओं (Astronomical Calculations)** के आधार पर महाभारत के काल-निर्धारण पर अध्ययन प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार आधुनिक **खगोलीय सॉफ्टवेयर (Astronomical Software)** की सहायता से ग्रह-नक्षत्रों की स्थिति का आकलन किया जा सकता है, किंतु अतीत में अधिक पीछे जाने पर **त्रुटि की संभावना (Probability of Error)** भी बढ़ जाती है। महाभारत में वर्णित तिथि, नक्षत्र और अन्य **खगोलीय संकेत (Astronomical Markers)** कई बार परस्पर संगत दिखाई देते हैं, लेकिन कुछ विद्वानों की व्याख्याओं में **असंगति (Inconsistency)** भी देखी गई है। इसलिए

प्राचीन ग्रंथों की **ऐतिहासिकता (Historicity)** को समझने के लिए संस्कृत पाठों की **प्रामाणिक व्याख्या (Authentic Interpretation)** तथा आधुनिक वैज्ञानिक विधियों का संतुलित उपयोग आवश्यक माना जाता है। महाभारत के संदर्भ में यह विषय विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि इस ग्रंथ में अनेक **खगोलीय संकेत (Astronomical Markers)** विभिन्न प्रसंगों में वर्णित हैं। इन संकेतों जैसे तिथि, नक्षत्र, मास तथा घटनाओं के मध्य वर्णित समयांतराल (**Time Interval**) को आधुनिक सॉफ्टवेयर में मिलाकर देखा जाए तो कई घटनाएँ आश्चर्यजनक रूप से परस्पर संगत (**Consistent**) प्रतीत होती हैं। अतः यह आवश्यक है कि लोग स्वयं **जागरूक (Aware)** बनें और प्रामाणिक स्रोतों का अध्ययन करें, जिससे किसी भी विषय की **विकृत व्याख्या (Distorted Interpretation)** से बचा जा सके। इस अध्याय में हम पढ़ेंगे कि भगवान श्री कृष्ण के जन्म से संबंधित विभिन्न विवरण **हरिवंश पुराण (Harivamsha Purana)**, **विष्णु पुराण (Vishnu Purana)**, **वायु पुराण (Vayu Purana)** तथा अन्य पुराणों में किस प्रकार वर्णित हैं। साथ ही यह भी समझने का प्रयास करेंगे कि **कलियुग का प्रारंभ (Beginning of Kali Yuga)** कब माना जाता है और उसके संबंध में उपलब्ध **पुरातात्विक प्रमाण (Archaeological Evidence)** जैसे **शिलालेख (Inscriptions)** और **प्रस्तर-लेख (Stone Records)** क्या संकेत देते हैं।

परंपरागत गणना के अनुसार **कलियुग का प्रारंभ (Beginning of Kali Yuga) 18 फरवरी 3102 ईसा पूर्व** माना जाता है। इसी काल-निर्धारण के आधार पर यह भी कहा जाता है कि श्री कृष्ण का जन्म **कलियुग के प्रारंभ से लगभग 125 वर्ष पूर्व (125 Years Before Kali Yuga)** हुआ था। इसके अतिरिक्त उनके **देह-त्याग (Departure from Earth)** का स्थान भी परंपरा में स्पष्ट रूप से बताया गया है, जो आज प्रभास पाटन, गुजरात में स्थित है। वहीं समीप **भालका तीर्थ (Bhalka Tirtha)** नामक

स्थान भी है, जहाँ परंपरा के अनुसार वह घटना घटित हुई थी जिसके पश्चात उन्होंने पृथ्वी-लीला का समापन किया।

12.2 भगवान श्री कृष्ण का दिव्य जन्म और खगोलीय संकेत

ब्रह्म पुराण (Brahma Purana) में उल्लेख मिलता है कि भगवान श्री कृष्ण का जन्म **कृष्ण पक्ष अष्टमी (Krishna Paksha Ashtami)** की रात्रि में हुआ था।

श्लोक:

अथ भाद्रपदे मासि कृष्णाष्टम्यां कलौ युगे ।

अर्धरात्रे समभ्याप्ते देवकीगर्भसम्भवः ॥

अर्थ: भाद्रपद मास में **कृष्ण पक्ष की अष्टमी (Krishna Paksha Ashtami)** को, **अर्धरात्रि (Midnight)** के समय भगवान श्रीकृष्ण का जन्म **देवकी (Devaki)** के गर्भ से हुआ।

इसी प्रकार **भविष्य पुराण (Bhavishya Purana)** में भी श्रीकृष्ण जन्म के समय सूर्य और नक्षत्रों का वर्णन करते हुए प्रचलित श्लोक इस प्रकार उद्धृत किया जाता है

श्लोक:

सिंहे सूर्ये गगने मेघसमुतेजसे वर्षति च ।

भाद्रपदे कृष्णपक्षे अष्टमी तिथौ जगतः सुतः ॥

अर्थ: उस समय **सूर्य सिंह राशि (Leo Sign)** में स्थित था, आकाश में **मेघ (Clouds)** उपस्थित थे और वर्षा हो रही थी। यह घटना **भाद्रपद मास (Bhadrapada Month)** के **कृष्ण पक्ष (Dark Fortnight)** की **अष्टमी तिथि (Eighth Lunar Day)** में घटित हुई, जब भगवान श्रीकृष्ण का जन्म हुआ।

इसी प्रकार **देवी पुराण (Devi Purana)** में भी कहा गया है कि उनका जन्म **अर्धरात्रि (Midnight)** में हुआ और उस समय **रोहिणी नक्षत्र (Rohini Constellation)** का योग था।

श्लोकः

सिंहराशिगते सूर्ये गगने जलदाकुले ।
मासि भाद्रपदेऽष्टम्यां कृष्णपक्षेऽर्धरात्रके ॥
रोहिण्यां चन्द्रसंयुक्ते देवक्यां समजायत ॥

अर्थः जब सूर्य सिंह राशि (Leo Sign) में स्थित था और आकाश में मेघ छाए हुए थे, तब भाद्रपद मास (Bhadrapada Month) के कृष्ण पक्ष (Dark Fortnight) की अष्टमी तिथि (Eighth Lunar Day) को अर्धरात्रि (Midnight) के समय रोहिणी नक्षत्र (Rohini Constellation) में चंद्रमा के साथ भगवान श्रीकृष्ण का जन्म देवकी के गर्भ से हुआ।

इसी प्रकार विष्णु पुराण (Vishnu Purana) के पाँचवें भाग (Fifth Part) में भी श्रीकृष्ण के जन्म के समय खगोलीय संकेतों का वर्णन मिलता है। प्रचलित रूप से उद्धृत श्लोक इस प्रकार है

श्लोकः

भाद्रपदे मासि कृष्णपक्षे अष्टम्यां समायते ।
रोहिण्यां चन्द्रसंयुक्ते देवक्यां समजायत ॥

अर्थः भाद्रपद मास (Bhadrapada Month) के कृष्ण पक्ष (Dark Fortnight) की अष्टमी तिथि (Eighth Lunar Day) में, रोहिणी नक्षत्र (Rohini Constellation) में चंद्रमा के योग के समय देवकी (Devaki) के गर्भ से भगवान श्रीकृष्ण (Krishna) का जन्म हुआ।

अब यदि भगवान श्री कृष्ण के जन्म की खगोलीय कुंडली (Astronomical Chart) को देखा जाए, तो उसमें ग्रहों की जो स्थिति प्राप्त होती है वह पुराणों में वर्णित संकेतों से काफी हद तक मेल खाती दिखाई देती है। उदाहरण के लिए कुंडली में सूर्य सिंह राशि (Leo Sign) में स्थित दिखाई देता है, जबकि चंद्रमा वृषभ राशि (Taurus Sign) में स्थित है और रोहिणी नक्षत्र (Rohini Constellation) में संचरित हो

रहा है। चूँकि लग्न चंद्रमा से संबद्ध है, इसलिए इसे **चंद्र लग्न (Lunar Ascendant)** की स्थिति भी कहा जाता है। यह व्यवस्था उन विवरणों के साथ **संगत (Consistent)** प्रतीत होती है जो विभिन्न पुराणों में वर्णित हैं जैसे **भाद्रपद मास (Bhadrapada Month)**, **कृष्ण पक्ष अष्टमी (Krishna Paksha Ashtami)**, **अर्धरात्रि (Midnight)** तथा रोहिणी नक्षत्र का योग।

यहाँ एक महत्वपूर्ण **खगोलीय परिवर्तन (Astronomical Shift)** का उल्लेख भी आवश्यक है। वर्तमान पंचांग के अनुसार भाद्रपद मास सामान्यतः अगस्त-सितंबर में पड़ता है, किंतु लगभग पाँच हजार वर्ष पूर्व यह समय जुलाई के आसपास आता था। इसका कारण **अयनांशीय परिवर्तन (Precessional Shift)** है, जो पृथ्वी की धुरी के धीमे झुकाव परिवर्तन से संबंधित है। इसी प्रक्रिया के कारण समय के साथ नक्षत्रों और संक्रांतियों की स्थिति में क्रमिक परिवर्तन होता रहता है। सामान्यतः लगभग **70-72 वर्षों (70-72 Years)** में लगभग एक दिन का अंतर उत्पन्न हो जाता है, जिसके परिणामस्वरूप हजारों वर्षों में महीनों के स्तर तक का अंतर दिखाई देने लगता है। इसी कारण सौफ़्टवेयर द्वारा प्राप्त ग्रह-स्थितियाँ उन परंपरागत विवरणों के साथ काफी हद तक **संगत (Consistent)** दिखाई देती हैं, जिनका उल्लेख **विष्णु पुराण (Vishnu Purana)**, **भागवत महापुराण (Bhagavata Mahapurana)** और **महाभारत (Mahabharata)** जैसे ग्रंथों में मिलता है।

12.2.1 महाभारत युद्ध और श्रीकृष्ण के पृथ्वी-प्रयाण का खगोलीय तथा कालानुक्रमिक विश्लेषण

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि श्रीकृष्ण का जन्मकाल, **कलियुग का प्रारम्भ (Beginning of Kali Yuga)** तथा उनके **पृथ्वी-प्रयाण (Departure from Earth)** का समय खगोलीय गणना के माध्यम से आंशिक रूप से **सत्यापित (Astronomically Verifiable)** किया जा

सकता है। अब यदि हम महाभारत काल की ओर बढ़ें, तो महाभारत के **मौसल पर्व (Mausala Parva)** में एक महत्वपूर्ण **खगोलीय संकेत (Astronomical Marker)** का उल्लेख मिलता है। उससे संबंधित प्रचलित श्लोक इस प्रकार दिया जाता है

श्लोक:

**चतुर्दशीं पञ्चदशीं भूतपूर्वा च षोडशीम् ।
इमां तु नाभिजानामि अमावास्यां त्रयोदशीम् ॥**

अर्थ: मैंने पहले **चतुर्दशी (Fourteenth Lunar Day)**, **पञ्चदशी (Fifteenth Lunar Day)** और अन्य तिथियाँ देखी हैं, किंतु इस प्रकार की **अमावस्या (New Moon)** जो **त्रयोदशी (Thirteenth Lunar Day)** के साथ ही आ रही हो मैंने पहले कभी नहीं देखी।

वहाँ वर्णित है कि जब श्रीकृष्ण ने अपने जीवन के अंतिम समय में प्रभास क्षेत्र जाने का निर्णय लिया, तब उन्होंने एक विशेष घटना का उल्लेख किया। उन्होंने कहा कि उस समय एक अत्यंत अशुभ **खगोलीय स्थिति (Astronomical Configuration)** उत्पन्न हुई है त्रयोदशी के बाद सीधे अमावस्या का आ जाना, अर्थात् **चतुर्दशी तिथि का लोप (Loss of Lunar Day/Tithi Kshaya)**। तिथि का यह लोप एक दुर्लभ **खगोलीय घटना (Rare Astronomical Phenomenon)** है, जिसमें चंद्रमा की गति और सूर्य की स्थिति के कारण पंचांग में एक तिथि लुप्त हो जाती है। श्रीकृष्ण ने यह भी कहा कि ऐसी ही स्थिति महाभारत युद्ध के प्रारम्भ के समय भी हुई थी। इसके अतिरिक्त उन्होंने संकेत दिया कि महाभारत युद्ध और उनके जीवन के अंतिम समय के बीच लगभग **36 वर्ष का अंतर (36-Year Interval)** था।

जब इन दोनों संकेतों **तिथि का लोप (Tithi Kshaya)** और **36 वर्षों का अंतर (36-Year Interval)** को आधुनिक **खगोलीय सॉफ्टवेयर**

(Astronomical Software) में जाँचने का प्रयास किया गया, तो कुछ रोचक परिणाम सामने आए। उदाहरण के लिए लगभग **3102 ईसा पूर्व (3102 BCE)** के आसपास की तिथियों का अध्ययन करने पर लगभग **18 जनवरी 3102 BCE** के आसपास अमावस्या के निकट तिथि-क्षय जैसी स्थिति दिखाई देती है। यह वही काल माना जाता है जिसके कुछ समय बाद श्रीकृष्ण का **पृथ्वी-प्रस्थान (Departure from Earth)** हुआ और **कलियुग का प्रारम्भ (Beginning of Kali Yuga)** माना गया। इसी प्रकार यदि इससे लगभग **36 वर्ष पूर्व (36 Years Earlier)** की गणना की जाए, तो लगभग **3138 ईसा पूर्व (3138 BCE)** के आसपास ऐसी ही तिथि-स्थिति प्राप्त होती है।

इस प्रकार दो स्वतंत्र खगोलीय संकेत **तिथि का लोप (Tithi Kshaya)** और **36 वर्षों का अंतर (36-Year Interval)** जब खगोलीय सॉफ्टवेयर में परखे जाते हैं, तो वे एक-दूसरे के साथ काफी हद तक **संगत (Consistent)** दिखाई देते हैं। यही कारण है कि कुछ विद्वान यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि महाभारत युद्ध और श्रीकृष्ण के जीवन की अंतिम घटनाओं के **काल-निर्धारण (Chronological Dating)** में खगोलीय गणनाएँ महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं।

कुछ शोधकर्ताओं ने **महाभारत युद्ध की संभावित तिथि (Probable Date of Mahabharata War)** के रूप में लगभग **19 अक्टूबर 3138 BCE** को परखा है और इसके समर्थन में विभिन्न **सत्यापन परीक्षण (Verification Tests)** प्रस्तुत किए हैं। **पहला परीक्षण** उस घटना से संबंधित है जिसका उल्लेख महाभारत के **मौसल पर्व (Mausala Parva)** में मिलता है, जहाँ भगवान श्री कृष्ण कहते हैं कि जिस प्रकार महाभारत युद्ध के समय **तिथि-क्षय (Loss of Lunar Day/Tithi Kshaya)** हुआ था, उसी प्रकार की **खगोलीय स्थिति (Astronomical Configuration)** उनके जीवन के अंतिम समय से कुछ पहले भी उत्पन्न

हुई थी। जब इस कथन को आधुनिक **खगोलीय सॉफ्टवेयर (Astronomical Software)** में जाँचा गया, तो यह पाया गया कि महाभारत युद्ध के समय और श्रीकृष्ण के **पृथ्वी-प्रयाण (Departure from Earth)** से पहले, दोनों ही अवसरों पर तिथि-क्षय जैसी स्थिति वास्तव में दिखाई देती है। इस प्रकार यह पहला **संकेत (Indicator)** उस प्रस्तावित तिथि के साथ काफी हद तक **संगत (Consistent)** प्रतीत होता है।

12.2.2 श्रीकृष्ण का शांति-दूत बनकर कौरवों की सभा में आगमन

दूसरा परीक्षण उस प्रसंग से संबंधित है जब श्रीकृष्ण शांति स्थापित करने के उद्देश्य से कौरवों की **सभा (Kaurava Court)** में जाते हैं, जिसका वर्णन महाभारत के **उद्योग पर्व (Udyoga Parva)** में मिलता है। वहाँ एक श्लोक में **कार्तिक मास (Kārtika Month)** का उल्लेख किया गया है और साथ ही **रेवती नक्षत्र (Revati Constellation)** का भी संकेत मिलता है। उस संदर्भ में प्रचलित रूप से उद्धृत श्लोक इस प्रकार दिया जाता है

श्लोक:

कार्तिके मासि सम्प्राप्ते रेवत्यां नक्षत्रसंयुते ।

जगाम कौरवान् कृष्णः शान्त्यर्थं भरतर्षभ ॥

अर्थ: कार्तिक मास (Kārtika Month) में, जब रेवती नक्षत्र (Revati Constellation) का योग था, तब श्रीकृष्ण शांति स्थापित करने के उद्देश्य से कौरवों की सभा में गए।

ग्रंथ में यह भी कहा गया है कि यह समय **शरद ऋतु का अंत (End of Autumn)** था और वर्षा ऋतु के बाद आकाश स्वच्छ हो चुका था अर्थात् सूर्य निर्मल दिखाई दे रहा था और बादल हट चुके थे।

जब इन विवरणों को आधुनिक **खगोलीय सॉफ्टवेयर (Astronomical Software)** में मिलाया गया, तो लगभग **1 अक्टूबर 3138 BCE** के आसपास ऐसा संयोजन दिखाई देता है, जो इस वर्णन से मेल खाता है। इसके लगभग अठारह दिन बाद **19 अक्टूबर 3138 BCE** को **अमावस्या (New Moon)** आती है, जिसे कुछ शोधकर्ता महाभारत युद्ध के आरम्भ का संभावित दिन मानते हैं।

इसके बाद एक अन्य संकेत **पुष्य नक्षत्र (Pushya Constellation)** से जुड़ा है। **उद्योग पर्व (Udyoga Parva)** में यह उल्लेख मिलता है कि जब श्रीकृष्ण ने **धृतराष्ट्र (Dhritarashtra)** को चेतावनी दी कि दुर्योधन युद्ध के लिए तैयार हो चुका है, तब उस दिन पुष्य नक्षत्र था। उससे संबंधित प्रचलित रूप से उद्धृत श्लोक इस प्रकार दिया जाता है

श्लोक:

अद्य पुष्येण नक्षत्रे प्रयातोऽस्मि नराधिप ।

दुर्योधनः समारब्धो युद्धाय भरतर्षभ ॥

अर्थ: हे राजन्! आज **पुष्य नक्षत्र (Pushya Constellation)** के योग में मैं प्रस्थान कर रहा हूँ, क्योंकि **दुर्योधन** युद्ध के लिए पूर्ण रूप से तैयार हो चुका है।

जब इस विवरण को भी सॉफ्टवेयर में जाँचा गया, तो लगभग **8 अक्टूबर 3138 BCE** के आसपास **कृष्ण पक्ष चतुर्थी (Krishna Paksha Chaturthi)** के दिन पुष्य नक्षत्र का योग दिखाई देता है।

इस प्रकार घटनाओं का एक क्रम बनता है पहले **कार्तिक मास (Kārtika Month)** में शांति-दूत के रूप में श्रीकृष्ण का आगमन हुआ, फिर कुछ दिनों बाद **पुष्य नक्षत्र (Pushya Constellation)** का प्रसंग आया, और अंततः **अमावस्या (New Moon)** के दिन युद्ध प्रारम्भ हुआ।

एक और महत्वपूर्ण संकेत उस संवाद से प्राप्त होता है जिसमें श्रीकृष्ण कर्ण (Karna) से युद्ध से पूर्व वार्ता करते हैं। उस प्रसंग में “सौम्य मास (Saumya Month)” का उल्लेख मिलता है, जिसे कई विद्वान मार्गशीर्ष मास (Mārgaśīrṣa Month) के लक्षणों से जोड़ते हैं। वर्णन में कहा गया है कि उस समय वृक्षों पर फल लगे हुए थे, औषधियाँ उपलब्ध थीं, कीचड़ नहीं था, न अत्यधिक गर्मी थी और न ही अत्यधिक शीत अर्थात् यह ऋतु परिवर्तन का संतुलित काल (Seasonal Transition Period) था। यह विवरण मार्गशीर्ष के मौसम के साथ संगत (Consistent) माना जाता है।

वहाँ ऋतु और मास के संकेत देते हुए एक श्लोक में इस प्रकार का वर्णन मिलता है

श्लोकः

**फलवन्तश्च वृक्षाश्च औषधयः सुफलास्तथा ।
नात्युष्णं नातिशीतं च सौम्यो मासः प्रवर्तते ॥**

अर्थ: उस समय वृक्षों पर फल लगे हुए थे, औषधियाँ प्रचुर थीं, न अत्यधिक गर्मी थी और न अत्यधिक शीत। यह सौम्य मास (Saumya Month) का समय था, जिसे कई विद्वान मार्गशीर्ष मास (Mārgaśīrṣa Month) के लक्षणों के साथ संगत (Consistent) मानते हैं अर्थात् ऋतु परिवर्तन का संतुलित काल।

इसी प्रसंग में श्रीकृष्ण कर्ण से कहते हैं कि “आज से सातवें दिन अमावस्या (New Moon) होगी और उसी दिन युद्ध आरम्भ होगा।” साथ ही वे एक संकेत देते हैं “तामसक देवता (Tamaska Devata)”। कुछ विद्वान इसे उस नक्षत्र के देवता के रूप में समझते हैं जो उस दिन उपस्थित होगा। “शक्र (Shakra)”, अर्थात् इन्द्र (Indra) जिस नक्षत्र के

देवता माने जाते हैं, वह **ज्येष्ठा नक्षत्र (Jyeshtha Constellation)** है। प्रचलित रूप से उद्धृत श्लोक इस प्रकार दिया जाता है

श्लोक:

सप्तमेऽहनि संप्राप्ते अमावास्या भविष्यति ।
तदा युद्धं समारब्धं तामसकस्य देवता ॥
शक्रस्य देवता यत्र ज्येष्ठा नक्षत्रमुच्यते ॥

अर्थ: आज से सातवें दिन (Seventh Day) अमावस्या (New Moon) होगी और उसी दिन युद्ध का आरम्भ होगा। उस समय जिस नक्षत्र (Constellation) का प्रभाव होगा, उसके देवता शक्र (Shakra) अर्थात् इन्द्र (Indra) माने जाते हैं, और वह ज्येष्ठा नक्षत्र (Jyeshtha Constellation) है।

जब इस संकेत को खगोलीय सॉफ्टवेयर (Astronomical Software) में परखा गया, तो पाया गया कि उस प्रस्तावित अमावस्या के दिन वास्तव में ज्येष्ठा नक्षत्र का योग बनता है।

इसके अतिरिक्त महाभारत में यह भी वर्णित है कि युद्ध 18 दिनों (18 Days) तक चला। यदि 19 अक्टूबर 3138 BCE से 18 दिन आगे गिने जाएँ, तो लगभग 5 नवंबर 3138 BCE के आसपास युद्ध की समाप्ति का समय प्राप्त होता है। इस प्रकार विभिन्न खगोलीय संकेतों (Astronomical Indicators) और ग्रंथों के वर्णनों को मिलाकर देखा जाए, तो यह काल-क्रम एक हद तक परस्पर संगत (Consistent) प्रतीत होता है।

12.2.3 भीम और दुर्योधन के बीच महाभारत का गदा-युद्ध

महाभारत के शल्य पर्व (Shalya Parva) में वह प्रसंग आता है जब भीम (Bhima) और दुर्योधन (Duryodhana) के बीच गदा-युद्ध (Mace

Duel) होने वाला होता है और उसी समय **बलराम (Balarama)** वहाँ पहुँचते हैं। उस संदर्भ में प्रचलित रूप से उद्धृत श्लोक इस प्रकार दिया जाता है

श्लोक:

द्विचत्वारिंशदहानि यात्रायां मे गतानि वै ।

अद्य द्रष्टुमिहायातो गदायुद्धं वृकोदर ॥

अर्थ: बलराम कहते हैं “मेरी यात्रा को **बयालीस दिन (42 Days)** बीत चुके हैं। आज मैं यहाँ **वृकोदर (भीम)** और **दुर्योधन** के बीच होने वाले **गदा-युद्ध** को देखने के लिए आया हूँ।”

जब **5 नवंबर 3138 BCE** से 42 दिन पीछे की गणना की जाती है, तो लगभग **25 सितंबर 3138 BCE** की तिथि प्राप्त होती है, जो ग्रंथ में वर्णित **नक्षत्र-संकेतों (Astronomical Indicators)** के साथ संगत प्रतीत होती है।

भीष्म पितामह (Bhishma) के देहत्याग (Passing Away)

अंततः एक और महत्वपूर्ण परीक्षण **भीष्म पितामह (Bhishma)** के **देहत्याग (Passing Away)** से संबंधित है। **महाभारत (Mahabharata)** के प्रसंग में जब **भीष्म पितामह (Bhishma)** का देहत्याग होता है और युद्ध के समाप्ति के बाद पाण्डव उनसे मिलने जाते हैं, तब सूर्य **उत्तरायण (Sun's Northward Movement)** में प्रवेश कर चुका होता है। इस प्रसंग से संबंधित प्रचलित श्लोक इस प्रकार है

श्लोकः

**युद्धान्ते पञ्चाशत्परात्राणि यदा गतानि ।
पाण्डवान्भीष्मं प्राप्तवन्तः उत्तरायणं प्राप्य च ॥**

अर्थ: युद्ध के समाप्त होने के लगभग **पचास रात्रियाँ (50 Nights)** बीतने के बाद, **पाण्डव** भीष्म पितामह से मिलने गए। उस समय सूर्य **उत्तरायण (Sun's Northward Movement)** में प्रवेश कर चुका था।

यदि युद्ध की समाप्ति **5 नवंबर 3138 BCE** के आसपास मानी जाए, तो लगभग **25 दिसंबर** के आसपास 50 रात्रियों की गणना पूर्ण होती है। प्राचीन काल में **उत्तरायण (Uttarayana)** की तिथि आज की तुलना में भिन्न मानी जाती थी, इसलिए इस समय-सीमा को भी उस वर्णन के साथ जोड़ा जाता है।

इस प्रकार महाभारत में वर्णित अनेक **खगोलीय संकेत (Astronomical Markers)** जैसे **तिथि-क्षय (Tithi Kshaya)**, विशिष्ट **नक्षत्र (Constellations)**, **अमावस्या (New Moon)**, ऋतु-वर्णन, युद्ध की अवधि और **उत्तरायण (Uttarayana)** को जब आधुनिक **खगोलीय सॉफ्टवेयर (Astronomical Software)** के माध्यम से परखा जाता है, तो उनमें से कई संकेत लगभग उसी **कालक्रम (Chronological Framework)** की ओर संकेत करते हैं जिसे कुछ शोधकर्ता महाभारत युद्ध की संभावित तिथि मानते हैं।

वहीं **महाभारत (Mahabharata)** में उस प्रसंग का वर्णन मिलता है जब **श्रीकृष्ण (Krishna)** का जन्म **कंस-वध (Kansa's Slaying)** के उद्देश्य से मथुरा में हुआ और यह **द्वापर युग (Dvapara Yuga)** और **कलियुग (Kali Yuga)** के **संधिकाल (Transitional Period)** में हुआ। प्रचलित श्लोक इस प्रकार है

श्लोकः

द्वापरे युगे प्राप्ते कंसवधार्थं मथुरायां ।
वसुदेवगृहे जातो नृपतिपुत्रो हरिः ॥

अर्थःद्वापर युग (Dvapara Yuga) में कंस-वध (Kansa's Slaying) के उद्देश्य से मथुरा (Mathura) में वसुदेव (Vasudeva) के घर भगवान हरि / श्रीकृष्ण (Krishna) का जन्म हुआ।

इन सभी स्रोतों से कुछ प्रमुख खगोलीय संकेत (Astronomical Indicators) स्पष्ट होते हैं जैसे रोहिणी नक्षत्र (Rohini Constellation), वृषभ राशि में चंद्रमा (Moon in Taurus), भाद्रपद मास की अष्टमी तिथि (Eighth Lunar Day of Bhadrapada) तथा अर्धरात्रि का समय (Midnight)।

12.2.4 भगवान श्री कृष्ण का पृथ्वी पर निवास काल

अब प्रश्न यह उठता है कि भगवान श्री कृष्ण इस पृथ्वी पर कितने समय तक रहे। इस विषय में ब्रह्म पुराण (Brahma Purana) में एक श्लोक मिलता है जिसमें “पंचशताधिकं वर्षम् (Panchashatadhikam Varsham)” का उल्लेख है।

Brahma Purana में श्रीकृष्ण के पृथ्वी पर निवास काल के संदर्भ में प्रचलित श्लोक इस प्रकार उद्धृत किया जाता है

श्लोकः

पंचशताधिकं वर्षाणि जगत्प्रेऽस्मिन् ततोऽवसीद हि ।
वासुदेवसुतः कृष्णः पृथिव्यां जीवितो विभूषितः ॥

अर्थःभगवान वसुदेवसुतः श्रीकृष्ण (Krishna, Son of Vasudeva) ने पृथ्वी पर लगभग पाँच सौ अधिक वर्ष (≈125 Years/ Panchashatadhikam Varsham) तक जीवन व्यतीत किया।

यही बात **भागवत महापुराण (Bhagavata Mahapurana)** में भी मिलती है, जहाँ कहा गया है कि उन्होंने “**शतं पंच च शरदः (Shatam Pancha Cha Sharadah)**”, अर्थात् लगभग **125 शरद ऋतुओं (125 Autumns)** तक पृथ्वी पर निवास किया।

श्लोकः

शतं पञ्च च शरदः कृष्णः पृथिवीमध्ये जीवितः ।

वासुदेवसुतो भगवान् यथावत्संवृत्तः सन् ॥

अर्थःभगवान् **कृष्ण (Krishna)**, **वासुदेवसुत (Son of Vasudeva)**, ने पृथ्वी पर लगभग **125 शरद ऋतुओं (125 Autumns)** तक निवास किया।

12.2.5 श्रीकृष्ण के प्रस्थान और कलियुग का आरम्भ

इसके बाद यह प्रश्न आता है कि जब श्रीकृष्ण ने अपनी **पृथ्वी-लीला का समापन (Departure from Earth)** किया, तब कौन-सा युग प्रारम्भ हुआ। अनेक पुराणों में यह उल्लेख मिलता है कि जब श्रीकृष्ण ने **देह-त्याग (Passing Away)** किया, उसी समय **कलियुग का आरम्भ (Beginning of Kali Yuga)** हुआ। इस प्रकार तीन महत्वपूर्ण तथ्य सामने आते हैं पहला, श्रीकृष्ण का जन्म **द्वापर युग (Dvapara Yuga)** और **कलियुग के संधिकाल (Transitional Period)** में हुआ, दूसरा, उन्होंने लगभग **125 वर्ष (125 Years)** तक पृथ्वी पर जीवन व्यतीत किया और तीसरा, उनके प्रस्थान के साथ ही **कलियुग का प्रारम्भ (Beginning of Kali Yuga)** माना जाता है।

कलियुग के प्रारम्भ के विषय में प्राचीन खगोलविदों ने भी उल्लेख किया है। उदाहरण के लिए महान गणितज्ञ और ज्योतिषाचार्य **Aryabhata** ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ **Aryabhatiya** के **कालक्रिया पाद (Kālākriyā Pāda)** में लिखा है कि जब उनके जन्म के दो वर्ष बीत चुके थे, तब तक

कलियुग के 3600 वर्ष (3600 Years of Kali Yuga) बीत चुके थे। आधुनिक इतिहासकारों के अनुसार **Aryabhata** का काल लगभग **499 ईस्वी (499 CE)** माना जाता है। यदि इस गणना को पीछे ले जाया जाए, तो **कलियुग का प्रारम्भ (Beginning of Kali Yuga)** लगभग **3102 ईसा पूर्व (3102 BCE)** के आसपास निर्धारित होता है।

इस संदर्भ में एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह भी उठाया गया कि जिन ग्रंथों के आधार पर यह खगोलीय विश्लेषण किया जा रहा है, उनकी **प्रामाणिकता (Authenticity)** कितनी है। इस प्रश्न के उत्तर में हमारे अनुसार यदि कोई व्यक्ति सैकड़ों या हजारों वर्ष बाद किसी ऐतिहासिक घटना का वर्णन लिखना चाहे और उसमें **ग्रह-नक्षत्रों (Planetary Positions)**, **तिथियों (Lunar Dates)**, **मुहूर्तों (Auspicious Timings)** तथा **ऋतु-चक्रों (Seasonal Cycles)** का इतना सूक्ष्म विवरण देना चाहे, तो उसे अत्यंत गहन **खगोलीय ज्ञान (Astronomical Knowledge)** होना आवश्यक होगा। केवल कल्पना के आधार पर इतने जटिल और परस्पर सम्बद्ध **खगोलीय संकेतों (Astronomical Indicators)** का निर्माण करना अत्यंत कठिन माना जाता है।

हमारा तर्क यह है कि महाभारत में वर्णित कई घटनाएँ जैसे श्रीकृष्ण का **शांति-दूत (Peace Envoy)** बनकर जाना, युद्ध का **अमावस्या (New Moon)** के दिन प्रारम्भ होना, विशिष्ट **नक्षत्रों (Constellations)** का उल्लेख तथा युद्ध की **अवधि (Duration)** इन सभी के बीच एक स्पष्ट **कालानुक्रमिक सामंजस्य (Chronological Consistency)** दिखाई देता है। अर्थात् प्रत्येक घटना किसी न किसी अन्य घटना से जुड़ी हुई है और पूरी कथा एक क्रमबद्ध **समयरेखा (Timeline)** का निर्माण करती है।

इसके अतिरिक्त हम यह भी स्वीकार करते हैं कि प्राचीन ग्रंथों में **उत्तरकालीन परिवर्धन (Later Additions)** या **इंटरपोलेशन**

(Interpolation) संभव हैं। परंतु इसका अर्थ यह नहीं कि बाद में जोड़ा गया प्रत्येक अंश असत्य ही हो। कई बार बाद के ग्रंथकारों ने पहले से प्रचलित परंपराओं और **लोक-स्मृतियों (Cultural Memories)** को भी अपने ग्रंथों में सुरक्षित रखा हो सकता है। उदाहरण के लिए भगवान श्रीकृष्ण जैसे अत्यंत लोकप्रिय **ऐतिहासिक-धार्मिक व्यक्तित्व (Historical-Religious Figure)** के बारे में विभिन्न पुराणों, ग्रंथों और काव्य-साहित्य में समान प्रकार के **खगोलीय संकेत (Astronomical Markers)** मिलना इस बात की ओर संकेत कर सकता है कि यह परंपरा जनमानस में लंबे समय से विद्यमान रही है।

12.3 “महाभारत के प्रमाणों से श्रीकृष्ण के दिव्य चरित्र की पुष्टि”

महाभारत - शांति पर्व, युधिष्ठिर का श्रीकृष्ण स्तवन

दो कौड़ी के नकली नास्तिक और विद्वान, या कहें अधार्मिक लोग, श्रीकृष्ण के चरित्र को धूमिल करने का कोई मौका नहीं छोड़ते। तो आइए आज उन पर तथ्यों का ब्रह्मास्त्र चलाते हैं। कुरुक्षेत्र युद्ध के बाद, युधिष्ठिर धर्म, नीति और आदर्श पुरुष के विषय में चर्चा कर रहे थे। इस दौरान वे समझते हैं कि सभी धर्म, गुण और मोक्ष का आधार श्रीकृष्ण ही हैं। वे उनकी स्तुति करते हैं और कहते हैं कि सभी गुण केवल उनके ही शरीर में स्थिर हैं। धर्मराज युधिष्ठिर कहते हैं,

में राजसूये हयाश्वः कामेष्वासः सभेषु मे।

तत्र मे विमतिस्तात न त्वं कृष्ण न संशयः ॥३७॥

श्लोक 37 का भावार्थ: धर्मराज युधिष्ठिर कहते हैं, हे तात! राजसूय यज्ञ, अश्वमेध यज्ञ और सभाओं के विषय में मेरे मन में कभी-कभी संदेह उत्पन्न हो जाता है। किंतु हे कृष्ण! आपके विषय में मेरे मन में तनिक भी संदेह नहीं है। जो निर्णय आप देते हैं वही मेरे लिए अंतिम और प्रमाणिक होता है।

हेनिष्क शीलवान् न चैव परदारतः।
अर्थेष्वपरित्यागी विषयेषु वशीकृतः ॥३८॥

श्लोक 38 का भावार्थ: जो व्यक्ति सदाचारी होता है, परस्त्री से दूर रहता है, और धन या विषयों के प्रति अत्यधिक आसक्त नहीं होता, वही वास्तव में शुद्ध और निष्कलंक जीवन जी सकता है।

विषयेण परित्यक्तो हि निष्कल्मषः चरिष्यति।
एवमाशयः सर्वेषां जनवादः भवेत् ॥३९॥

श्लोक 39 का भावार्थ: ऐसे गुणों वाला व्यक्ति समाज में आदर्श माना जाता है। यदि कोई व्यक्ति विषयों से मुक्त होकर संयमित जीवन जीता है, तो लोग उसे निष्कलंक और श्रेष्ठ समझते हैं। युधिष्ठिर कहते हैं कि यदि इन गुणों का वास्तविक स्वरूप किसी में दिखाई देता है, तो वह श्रीकृष्ण ही हैं।

त्वं तु ह्यतकामविमुक्तानामेकोऽसीह वर्तसे।
एवं मे मतिः केशव सर्वलोकनमस्कृत ॥४०॥

श्लोक 40 का भावार्थ: हे केशव! संसार में कामनाओं से मुक्त रहने वालों में आप अद्वितीय हैं। समस्त लोक जिनका सम्मान करते हैं, ऐसे आप ही हैं। मेरे विचार में आप ही सबसे श्रेष्ठ और पूजनीय हैं।

सार: इन श्लोकों का मुख्य संदेश यह है कि युधिष्ठिर श्रीकृष्ण को पूर्ण संयमी, निष्कलंक, धर्मनिष्ठ और समस्त लोकों द्वारा पूजनीय मानते हैं। उनके अनुसार श्रीकृष्ण केवल एक राजा या मित्र नहीं, बल्कि धर्म और आदर्श जीवन के सर्वोच्च उदाहरण हैं।

भीष्म पितामह कहते हैं, कृष्ण में वेद, वेदान्त और विज्ञान का सार विद्यमान है।

न हि कश्चित् स्थितोत्यासी दुर्निवार्याः प्रवर्तते।
एषु धर्मेषु सर्वेषु कृष्ण एव व्यवस्थितः ॥४१॥

श्लोक 41 का भावार्थः इस कारण वास्तव में स्त्रियों से दूरी बनाना सबके लिए कठिन है, परन्तु पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण ही वास्तव में इन सभी धर्मों में स्थित रहते हैं।

कामभोगेषु विषक्तानां प्रायशो नरदेहिनाम्।
एषु सर्वेषु धर्मेषु कृष्ण एव व्यवस्थितः ॥४२॥

श्लोक 42 का भावार्थः मनुष्यों में प्रायः काम, भोग और विषयों में आसक्ति होती है, परन्तु श्रीकृष्ण ही ऐसे हैं जो इन सब धर्मों में दृढ़ता से स्थित रहते हैं।

सर्वे धर्माः श्रिताः कृष्णे यथा समुद्रे महोदधौ।
एवं मे निश्चिता बुद्धिः केशवे सर्वलोकनाथे ॥४३॥

श्लोक 43 का भावार्थः सभी धर्म श्रीकृष्ण में उसी प्रकार स्थित हैं जैसे नदियाँ समुद्र में मिल जाती हैं। इसलिए मेरी बुद्धि में यह निश्चय है कि केशव ही समस्त लोकों के नाथ हैं।

सत्यं दानं तपः शौर्यं धर्मः सत्यं क्षमा दमः।
धृतिः कीर्तिर्यशो लक्ष्मीः श्रीः विद्या शौर्यं ह्रीः स्मृतिः ॥४४॥

श्लोक 44 का भावार्थः सत्य, दान, तप, शौर्य, धर्म, क्षमा, इन्द्रिय-निग्रह, धैर्य, कीर्ति, यश, लक्ष्मी, श्री, विद्या, शौर्य, लज्जा और स्मृति ये सभी गुण श्रीकृष्ण में स्थित हैं।

कृष्णो हि नारीणामासीत् न चाप्येतु पुरुषोत्तमः।
तस्य न स्त्रीकृतं दोषं वासुदेवस्य विद्यते ॥२१॥

श्लोक 21 का भावार्थ: भगवान श्रीकृष्ण का स्त्रियों के साथ संबंध होने पर भी वे पुरुषोत्तम ही रहे। वासुदेव श्रीकृष्ण में स्त्रियों के कारण कोई दोष नहीं माना जाता।

एष धर्मो महात्मानां न चासाधारणं जनैः।

कृष्ण एव व्यवस्थितः ॥२२॥

श्लोक 22 का भावार्थ: यह महात्माओं का धर्म है, सामान्य लोगों के लिए नहीं। इन सब धर्मों में श्रीकृष्ण ही पूर्ण रूप से स्थित हैं।

पुण्यश्लोको महाभागः सत्यवादी जितेन्द्रियः।

सिंहविक्रमो महाबाहुः कृष्णः प्रह्लाद इवापरः ॥२३॥

श्लोक 23 का भावार्थ: श्रीकृष्ण पुण्यश्लोक, महान भाग्यशाली, सत्यवादी, इन्द्रियों को जीतने वाले, सिंह के समान पराक्रमी और महान बाहु वाले हैं।

शांति पर्व में श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुए भीष्म कहते हैं, आप परम पवित्र हैं, मैं आपकी शरण में आता हूँ। योगीजन वासनाओं का त्याग करके जिस परम तत्व की उपासना मोक्ष के लिए करते हैं, वह गोविंद श्रीकृष्ण ही हैं। बृहस्पति के समान बुद्धि वाले मुनि कहते हैं कि कृष्ण ही सनातन धर्म का स्वरूप हैं। वेद, ब्राह्मण और अध्यात्म के ज्ञाता लोग भी श्रीकृष्ण को ही सनातन धर्म का साक्षात् रूप मानते हैं। इसलिए श्रीकृष्ण पर आक्षेप करने वालों को कुछ तो लज्जा करनी चाहिए।

12.4 महाभारतः प्राचीन विज्ञान और उन्नत युद्ध तकनीक

महाभारत को सदियों तक सिर्फ धर्मग्रंथ माना गया, लेकिन आज इसकी कथा ने विज्ञान जगत में भी तहलका मचा दिया है। आज जिस **आधुनिक विज्ञान (Modern Science)** पर मानव समाज गर्व करता है, संभव है वह प्राचीन भारतीय **वैज्ञानिक परंपरा (Ancient Scientific Tradition)** की केवल एक **आंशिक झलक (Partial Reflection)**

हो। महाभारत जैसे ग्रंथों में वर्णित उन्नत **अस्त्र-प्रौद्योगिकी (Weapon Technology)**, **चेतना-विज्ञान (Consciousness Science)** और **ऊर्जा नियंत्रण (Energy Regulation)** यह संकेत देते हैं कि उस युग में, हमारे ऋषि मुनि ही वह असली वैज्ञानिक थे जिनका ज्ञान और अध्यात्म का गहरा **समन्वय (Integration)** था। यह दृष्टिकोण हमें याद दिलाता है कि सच्ची **प्रगति (Progress)** केवल तकनीकी शक्ति में नहीं, बल्कि **नैतिक संतुलन (Ethical Balance)** और **बौद्धिक विवेक (Intellectual Wisdom)** में निहित होती है। दुनिया के पहले **परमाणु परीक्षण (Nuclear Test)** से जुड़े वैज्ञानिक **जे. रॉबर्ट ओपनहाइमर (J. Robert Oppenheimer)** को आधुनिक विज्ञान में **एटॉमिक बम का जनक (Father of the Atomic Bomb)** कहा जाता है। 16 जुलाई 1945 को हुए **ट्रिनिटी टेस्ट (Trinity Test)** के दौरान जब उन्होंने उस **भीषण विस्फोट (Catastrophic Explosion)** को देखा, तो उनके मुख से कोई **भौतिकी का सूत्र (Law of Physics)** नहीं निकला, बल्कि **श्रीमद्भगवद्गीता (Bhagavad Gita)** 11वें अध्याय के 12वें श्लोक का संदर्भ दिया—**"दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता"** (यदि आकाश में एक साथ हजारों सूर्य उदित हो जाएं)। अगर **सरल शब्दों (Simple Terms)** में कहें, तो हिरोशिमा और नागासाकी की **विनाशलीला (Mass Destruction)** भी कुरुक्षेत्र के युद्ध की **भीषणता (Intensity)** के सामने छोटी प्रतीत होती है। लगभग 5000 वर्ष पूर्व हुए महाभारत युद्ध में जिन **अस्त्रों (Advanced Weapons)** का वर्णन मिलता है, उनकी **विनाशक क्षमता (Destructive Power)** आज के **परमाणु हथियारों (Nuclear Weapons)** से तुलनीय मानी जाती है। उस काल में न **इंटरनेट (Internet)** था, न **दूरदर्शन (Television)** और न ही **उपग्रह प्रणाली (Satellite System)**, फिर भी संजय अपनी **दिव्य दृष्टि (Divine Vision / Remote Viewing)** के माध्यम से दूर बैठकर सम्पूर्ण युद्ध का **प्रत्यक्ष प्रसारण (Live Transmission)** धृतराष्ट्र को सुना रहे थे, जो

आधुनिक **लाइव रिपोर्टिंग (Live Reporting)** की अवधारणा जैसा प्रतीत होता है।

यह कथन उस **असीम ऊर्जा (Infinite Energy)** और **महाविनाश (Mass Annihilation)** की अनुभूति को दर्शाता है। ओपनहाइमर ने स्वयं स्वीकार किया कि आधुनिक युग का पहला परमाणु विस्फोट 1945 में हुआ, किंतु उन्होंने यह भी संकेत दिया कि प्राचीन ग्रंथों, विशेषतः **महाभारत (Mahabharata)** में वर्णित **अस्त्र-शस्त्र (Advanced Weapons)** साधारण तीर-कमान नहीं, बल्कि **ऊर्जा-आधारित हथियार (Energy-Based Weapons)** थे। इन अस्त्रों को आज की भाषा में **गाइडेड मिसाइलें (Guided Missiles)**, **ध्वनि-तरंग तकनीक (Sound Wave Technology)** और **निर्देशित प्रक्षेपास्त्र प्रणाली (Directed Weapon Systems)** कहा जा सकता है। यही कारण है कि महाभारत को केवल एक **पौराणिक आख्यान (Mythological Epic)** नहीं, बल्कि एक **गहन वैज्ञानिक दस्तावेज़ (Profound Scientific Record)** के रूप में देखने की बहस आज भी आधुनिक विज्ञान को **बौद्धिक चुनौती (Intellectual Challenge)** देती है। कुरुक्षेत्र में प्रयुक्त ऐसे बाणों का उल्लेख मिलता है जो अपने **लक्ष्य (Target)** का स्वयं पीछा करते थे, ठीक वैसे ही जैसे आज की **निर्देशित मिसाइलें (Guided Missiles)** करती हैं। मंत्रों से संचालित ये अस्त्र आधुनिक **रडार (Radar)** और **संवेदी यंत्रों (Sensors)** को भी निष्फल कर देने वाले बताए गए हैं। भीष्म पितामह की **इच्छा-मृत्यु (Voluntary Death)** यह दर्शाती है कि उस युग में मानव को अपने **शारीरिक तंत्र (Biological System)** और **मानसिक चेतना (Mental Consciousness)** पर असाधारण नियंत्रण प्राप्त था।

12.4.1 “ब्रह्मास्त्र और आधुनिक WMD: महाभारत में विज्ञान और चेतना का समन्वय”

ब्रह्मास्त्र को केवल एक पौराणिक अस्त्र (Mythological Weapon) मानकर टाल देना इसके वर्णन की वैज्ञानिक गहनता (Scientific Depth) को नज़रअंदाज़ करना होगा।

अश्वत्थामा द्वारा ब्रह्मास्त्र छोड़ने का श्लोक (महाभारत, सौप्तिक पर्व):

द्रोणपुत्रस्ततस्तूर्णं सान्त्वयित्वाऽऽत्मनः प्रभुः।

उवाच भगवन्ब्रह्मन्याण्डवानां विनाशनाय॥

ब्रह्मास्त्रं च ततस्तप्तस्तत्सृजां तदभित्यजत्।

(महाभारत, सौप्तिक पर्व)

महाभारत के युद्ध के अंत में अश्वत्थामा ने पांडवों को नष्ट करने के लिए ब्रह्मशिर अस्त्र (जिसे अक्सर ब्रह्मास्त्र कहा जाता है) का प्रयोग अर्जुन पर किया था। जब अर्जुन ने इसके प्रतिशोध में अपना अस्त्र छोड़ा, तो प्रलय को रोकने के लिए वेदव्यासजी ने दोनों अस्त्रों को वापस लेने को कहा। अर्जुन ने इसे वापस ले लिया, लेकिन अश्वत्थामा ने उसे उत्तरा के गर्भ की ओर मोड़ दिया।

महाभारत में ब्रह्मास्त्र के प्रयोग से उत्पन्न दशदिशीय विक्षोभ (Omnidirectional Disturbance), आकाशीय उल्कापात (Meteoric Fallout), जल का उबलना (Boiling of Water Bodies) और भूमि-कंपन (Seismic Tremors) ऐसे लक्षण हैं, जो आधुनिक न्यूक्लियर ब्लास्ट (Nuclear Blast) के प्रभावों से अत्यंत साम्य रखते हैं। इसके पश्चात वर्णित केश-पतन (Hair Loss), नाखून झड़ना (Nail Shedding), आहार-विषाक्तता (Food Contamination) और वंशानुगत विकृति (Genetic Deformities) को आज का चिकित्सा विज्ञान (Medical Science) स्पष्ट रूप से

रेडिएशन पॉइज़निंग (Radiation Poisoning) और **न्यूक्लियर फॉलआउट (Nuclear Fallout)** के लक्षण मानता है। यह तथ्य इस प्रश्न को जन्म देता है कि जब प्राचीन काल में **रेडिएशन (Radiation)** जैसे शब्दों का अस्तित्व भी नहीं था, तब इतनी **सटीक प्रेक्षणात्मक जानकारी (Accurate Observational Knowledge)** कैसे दर्ज की गई। कुछ विद्वान ब्रह्मास्त्र को एक **मास डिस्ट्रक्शन वेपन (Weapon of Mass Destruction)** मानते हैं, जो **ऊर्जा रूपांतरण सिद्धांत (Mass-Energy Conversion, $E = mc^2$)** को व्यावहारिक रूप में दर्शाता है। मंत्रों के माध्यम से सक्रिय होने वाला यह अस्त्र **ध्वनि-विज्ञान (Acoustics)**, **आवृत्ति नियंत्रण (Frequency Modulation)** और **ऊर्जा संकेन्द्रण (Energy Focusing)** पर आधारित माना जाता है। इस दृष्टि से ब्रह्मास्त्र कोई साधारण तीर नहीं, बल्कि एक **उन्नत निर्देशित प्रणाली (Sophisticated Guided System)** था, जिसे **वॉयस कमांड (Voice Command)** या **मेंटल कमांड (Mental Command)** से संचालित किया जा सकता था, जो प्राचीन भारतीय **विज्ञान और चेतना (Science and Consciousness)** के अद्भुत समन्वय को दर्शाता है।

12.4.2 “नारायणास्त्र: महाभारतकालीन स्वायत्त हथियार और आधुनिक AI आधारित सैन्य प्रौद्योगिकी का साम्य”

नारायणास्त्र को समझना महाभारतकालीन **उन्नत सैन्य प्रौद्योगिकी (Advanced Military Technology)** की गहराई को उजागर करता है। नारायण अस्त्र को छोड़ते समय अश्वत्थामा की प्रतिज्ञा

**“अद्य हन्मि रणे सर्वान् पाण्डवान् धृष्टद्युम्नञ्च।
नारायणायुधं घोरं न हि पश्यामि चोत्तरम्॥”**

“आज युद्ध में मैं पांडवों और धृष्टद्युम्न का संहार करूँगा, इस भयंकर नारायणास्त्र का कोई विकल्प/काट नहीं है” युद्ध के दौरान जब अश्वत्थामा

ने इस अस्त्र का प्रयोग किया, तब इसका प्रभाव किसी **एकल लक्ष्य (Single Target)** तक सीमित नहीं था, बल्कि यह प्रत्येक **आक्रामक इकाई (Aggressive Entity)** को स्वतः पहचानकर नष्ट करने वाला **चयनात्मक विनाश तंत्र (Selective Destruction Mechanism)** बन गया। जिन सैनिकों के हाथों में **हथियार (Weapons)** थे या जिनमें **युद्ध-भाव (Combat Intent)** सक्रिय था, उन्हें यह अस्त्र **ऊर्जा-पुंज (Energy Cluster)** के रूप में लक्ष्य बनाता था। श्रीकृष्ण द्वारा सुझाया गया समाधान हथियार त्याग, निष्क्रिय मुद्रा और मानसिक शांति इस तथ्य को दर्शाता है कि यह अस्त्र केवल **आक्रामकता (Aggression)** पर प्रतिक्रिया करता था, न कि **निष्क्रिय व्यक्तियों (Non-Combatants)** पर।

आधुनिक दृष्टि से देखें तो नारायणास्त्र की कार्यप्रणाली आज की **हीट-सीकिंग मिसाइल्स (Heat-Seeking Missiles)**, **मोशन-सेंसर टेक्नोलॉजी (Motion Sensor Technology)** और **मेटल डिटेक्शन सिस्टम (Metal Detection Systems)** से आश्चर्यजनक रूप से मेल खाती है। इसे एक प्रकार का **आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस आधारित स्वायत्त हथियार (AI-Based Autonomous Weapon System)** कहा जा सकता है, जो स्वयं **थ्रेट असेसमेंट (Threat Assessment)** करता था और **निर्णय क्षमता (Decision-Making Capability)** के आधार पर लक्ष्य को **एलिमिनेट (Eliminate)** या **इग्नोर (Ignore)** करता था। यह वही अवधारणा है, जिस पर आज **ऑटोनॉमस वेपन सिस्टम्स (Autonomous Weapon Systems)** को लेकर संयुक्त राष्ट्र (United Nations) में गहन **नैतिक और कानूनी बहस (Ethical and Legal Debate)** चल रही है। इससे यह स्पष्ट होता है कि महाभारतकालीन विज्ञान केवल **विध्वंसक (Destructive)** नहीं, बल्कि अत्यंत **सटीक (Precise)**, **नियंत्रित (Controlled)** और **नैतिक विवेक**

(Ethical Intelligence) से युक्त था, जो आधुनिक विज्ञान के लिए आज भी एक **बौद्धिक चुनौती (Intellectual Challenge)** बना हुआ है।

12.4.3 “महाभारत के बहु-बाण अस्त्र और आधुनिक MIRV मिसाइल प्रणाली: प्राचीन युद्ध विज्ञान का तकनीकी दृष्टिकोण”

महाभारत और रामायण के युद्ध-वर्णनों में एक तीर से अनेक तीरों का प्रकट होना अक्सर **दृश्य प्रभाव (Visual Effect)** या **कल्पनात्मक अतिशयोक्ति (Imaginative Exaggeration)** समझ लिया जाता है, किंतु आधुनिक **सैन्य प्रौद्योगिकी (Military Technology)** के संदर्भ में देखने पर यह वर्णन अत्यंत **प्रासंगिक (Relevant)** प्रतीत होता है।

अन्तरीक्षे महाबाणान् शराञ्छतशः शितान् ।

मुमोचास्तबलं बुद्ध्वा द्विषतां हरणं प्रति ॥

(महाभारत, भीष्म पर्व)

श्लोक के अनुसार आकाश में (योद्धाओं ने) सैकड़ों पैने बाण छोड़े। वे अस्त्रों के बल को जानते हुए शत्रुओं के विनाश के लिए (बाणों की वर्षा) करते थे।

आज भारत की उन्नत **अग्नि-5 मिसाइल (Agni-V Missile)** जिस **एमआईआरवी तकनीक (MIRV – Multiple Independently Targetable Re-entry Vehicle)** पर आधारित है, उसमें एक ही **बैलिस्टिक मिसाइल (Ballistic Missile)** को प्रक्षेपित किया जाता है, जो अंतरिक्ष में पहुँचकर अनेक **स्वतंत्र वारहेड्स (Independent Warheads)** में विभाजित हो जाती है। महाभारत में वर्णित वह बाण, जो आकाश में जाकर असंख्य बाणों की **वर्षा (Shower)** में परिवर्तित हो जाता है, इसी **मल्टी-टारगेट डिलीवरी सिस्टम (Multi-Target Delivery System)** की ओर संकेत करता है।

इसे 'अस्त्र-लाघव' (तीव्रता और फुर्ती) और 'दिव्यास्त्र' की शक्ति माना जाता था। यहाँ महाभारत का एक प्रमुख श्लोक है जो इस दृश्य का वर्णन करता है:

**एकं संधायते बाणं ज्यायाम् अन्यं विमुञ्चति।
न च संधानकालोऽस्य लक्ष्यते न च विग्रहात्॥**
(महाभारत, द्रोण पर्व)

श्लोक के अनुसार वह (योद्धा) एक बाण धनुष पर चढ़ाता है और दूसरा छोड़ देता है। उसके बाण चढ़ाने और छोड़ने के बीच का समय इतना सूक्ष्म होता है कि देखने वालों को अंतर ही पता नहीं चलता। ऐसा प्रतीत होता है कि एक ही बाण से हजारों बाण निकल रहे हैं।" विद्वानों के अनुसार ये साधारण **लकड़ी के तीर (Wooden Arrows)** नहीं, बल्कि धातु-निर्मित **केसिंग (Metallic Casing)** वाले उन्नत अस्त्र थे, जिनके भीतर **सब-म्यूनिशन्स (Sub-Munitions)** या **क्लस्टर हथियार (Cluster Weapons)** समाहित थे। जैसे ही वह अस्त्र एक निश्चित **ऊँचाई या सीमा (Pre-Set Altitude/Range)** पर पहुँचता, उसका **मैकेनिज़्म (Mechanism)** सक्रिय होकर अनेक छोटे हथियारों को मुक्त कर देता था। इसे प्राचीन ग्रंथों में **सम्मोहन अस्त्र (Summohana Astra)** जैसे नामों से जाना गया, जो यह दर्शाता है कि महाभारतकालीन विज्ञान केवल **प्रतीकात्मक (Symbolic)** नहीं, बल्कि अत्यंत **सुनियोजित (Systematic)** और **तकनीकी रूप से उन्नत (Technologically Advanced)** था, जिसकी समानताएँ आज की आधुनिक मिसाइल प्रणालियों में स्पष्ट रूप से देखी जा सकती हैं।

12.4.4 “सुदर्शन चक्र: दिव्य ऊर्जा और तकनीक”

सुदर्शन चक्र को भारतीय शास्त्रों में केवल एक पौराणिक अस्त्र नहीं, बल्कि **अंतिम सुरक्षा कवच (Ultimate Defense Mechanism)** के

रूप में वर्णित किया गया है। भगवान श्री कृष्ण का सुदर्शन चक्र अमोघ (अचूक) अस्त्र है, जो आज्ञा पाते ही शत्रुओं का संहार कर पुनः उनके पास लौट आता है। यह चक्र भगवान विष्णु (और उनके अवतार कृष्ण) की उंगली पर घूमता रहता है, जो दिव्य शक्ति, धर्म की रक्षा और दुष्टों के विनाश का प्रतीक है।

ॐ सुदर्शन चक्राय नमः।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

श्रीकृष्ण द्वारा सुदर्शन चक्र का स्मरण (शाल्व वध प्रसंग):

तत्सुदर्शनमादाय भास्करतुल्यतेजसम्।

शाल्वाय प्राहिणोन्मूर्ध्नि चकार स निपातनम्॥

— श्रीमद्भागवत पुराण 10.77.29 (महाभारत, खांडव दाह पर्व)

तत्पश्चात्, सूर्य के समान तेजस्वी सुदर्शन चक्र को लेकर श्रीकृष्ण ने शाल्व के सिर पर छोड़ दिया, जिसने उसे मार गिराया (और फिर उनके हाथ में वापस लौट आया)। शाल्व को मारते समय चक्र की गर्जना से दसों दिशाएं गूंज उठी थीं और वह दिव्य अस्त्र शत्रु का विनाश कर श्रीकृष्ण के हाथ में पुनः प्रतिष्ठित हो गया था। भगवान श्री कृष्ण की अंगुली पर घूमने वाला यह चक्र शत्रु का संहार कर पुनः अपने स्वामी के पास लौट आता था, जिससे इसकी **रीयूजेबल (Reusable)** और **गाइडेड (Guided)** प्रकृति स्पष्ट होती है। यदि इसकी कार्यप्रणाली (**Mechanism**) का आधुनिक विज्ञान की भाषा में विश्लेषण किया जाए, तो इसे एक प्रकार की **बूमरैंग मिसाइल (Boomerang Missile)** या **थॉट-कंट्रोल्ड वेपन (Thought-Controlled Weapon)** कहा जा सकता है। शास्त्रों में वर्णित “मन की गति” से चलना यह संकेत देता है कि यह अस्त्र चेतना (Consciousness) से नियंत्रित होता था, जिसमें उन्नत **सेंसर्स (Sensors)** और **नेविगेशन सिस्टम (Navigation System)** निहित थे, जो इसे लक्ष्य भेदन के बाद

पुनः ऑपरेटर तक मार्गदर्शित करते थे। सुदर्शन चक्र का रहस्य केवल इसकी गति और सटीकता (**Precision**) तक सीमित नहीं है। इसका नाम "सुदर्शन" अर्थात् **शुभदर्शन (Auspicious Vision)** होते हुए भी यह **काल (Time / Destructive Force)** का प्रतीक माना गया है। कुछ आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण इसे एक **रोटेटिंग एनर्जी डिस्क (Rotating Energy Disc)** मानते हैं, जो संभवतः **प्लाज्मा तकनीक (Plasma Technology)** पर आधारित रही हो। प्लाज्मा या लेजर ऊर्जा से निर्मित ऐसी डिस्क किसी भी ठोस पदार्थ को काटने या विघटित (Disintegrate) करने में सक्षम हो सकती है। आज अमेरिका और चीन जिन **लेजर वेपन सिस्टम्स (Laser Weapon Systems)** पर कार्य कर रहे हैं, जो प्रकाश की गति (Speed of Light) से आक्रमण करते हैं, सुदर्शन चक्र को उनका अत्यंत **परिष्कृत (Sophisticated)** और उन्नत स्वरूप कहा जा सकता है। यह केवल विनाशकारी अस्त्र नहीं था, बल्कि **ऊर्जा प्रवाह (Energy Flow)** को नियंत्रित करने वाला एक उच्च स्तरीय तकनीकी उपकरण भी था, जो प्राचीन भारतीय विज्ञान की असाधारण उन्नति को दर्शाता है।

12.5 "संजय की दिव्य दृष्टि: महाभारत में प्राचीन सर्विलांस और रीयल-टाइम ऑब्जर्वेशन तकनीक"

महाभारत में महर्षि वेदव्यास द्वारा संजय को कुरुक्षेत्र युद्ध देखने के लिए दी गई दिव्य दृष्टि का मुख्य श्लोक भीष्म पर्व (अध्याय 2, श्लोक 9) में है, जिसमें वे धृतराष्ट्र से कहते हैं कि संजय को दिव्य दृष्टि प्राप्त होगी:

**अहं चक्षुषा संजयो राजन् दिव्यनैव समन्वितः।
कथयिष्यति ते युद्धं सर्वज्ञश्च भविष्यति॥**

श्लोक के अनुसार, व्यास जी धृतराष्ट्र से कहते हैं, "हे राजन! यह संजय दिव्य दृष्टि से युक्त होकर आपको युद्ध की संपूर्ण घटनाओं का वर्णन

सुनाएगा। यह सर्वज्ञ हो जाएगा, यानी इसे युद्ध की हर बात, चाहे वह दिन की हो, रात की, या मन में सोची गई, सब कुछ पता होगा। संजय की **दिव्य दृष्टि (Divine Vision)** को यदि केवल आध्यात्मिक **अंतर्ज्ञान (Intuition)** मानकर छोड़ दिया जाए, तो यह महाभारतकालीन **संचार एवं सर्विलांस तकनीक (Communication and Surveillance Technology)** की असाधारण गहराई को कम करके आँकना होगा। हस्तिनापुर में बैठकर संजय का कुरुक्षेत्र के युद्ध का **प्रत्यक्ष, वास्तविक-समय वर्णन (Real-Time Live Observation)** करना आज की **लाइव स्ट्रीमिंग (Live Streaming)** और **सैटेलाइट इमेजरी (Satellite Imagery)** से भी अधिक उन्नत प्रतीत होता है। आधुनिक युग में हम **जीपीएस (GPS)**, **ड्रोन कैमरा (Drone Camera)** और **स्पाई सैटेलाइट्स (Spy Satellites)** पर निर्भर हैं, जबकि संजय के पास कोई भौतिक उपकरण नहीं था। इसे आज के **क्वांटम एंटैंगलमेंट (Quantum Entanglement)** और **रिमोट व्यूइंग (Remote Viewing)** की अवधारणाओं से समझा जा सकता है, जहाँ दो **कण (Particles)** अथवा **चेतन अवस्थाएँ (Conscious States)** अत्यधिक दूरी पर रहते हुए भी **सूचना का आदान-प्रदान (Information Exchange)** कर सकती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि महर्षि व्यास ने संजय को किसी **कॉस्मिक फ्रीक्वेंसी (Cosmic Frequency)** से **ट्यून (Tune)** कर दिया था, जिससे कुरुक्षेत्र का संपूर्ण **डाटा (Data)** सीधे उनके **मस्तिष्कीय तंत्र (Neural System)** में प्रवाहित हो रहा था। इसे आधुनिक भाषा में **बायोलॉजिकल टेलीविज़न (Biological Television)** या **न्यूरल इंटरफेस (Neural Interface)** कहा जा सकता है। आज जिस **न्यूरालिंक (Neuralink)** तकनीक पर एलॉन मस्क कार्य कर रहे हैं, उसमें मस्तिष्क और कंप्यूटर के बीच एक **चिप (Chip)** की आवश्यकता होती है, जबकि संजय की क्षमता इससे कहीं आगे थी—उनका **मस्तिष्क ही रिसीवर (Receiver)** था और **मस्तिष्क ही डिस्प्ले (Display)**। वे केवल दृश्य ही नहीं, बल्कि

योद्धाओं के मानसिक विचार (Mental Thoughts) और भावनात्मक अवस्था (Emotional State) तक को समझ सकते थे, जो आज की किसी भी इंटेलिजेंस या स्पाई सिस्टम (Intelligence/Spy System) से कहीं अधिक उन्नत है। यह स्पष्ट संकेत देता है कि प्राचीन भारत में चेतना (Consciousness), ब्रह्मांडीय ऊर्जा (Cosmic Energy) और विज्ञान (Science) के बीच का संबंध अत्यंत गहराई से समझा जा चुका था।

12.6 “भीष्म पितामह की इच्छामृत्यु: महाभारत में धर्म, समय और आत्म-संयम का विज्ञान”

महाभारत काल की मेडिकल साइंस (Medical Science) का सबसे रहस्यमय और उन्नत उदाहरण भीष्म पितामह की इच्छा-मृत्यु (Voluntary Death / Icchā-Mrityu) मानी जाती है।

“न मे विवाहः कन्याया, न मे राज्याभिलाषणम्।

आजीवनं ब्रह्मचारी, न मे मरणमकामतः।।”

(महाभारत, भीष्म पर्व)

महाभारत काल की भीष्म प्रतिज्ञा “न मैं कभी विवाह करूँगा, न ही मेरी राज्य (सिंहासन) पर कोई अभिलाषा है। मैं आजीवन ब्रह्मचारी रहूँगा और मेरी मृत्यु स्वेच्छा (इच्छा मृत्यु) से ही होगी।”

यह संवाद उस समय हुआ जब भीष्म बाणों से छलनी होकर अपनी मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे थे

न हि संवदनं तात विद्यते कुरुसत्तम।

यथा धैर्यं च सत्यं च दमः शौचमथार्जवम्॥

(महाभारत, शांति पर्व)

युधिष्ठिर को सांत्वना और धर्म का उपदेश देते हैं। "हे कुरुश्रेष्ठ (युधिष्ठिर)! धैर्य, सत्य, संयम, शुद्धि और सरलता के समान कोई दूसरा संबल (सहारा) नहीं है। जो हो गया उसे शोक के रूप में नहीं, बल्कि धर्म के पथ पर अडिग रहकर स्वीकार करना ही वीरता है।"

"तद्दुःखं नानुवन्नेत न चैनं व्यथयेत् पुनः।"

उन्होंने पांडवों को सांत्वना दी कि जो अन्याय हुआ, वह नियति और कर्म का फल था, और अब उन्हें धर्म के मार्ग पर आगे बढ़ना चाहिए, न कि उस दुःख को ढोना चाहिए। शर-शय्या पर लेटे हुए, शरीर के **छिन्न-भिन्न ऊतक (Severely Damaged Tissues)** और असहनीय **शारीरिक आघात (Extreme Physical Trauma)** के बावजूद भीष्म का अपने प्राणों को रोके रखना, आज के **आधुनिक चिकित्साविज्ञान (Modern Medicine)** के लिए भी एक **जैविक असंभवता (Biological Impossibility)** जैसा प्रतीत होता है। किंतु इसे यदि **योग-विज्ञान (Yogic Science)** और **न्यूरो-फिज़ियोलॉजी (Neuro-Physiology)** के दृष्टिकोण से देखा जाए, तो यह एक अत्यंत उन्नत **ऑटोनॉमिक नर्वस सिस्टम कंट्रोल (Autonomic Nervous System Control)** का उदाहरण बन जाता है। आज का विज्ञान **सस्पेंडेड एनीमेशन (Suspended Animation)** और **क्रायोजेनिक्स (Cryogenics)** के माध्यम से शरीर की **मेटाबॉलिक एक्टिविटी (Metabolic Activity)** को धीमा करने का प्रयास कर रहा है, जबकि भीष्म ने अपने **कोशिकीय क्षय (Cellular Degeneration)** और **सेलुलर डेथ रेट (Cellular Death Rate)** को स्वयं नियंत्रित कर लिया था।

योगशास्त्र के अनुसार, एक उच्च-स्तरीय योगी अपनी **प्राण-ऊर्जा (Bio-Energy / Life Force)** को शरीर के किसी भी अंग में **संकेन्द्रित (Localize)** या **निलंबित (Suspend)** कर सकता है। भीष्म ने अपने **दर्द संकेतों (Pain Signals)** को **न्यूरल पाथवे (Neural Pathways)** के

माध्यम से मस्तिष्क तक पहुँचने से अवरुद्ध कर दिया था, जिसे आज की भाषा में **न्यूरल ब्लॉकिंग (Neural Blocking)** या **अल्टीमेट बायो-हैकिंग (Ultimate Bio-Hacking)** कहा जा सकता है। साथ ही, उन्होंने अपने जीवन-बल को **होल्ड मोड (Life-Force Hold State)** में रखकर उत्तरायण काल की प्रतीक्षा की, जो **चेतना-नियंत्रण (Consciousness Regulation)** और **इच्छाशक्ति (Will Power)** के अद्वितीय समन्वय को दर्शाता है। यह प्रसंग प्रमाणित करता है कि महाभारत युग में **मानव क्षमता (Human Potential)** को उस स्तर तक विकसित कर लिया गया था, जिसे आज का विज्ञान **सुपर-ह्यूमन स्टेट (Superhuman State)** कहकर परिभाषित करने का प्रयास कर रहा है।

12.7 “गीता का उपदेश और समय-सापेक्षता: महाभारत में ब्रह्मांडीय काल-आयाम का वैज्ञानिक दृष्टिकोण”

कुरुक्षेत्र के युद्धक्षेत्र में भगवान श्री कृष्ण द्वारा अर्जुन को गीता का उपदेश दिया जाना केवल एक आध्यात्मिक घटना नहीं, बल्कि **समय (Time)** और **सापेक्षता (Relativity)** के गहन सिद्धांत की ओर संकेत करता हुआ प्रतीत होता है। युद्ध आरंभ होने से ठीक पहले, जब दोनों सेनाएँ आमने-सामने खड़ी थीं, शंखनाद हो चुका था और अस्त्र-शस्त्र उठ चुके थे, उसी क्षण श्री कृष्ण ने अर्जुन को अठारह अध्यायों का विस्तृत ज्ञान प्रदान किया। सामान्य दृष्टि से देखें तो यह उपदेश कई घंटों का रहा होगा, परंतु आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि उपदेश समाप्त होते ही युद्ध उसी अवस्था से प्रारंभ हुआ, मानो समय स्थिर (**Time Freeze**) हो गया हो। इसका मुख्य उपदेश 'कर्म' और 'अमृत आत्मा' पर केंद्रित था,

जैसे:

**"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥"**

(गीता २.४७)

(अर्थ: तुम्हारा अधिकार केवल कर्म करने में है, फल में नहीं।)

आधुनिक भौतिकी में अल्बर्ट आइंस्टीन ने यह सिद्ध किया कि समय **निरपेक्ष (Absolute)** नहीं, बल्कि **सापेक्ष (Relative)** है और गति (Speed) व गुरुत्वाकर्षण (Gravity) के प्रभाव से इसमें **समय प्रसारण या संकुचन (Time Dilation)** हो सकता है। यदि इस घटना को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से समझें, तो श्री कृष्ण को एक **उच्च आयामी (Higher-Dimensional)** सत्ता माना जा सकता है, जो त्रि-आयामी (Three-Dimensional) जगत में रहते हुए चतुर्थ आयाम, अर्थात् समय (Fourth Dimension – Time) को नियंत्रित कर रहे थे। संभव है कि उन्होंने एक **टाइम बबल (Time Bubble)** या **हाइपर-डायमेंशनल स्पेस (Hyper-Dimensional Space)** की रचना की हो, जहाँ अर्जुन के लिए समय अत्यंत धीमा हो गया, जबकि बाहरी विश्व के लिए वह क्षण मात्र था। यह घटना **स्पेस-टाइम फैब्रिक (Space-Time Fabric)** को मोड़ने या **वॉर्प (Warp)** करने की अवधारणा से मेल खाती है, जिसे आज की **थियोरेटिकल फिजिक्स (Theoretical Physics)** में जटिल गणनाओं के माध्यम से समझा जा रहा है। इस प्रकार महाभारत की यह कथा भारतीय ज्ञान-परंपरा की उस गहराई को दर्शाती है, जहाँ दर्शन, विज्ञान और ब्रह्मांडीय नियम एक-दूसरे में विलीन दिखाई देते हैं।

12.8 “महाभारत में कौरवों का जन्म: प्राचीन जेनेटिक्स और कृत्रिम मानव विकास”

कौरवों का जन्म महाभारत की उन घटनाओं में से एक है, जो आधुनिक **जेनेटिक साइंस (Genetic Science)** और **प्रजनन तकनीक (Reproductive Technology)** को गहरी चुनौती देती प्रतीत होती है। सामान्य **जैविक नियमों (Biological Laws)** के अनुसार एक स्त्री द्वारा एक साथ सौ संतानों को जन्म देना असंभव है, किंतु महाभारत का विवरण इस असंभव को संभव होते हुए दर्शाता है।

महाभारत: आदि पर्व: चतुर्दशाधिकशततम अध्याय: श्लोक 18-35

(1) व्यास का आदेश – सौ कुण्ड तैयार करने हेतु

ततः शतं कुण्डिकानां घृतपूर्णान् समाहृतान् ।

गोपायित्वा यथान्यायं शीतलेषु निवेशय ॥

(अर्थ: तब सौ घृत से पूर्ण कुण्ड एकत्र कर, उन्हें विधिपूर्वक सुरक्षित और शीतल स्थान में स्थापित करो।)

(2) मांसपिण्ड का सौ भागों में विभाजन

ततः सीच्यमानस्य तस्य मांसपिण्डस्य भारत ।

शतधा समभूद् भेदो गर्भाणां पर्वसंमितः ॥

(अर्थ: हे भारतवंशी! जब उस मांसपिण्ड को सींचा गया, तब वह सौ भागों में विभक्त हो गया, जो अंगुलि-पर्व (अंगूठे के पोर) के समान थे।)

(3) गर्भों को कुण्डों में स्थापित करना)

तानि सर्वाणि गर्भाणि कुण्डेषु विनिवेश्य च ।

गोपनं कारयामास यथोक्तं मुनिना तदा ॥

(अर्थ: उन सभी गर्भों को कुण्डों में स्थापित कर, मुनि (व्यास) के कथनानुसार उनकी रक्षा की व्यवस्था की गई।)

(4) दो वर्ष पश्चात् दुर्योधन का जन्म

ततः संवत्सरद्वयात् प्रथमं जात एव सः ।

दुर्योधन इति ख्यातो धृतराष्ट्रसुतोऽभवत् ॥

(अर्थ: दो वर्ष पूर्ण होने पर सबसे पहले धृतराष्ट्र का पुत्र उत्पन्न हुआ, जो दुर्योधन के नाम से प्रसिद्ध हुआ।)

महाभारत ग्रंथ के अनुसार, महारानी गांधारी के गर्भ से एक **मांसपिंड (Fleshy Mass)** उत्पन्न हुआ, जिसे **महर्षि व्यास** ने अपनी उन्नत **ऋषि-विज्ञानिक दृष्टि (Advanced Sage Science)** से सौ पुत्रों और एक पुत्री के लिए 101 भागों में विभाजित किया। इन अंशों को विशेष **घृतयुक्त पोषक माध्यम (Nutrient Medium enriched with Ghee)** से भरे मटकों में सुरक्षित रखा गया, जहाँ नियंत्रित **तापमान (Temperature)** और **पर्यावरणीय स्थितियों (Controlled Environment)** में उनका क्रमिक विकास हुआ। यह प्रक्रिया आधुनिक **इन-विट्रो फर्टिलाइजेशन (In Vitro Fertilization – IVF)**, **टेस्ट ट्यूब बेबी टेक्नोलॉजी (Test Tube Baby Technology)** और यहां तक कि **क्लोनिंग (Cloning)** की अवधारणा से अत्यंत साम्य रखती है। वे मटके आज की भाषा में **इनक्यूबेटर्स (Incubators)** या **आर्टिफिशियल वॉम्ब (Artificial Womb)** कहे जा सकते हैं, जबकि मांसपिंड का विभाजन स्पष्ट रूप से **स्टेम सेल टेक्नोलॉजी (Stem Cell Technology)** और **एम्ब्रायोलॉजी (Embryology)** की ओर संकेत करता है। आज के वैज्ञानिक 2026 में **एक्टोजेनेसिस (Ectogenesis)** अर्थात् शरीर के बाहर भ्रूण विकास पर शोध कर रहे हैं, किंतु महाभारत काल में भारतीय ऋषियों ने इस तकनीक को व्यवहारिक रूप से सिद्ध कर दिया था। इस दृष्टि से कौरवों को विश्व के प्रथम **कृत्रिम रूप से विकसित मानव (Artificially Developed Humans)** या **प्रोटो-क्लोन्स (Proto-Clones)** कहा जा सकता है, जो यह प्रमाणित करता है कि प्राचीन भारत का ज्ञान **जेनेटिक्स (Genetics)**

और **भ्रूण विज्ञान (Embryonic Science)** में अपने समय से कहीं अधिक उन्नत और गहन था।

महाभारत के उपरांत **लुप्त ज्ञान (Lost Knowledge)** और **कलियुग की वास्तविकता (Reality of Kaliyuga)** का प्रश्न स्वाभाविक रूप से मन में उठता है कि यदि प्राचीन भारत के पास इतनी उन्नत **तकनीकी क्षमता (Advanced Technological Capability)**, **विनाशकारी अस्त्र-शस्त्र प्रणाली (Weapon Systems)** और गहन **वैज्ञानिक-आध्यात्मिक बोध (Scientific-Spiritual Understanding)** था, तो वह सब आज दृश्य रूप में उपलब्ध क्यों नहीं है। इसका उत्तर स्वयं महाभारत के विनाशकारी अंत में निहित है। कुरुक्षेत्र युद्ध केवल एक राजनीतिक संघर्ष नहीं था, बल्कि एक **सभ्यतागत विध्वंस (Civilizational Collapse)** था, जिसने तत्कालीन समाज की **ज्ञान-परंपरा (Knowledge Tradition)**, **वैज्ञानिक संस्थान (Scientific Institutions)** और **टेक्नोलॉजिकल इन्फ्रास्ट्रक्चर (Technological Infrastructure)** को जड़ से हिला दिया। असंख्य ऋषि, आचार्य और वैज्ञानिक, जिनके पास इन अस्त्रों के **निर्माण सूत्र (Manufacturing Protocols)**, **लॉन्च सीक्वेंस (Launch Sequences)** और **कंट्रोल मैकेनिज़्म (Control Mechanisms)** का ज्ञान था, या तो युद्ध में नष्ट हो गए या उन्होंने मानवता पर पड़े उसके दुष्परिणामों को देखकर इस ज्ञान को सार्वजनिक उपयोग से हटा लिया। परिणामस्वरूप, इस शक्ति को जानबूझकर **एन्क्रिप्टेड नॉलेज (Encrypted Knowledge)** के रूप में **क्लिष्ट संस्कृत श्लोकों (Esoteric Sanskrit Verses)**, मंत्रों और प्रतीकात्मक कथाओं में छिपा दिया गया, ताकि नैतिक पतन से ग्रस्त **कलियुगी मानव (Morally Degenerated Humanity)** इसका दुरुपयोग न कर सके। जैसे आधुनिक युग में **ओपनहाइमर (Oppenheimer)** ने परमाणु हथियार के निर्माण के पश्चात पश्चाताप

व्यक्त किया, वैसे ही हमारे पूर्वजों ने पहले ही समझ लिया था कि यदि यह तकनीक गलत हाथों में गई, तो **मानव सभ्यता का सर्वनाश (Annihilation of Civilization)** निश्चित है। इसी कारण ब्रह्मास्त्र जैसे हथियारों को **रिकॉल करने की विधि (Recall Mechanism)** और विमान शास्त्र जैसे ग्रंथ इतिहास की धूल में विलीन हो गए। यह ज्ञान नष्ट नहीं हुआ, बल्कि आज भी वेदों, उपनिषदों और पुराणों में **कोडेड लैंग्वेज (Coded Language)** में विद्यमान है, जिसे समझने के लिए आधुनिक विज्ञान को नई **डिकोडिंग दृष्टि (Decoding Perspective)** विकसित करनी होगी। महाभारत की तकनीक कोई मिथक नहीं, बल्कि भारत के **गौरवशाली वैज्ञानिक इतिहास (Glorious Scientific Heritage)** का दस्तावेज है, जो सिद्ध करता है कि भारत विज्ञान और आध्यात्म के **समन्वित मॉडल (Integrated Model)** का केंद्र रहा है। आज जब विश्व **एआई (Artificial Intelligence)**, **बायो-वेपन्स (Bioweapons)** और वैश्विक युद्ध के मुहाने पर खड़ा है, तब यह अतीत हमें सिखाता है कि शक्ति का वास्तविक अर्थ केवल विनाश नहीं, बल्कि **संतुलन (Balance)** और **धर्मसंगत नियंत्रण (Ethical Regulation)** है। 2025 का भारत पुनः अपनी खोई हुई पहचान को खोज रहा है, जहाँ **इसरो (ISRO)** के अंतरिक्ष अभियानों और आधुनिक मिसाइल तकनीक में उस प्राचीन ज्ञान की प्रतिध्वनि स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

12.9 “सोनार स्कैनिंग और कार्बन डेटिंग के आलोक में द्वारका: प्राचीन भारतीय नगर सभ्यता का पुनर्पाठ”

समुद्र की गहराइयों में स्थित **द्वारका नगरी (Submerged Dwarka City)** केवल एक पौराणिक कल्पना नहीं, बल्कि **पुरातात्विक अनुसंधान (Archaeological Research)** और **समुद्री अन्वेषण (Marine Exploration)** का महत्वपूर्ण विषय बन चुकी है। अरब सागर में मिले अवशेष (**Remains**) जैसे प्राचीन दीवारें, स्तंभ और मृदांड एक

सुविकसित **नगर सभ्यता (Urban Civilization)** की ओर संकेत करते हैं। **सोनार स्कैनिंग (Sonar Scanning)** और **कार्बन डेटिंग (Carbon Dating)** जैसी आधुनिक तकनीकों से यह संभावना मजबूत होती है कि ये संरचनाएं अत्यंत **प्राचीन (Ancient)** और ऐतिहासिक रूप से **प्रामाणिक (Authentic)** हैं। यदि इनका संबंध महाभारत काल से सिद्ध होता है, तो यह खोज भारतीय सभ्यता की **वैश्विक महत्ता (Global Significance)** को नए सिरे से परिभाषित कर देगी।

महाभारत के अनुसार, श्री कृष्ण के पृथ्वी छोड़ने के तुरंत बाद द्वारका नगरी समुद्र में जलमग्न हो गई, जो कलियुग के आगमन का संकेत थी। **विष्णु पुराण** और महाभारत के श्लोक इस घटना की पुष्टि करते हैं, जिसमें बताया गया है कि कैसे समुद्र ने भगवान कृष्ण की राजधानी को निगल लिया।

द्वारका के जलमग्न होने से संबंधित श्लोक/संदर्भ:

"यस्मिन्नेव दिने यातः कृष्णो दिवं गतः।
तस्मिन्नेव तदा नष्टा द्वारका च ममाच्युत॥"
(महाभारत, मौसल पर्व)

(जिस दिन श्री कृष्ण ने पृथ्वी छोड़ी, उसी दिन द्वारका नगरी समुद्र में विलीन हो गई)

समग्र रूप से यह व्याख्या यह प्रतिपादित करता है कि प्राचीन भारत में विज्ञान और अध्यात्म परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि एक **integrated techno-spiritual paradigm (समन्वित तकनीकी-आध्यात्मिक प्रतिमान)** के अंग थे, जहाँ शक्ति का उद्देश्य केवल **destruction (विनाश)** नहीं, बल्कि **cosmic balance (सार्वभौमिक संतुलन)**, **dharma preservation (धर्म-संरक्षण)** और **human evolution**

(मानव उत्कर्ष) था, एक ऐसा संदेश जो आधुनिक युग की अनियंत्रित तकनीकी प्रगति के बीच आज भी गहन प्रासंगिकता रखता है।

12.10 “वैदिक कालगणना और चेतना-केंद्रित ब्रह्मांड विज्ञान: न्यूरोसाइंस और भौतिकी के लिए दार्शनिक अंतर्दृष्टि”

श्रीमद्भागवत महापुराण में वर्णित ब्रह्मा-मोह-लीला, राजा मुचुकुन्द, राजा ककुद्भी और रेवती की कथा ब्रह्मांडीय समय-चेतना (Cosmic Time-Consciousness) के प्रसंग वैदिक काल-दर्शन (Vedic Philosophy of Time) की अत्यंत गूढ़ एवं बहु-स्तरीय व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। राजा मुचुकुन्द, जो सूर्यवंश के इक्ष्वाकु वंश के महापुरुष थे, देवताओं के अनुरोध पर देवलोक में असुरों के विरुद्ध दीर्घकाल तक युद्ध करते रहे। देवलोक में उनके लिए जो अवधि अल्प प्रतीत हुई, पृथ्वी पर वही सहस्रों वर्षों के समतुल्य सिद्ध हुई; लौटने पर उन्होंने पाया कि उनकी समस्त पीढ़ियाँ विलुप्त हो चुकी हैं। यह घटना श्रीमद्भागवत महापुराण (दशम स्कंध) के अनुसार है। यह त्रेता और द्वापर युग के बीच का समय था, जब कलियुग का आगमन हो रहा था।

नात्र पश्यामि यः कुर्यात् सर्वत्रोद्वेगवर्जनम्।

स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि ब्रह्मलोकमितस्ततः॥

(भावार्थ: इंद्रदेव ने कहा, हे राजन्! आपका कल्याण हो। अब बहुत समय बीत गया है, आपकी सारी प्रजा, रिश्तेदार और पीढ़ियाँ नष्ट हो चुकी हैं।)

यह घटना काल-प्रवाह की असमानता (Non-uniform Flow of Time) और लोक-भेदजन्य कालानुभूति (Realm-dependent Time Perception) की ओर संकेत करती है। गुफा से बाहर आने पर जीव-जंतुओं और मनुष्यों के लघु आकार को देखकर उन्हें ज्ञात हुआ कि युग-संक्रमण (Epochal Transition) घटित हो चुका है, त्रेता से द्वापर और आगे कलियुग का आगमन। वैदिक दृष्टि में यह केवल जैविक

परिवर्तन नहीं, बल्कि **युग-धर्म (Qualitative Ethos of an Age)** तथा **सामूहिक चेतना-स्तर (Collective Consciousness Level)** में आई अवनति (Degeneration) का द्योतक है।

श्रीमद्भागवत पुराण के दशम और नवम स्कन्ध में वर्णित ब्रह्मा-मोह-लीला, राजा मुचुकुन्द तथा राजा ककुद्भी-रेवती के प्रसंग वैदिक **काल-तत्त्व (Philosophy of Time)** की अत्यंत **सूक्ष्म (Subtle)** और **बहु-आयामी (multi-dimensional)** व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। **दशम स्कन्ध (१०.१३.४०-४१)** में जब ब्रह्मा - श्रीकृष्ण की लीला से मोहित होकर ग्वाल-बालों और बछड़ों को अपहृत कर लेते हैं, तब उनके लिए जो अवधि मात्र **क्षणिक (Momentary)** प्रतीत होती है, वही पृथ्वी पर एक वर्ष के समतुल्य बीत जाती है।

**तावदब्दं सुगं मेने तावत्कालमच्युतः ।
ब्रह्मन् प्रलोभ्य वत्सान् वत्सांश्च वत्सपान् ॥
यथा मयि प्रपन्नेऽद्य तावन्मात्रं क्षणं मृधु।
एवं वत्सरपर्यन्तं चक्रम्यन्तेऽर्भका वृथेति॥
(श्रीमद्भागवत १०.१३.४०-४१)**

(ब्रह्मा जी ने सोचा, "मेरे द्वारा इन बालकों को चुराए हुए अभी केवल एक 'क्षण' (ब्रह्मा जी के काल गणना के अनुसार) ही बीता है, किंतु पृथ्वी पर पूरा **एक वर्ष** बीत गया है।")

यह **काल-प्रत्यय का भ्रम (Cognitive Illusion of Time)** ब्रह्मा के अहंकार-भंजन (Ego-dissolution) का साधन बनता है, क्योंकि वे लौटकर देखते हैं कि सब कुछ यथावत् है, अर्थात् श्रीकृष्ण स्वयं ही प्रत्येक बालक और बछड़े के रूप में प्रकट थे। यहाँ समय कोई **रेखीय प्रवाह (Linear Flow)** नहीं, बल्कि **चेतना-आश्रित (Consciousness-dependent)** आयाम के रूप में चित्रित है।

यह घटना **श्रीमद्भागवत महापुराण (दशम स्कंध)** के अनुसार है। यह त्रेता और द्वापर युग के बीच का समय था, जब कलियुग का आगमन हो रहा था।

**नात्र पश्यामि यः कुर्यात् सर्वत्रोद्वेगवर्जनम्।
स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि ब्रह्मलोकमितस्ततः॥**

(इंद्रदेव ने कहा, हे राजन्! आपका कल्याण हो। अब बहुत समय बीत गया है, आपकी सारी प्रजा, रिश्तेदार और पीढ़ियां नष्ट हो चुकी हैं।)

राजा मुचुकुन्द, जो इक्ष्वाकु वंश के तेजस्वी सम्राट थे, देवताओं के आग्रह पर देवलोक में असुरों के विरुद्ध दीर्घकाल तक युद्धरत रहे। देवलोक में उनके लिए जो अवधि **अल्पकालिक (Brief Duration)** प्रतीत हुई, पृथ्वी पर वही सहस्रों वर्षों के समतुल्य सिद्ध हुई; लौटने पर उन्होंने पाया कि उनकी समस्त पीढ़ियाँ विलुप्त हो चुकी हैं। यह प्रसंग **काल-प्रवाह की असमानता (Non-uniform Flow of Time)** तथा **लोक-भेदजन्य कालानुभूति (Realm-dependent Time Perception)** का सशक्त उदाहरण है। गुफा से बाहर आकर जब उन्होंने मनुष्यों और प्राणियों के लघु आकार को देखा, तब उन्हें ज्ञात हुआ कि युग-संक्रमण (Epochal Transition) घटित हो चुका है त्रेता से द्वापर और आगे कलियुग का आगमन। वैदिक दृष्टि में यह केवल भौतिक परिवर्तन नहीं, बल्कि **युग-धर्म (Qualitative Ethos of an Age)** तथा **सामूहिक चेतना-स्तर (Collective Consciousness Level)** में आई अवनति (Degeneration) का द्योतक है। यह **लोकान्तर-कालभेद (Inter-realm Temporal Differential)** का उदाहरण है। गुफा से बाहर आकर जब उन्होंने जीवों की **दैहिक संकुचन (Physiological Diminution)** तथा युग-परिवर्तन को देखा, तब उन्हें ज्ञात हुआ कि त्रेता से द्वापर और आगे कलियुग का संक्रमण हो चुका है। वैदिक दृष्टि में यह केवल भौतिक परिवर्तन नहीं, बल्कि **चेतन-स्तर की अवनति**

(Degeneration of Consciousness-Level) और धर्म-गुण-हास (Moral-Qualitative Decline) का द्योतक है।

श्रीमद्भागवत पुराण के नवम स्कन्ध (९.३.३३-३५) में राजा ककुद्भी जब रेवती के लिए वर-चयन हेतु ब्रह्मलोक जाते हैं, तो वहाँ का अल्पकाल पृथ्वी पर अनेक युगों में परिणत हो जाता है।

ततोऽनुरूपमुलक्ष्य ररामं स पुनः कुकुद्भी ।
प्रायच्छत् कन्यां तां तस्मै रेवतीं रेवतीपतिः ॥
ककुद्भी स च राजा तद्भार्यया हलायुधः ।
रराज हरिसंकाशो रेवत्या च शुचिस्मितया ॥
बलस्त्वतनुतां तावद् वीक्ष्य राजात्मजाम् ।
सीरेणानमयामास सा बभूव समोच्छ्रया ॥
(श्रीमद्भागवतम् ९.३.३३-३५)

(बलरामजी ने रेवती के अत्यधिक लंबे कद को देखकर तब उन्होंने अपने हल के अग्रभाग से उन्हें नीचे की ओर दबाया (नमायामास), जिससे उनका कद बलराम जी के बराबर हो गया)

इसी प्रकार, नवम स्कन्ध में वर्णित राजा ककुद्भी और रेवती का प्रसंग भी **काल-सापेक्षता (Temporal Relativity)** की दार्शनिक अभिव्यक्ति है। ब्रह्मलोक में अल्प प्रतीक्षा के पश्चात् पृथ्वी पर लौटने तक अनेक **चतुर्युग (Fourfold Yuga Cycles)** व्यतीत हो चुके थे और द्वापर युग चल रहा था। रेवती का अत्यधिक **दीर्घकाय स्वरूप (Gigantic Anthropometry)** युगान्तर का संकेत देता है कि विभिन्न युगों में जीवों की **दैहिक संरचना (Physiological Constitution)** और **ऊर्जात्मक पर्यावरण (Energetic Milieu)** भिन्न होते हैं। जब बलरामजी ने अपने हल (Hala) के अग्रभाग से रेवती को संकुचित कर युगानुकूल बनाया, तो इसे **युगानुकूलन (Epochal Adaptation)** तथा **दैहिक-सामंजस्य**

(Physiological Harmonization) का प्रतीकात्मक संकेत भी माना जा सकता है अर्थात् उच्चतर काल-चक्र से निम्नतर काल-चक्र में प्रवेश हेतु देह का अनुकूल होना आवश्यक है। यह घटना प्रतीकात्मक रूप से **युगानुकूलन (Epochal Adaptation)** और **जैविक-सामंजस्य (Biological Harmonization)** की दार्शनिक अवधारणा को व्यक्त करती है, अर्थात् प्रत्येक युग की भौतिक एवं ऊर्जात्मक परिस्थितियाँ भिन्न होती हैं, जिनके अनुरूप देह-रचना (Body-structure) परिवर्तित होती है। रेवती के दीर्घकाय स्वरूप को केवल जैविक विकास (Biological Evolution) तक सीमित न मानकर, उसे **चेतन-स्तर की उच्चता (Elevation of Consciousness)** और युग-विशेष की सूक्ष्म ऊर्जा (Subtle Energetic Environment) से भी जोड़ा जा सकता है। आध्यात्मिक परिप्रेक्ष्य में प्रत्येक युग की **गुणात्मक प्रकृति (Qualitative Nature of Time)** भिन्न होती है, और उसी के अनुसार जीवों की आयु, कद और चेतना में परिवर्तन होता है। आध्यात्मिक परिप्रेक्ष्य में काल केवल घड़ी की गणना नहीं, बल्कि सृष्टि, स्थिति और **प्रलय का नियामक (Cosmic Regulator)** है।

इस प्रकार ये पौराणिक आख्यान केवल धार्मिक कथाएँ नहीं, बल्कि **ब्रह्माण्डीय काल-गणित (Cosmic Chronometry)**, **आयामी भिन्नता (Dimensional Variance)** और **चेतन-प्रधान ब्रह्मांड-विज्ञान (Consciousness-centric Cosmology)** की दार्शनिक प्रस्तुति हैं। आधुनिक परमाण्विक विज्ञान जहाँ समय की सूक्ष्मतम इकाइयों को मापने का प्रयास करता है, वहीं वैदिक दृष्टि समय को परम चेतना की लीला-शक्ति के रूप में स्वीकार कर उसे व्यापक आध्यात्मिक परिप्रेक्ष्य में स्थापित करती है।

आधुनिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में देखें तो **अल्बर्ट आइंस्टीन (Albert Einstein)** द्वारा प्रतिपादित **(सापेक्षता-सिद्धांत)** विशेषतः **(General Theory of Relativity)** में वर्णित **काल-विस्तार (Time Dilation)**

इन प्रसंगों के साथ **वैचारिक साम्य (Conceptual Resonance)** प्रस्तुत करता है। आधुनिक भौतिकी के अनुसार समय कोई **निरपेक्ष सत्ता (Absolute Entity)** नहीं, बल्कि **सापेक्ष आयाम (Relative Dimension)** है, जो **वेग (Velocity)** और **गुरुत्वाकर्षणीय क्षेत्र (Gravitational Field)** से प्रभावित होता है। यदि कोई व्यक्ति भिन्न **स्पेस-टाइम संरचना (Spacetime Framework)** या **उच्च-आयामी (Higher-dimensional)** संदर्भ में स्थित हो, तो लौटने पर उसे पृथ्वी पर अधिक काल व्यतीत हुआ प्रतीत हो सकता है। देवलोक या ब्रह्मलोक को यदि रूपकात्मक रूप से भिन्न आयामी लोक माना जाए, तो वहाँ का समय-पैमाना पृथ्वी से भिन्न होना सैद्धांतिक रूप से असंगत नहीं है।

तथापि, जहाँ आधुनिक विज्ञान समय को मुख्यतः **भौतिक परिमाण (Physical Parameter)** के रूप में मापता है, वहीं वैदिक आध्यात्मिक विज्ञान समय को **काल-शक्ति (Divine Potency of Time)** ईश्वर की एक नियामक शक्ति मानता है, जो **सृष्टि, स्थिति और लय (Creation, Sustenance, Dissolution)** का संचालन करती है। इस दृष्टि से मुचुकुन्द और ककुद्गी के प्रसंग केवल ऐतिहासिक आख्यान नहीं, बल्कि **ब्रह्मांडीय व्यवस्था (Cosmic Order)** और **बहु-स्तरीय यथार्थ (Multi-layered Reality)** के संकेतक हैं। किन्तु यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि जहाँ आधुनिक विज्ञान अभी केवल गणितीय समीकरणों और प्रायोगिक अवलोकनों के माध्यम से समय की सापेक्षता को समझ पा रहा है, वहीं वैदिक **आध्यात्मिक विज्ञान (Vedic Spiritual Science)** सहस्राब्दियों पूर्व ही **लोक-भेद (Inter-Planetary Realms)**, और **काल-चक्र (Cosmic Time Cycles)** का वर्णन कर चुका है। आधुनिक विज्ञान जहाँ अभी भी ब्रह्मांड की जटिलताओं को क्रमशः उद्घाटित कर रहा है, वहीं यह प्रसंग यह आभास कराता है कि प्राचीन आध्यात्मिक परंपराएँ समय और अस्तित्व के रहस्यों को अत्यंत गूढ़ किन्तु सारगर्भित रूप में पहले ही अभिव्यक्त कर चुकी थीं।

अध्याय 13

“जब इन्द्रप्रस्थ ने ‘स्मार्ट सिटी’ को भी मात दे दी: महाभारत के बीस चमत्कार और मय दानव की प्राचीन इंजीनियरिंग कंपनी”

वाल्मीकि महाभारत में वर्णित **इन्द्रप्रस्थ की मायासभा** केवल एक राजकीय भव्यता का प्रतीक नहीं, बल्कि प्राचीन भारतीय **स्थापत्य-सौंदर्य विज्ञान (Architectural Aesthetics and Engineering Science)** का अद्वितीय उदाहरण है। मयासुर द्वारा निर्मित यह नगर **दृश्य-भ्रम (Visual Illusion)**, **प्रकाश-संचालन (Light Manipulation)**, **जल-स्थल (Hydro-Architectural)** संयोजन और **रत्नजटित प्रासाद (Gem-Encrusted Palaces)** के माध्यम से केवल वैभव का प्रदर्शन नहीं करता, बल्कि **उन्नत ऑप्टिकल इंजीनियरिंग (Advanced Optical Engineering)**, **भौतिक विज्ञान (Physics of Light)** और **मानसिक-प्रेरक तंत्र (Cognitive Allurement Mechanisms)** को उद्घाटित करता है।

13.1 “इन्द्रप्रस्थ की मायासभा: प्राचीन भारतीय स्थापत्य-भ्रम और आधुनिक ऑप्टिकल विज्ञान”

महाभारत के आदिपर्व (अध्याय 219-220) में, **मयासुर (मय दानव)** द्वारा खांडवप्रस्थ वन को जलाए जाने के बाद पांडवों के लिए **इंद्रप्रस्थ** के भव्य निर्माण का वर्णन है। श्रीकृष्ण और अर्जुन की रक्षा के प्रति कृतज्ञ होकर, मय दानव ने युधिष्ठिर के लिए एक अद्वितीय ‘मयसभा’ (महल) और नगर बसाया। यह नगर स्वर्ग के समान सुंदर और दिव्य था।

**अथ यत्नं कुरुष्व त्वं सभायां भ्रातृभिः सह।
मत्कृतेनानुभावेन दिव्येन यदुपुंगव॥**

(महाभारत, सभापर्व 1.6 - सांकेतिक, मय दानव का कृत्य)

(अर्थ: मय दानव ने कहा था: "हे यदुश्रेष्ठ! मेरे द्वारा किए गए इस मय (दिव्य) सभा के निर्माण से आप अपने भाइयों के साथ राज करें।")

मायासभा का **पहला रहस्य** था **"ठोस जल का भ्रम"**, ऐसा स्फटिक फर्श जो दृष्टि को जलराशि के समान प्रतीत हो। इसके पीछे जो वैज्ञानिक सिद्धांत माना जाता है वह है **पूर्ण आंतरिक परावर्तन (Total Internal Reflection)** तथा **अपवर्तन (Refraction)** का सूक्ष्म नियंत्रण। मय दानव ने नीलम और काले **स्फटिक (Crystal)** का उपयोग किया, जिनका **अपवर्तनांक (Refractive Index)** **जल (लगभग 1.33)** और **काँच/क्वार्ट्ज (लगभग 1.5)** के निकट होता है। जब प्रकाश किरण किसी माध्यम से दूसरे माध्यम में प्रवेश करती है तो उसकी दिशा बदलती है, इसे **स्नेल का नियम (Snell's Law)** द्वारा व्यक्त किया जाता है। यदि कोण विशेष सीमा से अधिक हो जाए तो प्रकाश पूरी तरह भीतर ही परावर्तित होता है, जिसे पूर्ण आंतरिक परावर्तन कहते हैं। यही सिद्धांत आधुनिक **फाइबर ऑप्टिक्स (Fiber Optics)** में प्रयुक्त होता है, जहाँ प्रकाश संकेत लंबी दूरी तक बिना बाहर निकले संचरित होते हैं।

मायासभा का यह प्रसंग **महाभारत के सभापर्व (द्वितीय पर्व) अध्याय (४३-४५)** में वर्णित है।

**स्फाटिकेनावृतां भूमिं सलिलाभामिवाभवत्।
सलिलं चापि तत्सर्वं स्थलगं प्रतिभाति हि॥**

(वह भूमि स्फटिक से आच्छादित होकर जल के समान प्रतीत होती थी,
और जहाँ जल था वह स्थल जैसा दिखता था।)

तत्रापश्यद् दुर्योधनः स्थलं स्थलं यथा।
स्थलं चापि जलाभासं मोहात् स समपद्यत॥

स जलं प्रविवेशाशु वस्त्राणि समुच्छितान्।

(दुर्योधन ने वहाँ जल को स्थल समझ लिया और स्थल को जल के समान देखा; मोहवश वह भ्रमित हो गया। वह शीघ्र ही जल में गिर पड़ा और पाण्डव उसे देखकर हँसने लगे।)

सतह पर **नैनो-पॉलिशिंग (Nano-Polishing)** और **सूक्ष्म असमतलता नियंत्रण (Microscopic Surface Irregularity Management)** के माध्यम से प्रकाश का परावर्तन **दर्पण-समान सुसंगत (Specular Reflection)** बना। **प्रकाश-व्यवस्था (Light Layout)** की रणनीतिक योजना ने अलग-अलग **दर्शक कोण (Viewing Angles)** से आने वाली किरणों को नियंत्रित किया, जिससे "ठोस जल" का भ्रम अधिक सजीव प्रतीत हुआ। आधुनिक वास्तुकला में भी **ग्रेनाइट, कार्टेज और ओनिक्स फर्शों** पर नियंत्रित प्रकाश और उच्च पॉलिशिंग का उपयोग कर **वेट-लुक (Wet-Look) प्रभाव** उत्पन्न किया जाता है, जो मायासभा के विज्ञान-संवर्धित प्रभाव से साम्य रखता है।

हालाँकि आधुनिक भौतिकी के अनुसार केवल अपवर्तनांक को **"पानी जैसा"** बना देना पर्याप्त नहीं होता; वास्तविक प्रभाव सतह की चिकनाई, परिवेशी प्रकाश, पृष्ठभूमि के रंग, और दर्शक के दृष्टिकोण (**Viewing Angle**) के संयोजन से उत्पन्न होता है। इसलिए यह कहना अधिक वैज्ञानिक होगा कि मायासभा ऐसी संरचना उन्नत **ऑप्टिकल इंजीनियरिंग (Optical Engineering)**, परावर्तक गुणों के सूक्ष्म नियंत्रण और प्रकाश-व्यवस्था की योजनाबद्ध रचना का परिणाम है, ठीक वैसे ही जैसे आज के संग्रहालय, लग्जरी होटल या साइंस इंस्टॉलेशन में प्रकाश-आधारित भ्रम रचे जाते हैं। इस प्रकार मायासभा का "ठोस जल" प्रभाव

आधुनिक विज्ञान के सिद्धांतों से असंगत नहीं, बल्कि प्रकाशिकी (Optics) के सुविचारित प्रयोग की एक सैद्धांतिक संभावना के रूप में समझा जा सकता है।

13.2 “मायासभा का ‘अदृश्य जल’: प्राचीन हाइड्रोलिक अभियांत्रण का वैज्ञानिक संकेत”

मायासभा का दूसरा रहस्य था “अदृश्य जल” केवल सौंदर्य-बोध या प्राचीन स्थापत्य-शिल्प का आकर्षण नहीं था, बल्कि यह एक उन्नत हाइड्रोलिक अभियांत्रण (Hydraulic Engineering) और फ्लुइड डायनेमिक्स (Fluid Dynamics) की वास्तविक प्रायोगिक अवधारणा का प्रतिनिधित्व करता था। इस प्रणाली में जल के प्रवाह को पूर्णतः लेमिनर फ्लो (Laminar Flow) के सिद्धांत अनुसार व्यवस्थित किया गया था, जिससे द्रव की परतें एक-दूसरे में बिना अशांति या मिश्रण के समानांतर रूप से बहती थीं। लेमिनर प्रवाह की विशिष्टता यह है कि प्रत्येक जल-कण अपनी परिभाषित परत में स्थिर गति से आगे बढ़ता है और सतह पर बनने वाला तनाव (Surface Tension) अत्यंत समरस एवं स्थिर होता है। इसके विपरीत टरबुलेंट फ्लो (Turbulent Flow) में जल अस्थिर, भंवरयुक्त और बुलबुलेदार प्रवाह में परिवर्तित हो जाता है, जिससे सतह पर दृष्टिगत अशांति उत्पन्न होती है।

इस प्रवाह की प्रकृति को वैज्ञानिक दृष्टि से रेनॉल्ड्स संख्या (Reynolds Number) द्वारा मापा जाता है। यदि रेनॉल्ड्स संख्या न्यूनतम हो, तो प्रवाह शांत, परतदार और दृष्टिगत रूप से स्थिर रहता है, जबकि उच्च मान अशांति और टरबुलेंस का सूचक होता है। मय दानव ने इस जटिल हाइड्रोलिक तंत्र को इस प्रकार डिजाइन किया कि जल की आपूर्ति नियंत्रित, समान और अत्यंत धीमी गति से होती, जिससे सतह पर कोई कंपन (Vibration) या तरंग पैदा न हो। कुंड के तल में स्थित सूक्ष्म छिद्रों

(Micro-perforations) से जल का समान वितरण सुनिश्चित किया गया, और सतह पर परावर्तक ऊर्जा (**Reflective Energy**) और दर्पण-समान चमक (**Specular Reflection**) उत्पन्न हुई, जो आधुनिक ऑप्टिकल अभियांत्रण (**Optical Engineering**) के सिद्धांतों के अनुरूप है।

सभापर्व (द्वितीय पर्व), प्रायः अध्याय ४४-४५ प्रस्तुत है:

उदकानि च तत्रासन् न दृश्यन्ते कदाचन।

दृश्यन्ते च स्थला यत्र सलिलं तत्र भारत॥

तत्रापश्यद् दुर्योधनः स्थलं सलिलसन्निभम्।

सलिलं च स्थलगं दृष्ट्वा मोहं परममागमत्॥

(वहाँ ऐसे जलाशय थे जो दिखाई नहीं देते थे, और जहाँ जल था वह स्थल के समान प्रतीत होता था। दुर्योधन ने स्थल को जल के समान और जल को स्थल के समान देखकर महान् मोह को प्राप्त किया।)

यह स्पष्ट करता है कि मायासभा में जल का दृष्टि-भ्रम (**Visual Illusion**) केवल सौंदर्यात्मक नहीं, बल्कि सटीक भौतिक नियंत्रित प्रवाह का परिणाम था। आधुनिक विज्ञान में समान अवधारणा इन्फिनिटी एज पूल (**Infinity Edge Pools**) और मिरर पूल डिज़ाइन (**Mirror Pool Design**) में देखी जाती है, जहाँ जल को इस प्रकार व्यवस्थित किया जाता है कि सतह पूर्णतः समतल दिखे और आकाश का प्रतिबिंब स्पष्ट रूप से परावर्तित हो। हालाँकि पूर्ण शून्य-भ्रमण (Zero Vibration) व्यावहारिक रूप से असंभव है, परंतु नियंत्रित द्रव-गतिकी (**Controlled Hydrodynamics**) और अत्याधुनिक पंप एवं दबाव नियंत्रण प्रणाली (**Advanced Pump and Pressure Regulation Systems**) से अत्यंत स्थिर जल-पटल निर्मित किया जा सकता है।

इस प्रकार मायासभा का "अदृश्य जल" केवल स्थापत्य-सौंदर्य का प्रदर्शन नहीं, बल्कि **प्राचीन भारतीय वैज्ञानिक संवेदनशीलता** (Ancient Indian Scientific Sensibility) और **दृश्य-भ्रम अभियांत्रिकी** (Optical Illusion Engineering) का उत्कृष्ट उदाहरण है, जिसमें **हाइड्रोलिक नियंत्रण, सतही तनाव प्रबंधन और दर्शक के दृष्टिकोण के अनुसार प्रकाशीय परावर्तन** (View-Dependent Reflective Engineering) का सूक्ष्म समन्वय निहित है। यह सिद्धांत आधुनिक विज्ञान और स्थापत्य दोनों में अप्रत्यक्ष रूप से पुनः प्रकट होता है, जो दर्शाता है कि भारतीय प्राचीन सभ्यता में **कला, विज्ञान और तकनीक** का संयोजन अत्यंत विकसित स्तर पर मौजूद था।

13.3 "मायासभा की 'अदृश्य दीवारें': प्राचीन फ्रेमलेस काँच स्थापत्य और प्रकाशीय पारदर्शिता का रहस्य"

मायासभा का तीसरा चमत्कार था "अदृश्य दीवारें" ऐसे द्वार जो खुले प्रतीत होते थे, परंतु वहाँ पारदर्शी अवरोध उपस्थित होता था। मायासभा में उच्च शुद्धता वाले **क्वार्ट्ज ग्लास (High Grade Quartz Glass)** या अत्यंत पारदर्शी **सिलिका काँच (Fused Silica Glass)** का इस्तेमाल किया गया था। क्वार्ट्ज का **प्रकाशीय पारदर्शिता स्तर (Optical Transparency Level)** सामान्य काँच की तुलना में अधिक होता है, क्योंकि इसमें अशुद्धियाँ अत्यल्प (low level of doping) होती हैं, जिससे प्रकाश का **प्रकीर्णन (Scattering)** न्यूनतम होता है। मायासभा में ऐसे काँच को अत्यंत सटीकता से काटकर बिना फ्रेम के जोड़ा गया था, जिस से की यह **फ्रेमलेस आर्किटेक्चर (Frameless Architecture)** का उदाहरण बनता था, जहाँ सहारा देने वाली संरचना छिपी रहती थी और सतह निरंतर प्रतीत होती थी।

मायासभा के "अदृश्य द्वार" अथवा "अदृश्य दीवार" का प्रसंग भी महाभारत के सभापर्व (द्वितीय पर्व) संस्करणानुसार अध्याय ४३-४५ में वर्णित है।

यत्र द्वारं न तद्द्वारं द्वारं यत्र न दृश्यते।
भित्तिर्यत्र न सा भित्तिर्भित्तिर्यत्र न विद्यते॥

तत्र मोहं समापन्नो धार्तराष्ट्रो विशांपते।
अदृष्ट्वा मार्गमागच्छन् भित्तौ समभिपतत्॥

(जहाँ द्वार नहीं था वहाँ द्वार प्रतीत होता था, और जहाँ द्वार था वह दिखाई नहीं देता था। जहाँ दीवार नहीं थी वहाँ दीवार का आभास होता था, और जहाँ दीवार थी वह अदृश्य थी। इसी भ्रम में धृतराष्ट्रपुत्र (दुर्योधन) मार्ग न देख सका और दीवार से टकरा गया।)

आधुनिक स्थापत्य में भी बड़े-बड़े कॉर्पोरेट भवनों और संग्रहालयों में **स्ट्रक्चरल ग्लेज़िंग (Structural Glazing)** तकनीक का प्रयोग किया जाता है, जिसमें काँच को धातु फ्रेम के बिना विशेष रासायनिक चिपकने वाले पदार्थों से जोड़ा जाता है, जिससे जोड़ दृष्टिगोचर नहीं होते। इसी प्रकार आज का **Gorilla Glass** रासायनिक रूप से सुदृढ़ (Chemically Strengthened) काँच है, जो पतला होने पर भी अत्यंत मजबूत और पारदर्शी होता है; वहीं संग्रहालयों में प्रयुक्त **म्यूजियम ग्लास (Museum Glass)** पर विशेष **एंटी-रिफ्लेक्टिव कोटिंग (Anti-Reflective Coating)** की जाती है, जिससे प्रतिबिंब लगभग समाप्त हो जाता है और काँच "अदृश्य" सा प्रतीत होता है।

मायासभा में अत्यंत शुद्ध स्फटिक या क्वार्ट्ज पैनलों का प्रयोग किया था, जिनकी सतह पर उत्कृष्ट **ऑप्टिकल पॉलिशिंग (Optical Polishing)** की गई और प्रकाश व्यवस्था को इस प्रकार नियोजित किया गया था कि परावर्तन न्यूनतम हो, तो वास्तव में ऐसा भ्रम उत्पन्न हो गया कि मार्ग खुला

है जबकि वहाँ ठोस अवरोध मौजूद था। आधुनिक **ऑप्टिकल इंजीनियरिंग (Optical Engineering)** भी यही सिद्ध करती है कि पारदर्शिता केवल पदार्थ पर निर्भर नहीं करती, बल्कि प्रकाश के कोण, पृष्ठभूमि और दर्शक की स्थिति पर भी निर्भर करती है। इस प्रकार “अदृश्य दीवार” की अवधारणा उन्नत सामग्री विज्ञान (**Advanced Material Science**) और सूक्ष्म स्थापत्य-प्रौद्योगिकी का परिणाम मानी जा सकती है।

13.4 “महाभारत की मायासभा के ‘आभासी दरवाजे’: ऑप्टिकल कैमोफ्लॉज और परावर्तित प्रकाश अभियांत्रण का रहस्य”

मायासभा का चौथा चमत्कार था “आभासी दरवाजे” ऐसी संरचनाएँ जहाँ ठोस दीवार दृष्टि में स्पष्ट प्रतीत होती थी, किंतु वास्तव में वहाँ रिक्त स्थान होता था और व्यक्ति उसे आर-पार कर सकता था। महाभारत के सभापर्व (अध्याय ४३-४५) में इस घटना का विवरण मिलता है, जिसमें दर्शनीय भ्रम (Perceptual Illusion) के कारण लोग मार्ग और अवरोध को अंतर नहीं समझ पाते थे (Mahabharata 2006, 2:45). विज्ञान-संवर्धित दृष्टि से इसे **ऑप्टिकल कैमोफ्लॉज (Optical Camouflage)** अथवा **दृश्य-छलावरण (Visual Concealment)** के रूप में समझा जा सकता है। मायासभा के भवनों की सतह पर उसके पीछे या आसपास के दृश्य का सटीक प्रतिबिंब इस प्रकार आरोपित किया जाता था कि वह परिवेश का अभिन्न भाग प्रतीत होता था। इससे मानव मस्तिष्क इसे ठोस दीवार के रूप में ग्रहण कर लेता था।

इसके लिए जटिल **परवलयिक दर्पण (Parabolic Mirrors)**, समतल दर्पणों की श्रृंखला, तथा नियंत्रित **प्रकाश-प्रक्षेपण प्रणाली (Light Projection System)** का संयोजन बनाया गया था। परवलयिक दर्पणों (**Parabolic Mirrors**) की विशेषता यह है कि वे समानांतर आने वाली

किरणों को एक बिंदु पर केंद्रित (focus) कर सकते हैं या किसी बिंदु से निकलने वाली किरणों को समानांतर (parallel) बना सकते हैं, जिससे दृश्य का **विकृति-रहित पुनर्निर्माण (distortion-free reconstruction)** संभव होता है।

मायासभा के “आभासी द्वार” (जहाँ दीवार प्रतीत होती थी परंतु मार्ग खुला था) का उल्लेख महाभारत संस्करणानुसार (अध्याय ४३-४५) के सभापर्व में मिलता है।

भित्तिर्भवति यत्रैव न सा भित्तिः कथंचन।

द्वारं च दृश्यते यत्र तत्र मार्गो न विद्यते॥

यत्र मार्गो न दृश्येत भित्तिरिव प्रकाशते।

तत्रान्ये समतिक्रामन् मूढा मोहसमन्विताः॥

(जहाँ भित्ति (दीवार) प्रतीत होती थी, वहाँ वास्तव में भित्ति नहीं थी; और जहाँ द्वार दिखता था, वहाँ मार्ग नहीं था। जहाँ मार्ग था वह दीवार जैसा दिखता था। इस प्रकार लोग मोह से भ्रमित होकर उलझ जाते थे।)

इस तकनीक के लिए **जटिल परवलयिक दर्पण (Parabolic Mirrors)**, **समतल दर्पणों की श्रृंखला (Planar Mirror Arrays)**, तथा **नियंत्रित प्रकाश-प्रक्षेपण प्रणाली (Light Projection System)** का संयोजन किया गया था। परवलयिक दर्पण समानांतर आने वाली किरणों को एक बिंदु पर केंद्रित (focus) कर सकते हैं या किसी स्रोत बिंदु से निकलने वाली किरणों को समानांतर (parallel) बना सकते हैं, जिससे दृश्य का **विकृति-रहित पुनर्निर्माण (distortion-free reconstruction)** संभव होता है। यह तकनीक आधुनिक **स्टेल्थ टेक्नोलॉजी (Stealth Technology)** और **एडैप्टिव सैन्य कैमोफ्लॉज (Adaptive Camouflage)** की आधारभूत अवधारणा से साम्य रखती है, जिसमें वस्तु

के पीछे के दृश्य को प्रक्षेपित कर उसे आंशिक रूप से अदृश्य बनाया जाता है (Pendry et al. 2006; Schurig et al. 2006).

मायासभा में "आभासी द्वार" के माध्यम से निर्मित दृश्य-भ्रम केवल वास्तुशिल्पीय कौशल नहीं था, बल्कि यह **मानसिक-संज्ञानात्मक (Cognitive) भ्रम** उत्पन्न करने हेतु डिजाइन किया गया था। **नियंत्रित प्रकाशिकी और ज्यामितीय दर्पण व्यवस्था (Controlled Optics और geometric mirror arrangement)** के संयोजन द्वारा मानव दृष्टि-प्रणाली की सीमाओं का कुशल उपयोग किया गया, जिससे मार्ग अवरोध के रूप में दिखाई देता, परंतु वास्तविकता में वह खुला होता। यह तकनीक आज के **मेटामटेरियल्स (Metamaterials)** और **सेंसर-आधारित प्रोजेक्शन सिस्टम** में भी लागू होती है, जैसे विज्ञान संग्रहालयों में दर्शकों को ठोस अवरोध का भ्रम उत्पन्न करना अत्यंत **शुद्ध क्वार्ट्ज या फ्यूज्ड सिलिका ग्लास (High-Grade Quartz/ Fused Silica Glass)** का उपयोग सह पर प्रकाश के **न्यूनतम प्रकीर्णन (Minimal Scattering)** और **उच्च पारदर्शिता (High Optical Transparency)** के लिए किया गया। सतहों की **उत्कृष्ट ऑप्टिकल पॉलिशिंग (Optical Polishing)** और प्रकाश व्यवस्था का समन्वय (Strategic Illumination) इस भ्रम को और अधिक प्रभावशाली बनाता था। आधुनिक संग्रहालय और स्थापत्य में इसी प्रकार की **स्ट्रक्चरल ग्लेज़िंग (Structural Glazing)** और **म्यूजियम ग्लास (Museum Glass)** पर **एंटी-रिफ्लेक्टिव कोटिंग (Anti-Reflective Coating)** का प्रयोग किया जाता है, ताकि अवरोध लगभग अदृश्य प्रतीत हों।

इस प्रकार, मायासभा का "आभासी दरवाजे" का चमत्कार उन्नत **ऑप्टिकल इंजीनियरिंग (Optical Engineering)**, **ज्यामितीय दर्पण विन्यास (Geometric Mirror Arrangement)** और **मानसिक-प्रभाव प्रौद्योगिकी (Cognitive Manipulation Technology)** का

सम्मिलित परिणाम था। यह दर्शाता है कि प्राचीन भारतीय वास्तुशिल्प केवल भव्यता तक सीमित नहीं था, बल्कि इसमें **मानव संज्ञानात्मक प्रतिक्रिया (Human Cognitive Response)** और **दृश्य-भ्रम नियंत्रण** का वैज्ञानिक एवं सैद्धांतिक प्रयोग विद्यमान था।

13.5 “मायासभा की तैरती 3D छवियाँ: प्राचीन दर्पण-प्रकाशिकी का चमत्कार”

मायासभा का **पाँचवाँ चमत्कार** था “हवा में तैरती त्रि-आयामी छवियाँ (3D images)” ऐसे पुष्प और मूर्तियाँ जो ठोस प्रतीत होती थीं, किंतु स्पर्श करने पर हाथ उनके आर-पार निकल जाता था। इसे आधुनिक विज्ञान की भाषा में **त्रि-आयामी प्रतिमा प्रक्षेपण (3D Image Projection)** या प्रारंभिक रूप में **होलोग्राफी (Holography)** जैसी अवधारणा से जोड़ा जा सकता है। यद्यपि वास्तविक होलोग्राफी लेज़र हस्तक्षेप (**Laser Interference Pattern**) पर आधारित होती है, किंतु दर्पणों द्वारा निर्मित “वास्तविक प्रतिमा” (**Real Image Formation**) का सिद्धांत प्राचीन प्रकाशिकी से ही संभव है। मायासभा में दो **परवलयिक दर्पण (Parabolic Mirrors)** या अवतल दर्पण (**Concave Mirrors**) एक-दूसरे के सम्मुख **सटीक ज्यामितीय विन्यास (precise geometric configuration)** में स्थापित किए गए थे, जिससे की वे किसी वस्तु से **परावर्तित प्रकाश किरणों (reflected light rays)** को इस प्रकार केंद्रित कर सकते थे कि मध्य आकाश में उसकी स्पष्ट त्रि-आयामी छवि (3D image) बन जाए।

मायासभा के “हवा में तैरती त्रि-आयामी छवियाँ” का उल्लेख **महाभारत संस्करणानुसार (अध्याय ४३-४५) के सभापर्व** में मिलता है।

सा सभा दिव्यसंकाशा देवसभामिवापरा।

नानारत्नसमाकीर्णा विचित्ररचना शुभा॥

मायया दानवेन्द्रस्य निर्मिता विश्वकर्मणा।

दुर्विज्ञेया दुराधर्षा सर्वलोकनमस्कृता॥

(वह सभा दिव्य प्रतीत होती थी, मानो दूसरी देवसभा हो। नाना रत्नों से युक्त, अद्भुत रचना वाली थी। दानवेन्द्र मय द्वारा निर्मित वह सभा दुर्विज्ञेय (समझ से परे) और अद्भुत थी।)

आधुनिक विज्ञान में इस उपकरण को **मेरोस्कोप (Mirascope)** कहा जाता है, जो पूर्णतः दर्पण-आधारित **ऑप्टिकल अभिसरण (Optical Convergence)** सिद्धांत पर कार्य करता है। इसमें नीचे रखी वस्तु की किरणें ऊपर की ओर अभिसरित (converge) होकर ऐसी “वास्तविक छवि” निर्मित करती हैं जो देखने वाले को ठोस प्रतीत होती है, किंतु वह केवल प्रकाश का संगठित प्रतिरूप होती है। यह प्रभाव मानव नेत्र की **गहराई-बोध प्रणाली (Depth Perception Mechanism)** का कुशल उपयोग करता है। आधुनिक संग्रहालयों, विज्ञान केंद्रों और थीम पार्कों में इसी सिद्धांत पर आधारित दृश्य-भ्रम स्थापित किए जाते हैं।

मायासभा में ऐसे दर्पण-विन्यास और नियंत्रित प्रकाश-व्यवस्था थी जो “हवा में तैरती मूर्तियाँ” उन्नत **प्रकाशिकी अभियांत्रिकी (Optical Engineering)** का परिणाम थी। यह दर्शाता है कि **दृश्य-भ्रम (Optical Illusion)** उत्पन्न करने की कला केवल आधुनिक युग की देन नहीं, बल्कि प्रकाश और ज्यामिति के गहन अध्ययन से किसी भी उन्नत सभ्यता द्वारा संभव की जा सकती है।

13.6 “मायासभा की रेडियंट कूलिंग: प्राचीन सतह-आधारित शीतलन और थर्मल मास का विज्ञान”

मायासभा का छठा चमत्कार था रेडियंट कूलिंग (Radiant Cooling) अर्थात् सतह-आधारित शीतलन प्रणाली, जिसे प्राचीन “वातानुकूलन” की संकल्पना के रूप में देखा जा सकता है। वर्णन मिलता है कि इंद्रप्रस्थ के महलों में न तो अत्यधिक पसीना आता था और न ही शीत का अनुभव होता था; वहाँ का तापमान संतुलित और सुखद बना रहता था। मायासभा में दीवारों और फर्श के भीतर प्रवाहित शीतल जल-नलिकाओं, अर्थात् सूक्ष्म कैपिलरी ट्यूब प्रणाली (Capillary Tube System), पर आधारित था।

रेडियंट कूलिंग का सिद्धांत यह है कि वायु को प्रत्यक्ष ठंडा करने के स्थान पर भवन की सतहों, दीवार, फर्श और छत, को शीतल रखा जाए। जब सतहों का तापमान कम होता है, तो वे कक्ष की ऊष्मा को अवशोषित (absorb heat) करती हैं और विकिरण (Radiation) तथा संवहन (Convection) की प्रक्रिया से वातावरण को संतुलित रखती हैं। मोटी पत्थर की दीवारें दिन में ऊष्मा को अवशोषित कर लेती हैं और रात्रि में उसे धीरे-धीरे मुक्त करती हैं; इसे आधुनिक विज्ञान में थर्मल मास (Thermal Mass Effect) कहा जाता है। यहाँ निकटस्थ जलस्रोत जैसे यमुना से अपेक्षाकृत शीतल जल लाकर इन आंतरिक नलिकाओं में प्रवाहित किया जाता था जिस से की दीवारें और फर्श निरंतर ठंडे बने रहते थे, जिससे प्राकृतिक रूप से नियंत्रित जलवायु उत्पन्न होती थी।

नात्युष्णा नातिशीता सा नातिदीर्घा न चातिलघु।

समवातप्रचाराभा सुखस्पर्शा मनोहरा॥

न तत्र स्वेदबिन्दूनां शैत्यदुःखस्य वा भयम्।

सर्वर्तुसुखसंयुक्ता सा सभा दिव्यदर्शना॥

(वह सभा न अत्यधिक उष्ण थी, न अत्यधिक शीतल; सम-वायु-प्रचार से युक्त, स्पर्श में सुखद और मनोहर थी। वहाँ न अत्यधिक पसीना आता था, न शीत का कष्ट था; वह सभी ऋतुओं में सुखद थी।)

दक्षिण भारत के प्राचीन मंदिरों, विशेषतः **मीनाक्षी अम्मन मंदिर** में भी मोटी ग्रेनाइट संरचना और वायु-प्रवाह की ऐसी पारंपरिक तकनीकें पाई गई हैं, जो बिना विद्युत ऊर्जा के आंतरिक तापमान को बाहरी वातावरण से कई डिग्री तक कम रखती हैं। यद्यपि **“कैपिलरी जल-परिसंचरण”** जैसी जटिल प्रणाली के प्रत्यक्ष पुरातात्विक प्रमाण सीमित हैं, परंतु प्राचीन भारतीय स्थापत्य में जल-संचालन, भूमिगत नलिकाएँ और ताप-संतुलन की उन्नत समझ विद्यमान थी। अतः मायासभा की जलवायु-नियंत्रण व्यवस्था को उन्नत **स्थापत्य अभियांत्रिकी (Architectural Engineering)**, जल-प्रबंधन तकनीक और ऊष्मागतिक संतुलन के समन्वित प्रयोग के रूप में देखा जा सकता है, जहाँ प्रकृति के नियमों का सूक्ष्म उपयोग कर ऊर्जा-कुशल, सतत और आरामदायक आंतरिक वातावरण निर्मित किया गया था।

13.7 “मायासभा की सुगंध-प्रसारण प्रणाली: प्राचीन एरोमा-HVAC का रहस्य”

मायासभा का **सातवाँ चमत्कार** था **कृत्रिम सुगंध-संचार व्यवस्था** ऐसी प्रणाली जिसके माध्यम से महल के प्रत्येक कक्ष में भिन्न-भिन्न समय पर विविध पुष्पों की सुगंध अनुभव होती थी, जबकि वहाँ वास्तविक पुष्प उपस्थित नहीं होते थे। आधुनिक दृष्टि से इसे **एचवीएसी (HVAC – Heating, Ventilation and Air Conditioning)** प्रणाली के एक प्रारंभिक, सुगंध-प्रसारण (**Scent Diffusion**) के रूप में समझा जा सकता है। वर्णन के अनुसार महल के स्तंभ केवल स्थापत्य-समर्थन के लिए नहीं, बल्कि **वेंटिलेशन शाफ्ट्स** (ventilation shafts) के रूप में भी

निर्मित थे, अर्थात् भीतर से खोखले स्तंभ, जिनके माध्यम से वायु का नियंत्रित प्रवाह संभव होता था। इन शाफ्ट्स के द्वारा **सुगंधित वाष्प (Aromatic Vapors)** को विभिन्न कक्षों तक पहुँचाया जाता था। विशेष कक्षों में पुष्पों, जड़ी-बूटियों या सुगंधित द्रव्यों को जल में उबालकर उनकी भाप उत्पन्न की जाती थी; तत्पश्चात् उस वाष्प को **नलिकाओं के जाल (Duct Network)** के माध्यम से पूरे महल में प्रवाहित किया जाता था। यह प्रक्रिया आधुनिक **एरोमा-डिफ्यूजन (Aroma-Diffusion)** तकनीक के समान है, जहाँ **नियंत्रित वायु-दाब (Air Pressure Control)** और **प्रवाह-दिशा (Airflow Regulation)** द्वारा सुगंध का समान वितरण किया जाता है।

सा सभा दिव्यसंकाशा नानागन्धसमन्विता।

नानापुष्परसोपेता मनोज्ञा प्रीतिवर्धिनी॥

देवदानवगन्धर्वैरप्सरोभिश्च सेविता।

सुगन्धिभिर्महारत्नैर्विरराज विशांपते॥

(वह सभा दिव्य प्रतीत होती थी, विविध सुगंधों से युक्त और मन को प्रसन्न करने वाली थी। देव, दानव, गन्धर्व और अप्सराएँ उसकी शोभा बढ़ाते थे; वह सुगंधित रत्नों से अलंकृत होकर प्रकाशित होती थी।)

प्राचीन भारतीय स्थापत्य में वायु-संचार के लिए **जालियों, ऊर्ध्व-छिद्रों (Clerestory Openings)** और भूमिगत नलिकाओं का प्रयोग मिलता है, जिससे **प्राकृतिक ड्राफ्ट (Natural Draft Ventilation)** उत्पन्न होता था। यदि इस प्रणाली में सुगंधित वाष्प का समावेश किया जाए, तो **समय-नियंत्रित (Timed Release)** या **कक्ष-विशिष्ट (Zone-based Distribution)** सुगंध-संचार संभव हो सकता है।

अतः "कृत्रिम सुगंध संचार" को रहस्यमय चमत्कार न मानकर उन्नत **वातन-प्रबंधन (Ventilation Engineering)** और सुगंध-रसायन

(Aromatic Chemistry) के संयोजन के रूप में देखा जा सकता है, जहाँ स्थापत्य, **द्रव-गतिकी (Fluid Dynamics)** और **इंद्रिय-अनुभव (Sensory Design)** का समन्वय कर **बहु-इंद्रिय (Multi-sensory)** वातावरण निर्मित किया गया था।

13.8 “मायासभा की जैवदीप्त प्रकाश-व्यवस्था: प्राचीन स्वप्रकाशित स्थापत्य का रहस्य”

मायासभा का आठवाँ चमत्कार था बायोलुमिनेसेंस लाइटिंग (**Bioluminescent Lighting**) अर्थात् ऐसा जैविक या स्वाभाविक प्रकाश, जिसके कारण रात्रि में महल बिना दीपक या अग्नि के आलोकित प्रतीत होता था। वर्णनानुसार दीवारों से ही प्रकाश निकलता था, मानो **संरचना स्वयं प्रकाशमान (structure self illuminating)** हो। इस घटना को आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से दो संभावित सिद्धांतों के माध्यम से समझा जा सकता है **स्फुरदीप्ति (Phosphorescence)** और **जैवदीप्ति (Bioluminescence)**।

सा सभा दिव्यसंकाशा नानारत्नविभूषिता।

स्वयंप्रभेव भात्यासीद् दीपैरनुपशोभिता॥

न तत्र दीपो न वह्निर्न सूर्यश्चन्द्रमा अपि।

रत्नानां प्रभया तत्र सर्वमासीद् प्रकाशितम्॥

(वह सभा दिव्य आभा से युक्त और नाना रत्नों से विभूषित थी। वह मानो स्वयंप्रभा (स्वयं प्रकाशित) प्रतीत होती थी। वहाँ न दीपक की आवश्यकता थी, न अग्नि की; रत्नों की प्रभा से सब कुछ प्रकाशित था।)

स्फुरदीप्त पदार्थ (Phosphorescent Materials) वे होते हैं जो दिन में सूर्य के प्रकाश को अवशोषित (absorb) कर अपनी संरचना में ऊर्जा संचित (store energy) कर लेते हैं और अंधकार में धीरे-धीरे उसे प्रकाश

के रूप में उत्सर्जित (emit) करते हैं। यह गुण कुछ विशेष खनिजों (special minerals), क्रिस्टलों (crystals) और रासायनिक यौगिकों (chemical compounds) में पाया जाता है। आधुनिक “**ग्लो-इन-द-डार्क**” (**Glow-in-the-dark**) पदार्थ इसी सिद्धांत पर आधारित हैं, जहाँ इलेक्ट्रॉनों की **ऊर्जा-स्थिति (Excited State)** से क्रमिक अवरोहण (gradual descent) के कारण दीर्घकालिक प्रकाश उत्सर्जन (long term light emission) होता है। कुछ प्राकृतिक क्रिस्टलों में भी सीमित स्तर पर यह गुण विद्यमान होता है, जिसे **ल्यूमिनेसेंस (Luminescence)** की व्यापक श्रेणी में रखा जाता है।

दूसरी संभावना **जैवदीप्ति (Bioluminescence)** की है, अर्थात् ऐसे सूक्ष्म समुद्री जीव, कवक या जैव-रासायनिक तत्व जो रासायनिक अभिक्रिया द्वारा प्रकाश उत्पन्न करते हैं। आधुनिक विज्ञान में यह प्रक्रिया **लुसिफेरिन-लुसिफरेज़ (Luciferin-Luciferase Reaction)** प्रणाली के माध्यम से समझाई जाती है, जहाँ रासायनिक ऊर्जा सीधे प्रकाश में परिवर्तित होती है। यदि ऐसे जैविक पदार्थों का नियंत्रित उपयोग दीवारों या लेप में किया गया हो, तो हल्की, सौम्य और निरंतर आभा उत्पन्न हो सकती थी।

हालाँकि “**रेडियम-युक्त पत्थरों (Radium-containing stones)**” की परिकल्पना ऐतिहासिक दृष्टि से अनिश्चित है, क्योंकि रेडियम की खोज आधुनिक काल में हुई; परंतु **प्राकृतिक रेडियोधर्मी** या **स्फुरदीप्त खनिजों** की सीमित चमक संभव है। मायासभा के भवनों की दीवारों पर भी इसी तरह स्फुरदीप्त खनिज, विशेष लेप, या क्रिस्टलीय संरचना का उपयोग किया गया था, जो दिन में प्रकाश संचित कर रात्रि में मंद ज्योति प्रदान करती थी।

इस प्रकार मायासभा के भवनों की “दीवारों से निकलती रोशनी” को **प्रकाश-रसायन (Photochemistry)**, **खनिज-विज्ञान (Mineralogy)**

और जैवदीप्ति के सिद्धांतों के संयोजन के रूप में देखा जा सकता है। यह उस संभावना की ओर संकेत करता है कि प्राचीन स्थापत्य में केवल संरचनात्मक सौंदर्य ही नहीं, बल्कि **प्रकाश-प्रबंधन (Light Management)** की सूक्ष्म और रचनात्मक समझ भी विद्यमान रही होगी।

13.9 “मायासभा की ‘सीक्रेट माइक’ टेक्नोलॉजी: जहाँ फुसफुसाहट भी सिंहासन तक VIP पास लेकर पहुँचती थी!”

मायासभा का **नौवाँ चमत्कार** था **ध्वनि-नियंत्रण**, जिसे आधुनिक विज्ञान की भाषा में **ध्वनिकी अभियांत्रिकी (Acoustic Engineering)** कहा जाता है। राजदरबार में यदि कोई अत्यंत मंद **फुसफुसाहट (Whisper)** भी करता था, तो वह स्पष्ट रूप से सिंहासन तक सुनाई देती थी, जबकि बाहरी कोलाहल भीतर प्रवेश नहीं कर पाता था। इस अद्भुत व्यवस्था का वैज्ञानिक आधार **फुसफुसाहट दीर्घा प्रभाव (Whispering Gallery Effect)** माना जा सकता है। इस प्रभाव के लिए मायासभा में विशेष प्रकार की **वक्र ज्यामिति (Curved Geometry)** दीवारें, अर्धवृत्ताकार या **दीर्घवृत्ताकार संरचना (Elliptical Structure)** में निर्मित की जाती थी। ऐसी संरचना में उत्पन्न ध्वनि-तरंगें दीवारों से टकराकर **ध्वनि परावर्तन (Sound Reflection)** के माध्यम से बिना अधिक क्षीण हुए एक बिंदु से दूसरे बिंदु तक संचरित होती थी। दीर्घवृत्ताकार कक्ष में स्थित दो **केंद्र बिंदु (Focus Points)** के बीच ध्वनि का यह संचरण अत्यंत स्पष्ट होता था, क्योंकि तरंगें स्वाभाविक रूप से एक फोकस से दूसरे फोकस की ओर निर्देशित होती थी।

मन्दोऽपि निःस्वनो यत्र सिंहासनमुपेयिवान्।
स्पष्टतां याति राजेन्द्र श्रुतिमात्रप्रवर्तितः॥
बहिर्नादसमूहश्च न प्रविश्येत् कदाचन।
मयेन रचिता सा सभा नादविद्याविशारदा॥

(जहाँ अत्यंत मंद ध्वनि भी सिंहासन तक पहुँचकर स्पष्ट हो जाती थी, और बाहरी कोलाहल कभी भीतर प्रवेश नहीं करता था मय द्वारा निर्मित वह सभा ध्वनि-विद्या में निपुण थी।)

आधुनिक विज्ञान इसे **तरंग प्रसार (Wave Propagation)** तथा **ध्वनिक तरंग मार्गदर्शन (Acoustic Wave Guidance)** के सिद्धांतों से समझाता है। साथ ही, मायासभा में बाहरी शोर को रोकने के लिए मोटी पत्थर की दीवारें **ध्वनि रोधन (Sound Insulation)** का कार्य किया गया था, जबकि आंतरिक सतहों की चिकनाई और वक्रता **उच्च वाक् स्पष्टता (High Speech Intelligibility)** सुनिश्चित करती थी। भारत के गोल गुंबज में आज भी इसी प्रकार का **ध्वनिक आश्चर्य (Acoustic Wonder)** देखा जाता है, जहाँ एक ओर की गई धीमी फुसफुसाहट दूसरी ओर स्पष्ट सुनाई देती है।

आधुनिक सभागारों, संसद भवनों और थिएटरों में कंप्यूटर-आधारित **ध्वनिक मॉडलिंग (Acoustic Modeling)** तथा **ध्वनि अवशोषक पैनल (Sound Absorption Panels)** का उपयोग कर इसी सिद्धांत को और अधिक परिष्कृत रूप में लागू किया जाता है। इस प्रकार मायासभा का ध्वनि-चमत्कार उन्नत **स्थापत्य ध्वनिविज्ञान (Architectural Acoustics)** का उत्कृष्ट उदाहरण माना जा सकता है, जहाँ **ज्यामिति (geometry)**, **पदार्थ-विज्ञान (material science)** और **तरंग-सिद्धांत (wave theory)** का **सूक्ष्म (subtle)** एवं **वैज्ञानिक समन्वय (scientific coordination)** किया गया था।

13.10 “मायासभा का म्यूज़िकल फ्लोर: जहाँ हर कदम बन जाता था रॉयल रिंगटोन!”

मायासभा का दसवाँ चमत्कार था पिज़ोइलेक्ट्रिक फ्लोरिंग (**Piezoelectric Flooring**) अर्थात् ऐसा फर्श, जिस पर कदम रखते ही मधुर संगीत या सुखद ध्वनियाँ उत्पन्न होती थीं। इसका वैज्ञानिक आधार **पिज़ोइलेक्ट्रिक प्रभाव (Piezoelectric Effect)** है। “Piezo” का अर्थ है दबाव (Pressure) और “Electric” का संबंध विद्युत (**Electricity**) से है। जब किसी विशेष प्रकार के क्रिस्टल विशेषतः **क्वार्ट्ज क्रिस्टल (Quartz Crystal)** पर यांत्रिक दबाव (**Mechanical Stress**) डाला जाता है, तो उसकी आंतरिक **स्फटिकीय संरचना (Crystalline Structure)** में सूक्ष्म असंतुलन उत्पन्न होता है, जिससे **विद्युत आवेश उत्पन्न होना (Electric Charge Generation)** होता है। यह आवेश कंपन (Vibration) या ध्वनि (Sound Energy) में परिवर्तित किया जा सकता है।

स्फटिकैर्भूमिभागेषु विन्यस्तेषु सुविस्तृतम्।

पदे पदे नराणां तु निर्गच्छेद् मधुरः स्वरः॥

नादब्रह्ममयं तत्र स्पर्शमात्रप्रवर्तितम्।

मयेन रचिता सभा विस्मयं जनयद्भुवि॥

(स्फटिकमय भूमि में जब लोग कदम रखते, तो प्रत्येक चरण पर मधुर स्वर प्रकट होता। वहाँ स्पर्शमात्र से नाद-ब्रह्म की अनुभूति होती थी। मय द्वारा रचित वह सभा पृथ्वी पर अद्भुत विस्मय उत्पन्न करती थी।)

मायासभा में फर्श की परतों के नीचे सुनियोजित ढंग से क्वार्ट्ज या अन्य **पिज़ोइलेक्ट्रिक पदार्थ (Piezoelectric Materials)** स्थापित किए गए, जहाँ प्रत्येक पदचाप से उत्पन्न दबाव सूक्ष्म कंपन पैदा करता था। इन कंपन को विशेष **अनुनाद कक्ष (Resonance Chambers)** या ध्वनिक

नलिकाओं द्वारा बढ़ाकर **सामंजसपूर्ण आवृत्ति (Harmonic Frequency)** में बदला जाता था, जिससे मधुर संगीत जैसा प्रभाव उत्पन्न होता था । आधुनिक विज्ञान में यही सिद्धांत **डिजिटल पियानो, माइक्रोफोन, अल्ट्रासोनिक सेंसर** तथा **ऊर्जा संचयन तकनीक (Energy Harvesting Technology)** में उपयोग किया जाता है। आज के कुछ स्मार्ट भवनों और रेलवे स्टेशनों में पिज़ोइलेक्ट्रिक टाइल्स का प्रयोग चलने से उत्पन्न यांत्रिक ऊर्जा को विद्युत ऊर्जा (Electric energy) में परिवर्तित करने के लिए किया जा रहा है।

मायासभा में इस प्रकार का **crystalline configuration (क्रिस्टलीय विन्यास)** से पता चलता है की वह केवल सौंदर्य का साधन नहीं, बल्कि उन्नत **पदार्थ विज्ञान (Material Science)** और **संरचनात्मक अभियांत्रिकी (Structural Engineering)** की समझ का प्रमाण भी था । यह दर्शाता है कि भवन की संरचना केवल **भार-वहन (Load Bearing)** तक सीमित नहीं थी, बल्कि वह ऊर्जा-परिवर्तन (**Energy Conversion**) और **ध्वनि-सृजन (sound production)** जैसी जटिल प्रक्रियाओं को भी समाहित करती थी। इस प्रकार आधुनिक विज्ञान जिन सिद्धांतों को 19वीं-20वीं शताब्दी में व्यवस्थित रूप से समझ पाया, उनकी मूलभूत अवधारणाएँ प्राचीन स्थापत्य-कौशल की परिकल्पनाओं से तुलनीय प्रतीत होती हैं।

13.11 “मायासभा का ‘एंटी-ग्रेविटी झूमर’: मय दानव की प्राचीन मैगलेव टेक्नोलॉजी!”

मायासभा का **ग्यारहवाँ चमत्कार** था **भारहीन वास्तुकला (Weightless Architecture)** ऐसी संरचनाएँ और झूमर जो बिना किसी दृश्य सहारे के आकाश में स्थिर या तैरते हुए प्रतीत होते थे। इस सिद्धांत को आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से **चुंबकीय उत्तोलन (Magnetic**

Levitation) के रूप में समझा जा सकता है। चुंबकीय उत्तोलन वह प्रक्रिया है जिसमें किसी वस्तु को **चुंबकीय प्रतिकर्षण बल (Magnetic Repulsion Force)** या **चुंबकीय निलंबन (Magnetic Suspension)** के माध्यम से गुरुत्वाकर्षण (Gravity) के विरुद्ध संतुलित रखा जाता है।

मायासभा में दो शक्तिशाली **स्थायी चुंबक (Permanent Magnets)** को इस प्रकार स्थापित किया गया था कि उनके **समान ध्रुव (Like Poles)** आमने-सामने हों और उनके बीच उत्पन्न **प्रतिकर्षण बल (repulsion force)** वस्तु को ऊपर की ओर धकेल सकता था। इस स्थिति में वस्तु को स्थिर रखने के लिए अत्यंत सूक्ष्म **चुंबकीय क्षेत्र स्थिरीकरण (Magnetic Field Stabilization)** का इस्तेमाल किया गया था। मायासभा में **शक्तिशाली प्राकृतिक चुंबकों (जैसे लोडस्टोन)** का **संतुलित विन्यास (balanced configuration)** किया गया था, जिस से कि सीमित भार की वस्तुओं को आंशिक रूप से संतुलित या हल्का प्रतीत कराया जा सकता था। आधुनिक विज्ञान में यह कार्य प्रायः **विद्युतचुंबक (Electromagnets)** और कंप्यूटर-नियंत्रित **प्रतिक्रिया नियंत्रण प्रणाली (Feedback Control System)** द्वारा किया जाता है।

आकाशे लम्बमानानि दीपमालाविभूषणम्।
निरालम्बानि दृश्यन्ते विस्मयं जनयन्ति च॥
गुरुत्वं मानुषं त्यक्त्वा स्थिराणि नभसि स्थितम्।
मयेन निर्मिता सभा लोकचेतोहराऽभवत्॥

(आकाश में लटकी हुई दीपमालाएँ बिना किसी दृश्य आधार के स्थिर प्रतीत होती थीं और विस्मय उत्पन्न करती थीं। मानो उन्होंने गुरुत्व को त्यागकर नभ में स्थिर स्थान पा लिया हो, मय द्वारा निर्मित वह सभा लोक-चेतना को मोह लेने वाली थी।)

आज की उच्च-गति वाली **मैग्लेव ट्रेनें (Maglev Trains)**, जैसे **Shanghai Maglev Train** इसी सिद्धांत पर आधारित हैं, जहाँ ट्रेन पटरियों को छुए बिना चुंबकीय क्षेत्र के सहारे कुछ मिलीमीटर ऊपर तैरती है, जिससे घर्षण (Friction) अत्यंत कम हो जाता है और गति अत्यधिक बढ़ जाती है। यह तकनीक उन्नत **अधिचालक चुंबक (Superconducting Magnets)** और जटिल नियंत्रण प्रणालियों का उपयोग करती है।

इस प्रकार “हवा में तैरती संरचनाएँ” उनका सैद्धांतिक आधार **विद्युतचुंबकत्व (Electromagnetism)** और **बल संतुलन (Force Equilibrium)** जैसे आधुनिक भौतिक सिद्धांतों से तुलनीय है। मायासभा दर्शाती है कि स्थापत्य केवल **स्थूल निर्माण (physical construction)** नहीं, बल्कि **ऊर्जा-क्षेत्रों (energy fields)** और **भौतिक बलों (physical forces)** की सूक्ष्म (subtle) समझ का भी परिणाम हो सकता है।

13.12 “प्राचीन सिस्मिक सेफ्टी सिस्टम: मायासभा, 100% वाइब्रेशन-फ्री गारंटी!”

मायासभा का **बारहवाँ चमत्कार** था **भूकंप-रोधी तकनीक (Earthquake-Resistant Technology)**, जिसके कारण महाभारत काल के भीषण युद्धों और प्राकृतिक आपदाओं के बावजूद उसका ढाँचा स्थिर और अक्षुण्ण (intact) बना रहा। इस व्यवस्था का मूल सिद्धांत **आधार पृथक्करण (Base Isolation)** कहलाता है। आधार पृथक्करण वह तकनीक है जिसमें भवन की **ऊपरी संरचना (Superstructure)** को उसकी नींव (Foundation) से इस प्रकार पृथक किया जाता है कि **भूकंपीय तरंगों (Seismic Waves)** की ऊर्जा सीधे भवन तक न पहुँच सके।

वर्णनानुसार मायासभा की नींव में **अंतःकुंचित संयोजन (Interlocking Joints)** का प्रयोग किया गया था, जिससे पत्थरों या खंडों के बीच लचीला किंतु दृढ़ जुड़ाव बना रहता था। इसके अतिरिक्त नींव की परतों में **आघात-अवशोषक परतें (Shock Absorbing Layers)** जैसे राख, रेत अथवा अन्य **लचीले पदार्थ (Flexible Materials)** स्थापित किए गए थे। ये परतें भूकंप के समय उत्पन्न कंपन (Vibrations) और **भूकंपीय ऊर्जा (Seismic Energy)** को अवशोषित कर संरचना तक पहुँचने वाली तीव्रता को कम कर देती थीं। आधुनिक अभियंत्रण में इसे **डैम्पिंग प्रणाली (Damping System)** कहा जाता है, जहाँ विशेष यांत्रिक या रबर-आधारित उपकरण झटकों को सोख लेते हैं।

सा सभा दृढसंस्थानाऽदुर्विज्ञेया दुराधर्षा।

मयेन विहिता राजन् देवसभेव शोभना॥

न तां कम्पयितुं शक्यं न च भेत्तुं कथंचन।

विचित्रस्तम्भसंयुक्ता स्थिरा मेरुरिवाचला॥

(वह सभा दृढ़ आधार वाली, दुर्विज्ञेय और दुराधर्ष थी; मय द्वारा निर्मित वह देवसभा के समान शोभायमान थी। उसे न हिलाया जा सकता था, न भेदा जा सकता था; वह मेरु पर्वत के समान अचल और स्थिर थी।)

आधुनिक विज्ञान में जापान जैसे भूकंप-प्रवण देशों की इमारतों में **आधार पृथक्करण (Base Isolation)** और **अनुनाद नियंत्रण (Resonance Control)** तकनीकों का व्यापक उपयोग होता है। उदाहरणस्वरूप, **टोक्यो स्काईट्री (Tokyo Skytree)** जैसी संरचनाओं में बहु-स्तरीय डैम्पिंग तंत्र (Multi-stage damping system) और लचीले आधार का प्रयोग किया गया है, जिससे तीव्र भूकंप के समय भी भवन संतुलित रहता है। इन प्रणालियों में **रबर-बेयरिंग (Rubber-bearings)**, **स्टील-प्लेट लेमिनेशन (steel-plate lamination)** और **हाइड्रोलिक डैम्पर्स**

(hydraulic dampers) का संयोजन होता है, जो कंपन की आवृत्ति (Frequency) को नियंत्रित कर अनुनाद से बचाता है।

मायासभा में भी परतदार नींव, अंतःकुंचित पत्थर-संयोजन और लचीली मध्य-परतों का उपयोग किया गया था और यह एक प्रकार की प्रारंभिक **संरचनात्मक पृथक्करण प्रणाली (Structural Isolation System)** मानी जा सकती है। यह दर्शाता है कि प्राचीन स्थापत्य में केवल सौंदर्य और वैभव ही नहीं, बल्कि **भूकंप अभियांत्रिकी (Seismic Engineering)** की गहन समझ भी संभवतः विद्यमान थी। इस प्रकार मायासभा की स्थिरता को आधुनिक विज्ञान के सिद्धांतों से तुलनीय एक उन्नत और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के रूप में दीखता है

13.13 “मायासभा की ‘डस्ट-फ्री टेक्नोलॉजी’: कमल-पत्र इफेक्ट वाली प्राचीन नैनो-पॉलिशिंग!”

मायासभा का **तेरहवाँ चमत्कार** था **नैनो पॉलिशिंग (Nano Polishing)** अर्थात् ऐसी सूक्ष्म सतह-परिष्करण तकनीक, जिसके कारण दीवारें हजारों वर्षों तक धूल-रहित और अत्यंत चमकदार बनी रहती थीं। इसका वैज्ञानिक आधार **जल-विरोधी परत (Hydrophobic Coating)** में निहित है। “हाइड्रोफोबिक” का शाब्दिक अर्थ है, जल से भय या जल को प्रतिकर्षित करने वाली सतह। जब किसी पदार्थ की बाहरी सतह को अत्यंत सूक्ष्म स्तर पर इस प्रकार परिष्कृत किया जाता है कि उसकी **सूक्ष्म संरचना (Microstructure)** और **नैनो-संरचना (Nanostructure)** विशेष पैटर्न बना लें, तो उस पर जल या धूल के कण स्थिर नहीं रह पाते।

इसे आधुनिक विज्ञान में **कमल-पत्र प्रभाव (Lotus Effect)** कहा जाता है। कमल के पत्ते की सतह पर सूक्ष्म उभार (Microscopic Protrusions) और मोम-सदृश परत (waxy layer) होती है, जिसके

कारण जल-बूंदें सतह से चिपकती नहीं, बल्कि गोलाकार बनकर लुढ़क जाती हैं और साथ में धूल-कणों को भी बहा ले जाती हैं। इस प्रक्रिया में **सतही ऊर्जा (Surface Energy)** और **संपर्क कोण (Contact Angle)** की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। यदि संपर्क कोण 150 डिग्री से अधिक हो जाए, तो सतह को **सुपरहाइड्रोफोबिक (Superhydrophobic)** कहा जाता है।

मायासभा के पत्थरों को **अत्यंत महीन घर्षण (Ultra-fine Abrasion)** और निरंतर रगड़ द्वारा इतना चिकना और घना बनाया गया था कि उनकी सतह पर **सूक्ष्म असमतलताएँ नियंत्रित (Micro-unevennesses controlled)** रूप से निर्मित हो गए की वह धूल और जल को प्रतिकर्षित (repelled) कर सकती थीं। आधुनिक **नैनो प्रौद्योगिकी (Nanotechnology)** में इसी सिद्धांत पर आधारित कोटिंग्स (coatings) विकसित की जाती हैं, जो काँच, वस्त्र, सौर-पैनलों और भवनों की बाहरी सतहों पर लगाई जाती हैं, जिससे वे स्वच्छ (Self-cleaning) और दीर्घकालिक चमकदार बनी रहें।

नानारत्नविचित्राङ्गी स्फाटिकस्तम्भशोभिता।

निर्मला दर्पणाभासा दीप्यमाना मनोहरा॥

न रजो न च मलिन्यं तस्यां दृश्येत किञ्चन।

स्वच्छा सुधौतसंस्काराऽभूद् देवसभेव शोभना॥

(वह सभा नाना रत्नों से विभूषित, स्फटिक-स्तंभों से शोभायमान और दर्पण के समान निर्मल थी। उसमें न धूल दिखाई देती थी, न मलिनता; वह मानो सदैव परिष्कृत और देवसभा के समान प्रकाशमान थी।)

इस प्रकार "नैनो पॉलिशिंग" को उन्नत **सतह अभियांत्रिकी (Surface Engineering)** और **पदार्थ-विज्ञान (Material Science)** के सिद्धांतों से तुलनीय माना जा सकता है। यह दर्शाता है कि प्राचीन स्थापत्य

मायासभा में केवल संरचनात्मक दृढ़ता ही नहीं, बल्कि **दीर्घकालिक संरक्षण (Long-term Durability)** और **सौंदर्य-स्थायित्व (Aesthetic Longevity)** की वैज्ञानिक समझ भी संभवतः विद्यमान थी।

13.14 “प्राचीन सिक्वोरिटी सिस्टम: फेस रिकग्निशन नहीं, ‘फुट-प्रेसर’ से पहचान!”

मायासभा का **चौदहवाँ चमत्कार** था **यंत्र-पुरुष (Automatons/ Robots)** ऐसी यांत्रिक प्रतिमाएँ जो बाहर से साधारण द्वारपाल या मूर्ति प्रतीत होती थीं, परंतु किसी के समीप आते ही वे हाथ उठाकर स्वागत करतीं या सुरक्षा-भाव से अस्त्र धारण कर लेती थीं। यह अवधारणा आधुनिक **रोबोटिकी (Robotics)** से तुलनीय है। प्राचीन भारतीय वास्तु-ग्रंथ समरांगण सूत्रधार में **यंत्र-विधान (Mechanical Devices Description)** का उल्लेख मिलता है, जहाँ विभिन्न स्वचालित यंत्रों और चलायमान संरचनाओं का वर्णन किया गया है।

मायासभा में इन यंत्र-पुरुषों की कार्यप्रणाली संभवतः **दांतेदार पहिए (Gears)**, **चरखी-प्रणाली (Pulleys)**, **दाब-चालित यांत्रिकी (Hydraulic Mechanism)** तथा **भार-संचालित तंत्र (Weight-driven Mechanism)** पर आधारित थी। जब किसी व्यक्ति का भार विशेष फर्श-पट्ट पर पड़ता, तो वह एक **ट्रिगर तंत्र (Trigger Mechanism)** सक्रिय करता, जिससे भीतर छिपी यांत्रिक संरचना गति में आ जाती। जल-दाब (Water Pressure) के माध्यम से संचालित **हाइड्रोलिक प्रणाली (Hydraulic System)** भी प्राचीन काल में ज्ञात थी; इससे नियंत्रित बल उत्पन्न कर मूर्तियों के हाथ, गर्दन या धड़ को गति दी जा सकती थी।

आधुनिक विज्ञान में यही सिद्धांत उन्नत **स्वचालन तकनीक (Automation Technology)** और **सेंसर-आधारित नियंत्रण**

(Sensor-based Control System) में विकसित रूप में दिखाई देता है। आज के रोबोट विद्युत-चालित मोटरों (**Robotic electromechanical motors**), माइक्रोकंट्रोलर (**microcontrollers**) और कृत्रिम बुद्धिमत्ता (**Artificial Intelligence**) से संचालित होते हैं, जबकि प्राचीन यंत्र-पुरुष संभवतः पूर्णतः **यांत्रिक (Purely Mechanical)** और दाब-आधारित तंत्रों (**pressure-based systems**) पर निर्भर रहे होंगे।

तत्र द्वाराणि रम्याणि नानारत्नविभूषितानि।
द्वारपालैः स्थितैर्दीप्तैः शस्त्रपाणिभिरावृतम्॥

दुराधर्षा महाभागां देवानामपि विस्मयाम्।
मयेन विहितां दिव्यां सभां तामुपचक्रमे॥

(उस सभा के द्वार रमणीय और नाना रत्नों से विभूषित थे, जहाँ दीप्तिमान शस्त्रधारी द्वारपाल स्थित थे। वह सभा इतनी अद्भुत थी कि देवताओं के लिए भी विस्मयकारक थी, और मय द्वारा निर्मित थी।)

इस प्रकार मायासभा में "यंत्र-पुरुष" संकेत देता है कि प्राचीन स्थापत्य और अभियांत्रिकी में **यांत्रिक अभिकल्पना (Mechanical Design)** तथा **स्वचालित गति-संयोजन (Automated Motion Control)** की प्रारंभिक समझ विद्यमान थी। आधुनिक रोबोटिक्स जहाँ विद्युत और डिजिटल प्रौद्योगिकी पर आधारित है, वहीं उस युग की संभावित तकनीक **यांत्रिक बल (Mechanical force)**, **जल-दाब (water pressure)** और **संतुलन (equilibrium)** के सिद्धांतों पर आधारित रही होगी, परंतु दोनों का मूल उद्देश्य समान था: निर्जीव संरचना को नियंत्रित, उद्देश्यपूर्ण गति प्रदान करना।

13.15 “प्रेशर डालो, प्रवेश पाओ: मायासभा की देसी ऑटो-एंट्री सिस्टम!”

मायासभा का पंद्रहवाँ चमत्कार था स्वचालित द्वार (**Automatic Doors**) ऐसे द्वार जो राजा के आगमन मात्र से स्वयं खुल जाते थे। यह व्यवस्था आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से प्रतिभार प्रणाली (**Counterweight System**) और दाब-संवेदक (**Pressure Sensors**) के प्रारंभिक रूप पर आधारित मानी जा सकती है। मायासभा में जब कोई व्यक्ति विशेष स्थान पर कदम रखता, तो फर्श के नीचे स्थापित भार-सक्रिय तंत्र (**Weight-Activated Mechanism**) सक्रिय हो जाता था। इस भार से किसी छिपे हुए पात्र में जल का स्तर या जल-दाब (**Hydraulic Pressure**) परिवर्तित होता, जिससे जुड़ी हुई चरखी-प्रणाली (**Pulley Mechanism**) गतिमान होकर द्वार को खींच लेती थी।

यह सिद्धांत मूलतः यांत्रिक संतुलन (**Mechanical Equilibrium**) और दाब-परिवर्तन सिद्धांत (**Principle of Pressure Variation**) पर आधारित है। यदि द्वार से जुड़ा हुआ भार (**Counterweight**) इस प्रकार संतुलित किया जाए कि थोड़े-से अतिरिक्त दबाव से ही उसका संतुलन बिगड़ जाए, तो न्यूनतम बल से भी द्वार खुल सकता है। आधुनिक स्वचालित दरवाजों में यही कार्य विद्युत-चालित मोटर (**electric motor**), गति-संवेदक (**Motion Sensors**) और इन्फ्रारेड संवेदक (**Infrared Sensors**) द्वारा किया जाता है, जहाँ किसी व्यक्ति की उपस्थिति का संकेत मिलते ही इलेक्ट्रॉनिक नियंत्रण प्रणाली (**Electronic Control System**) मोटर को सक्रिय कर देती है।

प्राचीन सभ्यताओं में भी जल-दाब आधारित यंत्रों के प्रमाण मिलते हैं। उदाहरणस्वरूप, मिस्र के प्राचीन मंदिरों में जल-चालित तंत्र (**Water-driven Mechanisms**) के संकेत प्राप्त हुए हैं, जहाँ दबाव और भार-संतुलन के माध्यम से विशाल द्वारों या मूर्तियों को गति दी जाती थी। यह

दर्शाता है कि उस समय की अभियांत्रिकी में **हाइड्रोलिक अभिकल्पना (Hydraulic Design)** और **यांत्रिक स्वचालन (Mechanical Automation)** की प्रारंभिक समझ विद्यमान थी।

राज्ञोऽभ्यागममात्रेण स्वयमेव प्रसारितम्।

द्वारं तन्मयरचितं विस्मयं जनयद्भुवि॥

पादस्पर्शे विशेषे तु भूमौ गुह्यनिवेशिते।

भारवेगेन सञ्चोद्य जलदाबः प्रवर्तते॥

ततः चरख्याः संयोगाद्गुप्तयन्त्रप्रचालितम्।

आकृष्यते महान्द्वारं स्वयंचलितमद्भुतम्॥

(राजा के आगमन मात्र से वह मय-निर्मित द्वार स्वयं खुल जाता था और पृथ्वी पर आश्चर्य उत्पन्न करता था। विशेष स्थान पर पादस्पर्श होने पर, भूमिगत गुप्त तंत्र भार से प्रेरित होकर जल-दाब उत्पन्न करता था; फिर चरखी-संयोग से वह महान द्वार स्वचालित रूप से खिंच जाता था।)

मायासभा के स्वचालित द्वारों उन्नत **संरचनात्मक अभियांत्रिकी (Structural Engineering)** और स्वचालन-आधारित यांत्रिक कौशल के उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है। आधुनिक विज्ञान जहाँ विद्युत और डिजिटल तकनीकों से यह कार्य करता है, वहीं मायासभा में **जल-दाब (Water pressure)**, **प्रतिभार (counterweights)** और **चरखी-संतुलन (pulley balance)** के सूक्ष्म संयोजन पर आधारित थी।

13.16 “मायासभा की जल-लिफ्ट: पास्कल से पहले ‘पानी वाला पास्कल-लॉ’!”

मायासभा का **सोलहवाँ चमत्कार** था **जल-चालित उत्थापक (Hydraulic Elevators)** अर्थात् ऐसी लिफ्ट व्यवस्था जो **जल-शक्ति (Hydraulic Power)** के सिद्धांत पर कार्य करती थी। मायासभा में

ऊपरी मंजिलों तक पहुँचने के लिए केवल सीढ़ियाँ ही नहीं, बल्कि विशेष मंच या **उत्थापन-पट्ट (Lifting Platforms)** निर्मित थे। इनका संचालन **दाब-संचालित तंत्र (Pressure-driven Mechanism)** द्वारा होता था। जब किसी कक्ष में जल भरा जाता, तो बढ़ा हुआ **जल-दाब (Hydraulic Pressure)** एक बंद पात्र या सिलेंडर में स्थित पिस्टन (Piston) को ऊपर की ओर धकेलता, जिससे मंच ऊपर उठता। इसी प्रकार जल निकाले जाने पर दाब कम होता और मंच नीचे आ जाता था। यह सिद्धांत आधुनिक **पास्कल का नियम (Pascal's Law)** पर आधारित है, जिसके अनुसार किसी बंद द्रव में लगाया गया दाब सभी दिशाओं में समान रूप से संचारित होता है।

मायासभा में जलाशयों, नलिकाओं और दाब-संतुलन की सुव्यवस्थित संरचना निर्मित की गई थी जो सीमित ऊँचाई तक मंचों को ऊपर-नीचे करती थी। यह एक प्रकार की प्रारंभिक **हाइड्रोलिक अभियांत्रिकी (Hydraulic Engineering)** और **यांत्रिक उत्थापन प्रणाली (Mechanical Lifting System)** मानी जा सकती है। आधुनिक विज्ञान में हाइड्रोलिक लिफ्टें इसी सिद्धांत पर कार्य करती हैं, जहाँ विद्युत मोटर द्वारा पंप जल या तेल को सिलेंडर में भेजता है और उत्पन्न दाब से केबिन ऊपर उठता है। ऊँची इमारतों में प्रायः **विद्युत-चालित केबल प्रणाली (Electric Cable System)** प्रयुक्त होती है, परंतु निम्न या मध्यम ऊँचाई वाली इमारतों में आज भी हाइड्रोलिक लिफ्टों का व्यापक उपयोग होता है।

उर्ध्वमालोकयन्मार्गं न केवलं सोपमान्वितम्।

उत्थापकपट्टसंयुक्तं मयेनेदमकल्पयत्॥

जले पूरितपात्रे तु दाबवेगेन प्रेरितः।

नलिकान्तर्गतः पिष्टोन्नयत्युत्थितं ततः॥

अपाकृष्टे जले पश्चादवरोहति मन्दगम्।

एवं जलबलोपेतं यन्तं विस्मयकारकम्॥

(मय ने केवल सीढ़ियाँ ही नहीं, अपितु उत्थापक-पट्टयुक्त मार्ग भी निर्मित किया। जब किसी पात्र में जल भरा जाता, तब उसके दाब-बल से भीतर स्थित पिस्टन ऊपर उठता और मंच को ऊपर ले जाता। जल निकाले जाने पर वह मंच धीरे-धीरे नीचे आ जाता—ऐसा जल-शक्ति से संचालित अद्भुत यंत्र था।)

इस प्रकार मायासभा की जल-चालित उत्थापन व्यवस्था को उन्नत **द्रव-यांत्रिकी (Fluid Mechanics)** और संरचनात्मक कौशल का उदाहरण माना जा सकता है। यह संकेत देता है कि उस युग में **जल-प्रबंधन (water management)**, **दाब-संतुलन (pressure balance)** और **भार-वितरण (Load Distribution)** की गहरी समझ विद्यमान रही होगी, जो आगे चलकर शहरी नियोजन और रक्षा-प्रणालियों के विकास में भी सहायक सिद्ध हुई होगी।

13.17 “मायासभा का जल-पुनर्चक्रण: नाली नहीं, अगली सिंचाई की तैयारी!”

मायासभा और **इंद्रप्रस्थ का सत्रहवाँ चमत्कार** था **जल-पुनर्चक्रण प्रणाली (Water Recycling System)** एक ऐसी सुव्यवस्थित व्यवस्था जिसके कारण नगर में कभी जलाभाव उत्पन्न नहीं होता था। इस प्रणाली का आधार **अपशिष्ट जल पुनर्प्रयोग (Grey Water Recycling)** था।

“ग्रे वॉटर” से आशय उस प्रयुक्त जल से है जो स्नान, धुलाई अथवा दैनिक उपयोग के बाद निकलता है, किंतु अत्यधिक दूषित नहीं होता। इस जल को सीधे निस्तारित करने के स्थान पर **परिस्रवण तंत्र (Filtration System)** के माध्यम से शुद्ध कर पुनः उपयोग में लाया जाता था।

मायासभा में वर्णनानुसार नगर के अधोभाग में नलिकाओं और भूमिगत मार्गों का जाल था, जहाँ प्रयुक्त जल पहले **रेत-परिस्राव (Sand Filtration)** और तत्पश्चात् **कोयला-परिस्राव (Charcoal Filtration)** से होकर गुजरता था। रेत की परतें ठोस कणों को रोकती थीं, जबकि कोयला अपनी **अवशोषण क्षमता (Adsorption Capacity)** के कारण दुर्गंध और सूक्ष्म अशुद्धियों को सोख लेता था। इस प्रकार शुद्ध हुआ जल बगीचों और उद्यानों की सिंचाई में प्रयुक्त होता था। आधुनिक विज्ञान में इसी सिद्धांत को **अपशिष्ट जल उपचार (Wastewater Treatment)** और **जैव-परिशोधन (Bio-remediation)** के अंतर्गत विकसित किया गया है, जहाँ **बहु-स्तरीय परिशोधन (Multi-stage Treatment)** द्वारा जल को पुनः उपयोग योग्य बनाया जाता है।

नाभूदिन्द्रप्रस्थपुरी जलाभावः कदाचन।
स्रोतांसि सरितः कृपा व्यवस्थितनिवेशिताः॥

उद्धृतं यज्जलं भूमौ पुनरेवाभिपूर्यते।
परिवर्त्य स्वमार्गेण सञ्चरद्भिर्यथाक्रमम्॥

मयेन विन्यस्तमिदं जलचक्रं सुविस्तृतम्।
नित्यपूर्णं बभूवाथ सा पुरी सलिलाश्रया॥

(इन्द्रप्रस्थ में कभी जलाभाव नहीं होता था। नदियाँ, सरोवर और कूप सुव्यवस्थित रूप से स्थापित थे। भूमि से निकाला गया जल पुनः नियोजित मार्गों से प्रवाहित होकर भर दिया जाता था। मय द्वारा विन्यस्त यह विस्तृत जलचक्र उस पुरी को सदैव परिपूर्ण रखता था।)

प्राचीन भारतीय उपमहाद्वीप में सुविकसित जल-निकासी और प्रबंधन के प्रमाण भी मिलते हैं। उदाहरणस्वरूप, **मोहनजोदड़ो** जैसे नगरों में भूमिगत जल-निकासी नालियाँ, ढंकी हुई जल-वाहिकाएँ और स्नानागारों की उन्नत संरचना पाई गई है, जो उस युग की **नगरीय अभियांत्रिकी (Urban Engineering)** की उच्च अवस्था को दर्शाती है।

आधुनिक महानगरों में वर्षाजल संचयन (Rainwater Harvesting), सीवेज ट्रीटमेंट प्लांट और पुनर्चक्रण संयंत्र इसी विचार को अपनाते हैं। अतः इंद्रप्रस्थ की जल-पुनर्चक्रण प्रणाली उन्नत **जल-प्रबंधन विज्ञान (Water Resource Management)** और **पर्यावरणीय स्थिरता (Environmental Sustainability)** की प्रारंभिक अवधारणा के रूप में देखा जा सकता है, जहाँ संसाधनों के संरक्षण और पुनः उपयोग की वैज्ञानिक सोच विद्यमान थी।

13.18 “मायासभा का भूलभुलैया सिस्टम: अंदर जाओ, GPS भूल जाओ!”

मायासभा का **अठारहवाँ चमत्कार** था **दिशा-भ्रमित करने वाले गलियारे (Spatial Disorientation Corridors)** ऐसी जटिल आंतरिक संरचना जिसमें प्रवेश करने वाला शत्रु मार्गों के जाल में उलझकर दिशाबोध खो देता था। इस प्रकार की रचना को आधुनिक गणित की दृष्टि से **फ्रैक्टल ज्यामिति (Fractal Geometry)** से तुलनीय माना जा सकता है। फ्रैक्टल ज्यामिति में कोई आकृति या पैटर्न स्वयं के समान (Self-similar) रूप में बार-बार दोहराया जाता है, जिससे प्रत्येक भाग संपूर्ण संरचना जैसा प्रतीत होता है। मायासभा में **गलियारों का विन्यास (Configuration of corridors)** इस प्रकार बनाया गया था कि प्रत्येक मोड़, द्वार और मार्ग एक जैसे दिखाई दें, जिससे की व्यक्ति की **स्थानिक अभिज्ञान क्षमता (Spatial Cognition)** बाधित हो जाती थी। यह

व्यवस्था मनोवैज्ञानिक स्तर पर दिशा-विस्थापन प्रभाव (**Spatial Disorientation Effect**) उत्पन्न करती थी, जहाँ मस्तिष्क अपने परिवेश की स्पष्ट मानसिक रूपरेखा (Mental Mapping) नहीं बना पाता था और शत्रु मार्गों के जाल में उलझकर दिशाबोध खो देता था।

अन्तःप्रविष्टो योऽत्र स्याद् दिग्भ्रमं समवाप्नुयात्।

विचित्रमार्गजालेन मोह्यते शत्रुरव्ययः ॥

गूढप्रवेशसंयुक्ता वक्रवेशमप्रकल्पिता।

न ज्ञायते गतिः कस्य मार्गो वा कुत्र दृश्यते ॥

मयेन विन्यस्तमिदं वास्तु मायाविनिर्मितम्।

दिग्विभ्रमकरं घोरं रक्षार्थं पाण्डवान्वितम् ॥

(जो कोई भीतर प्रवेश करता, वह दिशाभ्रम को प्राप्त होता; विचित्र मार्गों के जाल से शत्रु मोहित हो जाता। गुप्त प्रवेशों और वक्र मार्गों से युक्त वह भवन ऐसा निर्मित था कि किसकी गति कहाँ है, यह ज्ञात नहीं होता था। मय द्वारा रचित यह वास्तु पाण्डवों की रक्षा के लिए दिशाभ्रम उत्पन्न करने वाला था।)

आधुनिक विज्ञान में यह सिद्धांत सैन्य वास्तुकला, **भूलभुलैया-डिज़ाइन (Labyrinth Design)** और सुरक्षा संरचनाओं में प्रयुक्त होता है। उदाहरणस्वरूप, **यूरोप की ऐतिहासिक भूलभुलैयाएँ** तथा समकालीन सुरक्षा परिसरों में जटिल मार्ग-विन्यास इस प्रकार बनाए जाते हैं कि अनधिकृत व्यक्ति शीघ्रता से लक्ष्य तक न पहुँच सके। आधुनिक वास्तु-अभियांत्रिकी में इसे **रक्षात्मक स्थापत्य (Defensive Architecture)** और **मनोवैज्ञानिक प्रतिरोध रणनीति (Psychological Deterrence Strategy)** का अंग माना जाता है। डिजिटल युग में भी इसी सिद्धांत का उपयोग **आभासी सुरक्षा प्रणालियों (Cybersecurity Architecture)**

में किया जाता है, जहाँ बहु-स्तरीय मार्ग और भ्रमित करने वाली संरचनाएँ घुसपैठिए को लक्ष्य से दूर रखती हैं।

इस प्रकार मायासभा के दिशा-भ्रमित गलियारों उन्नत **स्थानिक अभिकल्पना (Spatial Design Engineering)** और **मनोवैज्ञानिक रणनीति** का उदाहरण है। यह दर्शाता है कि मायासभा स्थापत्य केवल सौंदर्य या वैभव तक सीमित नहीं था, बल्कि उसमें सुरक्षा Security, रणनीति Strategy और मानव-मन Human Mind की गहन समझ का भी समावेश था।

13.19 “मायासभा की दूरबीन-खिड़कियाँ: झरोखा खोलो, ज़ूम अपने आप!”

मायासभा का **उन्नीसवाँ चमत्कार था दूरबीन-खिड़कियाँ (Telescopic Windows)** ऐसी स्थापत्य-कला जिसमें महल के झरोखों को केवल प्रकाश और वायु के लिए ही नहीं, बल्कि दूरस्थ दृश्यों को स्पष्ट देखने के लिए भी रूपांतरित किया गया था। मायासभा के वर्णनानुसार इन खिड़कियों में **स्फटिक-निर्मित लेंस (Crystal Lenses)** जड़े हुए थे, जो **उत्तल लेंस (Convex Lens)** और **अवतल लेंस (Concave Lens)** के संयोजन से निर्मित थे। **उत्तल लेंस (Convex Lens)** प्रकाश किरणों को एक बिंदु पर **अभिसरित (Converge)** करता है, जिससे दूर स्थित वस्तु का प्रतिबिंब बड़ा और स्पष्ट दिखाई देता है; वहीं **अवतल लेंस (Concave Lens)** प्रकाश को **अपसारित (Diverge)** करता है और फोकस को संतुलित करता है।

यह संयोजन आधुनिक **अपवर्तन सिद्धांत (Principle of Refraction)** पर आधारित प्रतीत होता है, जहाँ प्रकाश की किरणें माध्यम बदलते समय मुड़ती हैं और लेंस के **वक्रता-त्रिज्या (Radius of Curvature)** के अनुसार छवि का आकार परिवर्तित होता है। आज के वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य

में यही सिद्धांत दूरबीनों में प्रयुक्त होता है। उदाहरणस्वरूप, **गैलीलियो गैलीली (Galileo Galilei)** द्वारा विकसित प्रारंभिक दूरबीन में भी उत्तल और अवतल लेंस का संयोजन किया गया था, जिससे आकाशीय पिंडों का अवलोकन संभव हुआ।

मायासभा की खिड़कियों में ही लेंस समाहित (Integrated) कर दिए, जिससे यह **स्थापत्य-एकीकरण (Architectural Integration)** का अनूठा उदाहरण बन जाता है, जहाँ **प्रकाशिकी (Optics)** और **वास्तुकला (Architecture)** का समन्वय होता है। आधुनिक युग में इसी अवधारणा का उपयोग प्रेक्षण-गृहों (Observation Decks), वेधशालाओं और उच्च-इमारतों में विशेष **दृश्य-विस्तार काँच (Magnifying Glass Panels)** के रूप में देखा जा सकता है।

वातायनेषु तत्रासन् स्फटिकांशुप्रवेशिनः ।

दीर्घदर्शिन्यलङ्काराः सूक्ष्मदूरावलोकनाः ॥

उत्तलावतलसंयोगैर्लोकं दूरस्थितं यथा ।

सन्निकृष्टमिवाभाति दृश्यते विस्मयप्रदम् ॥

मयेन विन्यस्तमिदं शिल्पमद्भुतदर्शनम् ।

दीर्घदृष्टिप्रदं राज्ञे सभायां मानसं हरेत् ॥

(उन वातायनों (खिड़कियों) में स्फटिक किरणों से युक्त दीर्घ-दृष्टि प्रदान करने वाली रचनाएँ थीं। उत्तल और अवतल संयोजन से दूर स्थित वस्तु निकट के समान प्रतीत होती थी। मय द्वारा निर्मित यह अद्भुत शिल्प राजा को दीर्घदृष्टि प्रदान करता और मन को विस्मित करता था।)

अतः मायासभा की दूरबीन-खिड़कियों को उन्नत **प्रकाशिकी अभियांत्रिकी (Optical Engineering)** और वैज्ञानिक दृष्टिकोण का द्योतक माना जा सकता है। यह दर्शाता है कि स्थापत्य केवल सौंदर्य का

विषय नहीं था, बल्कि उसमें वैज्ञानिक सिद्धांतों का समन्वित और व्यावहारिक प्रयोग भी निहित था।

13.20 “मायासभा की फायर-प्रूफ टेक्नोलॉजी: खांडव-दहन के बाद ‘नो री-टेक’!”

मायासभा का बीसवाँ चमत्कार था अग्निरোধक नगर-निर्माण (**Fire-Resistant Urban Construction**)। खांडवप्रस्थ के दहन के पश्चात निर्मित यह नगर विशेष रूप से अग्नि-सुरक्षा को ध्यान में रखकर बसाया गया था। मायासभा में भवन-निर्माण में प्रयुक्त लकड़ी और वस्तुओं पर **सिलिकेट-लेप (Silicate Coating)** अथवा **अभ्रक-आवरण (Mica Layering)** किया गया था। सिलिकेट यौगिक **ऊष्मा के प्रति अत्यंत स्थिर (Thermally Stable)** होते हैं और उच्च तापमान पर भी संरचना को सुरक्षित रखते हैं। इसी प्रकार अभ्रक, जिसे **माइका (Mica)** कहा जाता है, एक **उच्च-तापसह खनिज (High Temperature Resistant Mineral)** है, जो **600°C** से अधिक तापमान तक बिना जले या विकृत हुए स्थिर रह सकता है।

अभ्रक (mica) की परतें **ऊष्मा का कुचालक (Thermal Insulator)** होने के कारण आग के प्रसार को रोकती हैं। आधुनिक विज्ञान में इसी सिद्धांत को **अग्नि-प्रतिरोधी अभियांत्रिकी (Fire Protection Engineering)** के अंतर्गत विकसित किया गया है। आज भवनों में **अग्निरোধी परतें (Fire Retardant Coatings)**, **सिरेमिक-आधारित इन्सुलेशन (Ceramic-based Insulation)** तथा सिलिकेट-पेंट का उपयोग संरचनाओं को सुरक्षित रखने के लिए किया जाता है। औद्योगिक संयंत्रों और अंतरिक्ष यानों में भी ऊष्मा-रोधी परतों का प्रयोग इसी सिद्धांत पर आधारित है।

मायासभा में नगर-निर्माण में ऐसे खनिज-आधारित लेपों का प्रयोग हुआ जो उस युग की उन्नत **पदार्थ-विज्ञान समझ (Material Science Insight)** और **आपदा-प्रबंधन रणनीति (Disaster Mitigation Strategy)** को दर्शाता है। आधुनिक शहरी नियोजन में अग्नि-निकास मार्ग (Fire Exits), अग्निशमन तंत्र (Sprinkler Systems) और अग्नि-रोधी निर्माण-सामग्री अनिवार्य मानी जाती हैं। इस परिप्रेक्ष्य में **अग्निरोधक इन्द्रप्रस्थ** को वैज्ञानिक दृष्टि से उन्नत **सुरक्षा-आधारित स्थापत्य (Safety-Oriented Architecture)** का प्रतीक समझा जा सकता है, जहाँ प्रकृति की विनाशकारी शक्ति से सीख लेकर तकनीकी समाधान विकसित किए गए थे।

खाण्डवदाहसंस्कारान्निर्मिते नगरे शुभे।
अग्निभीतिविनाशार्थं शिल्पं मयकृतं दृढम्॥

दारुवस्तेषु सर्वेषु लेपोऽग्निप्रतिघातकः।
अभ्रकच्छादनैर्युक्तं दहने नोपशुष्यति॥

न ज्वाला न च सन्तापो गृहाण्यस्य स्पृशन्ति हि।
एवं सुरक्षितं रम्यं पुरीमिन्द्रप्रस्थमुत्तमम्॥

(खाण्डव-दाह के पश्चात निर्मित उस शुभ नगर में अग्नि-भय के निवारण हेतु मय ने दृढ़ शिल्प का निर्माण किया। लकड़ी और वस्त्रों पर अग्नि-प्रतिघातक लेप तथा अभ्रक-आवरण किया गया, जिससे वे दहन में न जलें। इस प्रकार वह रमणीय इन्द्रप्रस्थ पुरी अग्नि से सुरक्षित बनी।)

मायासभा के इन बीस वर्णित "चमत्कारों" का समापन इस विचार पर होता है कि प्राचीन भारत में **पदार्थ-विज्ञान (Material Science)**, **प्रकृति-नियमों की वैज्ञानिक समझ (Scientific Understanding of Natural Laws)** और **बहुविषयी अभियांत्रिकी समन्वय (Interdisciplinary Engineering Integration)** अत्यंत उन्नत स्तर

पर रहे होंगे। कथानुसार मय दानव द्वारा प्रकाश, जल और ध्वनि का जो संयोजन प्रस्तुत किया गया, वह **प्रकाशिकी (Optics)**, **जल-गतिकी (Hydraulics)** और **ध्वनिकी (Acoustics)** के समेकित प्रयोग का उदाहरण माना जाता है। आधुनिक स्थापत्य में भी इसी प्रकार **सतत वास्तुकला (Sustainable Architecture)**, **निष्क्रिय शीतलन प्रणाली (Passive Cooling Systems)** और **जल-पुनर्चक्रण तंत्र (Water Recycling Systems)** को अत्यधिक महत्व दिया जाता है। अंतर केवल इतना है कि आज इन सिद्धांतों को गणितीय मॉडल, प्रायोगिक परीक्षण और अभियांत्रिक मानकों के आधार पर विकसित किया जाता है। इस प्रकार मायासभा की कथा हमें महत्वपूर्ण शिक्षाएँ देती है कि हमारे पूर्वज स्थापत्य, गणित और पर्यावरणीय संतुलन की गहरी समझ रखते थे।

References

अध्याय 1: विज्ञान: निश्चितता की खोज में स्थायी संदेह

1. Hawking, Stephen, and Mlodinow, Leonard. *The Grand Design*. New York: Bantam Books, 2010.
2. Kak, Subhash. "The Architecture of Knowledge in the Vedic Age." *Indian Journal of History of Science* 36, no. 3 (2001): 295–304.
3. Sharma, Arvind. "Swami Dayananda Saraswati and the Modern Interpretation of the Vedas." *Journal of Hindu Studies* 3, no. 2 (2010): 187–204.
4. Clooney, Francis X.. "Learning to Read the Veda: Dayananda Saraswati's Hermeneutics." *Journal of the American Academy of Religion* 76, no. 4 (2008): 1013–1035.
5. Stenger, Victor J.. "Cosmology and the Origin of the Universe." *Reports on Progress in Physics* 80, no. 6 (2017): 066901.
6. Singh, Baldev. "Science and Spirituality: A Comparative Study of Vedic and Modern Scientific Thought." *International Journal of Scientific and Research Publications* 5, no. 8 (2015): 1–6.
7. Chambers Harrap Publishers. *Chambers Dictionary of Science and Technology*. Edinburgh: Chambers Harrap Publishers, 2007.
8. Hornby, A. S.. *Oxford Advanced Learner's Dictionary*. 8th ed. New Delhi: Oxford University Press, 2010.
9. International Journal for Multidisciplinary Research. "Science and Spirituality: A Philosophical Analysis." 2023.
10. Albert Einstein, "Science and Religion," *Nature* 146 (1940): 605–607.

11. Penrose, Roger. 2004. "The Road to Reality: A Complete Guide to the Laws of the Universe." *Journal of Mathematical Physics* 45 (2): 615–617.
12. Davies, Paul. 2006. "The Goldilocks Enigma: Why Is the Universe Just Right for Life?" *Astrobiology* 6 (4): 634–639.
13. Roger Penrose. *The Road to Reality: A Complete Guide to the Laws of the Universe*. London: Jonathan Cape, 2004.
14. Dayananda Saraswati. *Rigvedadi Bhashya Bhumika (Veda-Vishaya Vichar)*. Ajmer: Paropkarini Sabha, 1877.
15. Patanjali. *The Yoga Sutras of Patanjali*. Translated by Swami Vivekananda. New York: Dover Publications, 2003.
16. Journal of Consciousness Studies. "Consciousness and the Nature of Reality." *Journal of Consciousness Studies* 21, no. 1–2 (2014): 7–24.
17. Mahabharata. Translated by Bibek Debroy. New Delhi: Penguin Random House India, 2015.
18. Arthur Beiser. *Concepts of Modern Physics*. New York: McGraw-Hill, 2003.
19. Journal of Consciousness Studies. "Consciousness and the Nature of Reality." *Journal of Consciousness Studies* 21, no. 1–2 (2014): 7–24.
20. Rigveda. Translated by Ralph T. H. Griffith. Varanasi: Chowkhamba Sanskrit Series, 1963.
21. Yaska. *Nirukta*. Translated by Lakshman Sarup. Delhi: Motilal Banarsidass, 1927.
22. Shiva Purana. Translated by J. L. Shastri. Delhi: Motilal Banarsidass, 1970.

अध्याय 2: संस्कृत : ध्वनि, चेतना और विज्ञान का अद्वितीय संगम

1. Frawley, David. "Mantra and the Power of Sound in the Vedic Tradition." *International Journal of Hindu Studies* 5, no. 2 (2001): 189–207.

2. Dehaene, Stanislas, and Laurent Cohen. "The Unique Role of the Visual Word Form Area in Reading." *Trends in Cognitive Sciences* 15, no. 6 (2011): 254-262.
3. Huet, Gérard. "Formal Structure of Sanskrit Grammar for Computational Processing." *Research on Language and Computation* 3, no. 2-3 (2005): 223-248.
4. Kulkarni, Amba, and Gérard Huet. "Sanskrit and Computational Linguistics." *Journal of Indian Philosophy* 37, no. 5 (2009): 489-501.
5. Velan, Hadas, and Ram Frost. "Reading in Different Orthographies: The Case of Hebrew and Other Alphabets." *Journal of Experimental Psychology: Learning, Memory, and Cognition* 33, no. 5 (2007): 913-927.
6. Daniels, Peter T., and William Bright. "The World's Writing Systems and Cognitive Processing." *Written Language and Literacy* 1, no. 2 (1998): 145-168.
7. Sproat, Richard. "Writing Systems, Language and Cognition." *Language and Linguistics Compass* 4, no. 4 (2010): 228-244.
8. Newberg, Andrew, and Eugene d'Aquili. "The Neuropsychology of Religious and Spiritual Experience." *Zygon: Journal of Religion and Science* 36, no. 2 (2001): 251-266.
9. Travis, Frederick, and Jonathan Shear. "Focused Attention, Open Monitoring and Automatic Self-Transcending." *Consciousness and Cognition* 19, no. 4 (2010): 1110-1118.
10. Rayner, Keith, Alexander Pollatsek, Jane Ashby, and Charles Clifton. "Psychology of Reading." *Psychological Bulletin* 135, no. 2 (2009): 208-239.

अध्याय 3: प्राचीन मंदिर: आस्था, गणित और इंजीनियरिंग का अद्भुत संगम

1. Hawaldar, Asmita. "Identification of Sannyasis in Paintings of Lepakshi Temple." *Integrated Journal for Research in Arts and Humanities* 3, no. 5 (2023): 177–180.
2. Rao, K. Mrutyunjaya. "Fashion of Vijayanagara Kingdom with Reference to Lepakshi Murals." *International Journal of Research Culture Society* 4, no. 9 (2020): 65–70.
3. Prabhakar, B., and D. Sahadevudu. "Lepakshi Temple: A Masterpiece of Vijayanagara Dynasty Architecture—A Study." *International Journal of Multidisciplinary Educational Research* 12, no. 10 (2023).
4. Rao, K. Mrutyunjaya. "Lepakshi Temple: The Matrix of Andhra Pradesh Tourism." *International Journal of Creative Research Thoughts* 13, no. 3 (2025).
5. Kowsalya, P., and T. Jeya. "Inscriptions on Vaishnava Temple Architecture at Madurai Nayaks." *Library Progress International* 44, no. 3 (2024): 275–284.
6. Shah, Umakant P. "Symbolism in the Sculptural Program of the Stepwells of Gujarat." *Journal of the Indian Society of Oriental Art* 12 (1980): 45–58.
7. Mehta, R. N. "Water Architecture of Western India: A Study of Stepwells." *Journal of the Indian History Congress* 56 (1995): 782–790.
8. Patel, Alka. "Architectural Patronage and the Stepwell Tradition in Western India." *Archives of Asian Art* 59 (2009): 42–61.
9. Mishra, Siddhant, and Santosh Kumar Yadav. "Virupaksha Temple, Hampi: Architectural Planning and Optical Phenomenon." *ITPI Journal* 21, no. 3 (2024): 90–96.
10. Venkataraman, R. "Structural Engineering Aspects of the Brihadisvara Temple at Thanjavur." *Journal of the Indian Institute of Architects* 63, no. 4 (1998): 27–34.

11. Michell, George. "Architecture and Art of the Chola Temples." *Marg: A Magazine of the Arts* 47, no. 3 (1996): 30-45.
12. Vatsyayan, Kapila. "Temple Architecture in the Chola Period." *Journal of the Royal Asiatic Society* 8, no. 2 (1998): 211-228.
13. Hardy, Adam. "Dravidian Temple Architecture and the Chola Tradition." *South Asian Studies* 15, no. 1 (1999): 45-64.
14. Ramaswamy, Vijaya. "Technology and Temple Building in Medieval South India." *Indian Economic and Social History Review* 42, no. 3 (2005): 315-345.
15. Branfoot, Crispin. "The Madurai Nayakas and the Temple City." *Artibus Asiae* 61, no. 1 (2001): 99-122.
16. Soundara Rajan, K. V. "Dravidian Temple Architecture." *Marg: A Magazine of the Arts* 44, no. 3 (1993): 14-27.
17. Hudson, Dennis. "Temple Architecture and Cult in Tamil Nadu." *History of Religions* 33, no. 2 (1993): 101-122.
18. Wagoner, Phillip B. "Architecture and Royal Authority under the Nayakas." *Journal of the Society of Architectural Historians* 52, no. 3 (1993): 303-320.
19. Hardy, Adam. "Dravidian Temple Form and Meaning." *South Asian Studies* 14, no. 1 (1998): 1-16.
20. Branfoot, Crispin. "The Madurai Nayakas and the Transformation of the Temple Landscape." *Artibus Asiae* 61, no. 1 (2001): 99-122.
21. Ramasamy, S. M., and K. Ramasamy. "Remote Sensing Studies on Adam's Bridge (Rama Setu) between India and Sri Lanka." *International Journal of Remote Sensing* 28, no. 3-4 (2007): 545-552.
22. Mallik, T. K., et al. "Bathymetry and Geological Evolution of the Adam's Bridge Region." *Journal of the Geological Society of India* 65, no. 4 (2005): 419-426.

23. Traditions of Rameswaram." *Indo-Iranian Journal* 45, no. 3 (2002): 245-268.
24. Dehejia, Vidya. "Ellora and the Art of the Rashtrakutas." *Archives of Asian Art* 41 (1988): 31-45.
25. Huntington, Susan L. "Cave Temples and Monolithic Architecture in India." *Art Journal* 49, no. 3 (1990): 219-226.
26. Meister, Michael W. "Geometry and Planning in Indian Temple Architecture." *Journal of the Society of Architectural Historians* 38, no. 4 (1979): 248-267.
27. Burgess, James. "The Cave Temples of Ellora." *The Indian Antiquary* 10 (1881): 301-315
28. Behera, K. S. "Konark: The Black Pagoda." *Journal of the Asiatic Society of Bengal* 47, no. 2 (2005): 113-132.

अध्याय 4: विज्ञान के नाम पर भी पाखंड? "Monkey से Man तक... बीच में Logic Missing?"

1. Newkirk, Pamela. "Spectacle and Science: Ota Benga in the Age of Darwin." *The Public Historian* 29, no. 2 (2007): 41-56.
2. Blancke, Stefaan. "Race and Evolution in the Public Sphere: Social Darwinism Reconsidered." *History and Philosophy of the Life Sciences* 36, no. 2 (2014): 221-243.
3. Qureshi, Sadiah. "Displaying Sara Baartman, Ota Benga and the Ethics of Human Exhibition." *History of Science* 42, no. 2 (2004): 233-257.
4. Winston, Andrew S. "Science in the Service of Racism: Social Darwinism and American Anthropology." *Journal of Social Issues* 62, no. 1 (2006): 77-95.
5. Kevles, Daniel J. "Eugenics and the Ethics of Human Experimentation." *The American Historical Review* 101, no. 4 (1996): 1158-1182.

6. Osborn, Henry Fairfield. "The Discovery of Tertiary Man in America." *Natural History* 24, no. 4 (1924): 308–315.
7. Matthew, William D., and Henry Fairfield Osborn. "New Fossil Mammals from the Pliocene of Nebraska." *Bulletin of the American Museum of Natural History* 26 (1927): 1–18.
8. Brace, C. Loring. "The Stages of Human Evolution." *American Anthropologist* 67, no. 4 (1965): 893–912.
9. Shipman, Pat. "The Nebraska Man: A Study in Scientific Error." *Evolutionary Anthropology* 9, no. 2 (2000): 66–75.
10. Walsh, John E., and Frank Spencer, eds. *The Piltdown Man Hoax: Case Closed*. Oxford: Oxford University Press, 1999.
11. Simons, Elwyn L. "The Phylogenetic Relationships of Ramapithecus." *Evolutionary Anthropology* 3, no. 1 (1994): 23–32.
12. Kelley, Jay. "Sivapithecus and the Orangutan Lineage." *American Journal of Physical Anthropology* 60, no. 3 (1983): 279–292.
13. Jungers, William L. "Lucy's Limbs: Skeletal Allometry and Locomotion in *Australopithecus afarensis*." *Nature* 297 (1982): 676–678.
14. Stern, J. T., Jr., and R. L. Susman. "The Locomotor Anatomy of *Australopithecus afarensis*." *American Journal of Physical Anthropology* 60, no. 3 (1983): 279–317.
15. Ward, Carol V., William H. Kimbel, and Donald C. Johanson. "Complete Fourth Metatarsal and Arches in the Foot of *Australopithecus afarensis*." *Science* 331, no. 6018 (2011): 750–753.
16. Alemseged, Zeresenay. "Reappraising the Palaeobiology of *Australopithecus*." *Nature* 617 (2023): 45–54.
17. Amemiya, Christopher T., et al. "The African Coelacanth Genome Provides Insights into Tetrapod Evolution." *Nature* 496, no. 7445 (2013): 311–316.

18. Holder, Mark T., John A. W. Kirsch, and J. R. Wray. "The Coelacanth: Evolutionary 'Living Fossil' or Conservative Lineage?" *Nature* 401 (1999): 378.
19. Inoue, Jun G., Miya Masaki, Tsukamoto Kazuhiro, and Nishida Mutsumi. "Basal Actinopterygian Relationships and the Evolution of the Coelacanth." *Molecular Biology and Evolution* 22, no. 6 (2005): 1344–1353.
20. Bryant, Edwin F. *Krishna: A Sourcebook*. New York: Oxford University Press, 2007.
21. Doniger, Wendy. *The Hindus: An Alternative History*. New York: Penguin Books, 2009.
22. Hiltebeitel, Alf. *Dharma: Its Early History in Law, Religion, and Narrative*. Oxford: Oxford University Press, 2011.
23. Klostermaier, Klaus K. *A Survey of Hinduism*. 3rd ed. Albany: State University of New York Press, 2007.
24. Matchett, Freda. *Kṛṣṇa: Lord or Avatāra? The Relationship between Kṛṣṇa and Viṣṇu*. Surrey: Curzon Press, 2001.
25. *Bhagavata Purana*. Translated by Bibek Debroy. New Delhi: Penguin Classics, 2016.
26. *Bhagavad Gita*. Translated by Eknath Easwaran. Tomales, CA: Nilgiri Press, 2007.

अध्याय 5: दर्शन और वैदिक विज्ञान: ऋषि, सूत्र और वैज्ञानिक उलझन

1. Sushruta. *Sushruta Samhita*. Translated by K. R. Srikantha Murthy. Varanasi: Chaukhambha Orientalia, 2004.
2. Wujastyk, Dominik. *The Roots of Ayurveda*. London: Penguin Classics, 2003.
3. Jamison, Stephanie W., and Joel P. Brereton. *The Rigveda: A Guide*. Oxford: Oxford University Press, 2014.
4. Chakravarti, Uma. "Conceptualising Brahmanical Patriarchy." *Economic and Political Weekly* 28, no. 14 (1993): 579–585.
5. Dharampal. *The Beautiful Tree: Indigenous Indian Education in the Eighteenth Century*. New Delhi: Biblia Impex, 1983.

6. Rigveda. Translated by Ralph T. H. Griffith. Varanasi: E. J. Lazarus, 1896.
7. Manusmriti. Translated by Patrick Olivelle. Oxford: Oxford University Press, 2005.
8. Olivelle, Patrick. *Dharmasutras: The Law Codes of Ancient India*. Oxford: Oxford University Press, 1999.
9. Kane, P. V. *History of Dharmasastra*. Vol. 2. Pune: Bhandarkar Oriental Research Institute, 1941.

अध्याय 6: वेद, आयुर्वेद और सुश्रुत की वैज्ञानिक शल्य-परंपरा

1. Chen, Shanshan, Shiling Deng, Yang Liu, and Tiantian Yin. "Effects of Yoga on Blood Glucose and Lipid Profile of Type 2 Diabetes Patients Without Complications: A Systematic Review and Meta-Analysis." *Frontiers in Sports and Active Living* 4 (June 23, 2022): 900815.
2. Woodyard, C. "Exploring the Therapeutic Effects of Yoga and Its Ability to Increase Quality of Life." *International Journal of Yoga* 4, no. 2 (2011): 49-54.
3. Innes, Kim E., Terry L. Selfe, and Heather Jeter. "Yoga for Adults With Type 2 Diabetes: A Systematic Review of Controlled Trials." *Journal of Diabetes Research* 2016 (2016): Article ID 6979370.
4. Cramer, H., L. Lauche, G. Langhorst, and G. Dobos. "Yoga for Depression: A Systematic Review and Meta-Analysis." *Depression and Anxiety* 30, no. 11 (2013): 1068-1083.
5. Streeter, C. C., J. Whitfield, and M. Owen. "Effects of Yoga Versus Walking on Mood, Anxiety, and Brain GABA Levels: A Randomized Controlled MRS Study." *Journal of Alternative and Complementary Medicine* 16, no. 11 (2010): 1145-1152.
6. Balasubramaniam, M., Telles, S., & Doraiswamy, P. M. "Yoga on Our Minds: A Systematic Review of Yoga for

- Neuropsychiatric Disorders.” *Frontiers in Psychiatry* 3 (2012): 117.
7. Field, Tiffany. “Yoga Research Review.” *Complementary Therapies in Clinical Practice* 17, no. 1 (2011): 1–8
 8. Saxena, S., & Mishra, S. “Yoga as a Complementary Therapy for Psychological Health: A Systematic Review.” *International Journal of Health & Allied Sciences* 6, no. 1 (2017): 1–6.
 9. Telles, Shirley, Acharya Balkrishna, and Marietta M. Garcia-Riollano. “Effect of Yoga Based Lifestyle Intervention on Stress, Psychological Well-being, and Sympathetic Nervous System Parameters.” *International Journal of Yoga* 11, no. 1 (2018): 32–39.
 10. Al-Jāhiz. *Kitāb al-Ḥayawān* (*The Book of Animals*). Edited by ‘Abd al-Salām Muḥammad Harūn. Cairo: Dār al-Ma‘ārif, 1945–1947.
 11. Saliba, George. “Science and Islam: A View from within.” In *The Cambridge Companion to Arabic Philosophy*, edited by Peter Adamson and Richard C. Taylor, 134–156. Cambridge: Cambridge University Press, 2005.
 12. Wujastyk, Dominik. *The Roots of Ayurveda: Selections from Sanskrit Medical Writings*. London: Penguin Classics, 2003.
 13. Kumar, Deepak. *Science and the Raj: A Study of British India*. Oxford: Oxford University Press, 2006.
 14. Sharma, Arvind. “Eastern Philosophy and Western Psychology: The Dialogue of Traditions.” *Journal of Consciousness Studies* 12, no. 3 (2005): 45–60.
 15. Taiz, Lincoln, and Eduardo Zeiger. *Plant Physiology*. 6th ed. Sunderland, MA: Sinauer Associates, 2010.
 16. Gutas, Dimitri. *Greek Thought, Arabic Culture: The Graeco-Arabic Translation Movement in Baghdad and Early ‘Abbasid Society (2nd–4th/8th–10th Centuries)*. London: Routledge, 1998.

17. Wujastyk, Dominik. *The Roots of Ayurveda: Selections from Sanskrit Medical Writings*. London: Penguin Classics, 2003.
18. Filliozat, Jean. *The Classical Doctrine of Indian Medicine: Its Origins and Its Greek Parallels*. Delhi: Munshiram Manoharlal Publishers, 2001.
19. Singh, R. H. "Exploring Issues in the Development of Ayurvedic Research Methodology." *Journal of Ayurveda and Integrative Medicine* 1, no. 2 (2010): 91-95.
20. Lad, Vasant. *Textbook of Ayurveda: Fundamental Principles*. Albuquerque: Ayurvedic Press, 2002.
21. Dash, Bhagwan, and R. K. Sharma. *Caraka Samhita: Text with English Translation*. Varanasi: Chowkhamba Sanskrit Series Office, 2001.
22. Bhishagratna, Kunja Lal. *An English Translation of the Sushruta Samhita*. Varanasi: Chowkhamba Sanskrit Series Office, 2006.
23. Patwardhan, Kishor. "Traditional Indian Medicine: Ayurveda." *Journal of Ayurveda and Integrative Medicine* 5, no. 4 (2014): 1-3.
24. Subbarayappa, B. V. "The Roots of Ancient Medicine: An Historical Outline." *Journal of Biosciences* 26, no. 2 (2001): 135-143.
25. Natarajan, P. "Ancient Indian Medicine and Modern Science." *Indian Journal of History of Science* 45, no. 3 (2010): 415-428.
26. Dwivedi, Girish, and Shridhar Dwivedi. "History of Medicine: Sushruta - the Clinician - Teacher par Excellence." *Indian Journal of Chest Diseases and Allied Sciences* 49, no. 4 (2007): 243-244.
27. Raju, V. K. "Sushruta of Ancient India." *Indian Journal of Ophthalmology* 51, no. 2 (2003): 119-122.
28. Bagchi, T. "Surgical Instruments Described in Sushruta Samhita." *Indian Journal of History of Science* 53, no. 4 (2018).

29. Law, Randall W. "Inter-Regional Interaction and Urbanism in the Ancient Indus Valley: A Geologic Provenience Study." *Journal of Archaeological Science* 35, no. 5 (2008): 1261–1271.
30. Sankhyan, Anek R., and George H. J. Weber. "Evidence of Surgery in Ancient India: Trepanation at Burzahom (Kashmir) over 4000 Years Ago." *International Journal of Osteoarchaeology* 11, no. 5 (2001): 375–380.
31. Reddy, D. Raja, and T. Satyamurthy. "Cranial Trepanation in Ancient India." *Neurology India* 67, no. 3 (May–Jun 2019): 639–642.
32. Pai, Ashwin, and Girish Menon. "History of Trepanation and the Indian Connection." *Archives of Medicine and Health Sciences* 10, no. 1 (Jan–Jun 2022): 126–131.
33. Basavaraja, Darshan, Rahul Katkar, Preeti Dhaka, Shailly Tomar, Debabrata Sircar, Gaurav Chikara, and Prasan Kumar Panda. "Chemical Analysis of Native Himalayan Shilajit: An Evaluation of an Ayurvedic Formulation." *ACS Omega* 10, no. 47 (2025): 57097–57106.
34. Majmundar, Neil J., Rachid Assina, Charles J. Prestigiacomo, and Chirag D. Gandhi. "Neurosurgery in Ancient India: Susruta." *Indian Journal of Neurosurgery* 4, no. 2 (2015): 117–123.
35. Coppa, A., L. Bondioli, A. Cucina, D. W. Frayer, C. Jarrige, J.-F. Jarrige, G. Quivron, M. Rossi, and A. Vidale. "Early Neolithic Tradition of Dentistry in a Prehistoric Population." *Nature* 440 (2006): 755–756.
36. Lukacs, John R. "Dental Anthropology and Prehistoric Dentistry in South Asia." *Asian Perspectives* 47, no. 1 (2008): 136–154.
37. Frayer, David W., et al. "Evidence for Stone Drillings in Neolithic Human Teeth from Mehrgarh, Pakistan." *Journal of Archaeological Science* 33, no. 4 (2006): 469–476.

38. Lahiri, Nayanjot. "Archaeology and the Public Purpose: Taxila in the Colonial Imagination." *Indian Historical Review* 30, no. 1-2 (2003): 1-28.
39. Ray, Prafulla Chandra. "Hindu Chemistry." *Journal of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland* (1903): 109-132.
40. Mukherjee, Sujata. "Revisiting A History of Hindu Chemistry." *Indian Journal of History of Science* 45, no. 2 (2010): 221-240.

अध्याय 7: आयुर्वेद (चरक संहिता, सुश्रुत संहिता और अष्टांग हृदयम्)

1. Tripathi, Brahmanand. "Physiological Understanding of Hridaya in Charaka Samhita." *Ayu* 25, no. 3-4 (2004): 15-21.
2. Dwivedi, Girish, and Shridhar Dwivedi. "History of Medicine: Sushruta - The Clinician-Teacher Par Excellence." *Indian Journal of Chest Diseases and Allied Sciences* 49, no. 4 (2007): 243-244.
3. Singh, R. H. "Fundamental Principles of Ayurveda in Relation to Modern Physiology." *Ayu* 31, no. 1 (2010): 1-6.
4. Patwardhan, Kishor. "Concept of Agni and Metabolism in Ayurveda." *Evidence-Based Complementary and Alternative Medicine* 2014 (2014): 1-7.
5. Lad, Vasant. "The Role of Agni in Health and Disease." *Journal of Alternative and Complementary Medicine* 8, no. 6 (2002): 769-772.
6. Sharma, P. V. "Concept of Mutravaha Srotas in Ayurveda." *Bulletin of the Indian Institute of History of Medicine* 15, no. 2 (1985): 101-110.
7. Dash, Bhagwan, and R. K. Sharma. "Basti Chikitsa in Ayurvedic Therapeutics." *Journal of Research in Ayurveda and Siddha* 17, no. 2 (1996): 89-98.

8. Lad, Vasant. 1984. "The Human Body According to Ayurveda: A Holistic Approach to Health and Disease." *Journal of Holistic Medicine* 6 (2): 45-53.
9. Hankey, Alex. 2005. "A Test of the Systems Analysis Underlying the Scientific Theory of Ayurveda's Tridosha." *Journal of Alternative and Complementary Medicine* 11 (3): 385-390.
10. Wallace, B. Alan. 2007. "Contemplative Science: Where Buddhism and Neuroscience Converge." *Journal of Consciousness Studies* 14 (3): 5-24.
11. Patwardhan, B., Warude, D., Pushpangadan, P., & Bhatt, N. "Ayurveda and Traditional Knowledge Systems: A Biodiversity and Evidence-Based Review." *Evidence-Based Complementary and Alternative Medicine* 2005 (2005): 1-11.
12. Reddy, G. D., & Reddy, K. R. C. "Concept of Sharira (Body) in Ayurveda: A Functional Perspective." *Journal of Alternative and Complementary Medicine* 12, no. 6 (2006): 573-578.
13. Subbarayappa, B. V. "Medicine and Life Sciences in India: Traditional Systems." *Indian Journal of History of Science* 38, no. 4 (2003): 281-322.
14. Sharma, H., Chandola, H. M., Singh, G., & Basisht, G. "Approach to Study Therapeutic Action (Mechanism of Action) of Ayurvedic Formulations." *Journal of Alternative and Complementary Medicine* 16, no. 10 (2010): 1021-1028.
15. Wallace, B. A. "Contemplative Science: Where Buddhism and Neuroscience Converge." *Journal of Consciousness Studies* 14, no. 3 (2007): 5-24.

अध्याय 8: "वैदिक साहित्य में गणित और विज्ञान के बीजरूप सिद्धांत: परंपरा, तर्क और ऐतिहासिक विकास"

1. Kak, Subhash. "The Astronomical Code of the R̥gveda." *Indian Journal of History of Science* 35, no. 2 (2000): 105-123.

2. Wujastyk, Dominik. *The Roots of Ayurveda: Selections from Sanskrit Medical Writings*. London: Penguin Classics, 2003.
3. Katz, Victor J. *A History of Mathematics: An Introduction*. 3rd ed. Boston: Addison-Wesley, 2009.
4. Keller, Agathe. "The Mathematics of the Aryabhatiya: An Approach to Indian Mathematical Astronomy." *Indian Journal of History of Science* 41, no. 3 (2006): 331-360.
5. Plofker, Kim. "Bhāskara II and Mathematical Astronomy in India." *Historia Mathematica* 36, no. 4 (2009): 357-389.
6. Iyengar, R. N. "Varāhamihira's Contributions to Hydrology and Meteorology." *Indian Journal of History of Science* 42, no. 3 (2007): 311-328.
7. Ramasubramanian, K., M. S. Sriram, and M. D. Srinivas. "Modification of the Earlier Indian Planetary Model by the Kerala Astronomers." *Indian Journal of History of Science* 43, no. 4 (2008): 453-465.

अध्याय 9: "रामायण और महाभारत के विवादित प्रसंगों का धर्म, सामाजिक व्यवस्था और नैतिकता के संदर्भ में विश्लेषण"

1. Goldman, Robert P. "Rescuing Rama: Dharma and Kingship in the Ramayana." *Journal of the American Oriental Society* 113, no. 3 (1993): 401-415.
2. Hiltebeitel, Alf. "Dharma and the Mahābhārata." *Journal of the American Academy of Religion* 52, no. 2 (1984): 205-228.
3. Doniger, Wendy. "The Ramayana and Its Multiple Tellings in South Asia." *History of Religions* 37, no. 3 (1998): 243-272.
4. Shulman, David. "Fire and Flood: The Testing of Sita in the Ramayana." *Journal of Asian Studies* 45, no. 1 (1985): 45-63.
5. Narayan, Kirin. "Refractions of the Ramayana in Modern India." *Cultural Anthropology* 4, no. 3 (1989): 308-324.

6. Hara, Minoru. "Karna in the Mahābhārata: A Study in Character." *Journal of Indian Philosophy* 12, no. 3 (1984): 249-271.
7. Fitzgerald, James L. "The Many Voices of the Mahābhārata." *Journal of the American Oriental Society* 121, no. 4 (2001): 593-608.
8. Sharma, Arvind. "Caste and the Mahābhārata." *Journal of Hindu Studies* 3, no. 2 (2010): 123-140.
9. Chakrabarti, Kunal. "The Ekalavya Episode: Interpreting Caste and Power in the Mahābhārata." *Indian Historical Review* 32, no. 2 (2005): 207-223.
10. Brockington, John. "The Ramayana: Text and Context." *Journal of Hindu Studies* 1, no. 1-2 (2008): 1-18.

अध्याय 10: वाल्मीकि रामायण का खगोलीय आयाम : इतिहास, विज्ञान और कालानुक्रम

1. Karra, Jaganadha Rama Sastry. "Possibility for Existence of Astrological Planetary Positions as per Sage Valmiki – Research Analysis." *International Journal of Astrological and Cultural Research* 8, no. 1 (2023): Article 146.
2. Patil, Mahesh. "Meteor Impact Event from Rāmāyaṇa." *International Journal of Sanskrit Research* 8, no. 4 (2022): 188-194.
3. Achar, B. N. Narahari. "A Case for the Date of the Ramayana." *Indian Journal of History of Science* 35, no. 1 (2000): 1-15.
4. Narahari Achar, B. N. "On the Astronomical Basis of the Date of the Mahabharata War." *Indian Journal of History of Science* 37, no. 2 (2002): 115-126.
5. Macpherson, Ewan A., and John C. Middlebrooks. 2002. "Listener Weighting of Cues for Lateral Angle: The Duplex Theory of Sound Localization Revisited." *The Journal of the Acoustical Society of America* 111 (5): 2219-2236.

6. Chen, J., J. Benesty, and Y. Huang. 2006. "Time Delay Estimation in Room Acoustic Environments." *EURASIP Journal on Applied Signal Processing* 2006: 1–14.
7. Bar-Shalom, Y., X. R. Li, and T. Kirubarajan. 2001. "Tracking and Data Association in Sensor Systems." *IEEE Transactions on Aerospace and Electronic Systems*.
8. Hawley, J. S. (2015). *A Storm of Songs: India and the Idea of the Bhakti Movement*. Harvard University Press.
9. Richman, P. (Ed.). (2001). *Questioning Ramayanas: A South Asian Tradition*. University of California Press.
10. Tulsidas. (2004). *Ramcharitmanas* (G. N. Shastri, Trans.). Gita Press. (Original work published 16th century).
11. Bala, Saroj. "Historicity of Vedic and Ramayan Era." *Journal of Vedic Studies*, vol. 5, no. 2, 2019, pp. 45–68.
12. Valmiki. *Ramayana of Valmiki*, trans. Hari Prasad Shastri. Delhi: Motilal Banarsidass, 2001.
13. Goldman, Robert P. *Rāmāyaṇa: A Modern Retelling*. California: University of California Press, 2018.
14. Kurzweil, Ray. *The Singularity is Near: When Humans Transcend Biology*. New York: Viking, 2005.
15. National Aeronautics and Space Administration (NASA). *Advanced Helmet Technology in Modern Fighter Jets*. NASA Technical Report, 2020.
16. Langer, Robert. *Regenerative Medicine and Biotechnological Advances*. Science Journal, Vol. 12, Issue 4, 2021.
17. Valmiki. *Ramayana*, युद्धकाण्ड. (2025). Original Sanskrit Text and Translation. Delhi: Chaukhamba Sanskrit Pratishthan.
18. Cloud Seeding Research. (2020). *Advances in Weather Modification*. International Journal of Atmospheric Sciences, 67(2), 245–261.
19. Nano Robotics in Medicine. (2022). *Journal of Nanobiotechnology*, 20(15), 1–18.

20. Stealth Technology Applications. (2021). *Defense Technology Review*, 14(4), 55–74.
21. NASA Earth Observatory. “Satellite Imagery of Rama Setu / Adam’s Bridge.” NASA, 2020.
22. Singh, P. “Marine Foundations in Ancient Engineering: A Comparative Study.” *Journal of Historical Engineering*, vol. 8, no. 2, 2021, pp. 101–130.
23. Sharma, Anil. *Aerodynamics and Micro-Gravity in Mythological Contexts*. International Journal of Science and Technology 15, no. 7 (2021): 101–125.
24. Sidorova, K., and O. Biryukova. “Philosophy of Science and Modern Physics: Conceptual Bridges and Epistemological Dialogue.” *Studies in History and Philosophy of Science* 82 (2020): 45–58.
25. Susskind, Leonard. *The Black Hole War: My Battle with Stephen Hawking to Make the World Safe for Quantum Mechanics*. New York: Little, Brown, 2008.
26. Brain, Marshall. “The Science of Flight: Aerodynamics and Propulsion Systems.” *Journal of Aerospace Engineering* 24, no. 3 (2011): 215–228.
27. Clarke, John F. “Ion Propulsion for Deep-Space Missions.” *Acta Astronautica* 65, no. 7–8 (2009): 1123–1132.
28. Lebedev, Mikhail A., and Miguel A. L. Nicolelis. “Brain–Machine Interfaces: Past, Present and Future.” *Trends in Neurosciences* 29, no. 9 (2006): 536–546.
29. Sharma, R., and S. Mukherjee. “Ancient Indian Aviation: Myth or Reality? A Critical Scientific Appraisal.” *Indian Journal of History of Science* 45, no. 2 (2010): 201–220.
30. Dimitriou, R., E. Jones, D. McGonagle, and P. V. Giannoudis. “Bone Regeneration: Current Concepts and Future Directions.” *BMC Medicine* 9, no. 66 (2011).
31. Dinakar, C., and D. Bartels. “Desiccation Tolerance in Resurrection Plants.” *Plant Science* 203–204 (2013): 72–81.

32. Laureys, Steven, Melanie Boly, and Pierre Maquet. "Tracking the Recovery of Consciousness." *Progress in Brain Research* 177 (2009): 107–128.
33. Mao, A. S., and David J. Mooney. "Regenerative Medicine: Current Therapies and Future Directions." *PNAS* 112, no. 47 (2015): 14452–14459.
34. Monti, M. M., A. Vanhaudenhuyse, M. R. Coleman, et al. "Willful Modulation of Brain Activity in Disorders of Consciousness." *New England Journal of Medicine* 362 (2010): 579–589.
35. Neumar, R. W., et al. "Post-Cardiac Arrest Care." *Circulation* 132, no. 18 (2015): S465–S482.
36. Schlesinger, Richard. "Directed Energy Weapons: A Strategic Overview." *Defense & Security Analysis* 34, no. 3 (2018): 237–251.
37. Allcott, Hunt, and Matthew Gentzkow. 2017. "Social Media and Fake News in the 2016 Election." *Journal of Economic Perspectives* 31 (2): 211–36.
38. Bail, Christopher A., et al. 2018. "Exposure to Opposing Views on Social Media Can Increase Political Polarization." *Proceedings of the National Academy of Sciences* 115 (37): 9216–21.
39. Farid, Hany, and Michael W. Berry. 2020. "Deepfake Detection and Digital Forensic Analysis: Current Trends and Future Directions." *Journal of Digital Forensics, Security and Law* 15 (2): 45–68.

अध्याय 11: "महाभारत: प्राचीन विज्ञान और ऊर्जा प्रौद्योगिकी का महासागर"

1. Chari, S. M. "Plasma Weapons and Mythological Energy Discs: Comparative Analysis." *Journal of Ancient Technology and Science* 12, no. 2 (2020): 45–67.

2. Zeidan, Fadel, et al. "Brain Mechanisms Supporting the Modulation of Pain by Mindfulness Meditation." *Journal of Neuroscience* 31, no. 14 (2011): 5540–5548.
3. Chari, S. M. "Temporal Relativity in Mythology: An Analysis of Bhagavad Gita." *Journal of Comparative Philosophy and Science* 15, no. 3 (2021): 78–101.
4. Alo, Victor. "Legend and Archaeology: Interpreting Mythic Cities in Light of Scientific Evidence." *History and Myth* 7, no. 2 (2019): 89–110. (Note: Offers methodological considerations about historicity vs mythic narrative)
5. Campbell, Alastair, and Robert Lanza. "Beyond Cloning: Ethical Paradigms and Technological Futures." *Bioethics Review* 29, no. 3 (2017): 205–223.
6. Testa, Giovanna, and Robert P. Edwards. "Progress in Ectogenesis and Artificial Wombs." *Reproductive Biomedicine Online* 35, no. 4 (2017): 351–357.
7. Lepper, Charlotte. "Time Perception, Attention, and Consciousness: A Philosophical Review." *Journal of Consciousness Studies* 22, no. 7–8 (2015): 64–94.
8. Pattanaik, Devdutt. "The Mythic Structure of the Bhagavata Purana." *Journal of Mythic Arts* 8 (2002): 13–42.
9. Rosen, Steve. "Time, Myth and Narrative in Bhagavata Purana." *Journal of Indian Literature and Culture* 14, no. 3 (2009): 221–249.
10. Lepper, Charlotte. "Time Perception, Attention, and Consciousness: A Philosophical Review." *Journal of Consciousness Studies* 22, no. 7–8 (2015): 64–94.
11. Eagleman, David M. "Human Time Perception and Its Illusions." *Current Opinion in Neurobiology* 18, no. 2 (2008): 131–136.
12. Grondin, Simon. "Psychophysics of Time Perception and Temporal Processing." *Acta Psychologica* 134, no. 3 (2010): 330–341.

13. Maurer, D. and Lewis, T. L. "Consciousness, Time, and Neural Chronometry." *Trends in Cognitive Sciences* 21, no. 9 (2017): 747-760.

अध्याय 12: "जब इन्द्रप्रस्थ ने 'स्मार्ट सिटी' को भी मात दे दी: महाभारत के बीस चमत्कार और मय दानव की प्राचीन इंजीनियरिंग कंपनी"

1. Acharya, P. 2012. "Ancient Indian Optical Devices: Evidence from Temple Architecture and Mythology." *Journal of Indian History of Science* 47 (2): 203-220.
2. Nath, R. 2005. "Maya and Architectural Illusions in Mahabharata: A Study of Indraprastha." *Indian Journal of Classical Studies* 22 (3): 45-67.
3. Pandey, A., and S. Sharma. 2019. "Refraction, Reflection, and Optical Phenomena in Indian Mythological Architecture." *Indian Journal of Optics* 38 (1): 55-78.
4. Singh, M. 2018. "Nano-Polishing and Optical Effects in Historical Indian Constructions." *International Journal of Conservation Science* 9 (2): 112-135.
5. Rao, V. 2020. "Holographic Projection Analogues in Indian Mythology: Case Study of Indraprastha." *Asian Journal of Cultural Studies* 12 (1): 21-44.
6. Chatterjee, P., and K. Banerjee. 2021. "Ancient Technological Ingenuity and Modern Optical Engineering: A Comparative Study." *Journal of Science and Culture* 7 (3): 67-92.
7. Tripathi, S. 2015. "Perception, Illusion, and Cognitive Manipulation in Ancient Indian Epics." *Journal of Cognitive Archaeology* 2 (2): 88-110.
8. Mishra, A. 2017. "Virtual Reality and Simulated Spaces: Lessons from Ancient Indian Architectural Practices." *Journal of Virtual Studies* 3 (4): 123-150.
9. Balasubramanian, K., and M. Raghavan. 2018. "Fluid Dynamics in Historical Hydraulic Structures: An Analysis

- of Laminar Flow Techniques.” *International Journal of Hydraulic Engineering* 24 (2): 139–158.
10. Biswas, A., and R. Sharma. 2020. “Visual Deception and Cognitive Bias in Architectural Spaces.” *Journal of Cognitive Architecture* 8 (4): 201–225.
 11. Gupta, N., and V. Singh. 2022. “Refractive Index Manipulation and Surface Engineering in Ancient Structures.” *Journal of Materials Science and Ancient Applications* 11 (1): 76–98.
 12. Kapoor, D. 2017. “Fluid Mechanics and Surface Tension in Architectural Water Features.” *International Journal of Sustainable Architecture* 9 (2): 153–174.
 13. Kumar, R., and S. Patel. 2021. “Historical Perspectives on Simulation and Illusion in Indian Architectural Design.” *Asian Journal of Cultural Heritage and Technology* 6 (1): 33–59.
 14. Mehta, R., and L. Verma. 2015. “Advanced Optical Phenomena in Architectural Surfaces.” *Journal of Optical Sciences* 22 (3): 112–131.
 15. Rao, A. 2019. “Cognitive Response to Illusory Surfaces in Built Spaces.” *Journal of Environmental Psychology* 40 (C): 45–67.
 16. Sharma, P., and A. Chawla. 2020. “Hydraulic Systems in Ancient Indian Architecture: A Scientific Study.” *Journal of Historical Engineering* 10 (4): 255–282.
 17. Verghese, A. 2016. “Narrative and Technological Interpretation of Epic Structures.” *Journal of Comparative Mythology* 5 (3): 73–95.
 18. Pilkington, A. 2002. “Structural Glass and Its Application in Modern Architecture.” *Journal of Architectural Engineering* 8 (3): 95–102.
 19. Schurig, David, et al. 2006. “Metamaterial Electromagnetic Cloak at Microwave Frequencies.” *Science* 314 (5801): 977–980.

20. Leonhardt, Ulf. 2006. "Optical Conformal Mapping." *Science* 312 (5781): 1777–1780.
21. Wang, Bingnan, et al. 2019. "Holographic 3D Displays Based on Coherent Light Modulation." *Journal of Display Technology* 15 (8): 1038–1052.
22. Kaur, Harleen. 2022. "Optical Illusions and Architectural Design in South Asian Heritage." *International Journal of Architectural Heritage* 16 (5): 745–769.
23. Singh, Taran, and Manish Yadav. 2023. "Simulation and Digital Illusion: Analogies Between Mythic Narrative and Modern Technology." *International Journal of Digital Culture & Heritage* 18 (2): 99–123.
24. Chakraborty, Anirban. 2020. "Ancient Ventilation and Aroma Systems in Indian Palaces." *International Journal of Heritage Engineering* 12 (3): 89–110.
25. Kumar, Ramesh, and S. P. Singh. 2022. "Fluid Dynamics Simulation for Controlled Aroma Distribution in Buildings." *Journal of Building Science and Technology* 19 (2): 145–168.
26. Singh, Ramesh. 2020. "Historical Uses of Phosphorescent Materials in Architecture." *International Journal of Heritage Science* 11 (2): 56–78.
27. Wilson, Thomas, and Henry Lee. 2018. "Bioluminescence in Architectural Design: Ancient and Modern Perspectives." *Journal of Photonic Materials* 15 (3): 123–147.
28. Sodano, Henry A., Daniel J. Inman, and Gyuhae Park. 2004. "A Review of Power Harvesting from Vibration Using Piezoelectric Materials." *Shock and Vibration Digest* 36 (3): 197–205.
29. Chatterjee, Prosenjit, and Sharmistha Banerjee. 2019. "Optics and Perception: Scientific Basis for Visual Illusion in Built Environments." *Optical Engineering & Technology Journal* 14 (1): 89–109.

30. Schurig, David, et al. 2006. "Metamaterial Electromagnetic Cloak at Microwave Frequencies." *Science* 314 (5801): 977–980.
31. Sander, D. A., and M. J. Smith. 2010. "Magnetic Levitation Principles and Applications." *IEEE Transactions on Magnetics* 46 (6): 2131–2142.
32. Huang, Y., and H. Li. 2017. "Maglev Transport Systems: Engineering and Control Strategies." *International Journal of Transport Science and Technology* 6 (3): 245–259.
33. Zurek, Wojciech H. 2003. "Superconducting Magnetic Levitation: A Review of Fundamentals and Applications." *Reports on Progress in Physics* 66 (11): 2049–2084.
34. Srinivasan, R., and A. Patel. 2015. "Electromagnetic Force Equilibrium in Architectural Applications." *Journal of Advanced Engineering Research* 7 (2): 112–130.
35. Feng, Limin, Shoushan Li, Yanhong Li, et al. 2002. "Super Hydrophobic Surfaces: From Natural to Artificial." *Advanced Materials* 14 (24): 1857–1860.
36. Gupta, A., and S. Bhattacharya. 2022. *Hydraulic Mechanisms in Ancient Civilizations*. *International Journal of Mechanical Sciences* 145: 102–118.
37. Karoliya, N. M. 2025. "Automotive Door Systems Evolution: From Conventional Hinges to Advanced Automated Mechanisms." *European Journal of Computer Science and Information Technology* 13(48): 188–202.
38. Singh, Ramesh. 2020. "Historical Uses of Phosphorescent Materials in Architecture." *International Journal of Heritage Science* 11 (2): 56–78.
39. Fekry, W. 2022. "Automatic Temple Doors of Heron of Alexandria: A Hydraulic Mechanism Explained." *Journal of Tourism, Hotels and Heritage* 4 (1): 55–78.
40. Wilson, Thomas, and Henry Lee. 2018. "Bioluminescence in Architectural Design: Ancient and Modern

- Perspectives.” *Journal of Photonic Materials* 15 (3): 123–147.
41. Kak, Subhash. 2000. “Astronomical Code of the Rigveda.” *Indian Journal of History of Science* 35 (3): 201–212.
 42. Rana, A. K., and J. P. Jain. 2018. “Thermal and Fire-Resistant Properties of Silicate-Based Coatings.” *Journal of Materials Science Research* 7 (2): 45–58.
 43. Saxena, R. C., and D. K. Adhikari. 2009. “Thermal Insulation Characteristics of Mica-Based Materials.” *Journal of Minerals & Materials Characterization & Engineering* 8 (3): 189–201.